भारत में
स्थानीय प्रशासन

डॉ. अशोक शर्मा

आर बी एस ए पब्लिशर्स
सवाई मानसिंह हाइवे, जयपुर

प्रकाशक :
सुरेन्द्र परनामी
आर बी एस ए पब्लिशर्स
चौड़ा रास्ता, जयपुर

ISBN 81-85176-80-9

मुद्रक :
अनुज प्रिन्टर्स
26, राम गली 8, राजापार्क
जयपुर - 302 004

आमुख

भारत मे स्थानीय स्वशासन संस्थाओ की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। राजनीतिक और प्रशासनिक चिन्तन के प्राचीन भारतीय ग्रन्थो-मनुस्मृति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि मे स्थानीय स्वशासन के व्यवस्थित व संस्थागत स्वरूप का विवेचन उपलब्ध है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत मे, स्थानीय प्रशासन की ग्रामीण और नगरीय इकाइयो को जो विधिक संस्तर प्रदान किया गया, वह स्थानीय स्वशासन की भारतीय विरासत का ही उदाहरण माना जा सकता है।

आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्यो मे स्थानीय स्वशासन की संस्थाओ का महत्व स्वय सिद्ध है। इन संस्थाओ के माध्यम से, जहा एक ओर शासकीय शक्ति के विकेन्द्रित उपयोग की लोकतान्त्रिक भावना की पूर्ति होती है वही इनके माध्यम से जनता को शासन की गतिविधियो मे सक्रिय भागीदारी का व्यावहारिक अवसर प्राप्त होता है। यदि इन संस्थाओ के दोषयुक्त कार्यकरण को सुनिश्चित किया जा सके तो इन्हे प्रशासनिक दक्षता, राजनीतिक प्रशिक्षण और व्यापक जन-सहभागिता के महत्वपूर्ण उद्देश्यो की प्राप्ति का समर्थ माध्यम बनाया जा सकता है।

भारत का संविधान स्थानीय स्वशासन की नगरीय इकाइयो के विषय मे मौन है, किन्तु स्वशासन की ग्रामीण इकाइयो की स्थापना को राज्य की नीति के निदेशक तत्वो के अन्तर्गत राज्य के मूलभूत दायित्वो मे सम्मिलित किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक मे स्थानीय स्वशासन की नगरीय और ग्रामीण इकाइयो के विभिन्न सैद्धान्तिक, सरचनात्मक व प्रक्रियात्मक पक्षो का विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक के विभिन्न अध्यायो मे, नगरीय प्रशासन की

इकाइयो के विभिन्न स्वरूपो-नगर निगम, नगर परिषद्, नगरपालिका, कस्बा क्षेत्र समिति, छावनी मण्डल और विशिष्ट उद्देश्यीय अभिकरणो के सस्थागत, कार्मिक, वित्तीय, राजकीय नियन्त्रण व प्रक्रियात्मक पक्षो का बोधगम्य शैली मे विवेचन किया गया है।

भारत मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के दर्शन, सिद्धान्त और व्यवहार का पुस्तक के एक स्वतन्त्र अध्याय मे विवेचन किया गया है। इसी क्रम मे पृथक्-पृथक् अध्यायो मे स्थानीय स्वशासन की ग्रामीण इकाइयो-जिला परिषद्, पचायत समिति, ग्राम पचायत आदि के विभिन्न सरचनात्मक और व्यावहारिक पक्षो और उनसे जुडी प्रशासनिक, व्यावहारिक व वित्तीय समस्याओ का विश्लेषण किया गया है। एक स्वतन्त्र अध्याय मे, महाराष्ट्र और गुजरात आदि राज्यो मे *प्रवर्तित पचायतीराज व्यवस्था से राजस्थान की पचायतीराज व्यवस्था का* तुलनात्मक आँकलन करने का प्रयास किया गया है।

विगत वर्षों मे राजस्थान विश्वविद्यालय के लोक प्रशासन विभाग की स्नातक व स्नातकोत्तर कक्षाओ मे स्थानीय स्वशासन के अध्यापक के रूप मे मैंने इस विषय पर ऐसी पाठ्य पुस्तक का अभाव अनुभव किया है, जिसमे स्वशासन की नगरीय व ग्रामीण सस्थाओ के सस्थागत पक्षो, कार्यकरण से सम्बन्धित विस्तृत सन्दर्भों तथा विशिष्ट समस्या क्षेत्रो का एक साथ विवेचन उपलब्ध हो। प्रस्तुत पुस्तक, इस अभाव की पूर्ति का दिशा मे एक विनम्र प्रयास है। मैं, अपने प्रयास की पूर्ति मे किस सीमा तक सफल रहा हू, यह प्रबुद्ध शिक्षकों, जिज्ञासु छात्रो व अन्य सुधी पाठको के मूल्याकन का विषय है। पुस्तक मे सुधार, संशोधन और परिमार्जन हेतु शिक्षकों, छात्रो व अन्य सुधी पाठको के सुझावो का मैं सदैव स्वागत और अपेक्षाएं करू गा।

इस पुस्तक के लेखन की प्रक्रिया मे जिन विद्वान लेखको-चिन्तको की रचनाओ और विचारो मे मैं लाभान्वित हुआ हू, उन सबके प्रति मैं विनम्र आभार व्यक्त करता हूं। पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने की विगत दो वर्ष की अवधि मे मुझे प्रमुख तौर पर मेरे वरिष्ठ सहयोगी डा० रविन्द्र शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, लोक प्रशासन विभाग और मेरे मित्र राजनीति विज्ञान विभाग के एसोसिएट प्रोफेसर डा० मधुकर श्याम चतुर्वेदी का जो सहयोग और समर्थन प्राप्त हुआ वह मेरे लिए स्थायी सम्बल रहा है। मेरे परिवार जनो के धैर्यपूर्ण

सहयोग और प्रेरणा ने तथा मेरे शोध लिपिक एवं टंकक सर्वश्री राधेश्याम शर्मा, तथा उमेश सोलंकी एवं प्रेमचंद सोलंकी ने इस कार्य को जो सरलता प्रदान की उसी का परिणाम है कि यह पुस्तक वर्तमान स्वरूप ले सकी है। अन्त में प्रकाशक आर बी. एस. ए. पब्लिशर्स तथा मुद्रक अनुज प्रिंटर्स के प्रति भी लेखक अपना आभार व्यक्त करता है।

अशोक शर्मा

लोक प्रशासन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

अनुक्रमणिका

1

स्थानीय स्वशासन का अर्थ, स्वरूप और आधुनिक राज्य में महत्व

भारत जैसे संघात्मक देश में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था उसकी त्रिस्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था का अविभाज्य अंग है। भारतवर्ष में संघीय स्तर पर केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय स्तर पर राज्य-सरकार और स्थानीय स्तर पर स्थानीय स्वशासन अथवा स्थानीय शासन नागरिकों की सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

स्थानीय शासन का महत्व प्राचीन काल से चला आ रहा है तथा राजाओं के राज्य-काल में भी शासन की इन इकाइयों की आवश्यकतानुसार स्थापना होती रही है। यदि हम प्राचीन समय के राजनैतिक और प्रशासनिक इतिहास पर दृष्टि डालें तो यह विदित होता है कि इन संस्थाओं का अस्तित्व किसी न किसी रूप में, सदैव, हर काल और हर राज में विद्यमान रहा है। समस्त विश्व में लोकतान्त्रिक विचारों के विस्तार के साथ ही यह विचारधारा बलवती होती चली गयी कि स्थानीय शासन को स्थानीय व्यक्तियों के द्वारा ही संचालित किया जाना चाहिए। न केवल प्राचीन काल में अपितु आज विश्व के सभी सभ्य एवं प्रजातान्त्रिक देशों में इन संस्थाओं का एक जाल सा बिछा हुआ मिलता है और संघीय या प्रान्तीय सरकारें नागरिकों के स्थानीय महत्व के अधिकतर कार्य इन संस्थाओं के द्वारा ही करवाने लगी हैं। 1947 में हमारी स्वतन्त्रता के पश्चात ज्यों ही भारत एक सर्वप्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य के रूप में उभरा त्योंही भारत की सरकार ने स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था को अत्यधिक महत्व देना आरम्भ कर दिया। स्वतन्त्र सरकार ने यह अनुभव कर लिया था कि स्थानीय स्वशासन की ये इकाइयां वास्तव में लोकतन्त्र की आधार शिला होनी हैं। यहाँ इस बात का उल्लेख कर दिया जाना प्रासंगिक है कि राष्ट्रीय

सरकार, जिसे हम संघीय सरकार के नाम से जानते हैं, और प्रान्तीय सरकार, जिसे हम भारत मे राज्य-सरकार के नाम से जानते हैं, संविधान द्वारा मर्यादित अपने-अपने पृथक कार्यक्षेत्र मे कार्य करती हैं। शासन का तीसरा स्तर, जिसे हम स्थानीय शासन के नाम से जानते हैं संविधान द्वारा सृजित या अधिकृत स्तर नही है। स्थानीय शासन की प्रकृति या स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए इस तथ्य से अवगत होना आवश्यक है कि स्थानीय शासन संविधान द्वारा शक्तियो के विभाजन में राज्य सूची का विषय माना गया है इसका अभिप्राय यह है कि भारत के संघ की समस्त राज्य सरकारें इस बात के लिए स्वतन्त्र हैं कि वे अपने राज्य मे जैसा स्थानीय शासन चाहे अपना सकती हैं। शासन के इस निम्नतम स्तर की रचना केन्द्रशासित प्रदेशो में राष्ट्रीय कानून द्वारा और राज्यों मे राज्यीय कानून द्वारा की जाती है जो अधिनियम द्वारा निर्धारित कार्यक्षेत्र मे कार्य करती है। इसका क्षेत्राधिकार विशिष्ट क्षेत्र तक सीमित होता है और इस विशिष्ट क्षेत्र मे बसने वाली जनता को नागरिक सुविधाए प्रदान करना इसका प्राथमिक दायित्व समझा जाता है।

किसी भी देश का स्थानीय स्वशासन प्राय दो स्तरो—नगरीय एव ग्रामीण मे विभक्त होता है। नगरीय क्षेत्र के स्थानीय प्रशासन को सचालित करने वाली इकाइया-नगर निगम, नगरपालिकाए, अधिसूचित क्षेत्र समितिया छावनी मण्डल और अन्य एकल उद्देशीय अभिकरण इत्यादि, पर नगरीय क्षेत्रो मे रहने वाली जनता की स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति करने का दायित्व रहता है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रो के निवासियों की स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति का दायित्व पचायती राज की त्रिस्तरीय रचना—जिला परिषद्, पचायत समिति और ग्राम पचायतो द्वारा वहन किया जाता है। स्थानीय स्वशासन की नगरीय एव ग्रामीण, इन दोनों ही सस्थाओ मे स्थानीय जनता अपनी सक्रिय भागीदारी निभाती है।

स्थानीय शासन तथा स्थानीय स्वायत्त शासन मे अन्तर

विदेशी शासन व्यवस्थाओ मे स्थानीय शासन तथा स्थानीय स्वायत्त शासन मे कोई भेद नही किया जाता। भारत वर्ष मे विभिन्न विद्वानो ने इसे अपनी-अपनी दृष्टि से देखा है। प्रोफेसर श्रीराम माहेश्वरी स्थानीय शासन और स्थानीय स्वशासन को भारत के सन्दर्भ मे एक ही मानते हैं। उनकी मान्यता यह है कि स्थानीय स्वशासन शब्द की उत्पत्ति उस समय हुई थी जबकि देश ब्रिटिश शासन के अधीन था और जनता को केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय किसी भी स्तर पर स्वशासन उपलब्ध नही था। जब ब्रिटिश सरकार ने भारतीयो को स्थानीय शासन से सम्बद्ध करने का निर्णय किया तो उसका अभिप्राय जनता को कुछ

अशो मे स्वशासन प्रदान करना था किन्तु आज जब देश मे केन्द्र और राज्य दोनो ही स्तरो पर स्वशासन की स्थापना हो चुकी है, तो स्थानीय स्वशासन का वह विशिष्ट सन्दर्भ और महत्व लुप्त हो चुका है।" दूसरी ओर स्वर्गीय डॉ वी एम सिन्हा ने दोनो मे भिन्न-भिन्न अर्थ देखा है–उनके अनुसार हमारे देश मे स्थानीय शासन का तात्पर्य जिला प्रशासन या सबडिविजन के प्रशासन मे है और स्थानीय स्वायत्त शासन से नगर निगम नगरपालिका, कस्बा क्षेत्र समिति, अधिसूचित क्षेत्र समिति, छावनी मण्डल, ग्राम पचायत, पचायत समिति तथा जिला परिषदो का बोध होता है।[2]

वस्तुत भारत के सविधान मे 'स्थानीय शासन' शब्द का प्रयोग किया गया है।[3] स्थानीय शासन तथा स्थानीय स्वायत्त शासन म विभेद इस प्रकार किया जा सकता है :

स्थानीय शासन	स्थानीय स्वायत्त शासन
1 स्थानीय शासन राज्य की प्रशासकीय व्यवस्था का अग है।	1 स्थानीय स्वायत्त शासन सस्थाए राज्य की प्रशासकीय व्यवस्था का अग नही होती। ये सस्थाए राज्य के नियन्त्रण मे काम करती है।
2 राज्य प्रशासन का इन पर प्रत्यक्ष और पूर्ण नियन्त्रण होता है और इनके कार्यक्षेत्र मे राज्य सरकार अधिशासी आज्ञा द्वारा कोई भी परिवर्तन कर सकती है।	2 इन सस्थाओ पर राज्य के नियन्त्रण की सीमा विधान मण्डल द्वारा निर्धारित की जाती है। राज्य-सरकार अधिशासी आज्ञा द्वारा इसमे कोई परिवर्तन नही कर सकती।
3 स्थानीय शासन के कर्मचारी लोक सेवा के सदस्य माने जाते हैं।	3 स्थानीय स्वायत्त शासन के कर्मचारी लोक सेवक नही माने जाते। ये अर्द्ध शासकीय सस्थाओ के कर्मचारी माने जाते हैं।
4 स्थानीय शासन को समुचित ढग से सचालित करने का दायित्व राज्य-सरकार का होता है। इसे सरकार के बनाये गये नियमो और आदेशो के अनुसार सचालित किया जाता है।	4 स्थानीय स्वायत्त शासन के सचालन का दायित्व राज्य-सरकार का नही बल्कि स्वय इन्ही सस्थाओ का होता है। अपने सचालन के नियम भी स्वय इन्हीं के द्वारा बनाये जाते हैं।

5. स्थानीय शासन मे नौकरशाही प्रभावी होती है ।	5. स्थानीय स्वायत्त शासन मे नौकरशाही का प्रभाव तुलनात्मक रूप से न्यून होता है ।
6. स्थानीय शासन मे जनप्रतिनिधियो का प्रत्यक्ष प्रभाव नही होता ।	6. स्थानीय स्वायत्त शासन के सचालन मे जनप्रतिनिधि प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं ।
7. जनता के सदस्य इसमे परामर्शदात्री समितियो के माध्यम से ही भाग लेते हैं ।	7. जनता के सदस्य निर्वाचित होकर इन सस्थाओ के कार्यकरण मे भाग लेते हैं ।
8 ये सस्थाए जन आवश्यकताओ के प्रति उदासीनता दिखाती हैं ।	8. जबकि स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाए जनआवश्यकताओ के प्रति जागरूक होती हैं ।

स्थानीय शासन और स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाओ का उपरोक्त तुलनात्मक विवरण इस अर्थ को ध्यान मे रखकर किया गया है कि स्थानीय शासन राज्य-सरकार की नियमित प्रशासनिक सरचना का अग होता है जबकि स्थानीय स्वशासन नगरपालिका या पचायती राज की सस्थाओ को कहते हैं ।

स्थानीय स्वायत्त शासन की परिभाषा

स्थानीय स्वशासन का अर्थ स्थानीय स्तर की उन सस्थाओ मे है जो जनता द्वारा चुनी जाती हैं तथा जिन्हे राष्ट्रीय या प्रान्तीय शासन के नियन्त्रण मे रहते हुए नागरिको की स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अधिकार और दायित्व प्राप्त होते है । इसका अभिप्राय यह है कि स्थानीय स्वशासन की इकाइया सीमित क्षेत्र मे प्रदत्त अधिकारो का उपयोग करती हैं वे सप्रभु की तरह नही होती । भारत मे ये सस्थाए राज्य विधान मण्डल द्वारा बनायी गयी विधि की सीमा मे काम करती हैं और विधि द्वारा प्रदत्त समस्त अधिकारो का उपयोग करते हुए आरोपित दायित्वो का सम्पादन करती हैं । एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार स्थानीय शासन का अर्थ है, "पूर्ण राज्य की अपेक्षा एक अदरूनी प्रतिबन्धित एव छोटे क्षेत्र मे निर्णय लेने तथा उनको क्रियान्वित करने वाली सत्ता।" ।

कार्ल जे फ्रेडरिक के अनुसार; "स्वशासन स्थानीय समाज की एक प्रशासनिक व्यवस्था है जो व्यवस्थापन के नियमो द्वारा इस प्रकार विनियमित होती है कि सरकार की सत्ता का उस समय प्रतिनिधित्व करे जबकि वह स्थानीय रूप से सक्रिय है ।

एल. गोल्डिग के अनुसार स्थानीय स्वशासन की सरलतम परिभाषा यह है कि, "यह एक बस्ती के लोगो द्वारा अपने मामलो का स्वय ही प्रबन्ध है।"

ए. डी आशीर्वादम ने स्थानीय स्वशासन को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "स्थानीय स्वशासन केन्द्र सरकार या राज्य-सरकार के अधिनियम द्वारा निर्मित एक ऐसी प्रशासकीय इकाई है जिसमे नगर या ग्राम, जहाँ एक क्षेत्र की जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं और जो अपने दायित्व क्षेत्र की परिसीमा मे प्रदत्त अधिकारो का उपयोग लोक-लोककल्याण के लिए करते हैं।

वी. वेंकटराव के अनुसार, "स्थानीय सरकार, राज्य-सरकार का वह भाग है जो मुख्यत स्थानीय विषयो से सम्बन्ध रखती है तथा उसकी शासन करने वाली सत्ता राज्य के अधीन रहती है लेकिन उसके चुनाव, राज्य की सत्ता के नियन्त्रण की अपेक्षा स्वतन्त्र रूप मे योग्य निवासियों द्वारा किये जाते हैं।"[5] एक अन्य परिभाषा मे कहा गया है कि स्थानीय सरकार शब्द से सामान्यत अर्थ है एक क्षेत्र का प्रशासन एक गाँव, एक कस्बा, एक शहर या इस प्रकार का क्षेत्र जो राज्य से छोटा हो जो स्थानीय निवासियो का प्रतिनिधित्व करता है तथा पर्याप्त सीमा तक स्वायत्तता रखता है, अपने राजस्व का एक बड़ा भाग स्वय स्थानीय करो के रूप मे इकट्ठा करता है और अपनी आय को स्थानीय कार्यों म खर्च करता है तथा जो राज्य-सरकार और केन्द्र सरकार के कार्यों से भिन्न है।

इसप्रकार इस परिभाषा मे पाच विशेषताए सम्मिलित की गयी हैं जिनमे एक स्थानीय इकाई, वहा के निवासियो द्वारा उस इकाई का चुनाव तथा नियत्रण उच्च सत्ता मे उस इकाई की एक सीमित क्षेत्र मे स्वायत्तता, स्थानीय तथा गैर-स्थानीय कार्यों मे भेद व स्थानीय कर लगाना। स्थानीय स्वशासन के विषय मे प्रर्वातत यह दृष्टिकोण स्थानीय सरकार की इकाइयो के लिए भी शाश्वत रूप से लागू माना जा सकता है।

इस प्रकार स्थानीय स्वशासन से हमारा अभिप्राय यह है कि ग्रामीण क्षेत्रो का प्रशासन वहा के निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा चलाया जाये। यदि स्थानीय क्षेत्र का प्रशासन केन्द्र या राज्य सरकारो के अधिकारियो के द्वारा चलाया जाय तो वह स्थानीय प्रशासन तो होगा किन्तु स्थानीय स्वशासन नही होगा। स्थानीय स्तर की समस्याओ का स्थानीय स्तर पर समाधान करने के लिए प्राय सभी देशो मे स्थानीय स्वशासन की सस्थाए स्थापित की जाती हैं। ये सस्थाए ग्रामीण और शहरी क्षेत्रो के लिए अलग अलग होती हैं। इन्हे व्यवस्थापिका द्वारा पारित अधिनियमो के आधार पर निर्मित किया जाता है। ये सस्थाए केवल उन्ही

शक्तियो का उपयोग करती हैं जो उन्हे सम्बन्धित अधिनियम द्वारा प्रदान की जाती हैं और इस अधिनियम द्वारा वर्जित कार्यों को वे नही कर सकती हैं। इन संस्थाओ मे जनता के प्रतिनिधि चुने जाते हैं और वे अपने प्राधिकृत अधिकार क्षेत्र मे स्थानीय प्रकृति के कार्यों को सम्पन्न करने मे बहुत कुछ स्वायत्तता का उपयोग करते हैं। राज्य-सरकार इन संस्थाओ पर निर्देशन और निरीक्षण आदि के माध्यम से नियन्त्रण करती है। राज्य-सरकार द्वारा इन संस्थाओ को जो वित्तीय अनुदान दिये जाते हैं उनके उपयोग के लिए भी ये संस्थाए राज्य-सरकार के नियन्त्रण मे रहती हैं। किन्तु यह भी सच है कि अधिनियम मे प्राप्त शक्तियो का उपयोग करने के लिए इन संस्थाओ को राज्य-सरकार से कोई पूछताछ नही करनी होती। इस क्षेत्र मे वे एक विवेक सम्मत स्वायत्तता का उपयोग करती हैं।

स्थानीय स्वशासन की प्रकृति या उसके लक्षण

उपरोक्त विवरण के आधार पर स्थानीय स्वशासन की प्रकृति और उसकी विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है

1. इन संस्थाओ का संवैधानिक आधार नही होता, शासन का यह स्तर संविधान द्वारा सृजित नही है।
2. इन संस्थाओ का स्वरूप सांविधिक होता है अर्थात राज्य विधानमण्डल के अधिनियम द्वारा इनकी रचना की जाती है।
3. अधिनियम द्वारा प्रदत्त कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत इन्हे स्वायत्तता प्राप्त होती है।
4. अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निवासियो पर कर लगाकर इन्हे वित्त एकत्र करने का अधिकार होता है।
5. भारत मे स्थानीय स्वशासन की ये संस्थाए राज्य-सूची का विषय होने के कारण राज्य सरकारो द्वारा निर्देशित, पर्यवेक्षित व नियन्त्रित की जाती हैं।
6. भारत मे स्थानीय स्वशासन की ये संस्थाए दो भागो मे विभाजित हैं—ग्रामीण स्थानीय स्वशासन तथा नगरीय स्थानीय स्वशासन। दोनो ही प्रकार की स्वशासन की संस्थाओ पर पृथक-पृथक प्रशासनिक विभाग का नियन्त्रण रहता है। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की संस्थाए जहाँ सामुदायिक विकास और पंचायती राज विभाग द्वारा नियन्त्रित होती है वही

नगरीय संस्थाओं का नियंत्रण नगरीय स्वायत्त शासन विभाग करता है।

7. स्थानीय स्वशासन की इन संस्थाओं को सदैव धन का अभाव रहता है। धन के अभाव की इस स्थिति के अनेक कारण हैं जिनका यथा-स्थान उल्लेख किया जायेगा।

8. इन संस्थाओं को राजनैतिक हस्तक्षेप का भी सामना करना पड़ता है। इन संस्थाओं के दैनिक कामकाज में राज्य की पदासीन सरकार उचित अनुचित हस्क्षेप करती रहती है।

9. इन संस्थाओं का निर्वाचन प्रायः वयस्क मताधिकार के आधार पर ही होता है किन्तु चूंकि ये संस्थाएं संविधान की रचना नहीं हैं और सम्बन्धित राज्य-सरकार की रचना होती हैं इसीलिए इन संस्थाओं के चुनाव के लिए भारत में कुछ राज्य सरकारों ने मताधिकार की आयु को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष करने का प्रयोग उस समय भी किया था जब वयस्क मताधिकार की आयु 21 ही थी।

10. सम्पूर्ण देश में इन संस्थाओं का कोई आदर्श ढांचा विकसित नहीं किया जा सका है। राज्य सरकारें अपनी सुविधा से विभिन्न संस्थाओं की रचना करती हैं और उन्हें दायित्व और शक्तियाँ भी भिन्न-भिन्न राज्यों में अलग-अलग प्रकार से दिये गये हैं।

11. इन संस्थाओं की प्रशासकीय दृष्टि से जनता में अकुशल छवि है। इस अकुशल छवि के भी अनेक कारण हैं।

12. स्थानीय जनता कुछ विशिष्ट मामलों में इन संस्थाओं के निर्णय निर्माण में सक्रिय भाग लेती है।

विलियम ए. रॉब्सन का मत है कि सामान्यतः स्थानीय शासन में एक ऐसे प्रादेशिक, प्रभुत्वहीन समुदाय की धारणा निहित होनी है जिसके पास अपने मामलों का नियमन करने का विधिक अधिकार तथा आवश्यक संगठन हुआ करता है। इसके लिए एक ऐसी सत्ता का होना आवश्यक है जो बाह्य नियंत्रण से मुक्त रहकर काम कर सके, और यह भी जरूरी है कि स्थानीय समुदाय का अपने मामलों के प्रशासन में साझा हो। स्थानीय शासन में ये तत्व किस सीमा तक विद्यमान होते हैं, इस विषय में न्यूनाधिक अन्तर हो सकता है।[7]

स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता

लोगों का संगठित समूह जब एक स्थान पर, एक निश्चित भौगोलिक

सीमा मे रहने लगता है तो उनमे एक सामुदायिकता और एकता की भावना पैदा हो जाती है। इन लोगो के इस सामूहिक आवास के फलस्वरूप कुछ समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन समस्याओ का सम्बन्ध नागरिक जीवन को सुविधाओ से होता है, जैसे पानी की व्यवस्था, गन्दे पानी के निष्कासन के लिए नालियो का प्रबन्ध, सडको की सफाई, कूडे-करकट का हटाया जाना, सार्वजनिक मार्गों पर प्रकाश की व्यवस्था, महामारियो की रोकथाम, प्राथमिक स्वास्थ्य और चिकित्सा व्यवस्था तथा नागरिको को स्वस्थ पर्यावरण उपलब्ध करवाना इत्यादि। जैसे-जैसे नगर की जनसंख्या बढती है उस शहर का आकार-प्रकार भी बढता चला जाता है और समस्याएं भी उसी अनुपात मे विकराल रूप धारण कर लेती हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ नागरिको की जीवन यापन की दैनिक आवश्यकताओ मे पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। इस कारण स्थानीय स्वशासन से उनकी अपेक्षाएं निरन्तर बढ रही हैं। स्थानीय लोगो की बढती हुई स्थानीय आर्थिक, सामाजिक आवश्यकताओं और उनसे उत्पन्न समस्याओ के समाधान के लिए एक सशक्त स्थानीय शासन या स्वशासन की आवश्यकता निरन्तर बढती जा रही है।[8]

राष्ट्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार के कार्यों का जो विभाजन संविधान मे किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि नागरिको की स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति का दायित्व संविधान निर्माताओ ने स्थानीय स्वशासन पर छोडा है, जिसे राज्य-सूची का एक विषय बनाया गया है।

स्थानीय स्वशासन का महत्व

आधुनिक युग को नागरिको की उभरती हुई आकांक्षाओ का युग माना जाता है। सभी प्रजातन्त्रीय और लोककल्याणकारी राज्यो मे शासन सम्बन्धी कार्यों का इतना अधिक महत्व और विस्तार हो गया है कि केवल केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार इन कार्यों का सम्पादन नही कर सकती। इसी कारण समस्त लोकतान्त्रिक देशो में राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय सरकारें इनके कार्यभार को हल्का करने की दृष्टि से स्थानीय स्वशासन की संस्थाओ को व्यापक जिम्मेदारियां देती हैं। स्थानीय स्वशासन के महत्व को निम्नांकित बिन्दुओ मे व्यक्त किया जा सकता है :

1 स्थानीय सरकार प्रजातन्त्र का आधार है

हमारे देश के प्रथम प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू ने 1948 मे देश के स्थानीय स्वशासन मन्त्रियो के पहले सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा था कि "स्थानीय स्वशासन लोकतन्त्र की सच्ची पद्धति का आधार है और होना"

भी चाहिए"। हमें प्राय. उच्च स्तर पर लोकतन्त्र के बारे मे सोचने की आदत पड गई है और हम नीचे के स्तर पर लोकतन्त्र के बारे मे कुछ नही सोचते हैं। ऊपर के स्तर पर लोकतन्त्र तब तक सफल नही हो सकता जब तक कि उसे नीचे से मजबूत न बनाए। प्रो डब्लू ए. रोब्सन ने भी कहा है कि राष्ट्रीय स्तर पर एक अच्छे व स्वस्थ प्रजातन्त्र को तब तक बनाया जाना असम्भव है जब तक कि इसे कस्बा और देहात मे प्रजातान्त्रिक स्थानीय सस्थाओ द्वारा सहयोग व प्रोत्साहन न दिया जावे। इस प्रकार स्थानीय सस्थाए प्रजातन्त्र के लिए नीव के रूप मे कार्य करती हैं। यह नागरिको को देश की राजनीतिक प्रक्रिया मे सक्रिय रूप से भाग लेने का सुअवसर प्रदान करती है।

प्रजातन्त्र की नीव और उसका आधार स्थानीय निकायो द्वारा मजबूत बनाया जाता है। जब तक देश का प्रत्येक नागरिक स्वय को उत्तरदायी तथा शासन की नीतियो के निर्माण तथा क्रियान्वयन मे हिस्सेदार महसूस नही करता है तब तक उस राष्ट्र मे प्रजातन्त्र सैद्धान्तिक रूप मे ही रहता है, उसमे व्यावहारिकता तथा वास्तविकता नही आती, और व्यावहारिकता के लिए गाव, कस्बा तथा नगर स्तर पर प्रत्येक की अपनी स्थानीय स्वायत्त सरकार का होना अति आवश्यक है। प्रजातन्त्र केन्द्र व राज्यो की राजधानियो तक सीमित न रहकर वास्तव मे नगरो व गावो मे निहित रहता है। हमारे देश मे इसे अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए बडे-बडे नगरो जैसे, बम्बई, कलकत्ता, देहली, मद्रास व हैदराबाद मे तो स्थानीय सरकार का भी व्यापक स्तर पर विकेन्द्रीकरण कर दिया गया है जिससे प्रत्येक नागरिक अपने आप को स्थानीय सरकार का ही एक अग समझने लगे हैं।

2 लोकतन्त्र की पाठशाला या प्रशिक्षणशाला

लार्ड ब्राइस ने कहा है कि स्थानीय प्रशासन प्रजातन्त्र के लिए प्रशिक्षण स्थली या पाठशाला का काम करता है। इसके अभाव मे प्रजातन्त्र की सफलता की आशा नही की जा सकती। अपने राजनीतिक जीवन को आगे बढाने मे रुचि रखने वाले लोगो के लिए स्थानीय स्वशासन की सस्थाए प्रशिक्षण प्रदान करती है। इसी प्रशिक्षण के माध्यम से भविष्य का प्रजातात्रिक नेतृत्व उभरता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व श्रीसुभाष चन्द्र बोस ने अपने राजनैतिक जीवन का आरम्भ कलकत्ता नगर निगम से किया था। इसी प्रकार हमारे प्रथम प्रधानमत्री प० जवाहर लाल नेहरू ने अपने राजनैतिक जीवन की शुरुआत इलाहाबाद नगर पालिका के अध्यक्ष के रूप मे की थी। भविष्य का राजनैतिक नेतृत्व स्थानीय शासन की इन सस्थाओ मे जो अनुभव करता है, उसमे आगे चलकर, सम्पूर्ण

राष्ट्र और समाज को लाभान्वित करता है। वस्तुत स्थानीय शासन की संस्थाओं को लोकतन्त्र की नींव मजबूत करने के लिए सनातन रूप से स्मरण किया जाता है।

3 अच्छे नागरिक जीवन के विकास के लिए अनिवार्य

आज हम लोक कल्याणकारी राज्य के युग में रह रहे हैं। नगरपालिकाए, नगरनिगम और पंचायत राज की संस्थाए, जब तक नागरिको को स्थानीय सेवाए प्रदान नही करती तब तक नागरिक सुखी और समर्थ जीवन का विकास नही कर सकते। एक लोक कल्याणकारी राज्य का यह उद्देश्य होता है कि सभी लोगो का नागरिक जीवन सुखी, स्वस्थ और समर्थ बन सके। स्थानीय स्वशासन की संस्थाए लोक कल्लाणकारी राज्य के इस आदर्श को मूर्त रूप देने का प्रयत्न करती हैं। ये संस्थायें इस सकल्प के अनुरूप समाज निर्माण मे सरकार का सक्रिय सहयोग करती हैं।

4. नागरिकों को राजनैतिक शिक्षा प्रदान करना

स्थानीय स्वशासन की संस्थाए नागरिको मे राजनीतिक शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न करती हैं। स्थानीय संस्थाओ के चुनावो में उस क्षेत्र के सभी नागरिक सक्रिय होकर भाग लेते हैं। नागरिक यह जानते हैं कि ये संस्थाए उनकी स्थानीय आवश्यकताओ जैसे सफाई, सड़क, पानी और प्रकाश आदि का प्रबन्ध करती हैं अत यदि इन संस्थाओ मे क्रियाशील नागरिको को नही चुना गया तो ये संस्थाए अकुशलता का प्रतीक बनकर रह जायेंगी। इस कारण स्थानीय स्तर पर इन संस्थाओ के चुनाव से राजनैतिक जीवन मे स्फूर्ति और जागरूकता उत्पन्न हो जाती है और स्थानीय नागरिक सक्रिय होकर पूर्ण सहयोग और समर्थन के साथ इनके कार्यों और चुनावो मे भाग लेते हैं। चूंकि स्थानीय शासन जनता के सर्वाधिक निकट होता है इसलिए लोग यह भी समझते हैं कि वे इन संस्थाओ पर अच्छे काम काज के लिए अधिक सरलता से प्रभाव डाल सकते हैं। नागरिको की यह चेतना और क्रियाशीलता सारे जन समुदाय मे राजनैतिक शिक्षा और जागरूकता का सचार करती है।

5. संघीय एव प्रान्तीय शासन के कार्यभार में सहयोग

स्थानीय स्वशासन की ये संस्थाए अपने कार्यों के द्वारा केन्द्र और राज्य-सरकार के कल्याणकारी कार्यों मे बहुत सहायता करती हैं। इन संस्थाओ की उपस्थिति के कारण केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें नागरिको की स्थानीय आव-

आवश्यकताओं के प्रति पर्याप्त सीमा तक निश्चिन्त हो जाती है। ऐसा होने से केन्द्रीय और राज्य सरकारें अधिक महत्वपूर्ण कार्यों के लिए अपने समय का सदुपयोग कर पाती हैं।

6 स्थानीय समस्याओं को सुलझाने के लिए स्थानीय परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक

अंग्रेजी में एक कहावत है—जिसका सार यह है कि केवल जूता पहनने वाला ही यह जान सकता है कि उसमें कील कहां चुभ रही है।[9] इसका सार्वभिक अभिप्राय यह है कि स्थानीय समस्याओं को सुलझाने के लिए स्थानीय परिस्थितियों और वातावरण का ज्ञान आवश्यक होता है। किसी भी बाहरी व्यक्ति की तुलना में स्थानीय व्यक्ति को स्थानीय समस्याओं की प्रकृति, उनकी जटिलता उनके उद्गम, कारणों, अन्तर्गुम्फित समीकरणों और सम्भावित समाधानों का अधिक सटीक और सक्रिय ज्ञान होना है। स्थानीय व्यक्ति उन समस्याओं का जो समाधान खोजेंगे वह अधिक व्यावहारिक और चिरस्थायी होगा। स्थानीय परिस्थितियों में कौन से विकास कार्य किये जायें और कौन से न किये जायें, इसका निर्धारण करने के लिए क्षेत्र के वातावरण और परिस्थितियों की गहन निकट जानकारी अत्यन्त आवश्यक होती है। विद्वानों का यह विचार है कि इन्हीं आवश्यकताओं ने स्थानीय स्वशासन की अवधारणा को जन्म दिया था।

7 स्वतन्त्र राष्ट्रों की शक्ति का आधार

आधुनिक राज्यों में स्थानीय संस्थाओं का विशेष महत्व है क्योंकि किसी भी देश की कार्य कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि उस देश में स्थानीय स्तर पर कार्य कर रही संस्थाएं कितनी समर्थ व कुशल हैं। एक स्थिर तथा सुदृढ़ राजनीति पर आधारित प्रजातन्त्र का विकास स्वस्थ व कुशल स्थानीय संस्थाओं से होता है। विश्व के अनेक विद्वानों जैसे–जे एस. मिल, एलेक्सिस डी टाकविले, लॉर्ड, ब्राइस, एच. जे लॉस्की, थॉमस जेफरसन, महात्मा गांधी व आचार्य विनोबा भावे ने इन संस्थाओं की प्रशंसा तथा इनके अधिकाधिक विकास व उत्थान का समर्थन किया है। किसी राष्ट्र की प्रगति, प्रेम, सौहार्दता व परोपकारिता के वातावरण में ही हो सकती है। इन संस्थाओं के द्वारा राष्ट्र के विकास के लिए इस प्रकार का वातावरण आसानी से तैयार किया जाता है। स्थानीय स्वशासन से ही वास्तविक लोकतन्त्र का स्वप्न साकार हो सकता है। डी टाकविले ने कहा है, "नागरिकों की स्थानीय सभाएं स्वतन्त्र राष्ट्रों की वास्तविक शक्ति हैं"। नगर सभाएं स्वतन्त्रता के लिए उतनी ही आवश्यक हैं, जितनी कि

प्राथमिक पाठशालाएं विज्ञान के लिए। ये स्वतन्त्रता को लोगों तक पहुंचाती हैं, वे उनको सिखाती हैं कि स्वतन्त्रता का आनन्द किस प्रकार उठाया जाये। एक राष्ट्र भले ही स्वतन्त्र सरकार की पद्धति को स्थापित कर ले परन्तु स्थानीय संस्थाओं के बिना इसमें स्वतन्त्रता की भावना नहीं आ सकती है। स्थानीय सरकार को स्वतन्त्रता की भावना जनता तक पहुंचाने का साधन माना गया है तथा कहा गया है कि यह संस्थाएं स्वतन्त्रता की भावना जनता में अधिक पैदा कर सकती हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि इन संस्थाओं के बिना देश स्वतन्त्र नहीं हो सकता बल्कि स्वतन्त्रता को स्थायी बनाने में स्वायत्त शासन का महत्व रेखांकित गया है।

8 सकारात्मक राज्य का मूर्त रूप स्थानीय संस्थाएं

आधुनिक युग में सेवाभावी राज्य होना, सकारात्मक राज्य का रूप माना जाता है जिसका प्राथमिक लक्ष्य अपने निवासियों का अधिकतम कल्याण और सेवा करना होता है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक अपनी सेवा को पहुंचाने के लिए यह सकारात्मक राज्य स्थानीय संस्थाओं का सहयोग लेता है। शिक्षा तथा सफाई ऐसे विषय हैं जिन पर किसी भी देश और भावी पीढ़ी का निर्माण निर्भर करता है। वस्तुत. इन दोनों ही दायित्वों का सम्पादन स्थानीय निकायों द्वारा किया जाता है।

9. स्थानीय संस्थाएं विकेन्द्रीकरण का साधन हैं

भारत में स्थानीय शासन की संस्थाओं के विकास के पूर्व शासन का सम्पूर्ण भार केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार पर होता था। किसी भी देश के लोकतन्त्र को सभी नागरिकों तक पहुंचाने के लिए राजनैतिक और प्रशासनिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया जाना अभीष्ट होता है। इस लक्ष्य की पूर्ति स्थानीय संस्थाओं का जाल बिछाकर की जाती है। पंचायती राज की समस्त संस्थाओं को इसीलिए प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का पर्याय और आधार माना जाता है। विद्वान इसलिए मानते हैं कि एक अच्छे समाज के निर्माण के लिए स्वायत्त शासन संस्थाओं में विकेन्द्रीकरण को साकार करना होता है। इस विकेन्द्रीकरण में राजनैतिक, प्रशासनिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वयं महात्मा गांधी भी चाहते थे कि गांव के स्तर पर अधिक से अधिक कार्य और अधिकांश निर्णय ग्रामवासियों द्वारा ही लिये जाने चाहिये। उनका मानना था कि स्थानीय स्तर पर किये गये कार्य चूंकि वहां के नागरिकों द्वारा किये जाते हैं इसीलिये वे शीघ्र, सही और मितव्ययता के साथ होंगे। इन संस्थाओं में कार्य

करने वाले प्रतिनिधियो को चूंकि कोई वेतन प्रदान नही किया जाता और वे समाज सेवा की भावना से ही कार्य करते हैं अत- स्थानीय सरकार की इन सस्थाओ को, महात्मा गाधी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अध्ययन की प्रयोगशाला भी कहा है।

10. सस्कृति तथा सभ्यता की पोषक

स्थानीय सस्थाओ को देश की सस्कृतियो का रक्षक माना जाता है क्योकि वह सस्थाए सदियो से ही प्रेम भाव उत्पन्न करती रही हैं तथा अलग-अलग स्थानो की विशेषताओ को बनाये रखने मे इनका बडा योगदान रहा है। सस्कृति की धरोहरो को प्राचीन काल से इन सस्थाओ ने बनाये रखने का कार्य किया है। व्यक्तियो मे एक दूसरे से सद्व्यवहार करने की भावना का विस्तार किया है। इन सस्थाओ के द्वारा नागरिको में कर्त्तव्य और जिम्मेदारियो के पालन की भावना उत्पन्न होती है। ब्राइस ने कहा है "जो भी ग्राम के मामलो मे ईमानदारी, सक्रियता और सार्वजनिक भावना सीख लेता है, उसने अपने महान् देश के नागरिक के कर्त्तव्य का पहला पाठ सीख लिया है।" ब्राइस ने आगे कहा है कि, "स्थानीय सस्थाए व्यक्तियो को न केवल सार्वजनिक हितो की शिक्षा देती है बल्कि दूसरो के साथ प्रभावशाली ढग से काम करने का प्रशिक्षण भी देती है।" इन सस्थाओ के द्वारा नागरिको मे बुद्धि, औचित्य, न्याय और सामाजिक भावना उत्पन्न होती है, जो लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है।

11 स्थानीय सूचना केन्द्र

स्थानीय सस्थाए राज्य सरकारो को तथा केन्द्र सरकार को समस्त ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रो की जनता से सम्बन्धित आवश्यक आंकडे प्रदान करती है। जनसख्या, आय, पुरुष-महिला, शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि, उत्पादन खपत इत्यादि कितनी ही बातो के सही आकडे जानने के लिए राज्य सरकारें स्थानीय सस्थाओ को निर्देश देती हैं। चूकि स्थानीय सरकार मे नियुक्त व्यक्ति वहीं के निवासी होते हैं व उनके द्वारा प्रयुक्त साधन भी स्थानीय होते हैं इसलिए उनमे कोई भेद छिपा नही रहता और वे सही आकडे तैयार करने मे समर्थ तथा सक्षम सिद्ध होते हैं। इन आकडो के आधार पर राज्य व केन्द्र सरकार अपनी नीतियाँ निर्धारित करती हैं, तथा योजना आयोग वृहत् योजनाए तथा कार्यक्रम तैयार करता है जिसमे समस्त राष्ट्र का हित निहित होता है। इन नीतियो तथा योजनाओ को सफल बनाने मे स्थानीय सस्थाओ का अत्यधिक योगदान रहता है। विगत दिनों मे योजना आयोग ने सिफारिश की है कि योजनाए जिला, मण्डल तथा गाँवो के

स्तर पर तैयार की जानी चाहिये और उनके निर्माण तथा क्रियान्वयन में साधारण जनता का विशेष महत्व व भूमिका होनी चाहिए। इस सिफारिश से सशक्त स्थानीय सरकारों के निर्माण व संचालन को और अधिक बल मिलेगा है। इससे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार स्थानीय संस्थाएं राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं और योजनाओं को और अधिक व्यावहारिक व वास्तविक रूप देकर राष्ट्र के उत्थान व विकास में अग्रणी बन सकती है।

12. योजना और स्थानीय सरकार

किसी भी देश का यदि उत्थान करना हो तो वहाँ की योजनाएं बड़ी-बड़ी जगहों के अलावा स्थानीय स्तर तथा स्थानीय विकास के लिए उसी के अनुकूल बनायी जानी चाहिए। सामुदायिक विकास योजना, राष्ट्रीय वृद्धि दर, स्थानीय प्रगति, कृषि, सिंचाई, रोजगार श्रम इत्यादि योजनाओं को सफल बनाने के लिए जनता का सहयोग परमावश्यक है, और जन सहयोग तब तक नहीं मिल सकता जब तक कि वहाँ स्वायत्त संस्थाएं उपस्थित हों तथा विशुद्ध रूप से नेतृत्व प्रदान करने के लिए सक्षम भी हों। प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्थानीय सरकार के सहयोग तथा जनता से उनका समन्वय होना वाञ्छनीय रहता है। योजना आयोग ने बार-बार इस सन्दर्भ में केन्द्रीय व राज्य सरकारों का ध्यान आकर्षित किया है कि बिना स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं के प्रयत्न के कोई भी योजना वास्तविकता ग्रहण नहीं कर सकती।

13. स्थानीय शासन द्वारा नौकरशाही के दोषों से बचाव

स्थानीय संस्थाओं के स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में नौकरशाही के दोषों का निवारण होता है। प्रायः केन्द्रीय और राज्य सरकारों के सरकारी तन्त्र में नौकरशाही की बुराइयाँ सम्मिष्ट हो जाती हैं। इनका प्रशासन-तन्त्र लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, अकार्यकुशलता औपचारिकता और नियमों पर अत्यधिक जोर देने के कारण कुछ-कुछ निर्दयी सा आचरण करने लगता है। यह प्रशासन-तन्त्र अपने हाथों में अधिकाधिक शक्तियों का संचय कर लेता है जिससे जनता को दैनिक जीवन में अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं। स्थानीय संस्थाओं का संचालन चूंकि स्थानीय रूप से जागृत प्रतिनिधियों द्वारा होता है इसलिए इनके कार्य संचालन में नौकरशाही की बुराइयों से बचा जा सकता है।

इस प्रकार स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाएं न केवल आधुनिक नागरिक जीवन के लिए अपरिहार्य बन गयी बल्कि ये प्रजातन्त्र की निर्वाहक भी हो

गयी है। विद्वानों के इस मत मे कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नही होती कि स्थानीय संस्थाओ के बिना न तो लोकतन्त्र के आदर्शों को साकार किया जा सकता है और न ही किसी स्थायी प्रजातान्त्रिक राज्य का, इनके बिना विकास संभव है। आधुनिकतम अनुसंधानो ने यह सिद्ध कर दिया है कि समस्त विकास योजनाओ के लक्ष्यो की क्रियान्विति और सफलता नागरिको की अधिकतम सहभागिता पर निर्भर करती है जो स्थानीय संस्थाओ के माध्यम से स्वाभाविक रूप से प्राप्त की जा सकती है। यद्यपि स्थानीय संस्थाओ के विरोधी विचारको द्वारा अनेक बार यह तर्क रखा गया है कि लोकतन्त्र के भविष्य और स्थानीय संस्थाओ मे परस्पर कोई सम्बन्ध नही है। उनका यह भी कहना है कि जिन देशों मे स्थानीय संस्थाए नही है, लोकतन्त्र वहां भी चल रहा है। किन्तु यहां इसके उत्तर मे इतना ही कहा जा सकता है कि किसी भी लोकतन्त्र की उपस्थिति और उसकी सफलता म अन्तर होता है। इसमे कोई सन्देह नही कि स्थानीय संस्थाओ के बिना लोकतन्त्र चल सकता है किन्तु लोकतन्त्र अपने पूर्ण और विशुद्ध स्वरूप मे केवल तभी साकार हो सकता है जब यह समस्त नागरिको को शासन मे सहभागिता प्रदान करे और यह लक्ष्य स्थानीय संस्थाओ के द्वारा आसानी से पूरा किया जा सकता है। लार्ड ब्राइस का यह कहना सही है कि स्थानीय संस्थाए नागरिको मे उनके सामान्य कार्यों के सन्दर्भ मे एक सामान्य रुचि पैदा कर देती है जिसमे नागरिकों मे परस्पर सौहार्द, मेलमिलाप, सामाजिकता, न्यायप्रियता और सामान्य कार्यों के प्रति सामान्य समझ जैसे गुणो का विकास अपने आप हो जाता है। इसलिए आधुनिक विशाल राज्यो मे नागरिको की सामुदायिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सक्रिय स्थानीय संस्थाओ की आवश्यकता स्वय सिद्ध है।

सन्दर्भ

1. एस. आर. माहेश्वरी, भारत मे स्थानीय शासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 3–4
2. बी. एम. सिन्हा, भारत मे नगरीय सरकारें, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1986, पृ 1.
3. भारत के संविधान की सातवी अनुसूची की तीसरी सूची की चतुर्थ प्रविष्टि
4. एन्साइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेनिका.

5. *वी वेंकटराव, ए हन्डरेड ईयर्स आफ लोकल गवर्नमेन्ट इन आसाम,* बनि प्रकाश मण्डल, गोहाटी, 1965, पृ. 1.
6 एम वेंक्टरमैया तथा एम पट्टाभिराम.
7. उद्धृत, श्रीराम माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ. 5.
8 एम. ए. मुतालिब एवं खान, थ्योरी आफ लोकल गवर्नमेंट, नई दिल्ली, स्टर्लिंग, 1983, पृ. 3.
9 मोर्ली द बियरर नोज व्हेयर द शू पिंचेज



2

प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं का विकास

भारत मे स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाए अतीत काल से चली आ रही हैं फिर भी नगरीय एव ग्रामीण दोनो ही प्रकार की स्थानीय संस्थाओं का व्यवस्थित प्रारम्भ 19वी शताब्दी से माना जाता है। इन संस्थाओं के विकास के अकुर विद्वानो ने मानव मन की प्रकृति मे निहित माने हैं। स्थानीय सरकार को मानव की मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक आवश्यकता के रूप मे रेखांकित किया गया है। मानव की सदैव यह इच्छा रही है कि जो भी सरकार हो वह उसके स्वय के द्वारा शासित और अच्छी सरकार होनी चाहिए। मानव प्रकृति से स्वकेन्द्रित होता है। वह कभी यह पसन्द नही करता कि उसके सार्वजनिक मामलो का निर्णय कोई और करे। मानव मन की यह इच्छा, अतीत काल से स्थानीय संस्थाओं के विकास का अन्तर्निहित दर्शन रही है।[1]

पचायतें जिन्हे ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की सबसे लोकप्रिय इकाई माना जाता है, बहुत पुरानी संस्थाए हैं जो अपने आप मे स्थानीय शासन की समर्थ इकाइया हुआ करती थी। प्राचीन काल मे इसी पचायत व्यवस्था के कारण प्रत्येक ग्रामीण समाज अपने मे एक छोटा सा राज्य था और भारत की जनता को एकता के सूत्र मे बहुत अच्छी तरह आबद्ध कर रखा था।

प्राचीन भारत मे नगरीय प्रशासक के विद्यमान होने का उल्लेख भी मिलता है। मैगस्थनीज ने तीसरी शताब्दीईस्वी पूर्व के भारत के एक नगर के शासन का अपने विवरण मे उल्लेख किया है। उस विवरण मे पता चलता है कि प्राचीन

काल के नगरीय शासन को 5-5 सदस्यो की 6 समितियों मे विभाजित किया हुआ था। प्रथम समिति के सदस्य प्राचीन औद्योगिक हस्तकलाओ से सम्बन्धित बातो के लिए उत्तरदायी थे। दूसरी समिति के सदस्यो को अपने क्षेत्र मे आने वाले विदेशियो के स्वागत-सत्कार का कार्य दिया हुआ था। तीसरी समिति के सदस्य जन्म और मृत्यु के अभिलेख को रखने के लिए उत्तरदायी थे। चौथी समिति व्यापार और वाणिज्य का निरीक्षण करती थी। इस समिति के लोगो उचित बाट और माप सुनिश्चित करते थे। पाचवी समिति निर्मित वस्तुओ का निरीक्षण करती थी तथा छठी समिति बिक्री की हुई वस्तुओ के मूल्य का दसवा भाग बिक्री कर के रूप मे वसूल करती थी।[2]

इससे यह विदित होता है कि प्राचीन भारत मे आज की भाति ही स्थानीय शासन को नगरीय एव ग्रामीण क्षेत्रो मे विभाजित किया हुआ था। दोनो ही तरह की स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था अलग-अलग रूप मे सचालित की जाती थी। वैदिक युग मे, जब नगरो का कोई विशेष स्थान नही था, ग्रामीण शासन अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था। गाँव की पचायतें जो गाँव के लोगो द्वारा सगठित होती थी, प्रशासकीय और न्यायिक कार्यो का सम्पादन करती थी। मनुसहिता मे भी राजा और गाँव के बीच सम्बन्धो की चर्चा मिलती है और कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह प्रमाणित होता है कि राज्य ग्रामीण जीवन मे न्यूनतम हस्तक्षेप करता था। मौर्यकाल मे शासन की सुविधा की दृष्टि से प्रान्तो को निम्नाकित तरह से विभाजित किया हुआ था :

1. जनपद
2. स्थानिक
3. द्रोणमुख
4. स्वार्वटिक
5. सग्रम
6. ग्राम

जनपद अथवा जिले का मुखिया स्थानिक कहलाता था और ग्राम का अधिकारी ग्रामिक के नाम से जाना जाता था। पाच या दस ग्रामो का अधिकारी गोप कहलाता था। मौर्यकाल मे चन्द्रगुप्त मौर्य ने स्वायत्त शासन प्रणाली प्रचलित कर शासन के विकेन्द्रीकरण की नीति अपनायी थी। इस काल मे नगर का सबसे बड़ा पदाधिकारी नागरिक कहलाता था। यह "नागरिक" गोप और स्थानिको की सहायता से नगर का प्रशासन चलता था। मौर्यकाल के पश्चात गुप्त-युग मे भी स्थानीय शासन की रूपरेखा मौर्यकाल जैसी ही प्रचलित रही।

इसके पश्चात राजपूतो के काल मे ग्राम पचायतो का महत्व कुछ कम हो गया। राजपूत कालीन सामन्तगण न केवल स्थानीय शासन को ही कम महत्व देते थे बल्कि वे केन्द्रीय शासन से नियत्रण मुक्त होने का प्रयत्न भी करते रहते थे।

भारतीय शासन के मुगलकालीन इतिहास के पन्नो को पलटने से यह प्रतीत होता है कि इस काल मे भी देश मे स्थानीय शासन विद्यमान था। मुगलकाल मे नगर का प्रशासन जिस अधिकारी के द्वारा चलाया जाता था वह कोतवाल कहलाता था। यह कोतवाल पुलिस सम्बन्धी मामलो दण्ड व्यवस्था तथा वित्तीय मामलों मे सर्वोपरि सत्ता रखता था। क्षेत्र म शाति और व्यवस्था बनाये रखना अपराधो का पता लगाना, सामाजिक कुरीतियो को मिटाना और इसी तरह के स्थानीय मामलो के सम्पादन के लिए वह उत्तरदायी था। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र मे इस काल मे 'गाँव' शासन की सबसे छोटी इकाई थी जिनका प्रबन्ध पचायतें करती थी। गाँव के तीन महत्वपूर्ण अधिकारियो मे मुकद्दम गाँव की देखभाल करता था, चौधरी पचायतो की सहायता से झगडे सुलझाता था और पटवारी राजस्व वसूली करता था। प्रत्येक गाँव मे सुरक्षा की दृष्टि से एक चौकीदार भी होता था।

इस काल मे स्थानीय प्रशासन के बारे मे अबुल फजल कृत आईन-ए-अकबरी मे विवरण मिलता है। आईन-ए-अकबरी मे नगरीय जीवन और उसके अधिकारियो के बारे म यह कहा गया है कि कोतवाल के पद पर नियुक्त होने वाले अधिकारी को अनुभवी, कुशल, विचारवान और चतुर होना चाहिए। वह इतना सजग होना चाहिए कि सुनागरिक शाति और सुरक्षा का अनुभव करें और दुष्ट लोग अशाति का। उसे चाहिए कि कस्बो मे मोहल्ला टोली का गठन करें जिससे मोहल्ल मे परस्पर सौहार्द बनाये रखने की जिम्मेदारी दी जाये। अपने गुप्तचरो के माध्यम से हर तरह की घटना का सावधानी पूर्वक निरीक्षण करे। आईन ए अकबरी मे तत्कालीन नगरीय प्रशासन और उसके पदाधिकारियो से जो अपेक्षाए की गयी हैं उनसे यह प्रकट होता है कि जितने भी घटनाक्रम उस समय हुआ करते थे उन सब के नियमन का दायित्व, शातिमय नागरिक जीवन की दृष्टि से नगरीय प्रशासन और उसके अधिकारियो पर छोडा गया है।

ब्रिटिश कालीन स्थानीय शासन के बारे मे अच्छा विवरण उपलब्ध होता है। विद्वानो का ऐसा मत है कि यद्यपि स्थानीय शासन भारत वर्ष मे अति प्राचीनकाल से लेकर आज तक किसी न किसी रूप मे विद्यमान रहा है तथापि सगठन और कार्यप्रणाली की दृष्टि से उसका व्यवस्थित प्रादुर्भाव ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही हुआ था। स्थानीय शासन की इकाइयो को निर्वाचित स्वरूप देना, उसे करारोपण की विस्तृत शक्तिया देना और प्रजातन्त्र की पाठशाला के रूप मे

विकसित करने का कार्य ब्रिटिश काल मे ही हुआ है। इस काल मे विकसित स्थानीय शासन व्यवस्था पर कुछ पश्चिमी प्रभाव भी पड़ा है। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की इकाइयो की अपेक्षा इस काल मे नगरीय स्थानीय प्रशासन की सस्थाओ के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया था। स्थानीय शासन का इस काल मे प्रारम्भ सन् 1687 से माना जा सकता है जब मद्रास मे नगर निगम की स्थापना की गई। इस तरह ब्रिटिश काल मे विकसित हुआ स्थानीय शासन, आज लगभग 300 वर्ष पुराना है। ब्रिटिश काल मे विकसित स्थानीय शासन के ढाचे को मुख्य रूप से 5 कालो मे विभाजित किया गया है

1. प्रथम काल 1687 से लेकर 1881 तक इस कालावधि मे स्थानीय सस्थाओ को केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारो के बजट पर दबाव कम करने का साधन माना गया।
2 द्वितीय काल 1882 से 1919 तक : इस काल मे स्थानीय शासन को स्वायत्त शासन की सस्थाओ के रूप मे विकसित करने का प्रयत्न किया गया।
3. तृतीय काल 1919 से 1935 तक इस काल मे स्थानीय संस्थाए कमजोर हुई।
4. चतुर्थ काल 1937 से 1950 तक . इसे स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाओ के सुधार और प्रशासकीय कार्य क्षमता बढाने का काल माना गया है।
5. पचम काल 1950 मे अब तक · इस काल मे स्थानीय शासन को सविधान की आवश्यकताओ और उसके द्वारा निर्धारित लक्ष्यो की पूर्ति का साधन माना जा रहा है।

प्रथम काल (1687–1881)

ब्रिटिश भारत की इस प्रथम अवधि मे 1687 मे अग्रेजो के द्वारा मद्रास नगर निगम की स्थापना की गयी थी, जिसे स्वायत्त शासन का श्री गणेश माना जाता है। इसकाल मे बम्बई और कलकत्ता मे नगरपालिका निकायो की स्थापना की गयी। 1773 के रेगुलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत प्रेसीडेन्सी नगरो मे जस्टिस ऑफ पीस की नियुक्तिया की गयी, जिन्हें नगर की सफाई व स्वास्थ्य की देखभाल की जिम्मेदारी दी गयी थी। 1793के चार्टर एक्ट के माध्यम से इन प्रेसीडेन्सी शहरों मे नगरीय प्रशासन स्थापित करने की शक्तियां गवर्नर जनरल को दी गयी थी।

सन् 1840 और 1850 के मध्य प्रेसीडेन्सी शहरो मे नगरीय स्थानीय प्रशासन के संगठन और कार्यों का विस्तार ही नही किया गया बल्कि कुछ सीमा

तक निर्वाचन का सिद्धात भी इन सस्थाओ के लिए अपनाया गया। यद्यपि यह प्रारम्भिक प्रयोग सफल नही रहा और इस कारण सन् 1856 के अधिनियम द्वारा नगरीय सस्थाओ के सगठन का प्रतिबन्धित किया गया और समस्त शक्तिया कमिश्नर मे निहित कर दी गयी। कालान्तर में 1867 मे मद्रास नगर निगम मे 32 सदस्यो की व्यवस्था की गयी जो मनोनीत किये जाते थ। सदस्यों के मनोनयन के लिए नगर को 8 वार्डों मे बांट दिया गया था। निगम का अध्यक्ष भी मनोनीत किया जाता था। इस प्रकार कलकत्ता मे 1863 में एक अधिनियम बनाकर नगर निगम की स्थापना की गयी। कलकत्ता नगर निगम मे 72 सदस्यो की व्यवस्था की गयी थी जिसके दो तिहाई सदस्य कलकत्ता नगर के निवासियो द्वारा निर्वाचित किये जाते थे और शेष एक तिहाई सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे। निगम की कार्यकारिणी की शक्ति अध्यक्ष मे निहित की गयी जिसे सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था। बम्बई नगर निगम मे भी सन् 1865 के अधिनियम के अनुसार सम्पूर्ण कार्यकारिणी की शक्तिया एक मनोनीत कमिश्नर के हाथ मे केन्द्रित कर कर दी गयी थी। इस कमिश्नर के अतिरिक्त अधिनियम मे शाति हेतु न्यायमूर्ति की व्यवस्था भी की गयी थी। 1872 मे बम्बई के लिए एक नया अधिनियम बनाया गया जिसके अन्तर्गत निर्वाचित अध्यक्ष की व्यवस्था की गयी, आधे निर्वाचित सदस्यो का प्रावधान किया गया तथा निगम को प्रशासन सम्बन्धी नीति निर्धारण करने, बजट पास करने और प्रशासन पर नियत्रण रखने तथा आलोचना करने का अधिकार भी दिया गया।

प्रेसीडेन्सी शहरो के अतिरिक्त अन्य शहरो मे नगरीय प्रशासन का प्रारम्भ पहरेदारी की व्यवस्था से हुआ है। सन् 1814 मे समस्त बडे नगरो मे वार्ड समितियो का गठन किया गया जिसमे समस्त मकान मालिको को सदस्य बनाया जाता था। इन समितियो को यह उत्तरदायित्व दिया था कि वे चौकीदार के वेतन के लिए कर के माध्यम से धन इकट्ठा करें। बाद मे यह व्यवस्था की गयी कि यदि चौकीदार के वेतन के लिए एकत्रित धन राशि मे से कुछ धन बच जाये तो उसे नगर के विकास पर खर्च किया जा सकता है।[3] बगाल पोपुल *एक्ट 1842 के माध्यम से कई नगरो मे नगरीय प्रशासन की स्थापना की गयी।* 1870 मे स्थानीय स्वायत्त शासन के विकास मे एक महत्वपूर्ण प्रगति हुई। इस वर्ष लार्ड मेयो के विकेन्द्रीयकरण के प्रस्ताव मे यह बल दिया गया कि भारतीयों को प्रशासनिक कार्यों मे अधिकतम सहभागिकता देने की दृष्टि से नगरीय स्थानीय प्रशासन की इकाइयो का विकास किया जाये। प्रोफेसर श्रीराम माहेश्वरी ने इस काल की स्थानीय शासन की विशेषताए इस प्रकार गिनायी हैं[4] .

1. ब्रिटिश भारत के इस प्रथम काल म स्थानीय शासन की इकाइयो की स्थापना प्रमुख तौर पर ब्रिटिश हितो के सवर्धन के लिए की गयी थी न कि देश मे स्वायत्त शासन के विकास के लिए।

2 इस काल मे स्थानीय शासन की इकाइयाँ ब्रिटिश मनोनीत अधिकारियो के वर्चस्व म रही, इनके कार्यकरण से भारतीय जनता अधिक नही जुड पायी।

3 इस काल मे स्थानीय सस्थाओ की रचना का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश खजाने को राहत पहुँचाना था।

4 स्थानीय निकायो के गठन म कुछ अपवादो को छोडकर जनता द्वारा प्रतिनिधियो के निर्वाचन की व्यवस्था को नही अपनाया गया, अधिकतर सदस्य सरकार द्वारा ही मनोनीत किये जाते थे।

द्वितीय काल (1882–1919)

सन 1881 मे स्थानीय स्वायत्त शासन सम्बन्धी पूर्ववर्ती नीतियो की समीक्षा की गयी। यह अनुभव किया गया कि देश के विभिन्न भागो मे नगरपालिकाओ की सख्या और उपयोगिता मे वृद्धि होने के बावजूद इन सस्थाओ का सम्पूर्ण देश मे एक जैसा विकास नही हुआ है। 1882 मे लॉर्ड रिपन ने स्वायत्त शासन सस्थाओ के विकास का एक प्रस्ताव तैयार किया। लार्ड रिपन के इस प्रस्ताव का उद्देश्य राजनीतिक और सार्वजनिक शिक्षा की प्रगति और विस्तार करना बताया गया। यह भी घोषित किया गया कि इस प्रस्ताव के माध्यम मे बुद्धिमान लोगो को स्थानीय शासन के कार्य मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा। लॉर्ड रिपन के इस प्रस्ताव को स्थानीय स्वायत्त शासन का मेग्नाकार्टा भी कहा गया।

लार्ड रिपन का यह विचार था कि शिक्षा के प्रसार तथा प्रशासन मे भाग लेने हेतु शिक्षित भारतीयो की इच्छा को देखते हुए यह अपरिहार्य है कि उन्हे प्रशासन मे भाग लेने का समुचित अवसर मिले। इस उद्देश्य से प्रेरित उनके इस प्रस्ताव की निम्नाकित विशेषताओ को रेखाकित किया जा सकता है

1. प्रातीय सरकारें स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाओ को उनके सवर्धन के लिए अधिक धन राशि उपलब्ध करायें।

2 प्रान्तो मे स्थानीय स्वायत्त शासन का विकास किया जाये जिससे जनता को राजनीतिक शिक्षा मिल सके। स्वायत्त शासन के विकास के लिए

आवश्यक कदम उठाया जाय और वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नये कानून बनाये जायें।

3. नगरीय और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा जाये।

4. इन संस्थाओं को समुचित आर्थिक स्वायत्तता दी जाये, जिसमें न केवल उन्हें अपना बजट स्वतन्त्र रूप में बनाने का अधिकार हो बल्कि करा-रोपण के कुछ अधिकार भी दिये जायें।

5. प्रान्तीय सरकारें स्थानीय संस्थाओं पर एक अधिनायक की तरह नियन्त्रण न करें अपितु यह नियन्त्रण सुधारात्मक होना चाहिए।

6. लार्ड रिपन का यह भी विचार था कि स्थानीय संस्थाओं को दायित्व दे दिये जाने से जिला प्रशासन तथा सरकारी विभागों का कार्यभार कम हो जायेगा और साथ ही भारतीय समाज के पढ़े-लिखे प्रबुद्ध वर्ग के लोगों को प्रशासन में भाग लेने का अवसर भी सुलभ हो सकेगा।

7. जहां तक सम्भव हो नगरपालिका का अध्यक्ष गैर सरकारी लोगों में से ही चुना जाये, जिलाधीश को इसका अध्यक्ष न बनाया जाये।

लार्डरिपन के इस प्रस्ताव को कुछ विद्वानों ने एक युगान्तरकारी प्रस्ताव माना है। इसी प्रस्ताव के कारण लार्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का जनक माना जाता है। यद्यपि 1882 के पूर्व भी भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाएं कार्यशील थीं किन्तु न तो उन्हें पर्याप्त स्वायत्तता थी और न ही उन्हें वित्तीय साधन प्रदान किये गये थे। लार्ड रिपन के इस प्रस्ताव को तत्कालीन नौकरशाही ने रुचिपूर्ण नहीं पाया। नौकरशाही के इस विरोध के कारण यह प्रस्ताव उस रूप में क्रियान्वित नहीं हो सका जिस रूप में लार्डरिपन इसे क्रियान्वित कराना चाहते थे। प्रथमतः तो लार्ड रिपन की भावनाओं के अनु-रूप अधिनियम ही नहीं बनाया गया और द्वितीयतः जिलाधीश और उनके अधी-नस्थ कर्मचारियों ने भी स्थानीय शासन को क्रियान्वित करते समय रिपन की भावनाओं को अधिक महत्व नहीं दिया। निर्वाचन का सिद्धांत लागू तो किया गया पर मताधिकार कुछ ही लोगों को दिया गया। नगरपालिका का अध्यक्ष सरकारी अधिकारियों में से ही बनाया जाता रहा। इन संस्थाओं को पर्याप्त वित्तीय स्वतन्त्रता भी प्रदान नहीं की गयी। इस तरह लार्ड रिपन के प्रस्ताव में घोषित उद्देश्यों की प्राप्ति नौकरशाही के अन्तर्निहित विरोध के कारण नहीं हो सकी। जनसाधारण की राजनीतिक शिक्षा का उद्देश्य भी पृष्ठभूमि में ही रह गया।

इस काल मे स्वायत्त शासन के विकास मे दूसरी महत्वपूर्ण घटना सन् 1909 मे विकेन्द्रीकरण पर रायल कमीशन के प्रतिवेदन के प्रकाशन की हुई। रायल कमीशन की नियुक्ति सन् 1907 मे भारत मे सत्ता के विकेन्द्रीकरण के विकास के अध्ययन के लिए की गयी थी। आयोग का यह निष्कर्ष था कि स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाए सफल नही हो रही है। इस असफलता का कारण निर्वाचन का अभाव, वित्तीय उत्तरदायित्व की कमी तथा इन संस्थाओ के कर्मचारियो पर नियन्त्रण का शैथिल्य था। इस आयोग ने स्थानीय स्वायत्त शासन को सशक्त बनाने के लिए अपने कुछ सुझाव दिये

1 नगरीय क्षेत्रो मे नगरपालिकाओ की स्थापना की जानी चाहिए।

2. प्रत्येक ग्राम मे एक पचायत की स्थापना की जानी चाहिए।

3. नगरपालिकाओ के अधिकतर सदस्यो का निर्वाचन होना चाहिए और निर्वाचित सदस्यो को अपना अध्यक्ष चुनने का अधिकार भी दिया जाना चाहिए।

4. नगरपालिकाओ को वित्तीय रूप से सक्षम बनाने के लिए बजट का निर्माण और करारोपण की शक्तिया दी जाये।

5 स्थानीय स्वायत्त शासन की समस्त सस्थाओ को अपने कर्मचारियो पर नियन्त्रण के पूर्ण अधिकार होने चाहिए।

6 सरकार का नियन्त्रण इन सस्थाओ के लिए परामर्शकारी और सकारात्मक होना चाहिए तथा यह नियन्त्रण लेखा परीक्षा तक ही सीमित होना चाहिए।

7 प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व स्थानीय सस्थाओ पर होना चाहिए।

8 अल्पसख्यको के प्रतिनिधियो का पृथक निर्वाचन न होकर, उनके मनोनयन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

भारत सरकार ने 1909 के रायल कमीशन के प्रतिवेदन पर कोई निर्णय नही किया। 1915 मे सरकार ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसका भारत की जनता ने कोई विशेष स्वागत नही किया। सन् 1917 मे ब्रिटिश ससद मे माटेग्यू ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार की नीति का उद्देश्य भारत मे उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना है। इस प्रस्ताव के माध्यम से भी भारत वर्ष मे स्थानीय शासन के क्षेत्र मे कुछ नवीन सुझाव दिये गये। मई, 1918 मे भारत सरकार ने इस दिशा मे जो प्रस्ताव प्रकाशित किया, मूल रूप मे वह पूर्ववर्ती प्रस्तावो के अनुरूप ही था। इस प्रस्ताव मे इस बात पर बल दिया गया

कि स्थानीय स्वायत्त शासन के माध्यम से जनता के राजनीतिक प्रशिक्षण पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रस्ताव मे निर्वाचक मण्डल का विस्तार करना, गैर सरकारी सदस्यो को अध्यक्ष बनाना, अनावश्यक नियन्त्रण को कम करना, नगरीय सीमा मे करारोपण के अधिकार देना, अपना बजट बनाने की स्वतन्त्रता और गैर कर्मचारियो पर सेवा सम्बन्धी समग्र नियन्त्रण की व्यवस्था को पुन घोषित किया गया था।

तृतीय काल (1919–1935)

इस काल मे स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया कि भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अन्तर्गत स्थानीय स्वायत्त शासन का विभाग, प्रान्तीय सरकारो के निर्वाचित मन्त्रियों को हस्तान्तरित विभागो में, सम्मिलित कर लिया गया। इसका प्रशासन अब निर्वाचित मन्त्रियो के अधीन आ जाने से उत्तरदायी बना दिया गया। इस परिवर्तन ने स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र मे एक नवीन उत्साह पैदा किया था। उक्त अधिनियम के लागू होने से स्थानीय स्वशासन का विषय भारत सरकार के नियन्त्रण से मुक्त होकर पूर्ण रूप से प्रान्तीय सरकारो की अधिकार सीमा मे आ गया। इस स्थिति का एक परिणाम यह हुआ कि स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र मे जो एकरूपता अब तक पायी जाती थी वह अब न रह सकी। प्रत्येक प्रान्त इस नयी स्थिति मे पचायतो, जिलाबोर्डों अथवा नगर-पालिकाओ के लिए पृथक अधिनियम बनाने को स्वतन्त्र था। इस काल मे विभिन्न प्रान्तो द्वारा जो अधिनियम बनाये गये उनमे मुख्य रूप से निम्नांकित व्यवस्था की गयी थी

1 स्थानीय संस्थाओ का गठन प्राय पूर्ण रूप से निर्वाचन के आधार पर किया गया। इन निर्वाचनो के लिए निर्वाचक मण्डल का विस्तार भी किया गया जिसका परिणाम भी यह हुआ कि प्रशासकीय शक्ति जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यो के हाथो मे आ गयी।

2 स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओ के अध्यक्ष पद पर गैर सरकारी सदस्य को प्रतिष्ठित करने की व्यवस्था की गयी।

3 स्थानीय संस्थाओ को अधिक प्रशासकीय शक्तिया देने का वातावरण तैयार हुआ।

4. स्थानीय स्वायत्त शासन को, ग्रामीण और नगरीय दोनों प्रकार की, संस्थाओ को बजट निर्माण के क्षेत्र मे पहले से अधिक शक्तिया दी गयी।

किन्तु इस स्थिति के पश्चात भी विभिन्न कारणोवश स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र मे कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हो सकी। स्वायत्त शासन का विषय यद्यपि लोकप्रिय मन्त्री को दे दिया गया किन्तु इन सस्थाओ को पर्याप्त धन सुलभ नही हो सका, क्योकि द्वैध शासन के अतर्गत वित्त पर इन मन्त्रियो का कोई अधिकार नही था। समय की गति के साथ ही साथ स्थानीय स्वशासन के दायित्व मे तो वृद्धि हो गयी किन्तु इन बढे हुए दायित्वो के निष्पादन के लिए वाछित आय के साधनो मे वृद्धि न हो सकी। राजनीतिक हस्तक्षेप भी इन सस्थाओ के विकास मे एक बाधा बना। इस काल मे इन सस्थाओ के लोकतत्रीकरण से उनकी प्रशासकीय कार्य कुशलता के स्तर मे एक ओर जहाँ कमी आयी वही दलगत भावनाओ के कारण इन सस्थाओ की सामान्य छवि भी अच्छी नही बन सकी। स्थानीय सस्थाए कर लगाने मे असफल रही और यहा तक कि स्थानीय राजनीति के प्रभाव से साम्प्रदायिक शक्तिया भी अवाछित रूप से सक्रिय हो गयी।

इस काल मे नगरपालिकाओ के प्रशासन मे भ्रष्टाचार और पक्षपात बढ गया। द्वैध शासन के कारण, जिलाधीश और उसके कर्मचारियो का जो सहयोग इन सस्थाओ को पहले मिलता था, अब बन्द हो गया। जिलाधीश के नियन्त्रण के शिथिल हो जाने के कारण इन सस्थाओ मे कार्य कुशलता का स्तर एकदम गिर गया। इस प्रकार प्रान्तीय सरकार का एक हस्तान्तरित विषय बन जाने के बाद भी स्थानीय सस्थाएँ अपनी कार्य कुशल और सक्षम प्रशासकीय छवि बनाने मे सफल न हो सकी।

चतुर्थकाल (1935–1949)

1935 के भारत सरकार के अधिनियम के पारित होने के पश्चात प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना हुई। देश मे स्वतन्त्रता की दिशा मे एक शक्तिशाली पहल हुई जिसका स्थानीय सस्थाओ पर एक सकारात्मक प्रभाव पड़ा। स्थानीय सस्थाएं अब केवल प्रायोगिक सस्थाएं न रही बल्कि उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयां बनाने की दिशा मे प्रयत्न आरम्भ हुआ। इस दिशा मे अनुसधान किया गया कि स्थानीय स्वशासन की सस्थाए अकुशल क्यो हैं? सभी प्रान्तो में इन सस्थाओ के अधिक लोकतन्त्रीकरण के लिए मताधिकार की आयु सीमा को घटाया गया और इन सस्थाओ मे सरकारी मनोनीत सदस्यो की सख्या को भी कम किया गया। नगरपालिकाओ के विचार-विमर्शकारी और कार्यकारी निकायो को पृथक-पृथक किया गया। मध्य प्रदेश, बम्बई तथा उत्तर प्रदेश मे नगरपालि-

काओं की समस्याओं पर विचार करने तथा उनमें सुधार के लिए सुझाव देने हेतु समितियां नियुक्त की गयी। इस काल में मद्रास में 1930 और 1933 में दो महत्वपूर्ण अधिनियम बनाये गये। जिलाबोर्डों के कार्य क्षेत्र का विस्तार किया गया तथा जिलाधीश को जिलाबोर्ड का प्रमुख कार्याधिकारी नियुक्त किया गया। ऐसा कर दिए जाने से जिला-बोर्ड मात्र परामर्शदात्री संस्था न रहकर एक प्रमुख प्रशासकीय संस्था बन गयी।

बम्बई, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में जो समितियां इन संस्थाओं की समीक्षा के लिए नियुक्त की गयी थी उनके प्रतिवेदन यद्यपि स्वतन्त्रता के पूर्व ही प्राप्त हो गये किन्तु उनकी सिफारिशों पर स्वतन्त्रता के पश्चात ही ध्यान दिया जा सका। 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात स्थानीय स्वायत्त शासन के उत्साह में एक नये अध्याय का शुभारम्भ हुआ। विदेशी शासन की अधीनता में काम करने वाली संस्थाएं अब स्वाधीन राष्ट्र की संस्थाएं बन गयीं। 1948 में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री की पहल पर राज्यों के स्वायत्त शासन मंत्रियों का एक सम्मेलन राजधानी में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री अमृत कौर ने कहा कि मेरा विश्वास है कि भारत सरकार ने इस प्रकार का सम्मेलन प्रथम बार आयोजित किया है। इस प्रकार का सम्मेलन इससे पूर्व नहीं बुलाया जा सका क्योंकि स्थानीय स्वायत्त शासन पूर्णतया प्रान्तीय सरकारों की अधिकार सीमा में आता था।[5] सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने कहा, "स्थानीय स्वायत्त शासन किसी भी सच्ची प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का आधार है और होना चाहिए। हम लोगों की आदत हो गयी है कि हम प्रजातन्त्र का प्रशासन के ऊँचे स्तरों पर ही सोचते हैं, नीचे के स्तरों पर नहीं। जब तक प्रजातन्त्र का नीचे की इन आधार शिलाओं पर निर्माण और विकास नहीं किया जाता, तब तक वह उच्च स्तरों पर कदापि सफल नहीं हो सकता"।[6]

इस काल में स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र में उभरी प्रमुख प्रवृत्तियों को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है।

1. मद्रास और बिहार में सदस्यों के मनोनयन की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया
2. नगरपालिकाओं और पंचायतों के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया गया।
3. उत्तरप्रदेश में नगरपालिकाओं के निर्वाचन के लिए वयस्क मताधिकार का नियम लागू किया गया और अन्य प्रदेशों में भी इन संस्थाओं के निर्वाचन में भाग लेने का अधिक लोगों को अवसर दिया गया।

4. स्थानीय स्वशासन की सस्थाओ को करारोपण के लिए बाध्य करने हेतु प्रातीय सरकारो को अधिकार दिये गये ।

5. स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात स्थानीय स्वायत्त शासन को इसका उचित महत्व देते हुए प्रजातन्त्र की आधार शिला के रूप मे मान्यता दी गयी ।

6 नगरपालिकाओ की विधायनी और कार्यकारी शक्तियो का पृथक्करण किया गया ।

7 सभी स्थानीय सस्थाओ पर इस काल मे जिलाधीश के माध्यम से प्रातीय सरकारो के नियन्त्रण को स्थापित किया गया ।

पचमकाल (1950 से अब तक)

1947 मे देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात 26 जनवरी, 1950 को भारत मे नया सविधान प्रवर्तित हुआ । इस सविधान के अन्तर्गत स्थानीय स्वायत्त शासन को राज्य सूची का विषय घोषित किया गया । सविधान ने स्थानीय शासन के क्षेत्र मे अब तक महत्वपूर्ण रही नगरीय सस्थाओ के स्थान पर ग्रामीण स्थानीय सस्थाओ को अधिक महत्व प्रदान किया । सविधान निर्माता इस तथ्य से भली-भाति अवगत थे कि चू कि देश की 80 प्रतिशत जनता गावो मे निवास करती है इसलिए ग्रामीण स्थानीय सस्थाओ के बारे मे सविधान के नीति निर्देशक तत्वों मे विशेष चर्चा की गयी है । सविधान के इस भाग मे कहा गया है कि राज्य ग्राम पचायतो का गठन करेगा और उन्हे इस प्रकार की शक्तिया देगा कि वे स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाइयो के रूप मे अच्छी प्रकार काम कर सकें ।[7]

स्वतन्त्र भारत मे स्थानीय स्वायत्त शासन का जो ढाचा अपनाया गया है उसे मूल रूप से ब्रिटिश शासन की देन या विरासत माना जा सकता है । ब्रिटेन की भाति यहा पर भी स्थानीय स्वशासन को नगरीय एव ग्रामीण दो भागो मे बाटा गया है । दोनो ही प्रकार की इकाइयो का विस्तार से विवरण आगामी अध्यायो मे यथा स्थान दिया जायेगा ।

नगरीय शासन के क्षेत्र मे महानगरो मे जहा नगर निगम और उनसे छोटे नगरो मे प्राय नगर परिषद या नगरपालिकाओ जैसी सस्थाए पूर्व की भाति निरन्तर क्रियाशील रही वही ग्रामीण स्थानीय सस्थाओ के क्षेत्र मे 1957 मे नियुक्त बलवन्त राय मेहता अध्ययन दल के सुझावो के परिणाम स्वरूप एक नवीन उत्साहजनक योजना देश मे कार्यान्वित की गयी । मेहता समिति के सुझावो के अनुसार पचायत राज की त्रिस्तरीय सरचना के माध्यम से देश मे

प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में सशक्त कदम उठाया गया है। राजस्थान, देश में, पहला राज्य था जिसने 2 अक्टूबर 1959 को पंचायत राज सर्वप्रथम अपनाया। प० जवाहर लाल नेहरू ने त्रिस्तरीय पंचायत राज का दीपक राजस्थान के नागौर नगर में प्रज्वलित किया था। इसके पश्चात् देश के अन्य राज्यों में भी पंचायत राज को उत्साहपूर्वक अपनाया गया। देश के बुद्धिजीवी वर्ग ने भी प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की इस नयी योजना पर राष्ट्रव्यापी गोष्ठियों का आयोजन किया जिससे विश्वविद्यालयों में इस दिशा में अध्ययन, अध्यापन और अनुसंधान के कार्य को एक नयी गति मिली।

पंचायती राज की इस योजना ने स्वतन्त्रता के प्रथम दशक में नगरीय स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को एक प्रकार से पृष्ठभूमि में डाल दिया किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि नवीन भारत के निर्माण में नगरीय स्थानीय संस्थाओं का योगदान कम है। स्वतन्त्रता के प्रथम दशक में ही भारत में औद्योगीकरण का जो वातावरण बना उसने नगरीकरण को बढ़ावा दिया जिससे न केवल नगरों की जनसंख्या तेजी से बढ़ी अपितु नगरों में आवास, सफाई और अन्य प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो गयी। नगरीकरण की इस प्रवृत्ति ने 1961 के दशक में नगरीय स्थानीय संस्थाओं को एक नया महत्व प्रदान किया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में नगरीय संस्थाओं की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना में राज्य सरकारों से यह अपेक्षा की गयी कि वे नगरों में स्वायत्त शासन की संस्थाओं को विकसित करने के लिए अपेक्षित साधन इकट्ठे करने में न केवल आवश्यक सहायता करेंगी अपितु अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण भी करेंगी। इसके साथ ही शहरों में भूमि के बढ़ते हुए मूल्यों पर नियन्त्रण, शहर के विकास के लिए मास्टर प्लान, गृह निर्माण के लिए मानक निर्धारण और नगरीय संस्थाओं को सशक्त बनाने के लिए तथा विकास कार्यक्रम क्रियान्वित करने हेतु भी योजना में इन संस्थाओं को उत्तरदायी बनाया गया।

इस काल में पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश तथा अन्य राज्यों ने नगरपालिकाओं की दशा का अध्ययन कर, उनमें प्रशासकीय सुधारों के लिए सुझाव देने के लिए समिति नियुक्त की। भारत सरकार ने भी इस दिशा में अपनी रुचि प्रदर्शित की। राज्य सूची का विषय होते हुए भी भारत सरकार ने नगरीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं की समस्याओं के अध्ययन के लिए 1951 में स्थानीय वित्त जांच समिति, 1963 में नगरपालिका कर्मचारी प्रशिक्षण समिति, 1963 में ही नगरीय स्वायत्त संस्थाओं के वित्तीय विकास के लिए मन्त्रियों की समिति, 1966 में ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति और 1968 में नगरीय कर्मचारियों

की सेवा की शर्तों सम्बन्धी समिति नियुक्त की। इन सभी समितियो ने अपने प्रतिवेदन भारत सरकार को दिए जिनके साराश से भारत सरकार ने सभी राज्य सरकारो को अवगत करा दिया और यह अवसर प्रदान किया कि अपनी नगरीय स्थानीय सस्थाओ की प्रशासकीय कुशलता बढाने के लिए वे इन सुझावो को अपनी सुविधानुसार क्रियान्वित कर सकती हैं। 1978 मे भारत सरकार ने अशोक मेहता की अध्यक्षता मे पचायत राज पर एक उच्च स्तरीय आयोग नियुक्त किया जिसे यह दायित्व दिया गया कि वह देश मे पचायती राज की वर्तमान सरचना का अध्ययन कर यह सुझाये कि इन सस्थाओ को कैसे अधिक सक्षम, कुशल और जनोपयोगी बनाया जा सकता है। अशोक मेहता समिति ने भी एक वर्ष बाद अपना प्रतिवेदन भारत-सरकार को दे दिया किन्तु प्रतिवेदन की अभिशसा के अनुरूप पचायती राज के ढाचे मे किसी भी राज्य मे पूर्ण परिवर्तन नही किया गया, हाँ कर्नाटक राज्य ने उन अभिशसाओ के अनुरूप अपने पचायती राज की सरचना मे कतिपय परिवर्तन अवश्य किये है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् स्थानीय स्वशासन की सस्थाओ से यह अपेक्षा की गयी थी कि राष्ट्रीय प्रशासनीय व्यवस्था का एक नियमित अग बनकर वे प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण का सशक्त माध्यम बनेंगी और कुशल कार्यकरण के द्वारा वे जनता की स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकेंगी। किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात उत्पन्न यह आशा पूर्णत. फलीभूत न हो सकी। स्वायत्त शासन की ये सस्थाए चूकि सविधान की रचना नही है इसलिए राज्य सरकार न तो इनके सामयिक चुनाव के प्रति सचेष्ट हैं और न ही इनकी कार्यकुशलता बढाने के लिए इन्हे पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध करा रही हैं। ग्रामीण एव नगरीय दोनो ही प्रकार की सस्थाए प्रजातात्रिक पद्धति से काम करने की आशा पूरी नही कर सकी और राजनीतिक दल बन्दी मे फसकर रह गयी। राजनीतिक दलबन्दी का परिणाम यह होता है कि निर्वाचित सदस्यो को समय-असमय निलम्बित कर दिया जाता है और उन पर प्रशासक नियुक्त हो जाता है। इस काल मे इन सस्थाओ की प्रमुख विशेषताओ को निम्नाकित बिन्दुओ के अन्तर्गत देखा जा सकता है :

1. स्थानीय सस्थाओ का कोई सवैधानिक आधार नही है, ये सस्थाए राज्य सूची का विषय हैं और इस नाते राज्य विधानमण्डल ही इनकी रचना के लिए कानून बनाता है।
2. ये सस्थाए दो भागो मे विभाजित है ग्रामीण और नगरीय।
3. इन सस्थाओ का चुनाव भी वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है।

4. स्वतन्त्रता के पश्चात इस काल में सारे देश में पचायत राज संस्थाओं का विकास अधिक तेजी से हुआ है।
5. राज्य सरकारें इन संस्थाओं के सामयिक चुनाव करान में असफल रही है। सभी राज्यों ने नगरीय संस्थाओं या पचायत राज से सम्बन्धित जो अधिनियम पारित किये हैं उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप न तो चुनाव कराये जा सके हैं और न ही उनकी कुशलता विद्यमान रह सकी है। इन संस्थाओं का सम्बन्ध राज्य सरकार से पारस्परिक सहयोग का न होकर अधिकारी और अधीनस्थ का हो गया है।
6. इन संस्थाओं में दलबन्दी और गुटबाजी बहुत बढ़ गयी है।
7. विगत वर्षों में सरकार ने इन्हें सावैधानिक आधार देने के लिए चिन्तन किया है। शीघ्र ही इन्हें सावैधानिक आधार मिल जाने की आशा है।

इस प्रकार स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं का प्राचीन काल से लेकर अब तक एक क्रमिक विकास हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि देश के सविधान में कोई ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे इन संस्थाओं को प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की सक्षम इकाई बनने में सार्थक सफलता मिल सके। 1989 के नवम् लोकसभा चुनाव के पूर्व स्थानीय शासन को सावैधानिक आधार देने हेतु एक सकल्प/विधेयक ससद में प्रस्तुत कर दिया गया था किन्तु वह पारित नहीं हो सका। चुनाव के पश्चात पदासीन हुई सरकार ने भी इन संस्थाओं की कार्यकुशलता और कार्यक्षमता के हित में इन्हें सावैधानिक आधार प्रदान किये जाने का सकल्प दोहराया है। यद्यपि यह घोषणा भी की गई है कि इस प्रक्रिया में राज्यों की स्वायत्तता और उनकी अधिकार सीमाओं का कोई अतिक्रमण न हो, यह सुनिश्चित किया जायेगा।

सन्दर्भ

1. एम. ए मुतालिब एव खान, थ्योरी आव लोकल गवर्मेंट नई दिल्ली, स्टर्लिंग, 1983, पृ 259
2 द इम्पीरियल गजेटियर आव इण्डिया, वाल्यूम चतुर्थ, ऑक्सफोर्ड प्रेस, 1909, पृ. 282 पर उद्धृत।

3. सन् 1814 के रेगुलेशन एक्ट द्वारा।
4. श्रीराम माहेश्वरी, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, ओरियन्ट लोंगमैन, दिल्ली, 1976, पृ. 16.
5. उपरोक्त, पृ. 23
6. उपरोक्त,
7. भारत का संविधान, अनुच्छेद 40.



3

भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन की संगठनात्मक संरचना, विभिन्न प्रकार की नगरीय इकाइयों की रचना, कार्य और शक्तियाँ

भारत के संविधान ने स्थानीय शासन विषय को राज्य सूची में पाँचवें स्थान पर सम्मिलित किया है। इसीलिए भारत संघ के प्रत्येक राज्य की सरकार यह निश्चित करने के लिए स्वतन्त्र है कि स्थानीय शासन को किन-किन विषयों का दायित्व दिया जाये। नगरीय स्थानीय शासन की रचना राज्य सरकार की इच्छा से होती है और यह इच्छा राज्य के विधान मण्डल द्वारा पारित विधि के रूप में व्यक्त होती है। राज्य सरकार द्वारा निर्मित इस विधि के माध्यम से नगरीय क्षेत्रों के स्थानीय प्रशासन के संचालन के लिए न केवल नगरीय इकाइयों का निर्माण किया जाता है अपितु नगरीय विकास से सम्बन्धित उनके दायित्वों, शक्तियों, आर्थिक संसाधनों, पर्यवेक्षण और नियन्त्रण इत्यादि का प्रावधान भी उसमें किया जाता है। किन्तु यहाँ यह जान लेना भी आवश्यक है कि स्थानीय इकाइयों के संगठन हेतु निर्मित इस विधि का निर्माण करके राज्य सरकार नगरीय विकास के दायित्वों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो जाती। वस्तुतः स्थानीय संस्थाओं को केवल निर्दिष्ट या परिभाषित स्थानीय क्षेत्र में सफाई, जल निकास, मल निस्तारण व्यवस्था, स्थानीय रोशनी का प्रबन्ध इत्यादि विषय ही सौंपे जाते हैं और नगरीय विकास से सम्बन्धित अन्य अनेक आयामों जैसे आवास, लोक स्वास्थ्य, पर्यवेक्षण, संचार के साधन, शिक्षा, बिजली पूर्ति, सड़क निर्माण, बिजली का प्रबन्ध इत्यादि का दायित्व राज्य सरकार के अन्य अनेक विभागों द्वारा ही किया जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त पृष्ठभूमि यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त है है कि स्थानीय शासन की व्यवस्था और नगरीय विकास के दायित्व पृथक्-पृथक् विषय है और भारत वर्ष की नगरीय सस्थाओ को नगर विकास का समूचा दायित्व नहीं सौंपा गया है। नगरो के आयोजन तथा प्रसार को सुनियोजित स्वरूप देने के लिए पृथक् इकाइयो का निर्माण किया गया है जबकि सफाई और रोशनी आदि की व्यवस्था नगरपालिकाए, नगर निगम और इसी प्रकार की अन्य सस्थाओं के द्वारा की जाती है।

भारत वर्ष मे बीसवी शताब्दी मे नगरो की जनसख्या मे निरन्तर वृद्धि का क्रम बना हुआ है। निम्नांकित सारणी द्वारा 1901 से लेकर 1981 तक की प्रत्येक जनगणना मे ग्रामीण और नगरीय जनसख्या का अनुपात द्रष्टव्य है :

सन्	नगरीय	ग्रामीण
1901	11.00	89.00
1911	10.40	89.60
1921	11 20	88.80
1931	12 00	88.00
1941	13 90	86 10
1951	17.30	83.70
1661	18.00	82 00
1971	10 90	80 10
1981	23.73	76.27

प्रमुख नगरीय सस्थाए

भारत वर्ष मे नगरीय प्रशासन के क्षेत्र मे वर्तमान मे निम्नांकित 6 प्रकार की सस्थाए कार्यशील हैं :

1. नगर निगम
2. नगर परिषद या नगरपालिका
3. कस्बा क्षेत्र समिति
4. अधिसूचित क्षेत्र समिति
5 छावनी मण्डल
6. एकल उद्देशीय अभिकरण

ये सभी सस्थाए अपने-अपने क्षेत्रो मे पृथक् से कार्य करती हैं। इनका प्रत्येक का विस्तृत विवरण इस प्रकार है :

1. नगर निगम

नगर निगम भारत वर्ष मे नगरीय स्थानीय प्रशासन की सर्वोच्च इकाई है। इसका सर्वोच्च होने का अभिप्राय यह है कि इसकी रचना महानगरो में भी

जाती है और नगरीय स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में इससे अधिक शक्तिशाली और अधिकार प्राप्त कोई अन्य निकाय नहीं है। नगर निगम की रचना दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, हैदराबाद, बैंगलोर और आगरा जैसे बड़े नगरों में की गयी है। इसकी स्थापना राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित विशेष अधिनियम के अन्तर्गत की जाती है। नगर निगमों के क्षेत्र में केवल दिल्ली नगर निगम ही एक ऐसा निगम है जिसकी रचना संघीय संसद के कानून द्वारा की गयी है दूसरी ओर उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश राज्य में क्रमश: उत्तर प्रदेश महापालिका अधिनियम 1954 और मध्यप्रदेश नगर निगम अधिनियम 1956 के अन्तर्गत नगर निगमों की स्थापना की गई है। प्राय: अन्य राज्यों में प्रत्येक नगर में नगर निगम स्थापित करने के लिए हर बार, राज्य सरकार को नया अधिनियम इस आशय के लिए विधान मण्डल से पारित करवाना होता है। महाराष्ट्र राज्य में बम्बई नगर निगम अधिनियम 1888 तथा राज्य में अन्य नगर निगमों के लिए बम्बई प्रान्तीय नगर निगम अधिनियम 1949 पारित किया हुआ है।

यदि देश के विभिन्न नगर निगमों का सृजन करने वाले अधिनियम पर दृष्टिपात किया जाये तो विदित होता है कि नगर निगमों की स्थापना के लिए वैधानिक रूप से किसी भी राज्य में कोई मानदण्ड निर्धारित नहीं किया गया है। मध्यप्रदेश में यह प्रशासकीय परम्परा है कि जहाँ नगर निगम की स्थापना की जाती है वहाँ की जनसंख्या एक लाख से अधिक और वार्षिक आमदनी 30 लाख से अधिक होनी चाहिए। अन्य सभी राज्यों में कोई विशेष मानदण्ड इस हेतु निर्धारित नहीं किया गया है। यदि राज्य सरकार किसी नगर निगम की स्थापना करना चाहती है तो विशेष अधिनियम के अन्तर्गत यह तथ्य राज-पत्र में प्रकाशित किया जाना आवश्यक होता है। नागरिकों की जानकारी के लिए इस बात की उस क्षेत्र में उचित घोषणा भी की जाती है और निवासियों को एक निश्चित अवधि में अपनी आपत्तियां प्रस्तुत करने का अवसर भी दिया जाता है। इन आपत्तियों के विचार एवं निराकरण के पश्चात राज्य सरकार नगर निगम की स्थापना कर उसकी सीमा निर्धारित कर देती है।

नगर निगम एक कानूनी निकाय (बॉडी कारपोरेट) होता है। इसकी अपनी निगम मुद्रा (कॉमन सील) होती है। कानून की दृष्टि में नगर निगम एक वैध व्यक्ति जैसा अस्तित्व रखता है। वह सम्पत्ति का क्रय विक्रय कर सकता है, इस पर मुकदमा चलाया जा सकता है तथा यह दूसरों पर मुकदमा चला सकता है। नगर निगम की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि इसमें विचार-विमर्शकारी निकाय और कार्यकारी निकाय का पृथक्करण होना है।

नगर निगम के कार्यकारी निकाय का सचालन कमिश्नर के द्वारा किया जाता है जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार करती है। नगरनिगम की परिषद, क्षेत्र की जनता द्वारा चुनी जाती है। निर्वाचित परिषद अपना मेयर चुनती है जो नगर का अध्यक्ष होता है। नगर पालिकाओ की तुलना मे नगर निगम अधिक शक्तिशाली होता है। बजट तैयार करने व खर्च करने की अधिक स्वतन्त्रता के साथ ही उसे कर लगाने की अधिक शक्तिया भी मिली हुई होती है। किन-किन नगरो मे नगर निगम की स्थापना की जाये यह विषय पूर्ण रूप से राज्य-सरकार की नीतियो का प्रश्न होता है। राज्य सरकार नगर निगम पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण का अधिकार भी रखती है।

नगर निगम की विधि सम्मत स्थापना के लिए प्राय: यह देखा जाता है कि वह क्षेत्र घना बसा हुआ है उसकी जनसख्या 5 लाख से ऊपर है, वर्तमान नगरीय निकाय की वार्षिक वित्तीय आय लगभग एक करोड है, बढे हुए करो को वहन करने की क्षमता जनता मे है तथा निगम के पक्ष मे उस क्षेत्र मे प्रबल लोकमत है। ये मानक वस्तुत. कोई सुनिश्चित सिद्धान्त नही है किन्तु भारत वर्ष मे नगर निगम स्थापित करते समय प्राय' इनका ध्यान रखा जाने लगा है।

नगर निगम के बारे मे विस्तृत विवरण पुस्तक के आगामी अध्याय मे विस्तार से दिया गया है।

2. नगरपरिषद या नगरपालिका

नगरीय प्रशासन की दूसरी महत्वपूर्ण इकाई को नगर परिषद या नगरपालिका के नाम से जाना जाता है। इनकी स्थापना राज्य सरकार द्वारा निर्मित विधि के अन्तर्गत की जाती है। नगरपालिकाओ की स्थापना नगरो एव विकसित कस्बो मे की जाती है अन्य सभी स्थानीय निकायो की तुलना मे देश मे नगरपालिकाओ की सख्या सर्वाधिक है। देश मे वर्तमान मे लगभग 1600 नगरपालिकाए हैं। देश मे कोई भी ऐसा राज्य नही है जिसमे नगरपालिकाए न पायी जाती हो। नगरपालिका के निर्माण का निर्णय करते समय भी राज्य सरकार नगर के आकार, नगरीकरण की स्थिति और जनसख्या के घनत्व आदि को ध्यान मे रखती है। प्राय: प्रत्येक राज्य सरकार नगरपालिकाओ की स्थापना के लिए एक आदर्श और आधारभूत कानून बनाती है जिसके अन्तर्गत राज्य मे नगरपालिकाओ की स्थापना, जब भी आवश्यक हो राज्य सरकार द्वारा की जाती है। उदाहरणार्थ राजस्थान मे नगरपालिका अधिनियम, 19.9 पारित किया हुआ है जिसके अन्तर्गत राज्य सरकार जब चाहे किसी क्षेत्र को नगरपालिका के रूप मे घोषित कर सकती है। यह अधिनियम 1959 मे राज्य के विधान मण्डल

द्वारा पारित किया गया था। देश मे नगरपालिकाओ की स्थापना कितनी जनसख्या पर की जानी चाहिए इसके लिए कोई सामान्य मापदण्ड नही अपनाया गया है अपितु अलग-अलग राज्यो मे इसके लिए पृथक-पृथक मापदण्ड अपनाये हुए हैं। आमतौर पर बीस हजार से ऊपर की जनसख्या के क्षेत्रो मे नगरपालिका का निर्माण किया जाता है।

नगरपालिकाए भी विधिक दृष्टि से वैधानिक निकाय होती हैं। इनकी निगम मुद्रा होती है तथा शाश्वत उत्तराधिकार होता है। कानून की दृष्टि मे नगरपालिकाए वैध व्यक्ति होती है। ये सम्पत्ति का क्रय विक्रय कर सकती है। इन पर मुकदमा चलाया जा सकता है तथा ये दूसरो पर मुकदमा चला सकती हैं।

नगरपालिकाओ मे एक निर्वाचित "परिषद" होती है जो जनता के द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी जाती हैं। यह परिषद नगरीय क्षेत्र मे कानून और नियम बनाने के लिए अधिकृत होती है और नगर के शासन की नीति का निर्धारण इसी निकाय के द्वारा किया जाता है परिषद का आधार प्रत्येक राज्य मे भिन्न-भिन्न होता है और उस राज्य की कुल जनसख्या तथा नगर की जनसख्या परिषद के सदस्यो की सख्या को निर्धारित करने मे निर्णायक होती है। परिषद का कार्यकाल सभी राज्यो मे प्रायः 3 से 5 वर्ष के बीच होता है। ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने नगरपरिषद के 3 वर्ष के कार्यकाल को बहुत कम माना है और इसको बढाकर 5 वर्ष करने की सिफारिश की है।

परिषद अपने ही सदस्यो मे से एक व्यक्ति को अपना अध्यक्ष चुनती है। व्यावहारिक स्थिति यह है कि परिषद का अध्यक्ष बहुमत दल का नेता होता है और नगरपालिका अध्यक्ष के रूप मे वह न केवल नीति निर्माणकारी निकाय "परिषद" की बैठको की अध्यक्षता करता है बल्कि निर्धारित नीतियो को कार्यान्वित करने वाले अधिकारी कमिश्नर और उसके अधीनस्थ कार्मिक वर्ग पर भी वह नियन्त्रण करता है। नगरपालिका अपने कार्य सचालन के लिए बहुत सारी स्थाई और अस्थाई समितियो का निर्माण भी करती है। नगरपालिका राज्य मे प्रवर्तित नगरपालिका अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारो के अनुसार अपने क्षेत्र मे करारोपण और एकत्रण करती है। इस निकाय का विवरण भी अध्याय 5 मे विस्तार से दिया गया है।

3. कस्बा क्षेत्र समिति

कस्बा क्षेत्र समितिया छोटे शहरो मे बनायी जाती है। वे क्षेत्र जो ग्राम

से शहरीकरण की प्रक्रिया मे है किन्तु न तो पूरी तरह ग्राम हैं और न वे पूरी तरह शहर ही बन पाये हैं, उन्हे कस्बा कहा जा सकता है। ऐसे कस्बा-क्षेत्रो के प्रशासन के लिए कस्बा क्षेत्र समितिया स्थापित की जाती हैं। देश मे असम, केरल, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बगाल, जम्मू कश्मीर और हिमाचल प्रदेश ऐसे राज्य हैं जिनमे कस्बा क्षेत्र समितिया पायी जाती हैं। देश मे इस समय कस्बा क्षेत्र समितियो की कुल सख्या 335 है जिनमे से 279 समितियाँ अर्थात् 80 प्रतिशत अकेले उत्तर प्रदेश मे पायी जाती हैं। इन्हे स्थापित करने के लिए भी राज्य सरकार को एक सामान्य कानून बनाना होता है जिसके अन्तर्गत वे किसी भी क्षेत्र को कस्बा क्षेत्र समिति घोषित कर सकती है। आसाम मे कस्बा समितियों की रचना इस समय नगरपालिका अधिनियम 1916 के अन्तर्गत ही की जाती है।

इन समितियो पर सम्बन्धित जिलाधीश को पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के पर्याप्त अधिकार दिये जाते हैं। कस्बा क्षेत्र समिति के आशिक सदस्य निर्वाचित और शेष सदस्य राज्य सरकार द्वारा मनोनीत होते है। इन समितियो से स्थानीय शासन के सफाई, रोशनी, नालियो की सफाई, इत्यादि सीमित कार्यों को करने की अपेक्षा की जाती है। आन्ध्रप्रदेश और मद्रास मे जहा औद्योगिक श्रमिक रहते हैं, उन क्षेत्रो मे इनकी स्थापना की गयी है। हिमाचल प्रदेश मे राज्य सरकार यह मानती है कि जहा नगरपालिकाओ की स्थापना करना सम्भव न हो वहाँ कस्बा क्षेत्र समितिया स्थापित की जा सकती है। जम्मू तथा कश्मीर की सरकार अपने स्वविवेक से इनकी स्थापना का निर्णय लेती है। इन समितियो को नगरपालिकाओं की तुलना मे कम स्वायत्तता मिलती है। इन पर जिलाधीश का अधिक कठोर नियन्त्रण होता है।

इधर पिछले कुछ वर्षों मे कस्बा क्षेत्र समितियो के स्थान पर नगर पचायतो का उद्भव हो रहा है। गुजरात मे ऐसी नगर पचायतो की स्थापना की गई है। कर्नाटक तथा तमिलनाडु से भी नगर पचायतो का प्रयोग किया जा रहा है।

4. अधिसूचित क्षेत्र समिति

नगरीय प्रशासन का यह स्तर एक विशेष और प्रायोगिक इकाई के रूप मे उभरा है। कुछ राज्यो मे उन क्षेत्रो मे जहा राज्य सरकार यह अनुभव करती है कि उनमे नगरपालिकाए स्थापित नही की जा सकती, वहा अधिसूचित क्षेत्र समिति स्थापित कर देती है। नये विकासशील नगरो या पर्यटन की दृष्टि से

विशेष महत्व रखने वाले नगर अथवा छोटे कस्बो मे भी इनकी स्थापना की गयी है। इसकी स्थापना राज्य सरकार कोई अधिनियम बनाकर नही करती अपितु उसके निर्माण की सूचना राज्य सरकार द्वारा सरकारी राजपत्र (गजट) मे अधिसूचित कर दी जाती है, इसीलिए इसे "अधिसूचित क्षेत्र समिति" कहा जाता है। इन क्षेत्रों पर राज्य के नगरपालिका अधिनियम के केवल वे नियम ही प्रवर्तित होते है जो सरकारी राज-पत्र मे अधिसूचित कर दिए जाते हैं। सरकार को यह स्पष्ट अधिकार होता है कि अपनी अधिसूचना मे वह इन समितियो को अधिकार दे दे। अधिसूचना क्षेत्र समिति प्राय सरकार द्वारा मनोनीत होती है और निर्वाचित सदस्यो का इसमे अभाव होता है।

राजस्थान मे अधिसूचित क्षेत्र समिति की स्थापना के लिए राज्य सरकार ने एक अपना विशिष्ट "मॉडल" अपनाया है। राजस्थान मे कुछ पर्यटकीय महत्व के क्षेत्रो का प्रशासन सीधे राज्य सरकार के अधिकतम नियन्त्रण मे रहे, इस दृष्टि से उनमे अधिसूचित क्षेत्र समितियो की स्थापना की गई है। उदाहरणार्थ–आमेर, पुष्कर, माउण्ट आबू, जैसलमेर, विद्याविहार (पिलानी) और रावतभाटा ऐसे पर्यटकीय महत्व के स्थान हैं जिनके स्थानीय प्रशासन को राज्य सरकार स्थानीय राजनीति का शिकार नही होने देना चाहती अत उनमे स्थानीय प्रशासन के सचालन हेतु अधिसूचित क्षेत्र समितियो की स्थापना की गयी है।

उडीसा मे जहा इन समितियो की सख्या सर्वाधिक है, प्रशासकीय परम्परा के अनुसार इनकी स्थापना हेतु निम्नलिखित मापदण्डो पर ध्यान दिया जाता है

1 क्षेत्र मे शहरी लक्षण हो,

2 जहा नगरपालिका द्वारा संचालित सेवाओ की माग हो,

3. जहा की जनसंख्या 3 हजार से कम न हो।

बिहार मे राज्य सरकार अपनी स्वविवेकी शक्ति के अन्तर्गत इनकी स्थापना करती है। उत्तरप्रदेश मे भी राज्य सरकार उन क्षेत्रो मे जहा की जनसख्या दस हजार से अधिक न हो और वार्षिक आय 5 हजार रुपये से कम न हो, अधिसूचित क्षेत्र समिति स्थापित करती है।

इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि उन क्षेत्रो को अधिसूचित क्षेत्र समिति के अन्तर्गत लिया जाता है जो नगरपालिका बनाने की शर्ते पूरी नही करते हैं किन्तु वे किसी न किसी कारण से महत्वपूर्ण हैं। कुछ राज्यो मे इन समितियो के कतिपय सदस्यो का निर्वाचन भी होता है। इनकी सदस्य सख्या

सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। राज्य-सरकार ही सदस्यो मे से किसी व्यक्ति को समिति का सभापति और उपसभापति नियुक्त कर देती है।

5. छावनी मण्डल

देश मे इस समय 62 छावनी बोर्ड हैं, जो सम्पूर्ण देश मे बिखरे हुए हैं। इन्हे 'केन्टोनमैन्ट बोर्ड' भी कहा जाता है। छावनी मण्डल का प्रशासन भारतीय छावनी मण्डल अधिनियम 1924 के अन्तर्गत सचालित किया जाता है। इनका विकास ब्रिटिश शासन के अधीन हुआ था।

छावनी मण्डल की स्थापना उन स्थानो पर की जाती है जहा छावनी मे सेना रहती है। जिस स्थान पर सेना छावनी बनाकर रहती है उस स्थान के आस पास बहुत से असैनिक क्षेत्रो का विकास भी हो जाता है। सेना की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति और सुविधा के लिए बाजार बनाया जाता है और सैनिको की असैनिक आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए आस-पास भी पूरी बस्ती विकसित हो जाती है।

छावनी के आस-पास की जनसख्या के आधार पर छावनी मण्डल को तीन भागो मे विभाजित किया गया है :

1. प्रथम श्रेणी छावनी मे उन छावनी मण्डलो को सम्मिलित किया जाता है जहा के नागरिको की सख्या दस हजार से अधिक हो। देश मे ऐसे तीस छावनी मण्डल हैं।
2. द्वितीय श्रेणी छावनियो मे असैनिक जनसख्या 2500 से दस हजार के बीच होती है। ऐसे छावनी मण्डल 19 हैं।
3. तृतीय श्रेणी की छावनियो मे असैनिक जनसख्या 2500 से कम होती है जो कुल 13 हैं।

छावनी बोर्ड मे आधे सदस्य सेना के अधिकारी होते हैं तथा आधे सदस्य असैनिक नागरिको मे से निर्वाचित होते हैं। छावनी बोर्ड मे सदस्यो की सख्या 3 से 15 के मध्य होती है। छावनी बोर्ड का सभापति सैनिक छावनी का सर्वोच्च सैनिक अधिकारी या ऑफीसर कमाडिंग स्वय होता है तथा उपाध्यक्ष असैनिक सदस्यो मे से चुना जाता है। इसके प्रशासन मे सैनिक शासन की छाप रहती है। छावनी मण्डल मे चुने हुए सदस्यो का कार्यकाल 3 वर्ष होता है और सैनिक पदाधिकारियो मे से लिए हुए सदस्यो का कार्यकाल तब तक जारी रहता है जब तक वे अपने पद पर पदासीन होते हैं।

छावनी बोर्ड के नगरीय प्रशासन पर अनेक बार यह आरोप लगाया जाता है कि यह व्यवस्था लोकतान्त्रिक व्यवस्था में मेल नहीं खाता है, अतः इसे हटाकर किसी अन्य नगरीय निकाय की व्यवस्था इन क्षेत्रों के लिए की जानी चाहिए। भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात के दिनों में श्री एस के पाटिल की अध्यक्षता में नियुक्त समिति का इस बारे में यह कहना था कि अनेक छावनी क्षेत्रों को असैनिक क्षेत्रों से पृथक करना भौगोलिक दृष्टि से सम्भव नहीं है या ये असैनिक क्षेत्र इतने छोटे हैं कि स्वतन्त्र रूप से किसी अन्य स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में काम नहीं कर सकते। श्री पाटिल की समिति ने जो प्रतिवेदन दिया उस पर संसद ने 1954 में विचार किया और इस विचार विमर्श के पश्चात भारत का सुरक्षा मन्त्रालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि .

1 छावनी बोर्ड के प्रशासन पर सैनिक प्रशासन की छाप रहनी चाहिए अतः छावनी बोर्ड के गठन का वर्तमान स्वरूप बना रहना चाहिए।

2. असैनिक क्षेत्रों का प्रशासन असैनिक क्षेत्र समिति, जो छावनी मण्डल की ही एक समिति है, को दे दिया जाना चाहिए तथा इन समितियों को छावनी मण्डल अधिनियम के अन्तर्गत अधिक से अधिक शक्तियां स्वीकृत की जानी चाहिए।

कार्यों की दृष्टि से छावनी मण्डल के कार्य भी नगरपालिका जैसे ही होते हैं किन्तु उसे कुछ अतिरिक्त शक्तियाँ भी प्रदान की जाती हैं। छावनी क्षेत्र में सफाई एवं दुराचार के नियन्त्रण पर विशेष महत्व दिया जाता है। छावनी बोर्ड अनिवार्य और ऐच्छिक दोनों ही प्रकार के कार्यों का सम्पादन करता है। इसके अनिवार्य कार्यों को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

1. लोक सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा सुविधा के आधार पर मार्गों तथा अन्य स्थानों से अवरोधकों को हटाना,
2 मार्गों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रकाश की व्यवस्था तथा छिड़काव,
3. मार्गों, नालियों एवं सार्वजनिक स्थानों की सफाई,
4. खतरनाक इमारतों एवं स्थानों को सुरक्षित बनाना या उन्हें हटाना,
5. मार्गों, पुलों, हाटों इत्यादि में जल निकास व्यवस्था, मल निकास व्यवस्था, का निर्माण और उनका अनुरक्षण,
6. जन्म एवं मरण का पंजीकरण,

7. मृतक कार्यों के स्थलो का निर्माण एव नियमन,
8. शुद्ध पेयजल की व्यवस्था,
9. सार्वजनिक चिकित्सालयो की स्थापना और रोग निरोधक टीको की व्यवस्था,
10. प्राथमिक पाठशालाओ की स्थापना और उनका सचालन,
11 अग्नि से बचाव।

ऐच्छिक कार्य

1. तालाबो और कुओ का निर्माण,
2. जनगणना,
3. बिजली का प्रबन्ध,
4. सार्वजनिक पर्यवेक्षण व्यवस्था का प्रबन्ध,
5 अस्वास्थ्यकर स्थानो को निवास के योग्य बनाना,
6. विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक कर।

नगरीय प्रशासन की छावनी मण्डल की यह व्यवस्था ऐसी नगरीय इकाई है जिसका सचालन राज्य सरकार द्वारा नही अपितु केन्द्र सरकार के सुरक्षा मत्रालय के नियन्त्रणाधीन होता है। छावनी मण्डल मुख्यतः केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्मित सस्था होती है इस कारण लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की स्वशासन की इकाई के रूप मे इसका वैसा स्वागत नही किया जाता जैसा अन्य इकाइयो का किया जाता है। यह भी कहा जाता है कि अधिकतर छावनी बडे-बडे नगरो के निकट स्थित होती है अत. इतने निकट स्थानीय शासन का होना न केवल अनावश्यक है वल्कि इससे धन का अपव्यय भी होता है और अनेक उलझनें तथा भ्रम उत्पन्न हो जाते है। यह भी कहा जाता है कि जहा छावनी होती है वहा स्थान की आवश्यकता से कही अधिक भूमि पर वे अधिकार कर लेते है। ऐसी स्थिति मे अधिकाश क्षेत्र सेना के अधिकार मे होता है और आस-पास के बहुत छोटे क्षेत्र मे असैनिक निवासी रहते है। छावनी मण्डल का कार्यकरण सेना से इतना प्रभावित होता है कि इस पद्धति को लोकतान्त्रिक कदापि नही माना जा सकता। किन्तु छावनी मण्डल का अपना एक महत्व है और सैनिक छावनियों के समीप नागरिक प्रशासन को नियन्त्रित और सचालित करने मे इसकी अपनी असदिग्ध भूमिका है।

6. एकल उद्देशीय अभिकरण—

नगरीय शासन का अन्तिम प्रकार एकल उद्देशीय अभिकरण होता है। विद्वान इसे नगरीय शासन का प्रकार कहने की उपेक्षा नगरीय शासन की अन्य इकाइयों का सहायक कहते है। एकल उद्देशीय अभिकरण ऐसे सगठनो को कहते है, जो केवल एक उद्देश्य को पूरा करने के लिए बनाया जाता है। उसे जो शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं उन सीमाओं मे रह कर वह एक स्वायत्त-शासी निकाय होता है, जिसके अपने पृथक आय के स्रोत होते है और स्पष्टत एक विशिष्ट उद्देश्य को पूरा करना उसका वैधानिक कर्त्तव्य होता है।

स्थानीय स्वशासन कुछ कार्यों को ठीक प्रकार से नही कर पाता है। कुछ विद्वानो का यह विचार भी है कि आधुनिक जीवन की बढती हुई जटिलता मे कुछ कार्यकलाप इतने तकनीकी और जटिल होते हैं कि उनके लिए विशेष उपाय की आवश्यकता होती है। उन कार्यों का सम्पादन कुशलता से करने के लिए अनन्य रूप से भी पृथक सगठनो की आवश्यकता होती है जिन्हे केवल एक दायित्व सौंपा जाता है। डॉ० श्रीराम माहेश्वरी ने यह भी कहा है कि कुछ कार्य इस तरह के होते हैं कि उन्हे राजनीति के दल-दल से निकालने की आवश्यकता होती है इसलिए भी पृथक अभिकरणो की स्थापना की जाती है। आधुनिक युग मे जहा नगरीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त तेजी से बढ रही है, नगर परिवहन जल व्यवस्था, बिजली, नगरीय विकास और आयोजन तथा मल निकास इत्यादि कार्यों की प्रकृति ऐसी है जिन्हे स्थानीय शासन अपने अन्य नियमित दायित्वो के साथ कुशलता से पूरा नही कर सकता, इसीलिए स्वायत्तशासी एकल उद्देशीय अभिकरण स्थापित किये जाते है।

एकल उद्देशीय अभिकरण को विशिष्ट उद्देशीय सस्थाएँ भी कहा जाता है। नगर विकास के अभिकरण जैसे दिल्ली विकास प्राधिकरण, जयपुर विकास प्राधिकरण और नगर विकास न्यास, बन्दरगाह न्यास (पोर्ट ट्रस्ट), आवासन मण्डल इत्यादि भी विशिष्ट उद्देशीय अभिकरण है, जिन्हे उनके नाम से इंगित दायित्व के निष्पादन की जिम्मेदारी दी जाती है।

नगर निगम या नगरपालिकाएँ नगर मे सफाई का कार्य तो कुशलता से कर सकती हैं किन्तु नगरीय विकास सुनियोजित दृष्टि से नियंत्रित करने का कार्य वे ठीक से नही कर सकती। नगरो की बढती हुई जनसख्या मे, नगर का सुनियोजित विकास सुनिश्चित करने के लिए बडे नगरो मे विकास प्राधिकरण और छोटे नगरों मे सुधार न्यासो की स्थापना इस हेतु की जाती है। यहाँ यह उल्लेखनीय

है कि प्रथम पाँच प्रकार की संस्थाओं में से एक संस्था स्थानीय शासन के कार्यों को करने के लिए प्रत्येक नगर में हो सकती है और किसी विशेष उद्देश्य के लिए उस नगर में स्थानीय शासन की इकाई के होते हुए भी एकल उद्देशीय अभिकरण स्थापित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ दिल्ली में जहा नगर निगम है, नई दिल्ली क्षेत्र के लिए नगरपालिका है, दिल्ली छावनी बोर्ड है, वहीं दिल्ली के नगरीय विकास को सुनियोजित स्वरूप देने की दृष्टि से दिल्ली विकास प्राधिकरण' भी स्थापित किया गया है। इसी प्रकार कानपुर में, कानपुर विकास प्राधिकरण है और जयपुर में जयपुर नगर परिषद के होते हुए भी जयपुर विकास प्राधिकरण जयपुर के सुनियोजित विकास को सुनिश्चित करने के लिए स्थापित किया गया है।

इसी प्रकार जिन महानगरों के किनारे समुद्र है और बन्दरगाह बने हुए हैं वहा के बन्दरगाहों के स्थानीय नियन्त्रण के लिए बन्दरगाह न्यास बनाया गया है। उदाहरणार्थ कलकत्ता, बम्बई, विशाखापत्तनम, मद्रास और कोचीन में समुद्री बन्दरगाह पर स्थानीय समस्याओं को हल करने, बन्दरगाहों पर गोदाम बनवाने, उनकी सफाई करवाने, बड़े-बड़े जहाजों को ठहराने के लिए समुद्री तटों को गहरा करवाने, जहाज पर माल उतारने व चढाने के लिए मजदूरों की व्यवस्था करने और बन्दरगाहों में आवश्यक सुधार करने के लिए इन बन्दरगाहों पर बन्दरगाह न्यास नामक अभिकरण सम्बन्धित सरकारों ने स्थापित किये हैं। इन बन्दरगाह न्यासों के प्रबन्ध मण्डल में कुछ सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं और शेष व्यापारियों के संगठनों द्वारा चुने हुए सदस्य होते हैं। आंशिक रूप से निर्वाचित और आंशिक रूप से मनोनीत प्रतिनिधि मण्डल बन्दरगाह न्यास के संचालन की समूची व्यवस्था को नियन्त्रित करते हैं।

इसी प्रकार आजकल बड़े-बड़े नगरों में, नगरीकरण के बढ़ते हुए दबाव के कारण आवास की समस्या अत्यन्त जटिल हो गयी है। मकानों का किराया सुरसा की भांति बढता चला जा रहा है। नगरों में रहने वाले निवासी आवास योग्य जमीन नहीं ले पाते और यदि ले भी पाते हैं तो मकान का निर्माण उनके लिए अत्यन्त श्रमसाध्य और व्ययसाध्य लगता है। इसलिए आधुनिक लोक कल्याण का जो संकल्प सरकारों ने ले रखा है उसके अनुरूप शहरी निवासियों की इस समस्या को हल करने के लिए प्रत्येक राज्य में आवासन मण्डल बनाया गया है, जिनका प्रमुख कार्य शहर के निवासियों को बने बनाये स्वच्छ पर्यावरण युक्त मकान उपलब्ध करवाना होता है। आवासन मण्डल प्रायः पूर्णतः सरकार द्वारा मनोनीत होता है। आवासन मण्डल यह प्रयत्न करता है कि बड़े-बड़े नगरों का

व्यवस्थित विकास हो और इस हेतु मकानो का निर्माण, आवासीय भूखण्डो की नीलामी, बने बनाये मकानो की नीलामी, और भावी आवासीय आवश्यकताओ का आकलन कर लोगो को स्तरीय आवास उपलब्ध कराने के दायित्व का निर्वहन करता है।

कुछ बडे औद्योगिक नगरो के स्थानीय प्रशासन के सचालन के लिए और उनकी विशेष आवश्यकताओ सुविधाओ एव समस्याओ के निराकरण के लिए टाउनशिप स्थापित किये जाते हैं। ये टाउनशिप भी कई प्रकार के होते है प्रथम वह टाउनशिप, जो एक तरह से कारखाने वाले स्थान पर बनाये जाते है जैसे–राउरकेला, भिलाई और जमशेदपुर मे एक ही प्रकार के उद्योग होने के कारण उन्हे एक कोटि मे रखा जाता है। द्वितीय टाउनशिप जटिलता वाले उद्योगो को ध्यान मे रखकर बनाया जाता है जहा एक प्रकार के नही बल्कि विभिन्न प्रकार के कारखाने है जैसे स्टील, खाद और कोयला इत्यादि के कारखान एक साथ उस क्षेत्र मे पाये जाते है और, तृतीय प्रकार के टाउनशिप छोटे प्रकार के कारखानो के क्षेत्र मे बनाये जाते हैं।

इस टाउनशिप मे कतिपय सदस्य चुने हुए तथा कुछ अन्य सदस्य उद्योगो द्वारा एव कुछ राज्य सरकार द्वारा मनोनीत होते है। इन क्षेत्रो के प्रशासन को नियन्त्रित करने के लिए एक प्रशासक भी नियुक्त किया जाता है। टाउनशिप यह सुनिश्चित करता है कि इस क्षेत्र की विकास सम्बन्धी व अन्य नागरिक सुविधाओ का वितरण ठीक प्रकार से बना रहे। इनकी वित्तीय व्यवस्था स्वय जनता व कारखानो के सचालको द्वारा की जाती है। इन्हे राज्य सरकार भी सहायता उपलब्ध कराती है। इस तरह ये विभिन्न प्रकार के एकल उद्देशीय अभिकरण विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करते है।

इस प्रकार नगरीय प्रशासन की उपरोक्त कुल छ प्रकार की इकाइया भारतवर्ष मे पायी जाती हैं।

4

महानगरों का स्थानीय प्रशासन : नगर निगम, उनकी स्वायत्तता और उत्तरदायित्व की समस्या

भारतवर्ष मे नगर निगम, स्थानीय प्रशासन की शीर्षस्थ इकाई है। औद्योगिकरण के कारण नगरो का विस्तार न केवल अत्यत तेजी से हुआ है, अपितु नगरो की जनसख्या, उसकी भूमि सीमा की क्षमता मे कही अधिक मात्रा में, गहन रूप से बढ गयी है। जो नगर जनसंख्या और आकार की दृष्टि से अति विशाल हो गये है और जिनमे अनेकानेक नगरीय समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं, उन्हे महानगरो की श्रेणी मे रखा जाता है। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, और मद्रास ऐसे बड़े महानगरो की श्रेणी मे गिने जाते हैं। किंतु स्वतन्त्रता के पश्चात् अब नगरो की जनसख्या का इतना अधिक विस्तार हो गया है कि इस श्रेणी मे इनके अलावा भी अनेक नगरो जैसे हैदराबाद, पटना, अहमदाबाद, बडौदा, सूरत त्रिवेन्द्रम, कोचीन, मदुराई, ग्वालियर, इन्दौर, जबलपुर, बिलासपुर, भोपाल, उज्जैन, सागर, नागपुर, शोलापुर, बैंग्लोर, धारवाड, कानपुर, आगरा, इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ, चन्द्रनगर, हावड़ा—आदि को सम्मिलित करते हुए इनके स्थानीय प्रशासन के लिए नगर निगमो की स्थापना की गयी है।

भारत मे, प्रथम नगर निगम की स्थापना नगरनिगम अधिनियम, 1888 द्वारा बम्बई मे की गयी थी। इसके पश्चात मद्रास (1919) और कलकत्ता (1951) मे नगर निगम स्थापित किये गये थे। वर्तमान मे देश मे जो अन्य नगर निगम है उनमे अधिकाश स्वतत्रता के बाद स्थापित किये गये हैं।

नगर निगम तथा नगर परिषद में अन्तर

नगर निगम जहाँ महानगरो मे स्थापित किये जाते हैं वहीं नगर परिषद

अथवा नगरपालिका महानगरों से छोटे नगरों म स्थापित की जाती है। इनमे प्रमुख अन्तरों का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया जा सकता है

1 दोनों मे प्रथम अन्तर यह है कि जहाँ नगर निगम स्थापित करने के लिए राज्य सरकारों को विधान मण्डल द्वारा पृथक से विशेष विधान पारित करना होता है, और ऐसा प्रत्येक नगर निगम के लिए करना पड़ता है, वही नगरपालिकाएँ स्थापित करने के लिए राज्य सरकारें एक सामान्य विधि बना देती है जिसके अन्तर्गत राज्य मे, राज्य सरकार जब कभी चाहे किसी क्षेत्र मे नगर-पालिका बना सकती है। नगरपालिका की स्थापना के लिए राज्य सरकार को हर बार विधानसभा की अनुमति नही लेनी पड़ती अपितु एक बार पारित सामान्य विधि के अन्तर्गत राज्य सरकार को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि *उस विधि की सीमा मे रहते हुए वह किसी भी क्षेत्र को नगरपरिषद या पालिका* घोषित करने का कार्यकारी आदेश दे सकती है। सारत, यह कहा जा सकता है कि कोई भी नगर निगम राज्य के विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियम के परि-णाम स्वरूप ही अस्तित्व मे आता है जब कि नगरपालिका के लिए हर बार यह आवश्यकता नही पड़ती।

2 नगर निगम और नगर परिषद मे दूसरा प्रमुख अन्तर यह होता है कि नगर निगम मे विचारात्मक और कार्यकारी निकायों का पृथक्करण पाया जाता है जबकि नगरपरिषद मे यह पृथक्करण उतना नही होता। नगर निगम मे नगरीय प्रशासन के लिए नीति निर्धारण का विचार-विमर्शकारी कार्य निगम की परिषद, मेयर की अध्यक्षता मे सम्पन्न करती है, मेयर और परिषद का नीतियो के निष्पादन अर्थात कार्यकारी निकाय पर कोई नियन्त्रण नही होता। निगम का कार्यकारी निकाय कमिश्नर की अध्यक्षता मे गठित होता है जो निगम द्वारा निर्धारित नीतियों और पारित विधियों को क्रियान्वित करने के लिए उत्तरदायी होता है दूसरी ओर, नगरपालिकाओं मे यह विभाजन नही होता है। नगर-पालिकाओं की परिषद सदस्य निर्वाचित अध्यक्ष के नेतृत्व मे न केवल नगरीय प्रशासन की नीतियां निर्धारित करती है अपितु परिषद का अध्यक्ष नीतियों के निष्पादन करने वाले कार्यकारी निकाय कमिश्नर और उसके स्टाफ पर भी पूरा नियन्त्रण रखता है। इस तरह नगर निगम जहा विचारात्मक और कार्यकारी कार्यों के पृथक्करण पर आधारित नगरीय प्रशासन का प्रतिमान (मॉडल) प्रस्तुत करता है वही नगरपरिषदें या नगरपालिकाएं इस पृथक्करण के न होने का प्रति-मान मानी जाती हैं।

3 नगर निगम और नगरपालिकाओ मे जनसख्या और आय स्तर की दृष्टि से भी अन्तर पाया जाता है। नगर निगम की जनसख्या नगरपालिकाओ की तुलना मे अधिक होती है क्योंकि नगर निगम प्राय महानगरो मे बनाये जाते है जिनकी जनसख्या प्रायः 5 लाख से अधिक होती है। जबकि नगरपालिकाओ की स्थापना न्यूनतम 5 हजार की जनसख्या पर भी कर दी जाती है। इसी प्रकार कोई भी नगर निगम स्थापित करने के लिए उस नगर मे एक करोड़ रुपये वार्षिक आय को एक मापदण्ड माना जाता है जबकि नगरपालिकाओ के लिए ऐसी कोई पूर्वापेक्षा नही है।

4. नगर निगम का राजनीतिक अध्यक्ष मेयर होता है जो केवल एक वर्ष के लिए चुना जाता है, यद्यपि उसे उसके पद पर तीन बार भी चुना जा सकता है, जबकि नगर परिषद का राजनीतिक नेतृत्व परिषद के निर्वाचित अध्यक्ष द्वारा किया जाता है जिसका कार्यकाल नगरपालिका के कार्यकाल के समान 3 से लेकर 5 वर्ष तक होता है।

5. दोनो मे समानता का बिन्दु यह है कि दोनो निकायो का निर्माण राज्य सरकार करती है जिसमे इनके नियन्त्रण और पर्यवेक्षण की शक्तियाँ भी सन्निहित होती हैं। राज्य सरकार नगर निगम और नगर परिषद दोनो को भंग करके उनका प्रशासन अपने हाथ मे लेने के लिए सक्षम मानी जाती है।

नगर निगम स्थापित करने के मापदण्ड

नगर निगम स्थापित करने के लिए कोई स्पष्ट मापदण्ड निर्धारित नही हैं। जैसा कि पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है कि स्थानीय शासन राज्य सूची का विषय है इस कारण स्थानीय शासन की कौनसी इकाई, कहाँ स्थापित की जानी है, इस बारे में राज्य सरकारें निर्णय लेने के लिए पूर्णत प्राधिकृत और स्वतन्त्र होती हैं। नगर निगम प्राय. घनी आबादी वाले नगरो मे बनाये जाते हैं। इनकी स्थापना किन बडे नगरो मे की जाए, यह एक नीति सबधी प्रश्न है जो सबधित राज्य सरकार द्वारा अपने साधन-स्रोतो एव स्थानीय स्वायत्त शासन के दर्शन इत्यादि के परिवेश मे निर्धारित किया जाता है। वर्तमान मे भारत मे कतिपय ऐसे नगर निगम भी हैं जिनकी सख्या 50 से 80 लाख के बीच है जबकि कुछ ऐसे नगर निगम भी स्थापित हैं जिनकी जनसख्या 5 लाख से भी कम है। इसी प्रकार कुछ नगर निगमो की वार्षिक आय 50 लाख से भी कम है।

ग्रामीण नगरीय सबध समिति (1966) ने यह अभिशसा की थी कि स्थानीय शासन को निगम पद्धति उन्ही नगरो मे स्थापित की जाये जिनकी

जनसख्या 5 लाख और वार्षिक आय एक करोड से कम न हो। समिति की इस अभिशसा के बारे मे पश्चातवर्ती काल मे यह अनुभव किया गया है कि जनसख्या एवं आय स्तर पर आधारित नगर निगम बनाने की ये कसौटियाँ अपेक्षाकृत अधिक कठोर है अत किसी वर्तमान नगरपालिका को नगर निगम मे परिवर्तित करने की उपरोक्त अपेक्षाओ को एक मात्र आधार नही बनाया जा सकता। भारत वर्ष मे राज्य सरकारो द्वारा आम तौर पर नगर निगम बनाने के लिए जिन आधारो को ध्यान मे रखा जाता है वे निम्नाकित है -

1 घना बसा हुआ क्षेत्र हो,
2. विद्यमान इकाई नगरपालिका या परिषद पर्याप्त विकसित हो तथा उसके भावी विकास की सभावना हो,
3 नगरपालिका की वर्तमान वित्तीय स्थिति तथा सुदृढ़ सभावनाए हो,
4 बढे हुए करो को वहन करने की जनता की क्षमता तथा इच्छा, और
5 निगम के पक्ष में प्रबल लोकमत।

नगर निगम के निर्माण के लिए ये मानक कोई सुनिश्चित और अपरिवर्तनीय सिद्धान्त नही हैं। वस्तुतः ये वे मापदण्ड हैं जिन्हे राज्य सरकारें प्राय नगर निगम स्थापित करते समय ध्यान मे रखती हैं। राज्य सरकारें ही वस्तुत इस बात का अन्तिम निर्णय करती है कि किस नगर मे नगर निगम बनाया जाये। सामान्यत जो नगर महानगर बनने की ओर अग्रसर हो और जहा वर्तमान नगरपालिका की वित्तीय स्थिति पर्याप्त सुदृढ हो तथा लोकमत निरन्तर नगर निगम की माग करता हो, उस नगर मे राज्य सरकारें नगर निगम बनाने के लिए तैयार हो जाती हैं।

नगर निगम का आन्तरिक संगठन

नगर निगम के सगठन को निम्नाकित घटको के माध्यम से समझा जा सकता है

1 परिषद
2 मेयर तथा उपमेयर
3. नगर आयुक्त तथा
4 समितियाँ

किसी भी नगर निगम की सरचना उपर्युक्त 4 घटको से मिलकर होती है। उनका प्रत्येक का विवरण इस प्रकार है

1 परिषद

नगर निगम एव नगर परिषद दोनो मे ही एक निर्वाचित परिषद का प्रावधान होता है। यह निर्वाचित परिषद नगर निगम का वैधानिक निकाय मानी जाती है जिसमे नगर की जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। यह एक प्रकार की स्थानीय विधायिका है जिस पर यह दायित्व होता है कि स्थानीय जनता की श्राकाक्षाश्रो के अनुरूप नगरीय कानूनो और नियमो का निर्माण करे। सम्पूर्ण नगर को चुनाव की दृष्टि से वार्डों मे विभाजित कर दिया जाता है और प्रत्येक वार्ड से एक प्रतिनिधि उस क्षेत्र के वयस्क नागरिकों के द्वारा चुना जाता है। परिषद मे नगर के सभी वार्डों से चुने हुए प्रतिनिधियो को पार्षद कहा जाता है। परिषद का कार्यकाल अधिनियम द्वारा नगर निगम के कार्यकाल जितना होता है। यह कार्यकाल आमतौर पर 3 से पाचवर्ष का होता है। परिषद मे निर्वाचित सदस्यो के अलावा कुछ सदस्य और भी होते हैं जिन्हे एल्डर मैन (नगर वृद्ध) कहा जाता है। इस कोटि मे नगर के वयोवृद्ध, अनुभवी और ऐसे लोगो को स्थान दिया जाता है जिनकी उपस्थिति से नगरीय शासन की छवि उत्कृष्ट होने की सभावना रहती है। इस प्रथा मे महिला वर्ग को प्रतिनिधित्व मिलने के अलावा नगर के ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति, विशेषज्ञ और नगरीय शासन तथा प्रशासन के क्षेत्र मे ख्याति एव प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्तियो को भी स्थान मिल जाता है जो प्रायः चुनाव लड़कर अपना योगदान देने के प्रति रुचि नही रखते। प्रायः सभी नगर निगमो मे इस तरह दो प्रकार के सदस्य होते हैं एक वे जो सीधे निर्वाचित होते है और दूसरे वे जो निर्वाचित पार्षदो द्वारा नगरवृद्ध के रूप मे परिषद में सहवरित किये जाते है। दिल्ली नगर निगम मे जहा 80 सदस्य निर्वाचित होते हैं वही 6 सदस्य एल्डर मैन के रूप मे लिए जाते हैं। इसी प्रकार कलकत्ता नगर निगम मे 100 सदस्य निर्वाचित होते हैं। 5 सदस्य एल्डर मैन लिये जाते है। बम्बई नगर निगम मे एल्डर मैन कोटि सदस्यो का कोई प्रावधान नही है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से एल्डर मैन के रूप मे नगर के गणमान्य प्रबुद्ध जनो भूतपूर्व अनुभवी प्रशासको और नगरीय शासन के विशेषज्ञो को स्थान देने का प्रावधान उत्कृष्ट प्रतीत होता है किन्तु व्यवहार मे निर्वाचित पार्षदो के द्वारा एल्डर मैन के रूप मे जिन लोगो को सहयोजित किया जाता है वे प्राय· राजनीतिक आधार पर ही लिए जाते हैं।• इस प्रावधान का इसकी सैद्धान्तिक भावना के अनुरूप उपयोग किया जाये तो यह अत्यन्त श्रेष्ठ है किंतु कुछ क्षेत्रों मे, इस प्रावधान के राजनीतिक उपयोग के कारण, इसकी आलोचना की जाती है।

कुछ नगर निगमो मे अनुसूचित जातियो तथा जनजातियो के लिए स्थान आरक्षित किये जाते हैं। उदाहरणार्थ दिल्ली नगर निगम मे 12 निर्वाचित क्षेत्र अनुसूचित जाति के सुरक्षित हैं और शेष 68 क्षेत्र सामान्य घोषित किये हुए हैं किन्तु बम्बई नगर निगम मे स्थानो के आरक्षण की ऐसी कोई परिपाटी नहीं है।

नगर निगम की इस परिषद का आकार सभी नगर निगमों मे भिन्न भिन्न होता है। वस्तुत परिषद का यह आकार नगर की जनसख्या पर निर्भर करता है। अधिनियम मे जो सदस्य सख्या निर्धारित की जाती है अनेक वर्षों तक उसके अपरिवर्तित रहने के कारण बढती हुई जनसख्या से उसका तारतम्य नही रह पाता है। नगर के सभी भौगोलिक क्षेत्रो को नगर निगम मे प्रतिनिधित्व देने की दृष्टि से परिषद का आकार निश्चित किया जाना उचित रहता है। केवल इस दृष्टि से परिषद का आकार छोटा रखना उचित नहीं है कि छोटी परिषद अधिक व्यवहारिक होती है। स्थानीय जनता की स्थानीय आवश्यकताओ को प्रभावशाली तरीके से समझना और उसे पूरा करने के लिए नगर निगम की परिषद का आकार निश्चित किया जाना चाहिए।

नगर निगम की यह परिषद नगरीय शासन का विचार-विमर्शकारी निकाय है। जैसा कि पूर्व मे व्यक्त किया जा चुका है कि नगर निगम मे विचार विमर्शकारी निकाय और कार्यात्मक निकाय मे पार्थक्य पाया जाता है। वस्तुत निगम की परिषद पर यह अनन्य दायित्व होता है कि वह नगरीय स्थानीय प्रशासन के लिए नीतिया निर्धारित करे और आवश्यक कानून तथा नियम बनाये निर्वाचित पार्षदो एव नगरवृद्धो से निर्मित इस परिषद द्वारा निर्धारित नीतियो के कार्यान्वयन का दायित्व अनन्य रूप से निगम के कार्यकारी निकाय नगर आयुक्त और उसके अधीनस्थ कार्मिकों पर होता है।

नगर निगम की परिषद के कार्यकाल, जो प्राय: 3 से 5 वर्ष होता है, के बारे मे भी विद्वानो ने यह राय व्यक्त की है कि 3 वर्ष कार्यकाल किसी भी लोकतान्त्रिक दृष्टि से निर्वाचित परिषद के लिए कम होता है। दिल्ली कलकत्ता और बम्बई नगर निगम की परिषद के सदस्यो का कार्यकाल 4 वर्ष निर्धारित किया हुआ है। परिषद की स्थिति नगरीय प्रशासन मे सर्वोच्च विचारक निकाय की होती है। जो प्राय उसी प्रकार काम करती है जिस प्रकार किसी राज्य की विधानसभा कार्य करती है। अत नगरीय प्रशासन के मनीषियो का सुझाव है कि नगर निगम की परिषद का कार्य काल भी 5 वर्ष होना चाहिए।

2. मेयर तथा उपमेयर

इगलैंड की भांति हमारे नगरीय प्रशासन में भी नगर निगम का औपचारिक अध्यक्ष मेयर होता है। नगर निगम की कार्यपालक शक्तियां उसमें औपचारिक रूप से उस तरह निहित होती हैं जिस तरह राज्य प्रशासन में ये शक्तियां राज्यपाल में और राष्ट्रीय प्रशासन में राष्ट्रपति में निहित होती हैं। वह निगम का अध्यक्ष होता है तथापि औपचारिक प्रधान होने के कारण वह निगम का वास्तविक कार्यपालक नहीं होता, वह नगर का प्रथम नागरिक होता है। वह नगर की शान और गरिमा का प्रतीक समझा जाता है। निगम के निर्वाचित पार्षदों और नगरवृद्धों द्वारा उन्हीं में से मेयर का चुनाव एक वर्ष के लिए किया जाता है। यदि परिषद के सदस्य चाहें तो दूसरे कार्यकाल के लिए भी उसी का चुनाव अगले वर्ष कर सकते हैं। उत्तर प्रदेश के नगर निगमों में मेयर चुने जाने के लिए, परिषद का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। निगम का यह अध्यक्ष परिषद के कार्यालय पर राजनीतिक और प्रशासनिक नियंत्रण करता है। दिल्ली नगर निगम में अधिनियम यह प्रावधान करता है। मेयर निगम के सभी अभिलेखों को देख सकता है और नगरीय प्रशासन के संबंध में नगर आयुक्त से प्रतिवेदन मांग सकता है।

मेयर, जिसे निगम का अध्यक्ष भी जा सकता है, निगम की परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसी के निर्देश पर परिषद की सामान्य और विशेष बैठकें बुलायी जाती हैं। राज्य सरकार और निगम के मध्य पत्र व्यवहार, कुछ नगर निगमों में उसी के माध्यम से होता है।

हमारे देश में नगर निगम का मेयर कार्यकारी शक्तियों से वंचित किया गया है। निगम के इस अध्यक्ष को नगर का राजनीतिक नेतृत्व प्रदान किया गया है और नगरीय प्रशासन के कार्य संचालन का दायित्व निगम आयुक्त पर छोड़ा गया है। ग्रामीण-नगरीय संबंध समिति ने भी निगमाध्यक्ष को कार्यकारी अधिकार नहीं देने की अभिशंसा की थी। समिति का यह मत था कि यदि मेयर को कार्यकारी शक्तियां दी जाती हैं तो उसका कार्यकाल भी बढ़ाया जाना होगा। कोई भी मेयर राजनीतिक दृष्टि से दलगत राजनीति के दबाव से इतना ग्रस्त होता है कि उस पर कार्यकारी शक्तियों का भार नहीं डाला जा सकता। नगर के प्रशासन का दायित्व एक पूर्णकालिक कार्य है जिसे सम्पादित करने के लिए विशेष कौशल, प्रशिक्षण और अनुभव की आवश्यकता होती है। इसलिए नगरीय प्रशासन के सम्पादन का दायित्व मेयर को नहीं दिया जा सकता, यह दायित्व नगर

श्रायुक्त का ही रहना चाहिए। यद्यपि समिति ने यह राय भी व्यक्त की थी कि निगम के मेयर को निगम के सरकारी अभिलेखों के देखने अथवा मांगने का पूरा अधिकार होना चाहिए और यदि वह कोई सूचना निगमायुक्त से चाहे तो उसे तत्काल उपलब्ध की जानी चाहिए।

निगम के मेयर का एक वर्ष का कार्यकाल तथा उनके निर्वाचन की अप्रत्यक्ष व्यवस्था उसे अत्यन्त शक्तिहीन बना देती है। उसका निर्वाचन जनता द्वारा नहीं बल्कि जनता के निर्वाचित पार्षदों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। अतः प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित जनप्रतिनिधि की शक्ति उसमें नहीं होती। उसका एक वर्ष का कार्यकाल भी आलोचना का विषय बनता है। यह कहा जाता है कि उसका कार्यकाल इतना अल्प होता है कि जब तक एक बार निर्वाचित होने पर निगम के काम-काज को वह यत्किंचित समझ पाता है तब तक उसके कार्यकाल का समापन होने को होता है। इसीलिए अनेक बार यह मांग की जाती है कि कदाचित अधिक शक्तियां उसे न दी जायें किन्तु उसका कार्यकाल निगम के कार्यकाल के समान किया जाना चाहिए ताकि नगर के इस प्रथम नागरिक को किसी अप्रतिष्ठाजनक स्थिति से साक्षात्कार न करना पड़े।

निगम के अध्यक्ष मेयर की इस कमजोर स्थिति को हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली के अनुरूप नहीं माना जा सकता। जब देश के शासन और प्रशासन के समस्त स्तरों पर लोकतांत्रिक दृष्टि से चुने हुए प्रतिनिधियों को अधिक शक्तियां दी गयी हैं तब केवल नगर निगम में वैचारिक और कार्यात्मक दायित्वों के विभाजन के नाम पर लोकतांत्रिक दृष्टि से निर्वाचित मेयर को शक्तिहीन बनाना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को पूर्णतः सफल करना यदि अभीष्ट है और जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि यदि अन्य समस्त स्तरों पर अपने दायित्वों का प्रभावशाली तरीके से निष्पादन कर सकते हैं तो निगम के स्तर पर राजनीतिक और प्रशासनिक दायित्वों का सम्पादन ठीक तरह से क्यों नहीं कर सकते यह बात समझ में नहीं आती है? वर्तमान में उसके अल्प कार्यकाल और शक्तिहीन होने का परिणाम यह होता है कि नगर निगम में नौकरशाही हावी रहती है और निगम के स्तर पर लोकतांत्रिक पद्धति को आघात पहुंचता है। निगम में उसका कार्यकाल नगर आयुक्त के समान होना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि परिषद अपनी नीतियां नगर आयुक्त से कार्यान्वित कराती है और परिषद की इन नीतियों का निर्धारण मेयर की अध्यक्षता में होता है। अतः एक मेयर द्वारा निर्धारित नीतियों को कार्यान्वित करने का उसे यथेष्ट अवसर या अवधि मिलनी चाहिए। परिषद के 4 या 5 वर्ष के कार्य-

काल के समान ही मेयर और आयुक्त का कार्यकाल निश्चित किया जाना चाहिए ताकि निर्धारित नीतियो को प्रभावशाली तरीके से कार्यान्वित करने का अवसर नगरीय प्रशासन के समस्त पदाधिकारियो व घटको को प्राप्त हो सके ।

मेयर को शक्तिशाली बनाया जाये जिससे वह नगरीय प्रशासन के एक प्रभावशाली नेता के रूप मे उभर सके । इस हेतु प्रोफेसर श्रीराम माहेश्वरी ने निम्नांकित सुझाव दिये हैं .

1. निगम के मेयर का कार्यकाल बढ़ा कर परिषद के कार्यकाल के समान किया जाये । यह प्रावधान भी किया जा सकता है कि उसे परिषद के विशेष बहुमत द्वारा अपने पद से हटाया जा सके ।
2. राज्य-सरकार को चाहिए कि निगम आयुक्त की नियुक्ति के बारे मे मेयर से परामर्श करे ।
3. नगर आयुक्त का गोपनीय प्रतिवेदन मेयर द्वारा लिखने की व्यवस्था की जाये ।
4. निगम तथा राज्य सरकार के मध्य समस्त पत्र व्यवहार मेयर के माध्यम से किया जाना चाहिए ।
5. राज्य के पूर्वता अधिपत्र मे मेयर को राज्य की विधान सभा के अध्यक्ष के बाद स्थान दिया जाये ।
6. मेयर के कार्यालय को ऐसे अपीलीय न्यायालय के रूप मे मान्यता दी जाये जो नगरीय प्रशासन की विभिन्न समितियो के निर्णयो के विरुद्ध अपील सुन सके ।

नगर निगम मे मेयर के अतिरिक्त एक उपमहापौर भी होता है । उप-महापौर का निर्वाचन परिषद के पार्षदो द्वारा अपने मे से ही एक वर्ष की अवधि के लिए किया जाता है । उत्तरप्रदेश मे उसका कार्यकाल 5 वर्ष और धारवाड मे 2 वर्ष निश्चित किया हुआ है । महापौर की अनुपस्थिति मे वह परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है और उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों को सम्पन्न कर सकता है ।

3. नगर आयुक्त

जैसा कि पूर्व मे व्यक्त किया जा चुका है कि नगर निगम मे विधायी और कार्यकारी शक्तियो का पृथक्करण होता है । विधायी शक्तियां निगम की परिषद में निहित होती है तथा कार्यकारी शक्तियां उसके आयुक्त मे निहित मानी

जाती है। इस प्रकार नगर आयुक्त नगर निगम का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होता है इसे नगर पालक भी कहा गया है।

नगर आयुक्त के पद की सरचना सर्वप्रथम 1888 मे बम्बई नगर निगम मे की गई थी। नगर निगम मे मुख्य कार्यकारी अधिकारी की कल्पना इसलिए की गई ताकि स्वायत्त शासन की सस्थाओ मे लोकतन्त्र के साथ-साथ कुशलता को भी सुनिश्चित किया जा सके। प्रोफेसर एल डी व्हाइट ने यह मत व्यक्त किया है कि क्या स्थानीय सरकार लोकप्रियता के लोकतान्त्रिक आधार के साथ-साथ कुशलता के उच्च मानदण्डो को भी बनाये रख सकती है? भारत मे सर्वप्रथम सर फिरोजशाह मेहता ने लोकतान्त्रिक रूप मे निर्वाचित परिषद की शक्तियो पर, इस प्रकार के प्रशासनिक अधिकारी के माध्यम से सीमा लगाने की आवश्यकता अनुभव की थी। उन्होने यह अनुभव किया था कि यदि कार्यकारी शक्तियां निर्वाचित परिषद को प्रदान कर दी गयी तो अव्यवस्था और अकुशलता का साम्राज्य परिव्याप्त हो जायेगा। इसीलिए कुशलता के मानदण्ड को प्राप्त करने के लिए कार्यकारी शक्तियो का एक कार्यकारी अधिकारी मे निहित किया जाना आवश्यक है।[1] कालातर मे नगर आयुक्त का यह पद अत्यन्त उपयोगी पाया गया जिसे सभी नगर निगमो ने अपने यहा अपना लिया।

नगर आयुक्त की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है तथा यदि नगर निगम किसी केन्द्र शासित प्रदेश मे है तो उसकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जाती है। इस पद पर नियुक्त किये जाने वाला अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा या राज्य की प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है। उसकी नियुक्ति सरकार द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए की जाती है। उदाहरणार्थ दिल्ली मे प्रथम बार मे उसकी नियुक्ति 5 वर्ष के लिए की जाती है। मद्रास और बम्बई नगर निगमो मे उसका कार्यकाल 3 वर्ष का होता है। सम्बन्धित राज्य सरकार को यह अधिकार होता है कि वह उसके कार्यकाल मे वृद्धि कर दे या उसके असफल रहने पर उसे उसके पद से अवधि पूर्व भी हटाया जा सकता है।

राज्य सरकार द्वारा नगर आयुक्त की नियुक्ति की प्रणाली की विद्वानो द्वारा आलोचना की गयी है। विद्वानो की ऐसी मान्यता है कि सरकार द्वारा नियुक्त एक अधिकारी स्थानीय शासन की इकाई का प्रशासन चलाये, यह बात लोकतन्त्र तथा स्वायत्तता के सिद्धान्तो से मेल नही खाती है। प्रोफेसर विलियम ए. रॉब्सन ने नगर आयुक्त की राज्य द्वारा नियुक्ति की आलोचना करते हुए लिखा है, 'बम्बई की शासन व्यवस्था मे कार्यकारी शक्तियां नगर आयुक्त के

हाथों में केन्द्रित है और, वह एक ऐसा अधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति राज्य-सरकार करती है।" कोई भी स्वायत्तशासी नगर के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि नीति निर्धारण और वित्तीय नियन्त्रण का कार्य निर्वाचित परिषद के क्षेत्राधिकार मे आता है, बल्कि कार्यकारी शक्तियाँ भी या तो परिषद के स्वयं के हाथों मे है या उसके द्वारा नियुक्त किसी निकाय के हाथों में या नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप मे निर्वाचित अधिकारियों मे निहित है। कलकत्ता में भी कुछ ऐसी ही व्यवस्था विद्यमान है जो एक असन्तोष उत्पन्न करने वाला तथ्य है। क्या कारण है कि इन विशाल महानगरों मे जिनकी जनसंख्या लाखों में है, जिनकी सांस्कृतिक उपलब्धियाँ महान है, जो आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत समर्थ हैं, जिनका इतिहास और परम्पराएं गौरवमय हैं और जिनके औद्योगिक तथा व्यापारिक जीवन विकसित है, लोकतांत्रिक भावना इतनी क्षीण है कि अपने पर स्वयं शासन करने की उनकी आकांक्षा, जो प्राचीन यूनान के समय से महानगरों को अनुप्राणित करती आयी है, साकार नहीं हुई है? यह चिन्तन और मनन करने का बिन्दु है कि स्थानीय क्षेत्रों मे सफल स्वशासन के बिना कोई देश राष्ट्रीय स्तर पर सतोषजनक स्वशासन की स्थापना नहीं कर सका है।[2]

किन्तु विलियम रॉब्सन के इस विचार के विपरीत कुछ विद्वानों की ऐसी धारणा भी है कि नगर निगम मे एक वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति इसलिए की जाती है ताकि नगर का प्रशासन चलाने के लिए नगर निगम को एक अनुभवी, योग्य और कुशल प्रशासक की सेवाएं मिल सकें। राज्य सरकार द्वारा उसकी नियुक्ति को इसलिए उत्तम माना जाता है ताकि इस प्रशासक की नियुक्ति किसी भी प्रकार के दलीय प्रभाव से मुक्त रहे और यह अधिकारी निगम का प्रशासन किसी भी तरह के राजनीतिक दल-दल से मुक्त रह कर चला सके। नगर निगम के दायित्व इतने विविध हैं कि राजनीतिक दृष्टि से निर्वाचित परिषद उन्हें कुशलता पूर्वक और निष्पक्षता से कार्यान्वित नहीं कर सकती। इस दृष्टि से नगर आयुक्त की नियुक्ति राजनीतिक लोकतन्त्र तथा प्रशासनिक कुशलता के बीच एक व्यावहारिक समझौता मानी जा सकती है।

नगर आयुक्त की नियुक्ति के बारे में अधिनियम मे ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि इस पद पर केवल लोकसेवक ही नियुक्त किया जायेगा। सरकार ने यह परंपरा विकसित की है कि इस पद पर गैर सरकारी व्यक्ति नियुक्त किये जाने की अपेक्षा सदैव योग्य, अनुभवी और कुशल प्रशासक को ही नियुक्त किया जाता है। इस पद पर नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति को नगरीय प्रशासन का विशेषज्ञ भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इस पद पर वह प्रायः अल्प अवधि के लिए

नियुक्त किया जाता हैं। यहा सेवा करने के पश्चात उसे किसी अन्य प्रशासकीय अभिकरण मे स्थानान्तरित कर दिया जाता है। राजस्थान मे राजस्थान प्रशासनिक सेवा (आर. ए. एस) के अधिकारी को नगरपालिकाओं मे आयुक्त के रूप मे नियुक्ति दी जाती है, इसलिए थोडे समय पश्चात उन्हे किसी अन्य प्रशासकीय अभिकरण मे भी भेज दिया जाता है। राजस्थान मे कोई नगर निगम नही है किन्तु जिन राज्यो मे नगर निगम है वहाँ का अनुभव यह बताता है कि नगर आयुक्त के पद पर भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई. ए एस) के अधिकारियो को आयुक्त के दायित्व सौंपे जाते हैं। इस प्रकार नियुक्त आयुक्त का वेतन निगम द्वारा वहन किया जाता है। राज्य सरकार यदि यह अनुभव करे कि आयुक्त अपने कर्त्तव्यो के प्रभावी निष्पादन मे असफल रहा है तो वह उसे हटा भी सकती है। आयुक्त को पार्षदो की शिकायत के आधार पर भी राज्य सरकार हटा सकती है।

नगर निगम के आयुक्त की शक्तिया

नगरनिगम के आयुक्त की शक्तियो के दो स्रोत है। प्रथमत, ऐसी शक्तिया जो उसे नगर निगम के सृजनकारी अधिनियम द्वारा प्रदान की जाती है, और द्वितीयत: ऐसी शक्तिया जो उसे परिषद या उसकी स्थाई समिति द्वारा प्राप्त होती हैं। वस्तुत. नगर आयुक्त को विविध प्रकार के कार्यों का सम्पादन करना होता है। उसके दायित्वो को अर्द्ध विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय सम्बन्धी क्षेत्रो मे देखा जा सकता है।

विधायी क्षेत्र मे उसके दायित्व प्रत्यक्ष रूप से नही होते इसलिए उन्हे अर्द्ध विधायी दायित्वो की सज्ञा दी जा सकती है। वह निगम का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होने के नाते परिषद और उसकी स्थाई समितियो की बैठको मे भाग ले सकता है, उनमे मागी गयी सूचनाए प्रदान करता है, अपने विचार व्यक्त कर सकता है, और नीति सम्बन्धी मामलो मे अपने प्रशासकीय अनुभव के आधार पर अपना रुझान स्पष्ट कर सकता है। अनेक बार ऐसा होता है कि आयुक्त द्वारा व्यक्त विचारो या प्रदत्त सूचनाओ के आलोक मे परिषद अपनी नीति विषयक प्रस्ताव को उस दिशा मे परिवर्तित कर लेती हैं, जो व्यावहारिक दिशा, आयुक्त के विचारो मे व्यक्त की जाती है। नगर आयुक्त, निगम की परिषद द्वारा निर्मित कानूनो के कार्यान्वयन के लिए उपनियम तैयार करवाता है जो एक प्रकार का अर्द्ध विधायी कार्य माना जा सकता है। परिषद की कार्यवाही मे भाग लेने के उपरोक्त सन्दर्भों के होते हुए भी वह उसमे मतदान का अधिकारी नही होता।

इस प्रकार प्रशासनिक क्षेत्र मे भी उसकी शक्तिया विस्तृत हैं। वह परिषद द्वारा निर्धारित नीतियो, निर्मित कानूनो और स्वीकृत नियमो तथा उप-नियमो को व्यवहार मे कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी होता है। परिषद के समस्त अधिकारी और कर्मचारी उसके प्रशासकीय नियन्त्रण मे कार्य करते है। समस्त अधिकारियो और कर्मचारियो के कार्यो और दायित्वो का न केवल वह विभाजन करता है अपितु उनके कार्यों और गतिविधियो पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण भी रखता है। कार्मिको के समस्त कार्मिक मामलो—वेतन, भत्ते, अवकाश पदोन्नति, प्रशिक्षण, अनुशासनात्मक कार्यवाही, पेंशन और भविष्य निधि इत्यादि का वह निर्णायक निस्तारण करता है। परिषद के क्षेत्र मे आने वाली समस्त नियुक्तिया उसी के द्वारा की जाती हैं। एक निश्चित समय तक परिषद की सम्पत्ति के क्रय विक्रय का निर्णय भी कर सकता है। परिषद द्वारा अनुबन्ध पर कराये जाने वाले कार्यों का निर्णय भी करता है। अपने अनेक अधिकारो और शक्तियो का वह अपने अधीनस्थो मे प्रत्यायोजन कर देता है। किसी भी आपात-कालीन स्थिति मे उचित निर्णय लेने के लिए वह अधिकृत समझा जाता है।

वित्तीय क्षेत्र मे नगर आयुक्त का यह कर्तव्य होता है कि वह निगम का बजट अपनी देखरेख मे तैयार कराये और परिषद की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करे। परिषद मे स्वीकृति हेतु उसे तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जब निगम की स्थाई समिति उसे स्वीकार कर ले। ये दोनो दायित्व आयुक्त के द्वारा निभाये जाते हैं। बजट मे किसी प्रकार के नये कर लगाने की यदि आवश्यकता हो तो इस हेतु वह स्थाई समिति और परिषद को विश्वास मे लेता है और आवश्यक अनुमोदन करवाता है।

नगर आयुक्त की शक्तिया प्रशासकीय क्षेत्र मे इतनी व्यापक हैं कि प्रायः कार्य व्यवहार मे अनेक बार परिषद के साथ सबधो की समस्या उपस्थित हो जाती है। वैसे परिषद और नगर आयुक्त के सबध प्राय. स्पष्ट हैं क्योकि जहाँ नीति विषयक निर्णय लेने और कानून तथा नियम बनाने की शक्ति परिषद मे निहित है वहाँ इन नीतियो और निर्णयो को कार्य रूप मे परिणत करने का दायित्व नगर आयुक्त का होता है। परिषद यह निश्चय कर सकती है कि नगर आयुक्त किसी निर्णय को कार्यान्वित करते समय किस प्रक्रिया को अपनायेंगे? इसका अन्तर्निहित अर्थ यह भी है कि परिषद को नगर आयुक्त की प्रशासनिक कार्य प्रक्रिया को सीमित करने सबधी शक्तिया प्राप्त है। नगर आयुक्त अपने प्रशासकीय कार्यों के सम्पादन के लिए परिषद के प्रति उत्तरदायी होता है। परिषद मे इस बात पर चर्चा हो सकती है कि उसके द्वारा निर्धारित नीतियो के

नगर आयुक्त किस तरह क्रियान्वित कर रहा है। इस प्रकार नगर आयुक्त और परिषद का संबंध परस्पर सौहार्द एवं समझदारी का है न कि तनाव का। नगर आयुक्त अपने प्रशासनिक कार्यों के वार्षिक प्रतिवेदन को परिषद के समक्ष प्रस्तुत करता है। परिषद भी कोई सूचना या पत्रावलियाँ नगर आयुक्त से माग सकती है। परिषद, नगर निगम के लिए कोई चल या अचल सम्पत्ति खरीद सकती है या परिषद की किसी सम्पत्ति को बेच सकती है किन्तु इस विषय मे नगर आयुक्त, कमिश्नर के प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करता है। नगर आयुक्त की वित्तीय शक्तियो पर यह मर्यादा होती है कि एक सीमा से अधिक के अनुबन्धो की स्वीकृति के लिए उसे परिषद की स्वीकृति प्राप्त करनी होती है। नगर आयुक्त द्वारा दी गयी किसी राय को स्वीकार या अस्वीकार करना या उसे संशोधित करना, परिषद के अधिकार क्षेत्र मे आता है। परिषद की स्थाई समिति भी नगर आयुक्त पर परिषद की ओर से कुछ नियंत्रण करती है। अनेक वित्तीय मामलो मे स्थाई समिति और नगर आयुक्त अत्यन्त निकट सम्पर्क मे रहते हैं। इस प्रकार नगर आयुक्त प्रोफेसर फ्रेडरिक के शब्दो मे "परिषद के लिए एक प्रकार के कार्यात्मक उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है।"[3]

4. समितियां

नगर निगम की परिषद का आकार नगर की जनसंख्या के हिसाब से प्राय विस्तृत होता है। अपने इस विस्तृत आकार के कारण परिषद अपनी गतिविधियो और कार्यकलापो को प्रभावशाली तरीके से पूरा नही कर पाती है। परिषद की बैठको मे विभिन्न राजनीतिक दलो की उपस्थिति के कारण विचार-विमर्श मे विषय के पक्ष एव विपक्ष मे स्वस्थ तर्कों की अपेक्षा राजनीति हावी हो जाती है। परिषद की बैठको का समाचार पत्रो के माध्यम से प्रचार भी अधिक होता है। इन सब कारणो से प्रभावशाली विचार-विमर्श परिषद की बैठक मे नही हो पाता है। अत किसी भी विषय पर स्वस्थ अराजनीतिक दृष्टिकोण से पर्याप्त विचार-विमर्श पर आधारित त्वरित निर्णय हेतु समितियो का गठन किया जाता है। स्थानीय स्तर पर भी समितियों की आवश्यकता का यह दर्शन उन्ही कारणो से प्रेरित है जिन कारणो से राष्ट्रीय या राज्य के विधान मण्डल के स्तर पर प्रेरित होता है।

नगर निगम मे प्राय दो प्रकार की समितिया होती है

1. साविधिक समितिया
2. गैर-साविधिक समितिया

1 सांविधिक समितियां

साविधिक समिति से अभिप्राय ऐसी समिति से है जिसकी रचना उस साविधि के अन्तर्गत की जाती है जिसके द्वारा नगर निगम का निर्माण होता है। प्राय सभी अधिनियमो मे प्रत्येक नगर निगम के कार्य सचालन के लिए कतिपय समितियो का उल्लेख किया जाता है। समितिया चूकि अधिनियम द्वारा सृजित होती हैं इसलिए उनके गठन, शक्तियो, कार्यों और अधिकारो के बारे मे अधिनियम मे स्पष्ट प्रावधान किये जाते हैं।

प्रत्येक नगर निगम मे कुछ समितिया इस कोटि की होती हैं। उत्तरप्रदेश के आगरा, इलाहाबाद, वाराणसी और कानपुर नगरो मे कार्यकारी समिति, एवं विकास समिति ऐसी दो समितिया हैं जो इस कोटि के अन्तर्गत बनायी गयी हैं। नगर निगम का उत्तमहापौर इन समितियों का अध्यक्ष होता था। कालान्तर मे यह अनुभव किया गया कि ये दोनो समितिया अत्यधिक विकेन्द्रीकरण कर बैठी हैं इसलिए उन्हे समाप्त कर दिया गया और उनके स्थान पर अन्य ई समितिया बनायी गई। बम्बई नगर निगम मे साविधिक समितियो के रूप मे स्थाई समिति, पाठशाला समिति, चिकित्सालय समितिया, बम्बई विद्युत पूर्ति तथा परिवहन समिति एव सुधार समिति कार्य करती हैं। दिल्ली नगर निगम मे भी निम्नलिखित 5 समितिया साविधिक समितियो के रूप मे कार्यरत हैं 1 स्थाई समिति, 2. दिल्ली विद्युत पूर्ति व्यवस्था समिति, 3 दिल्ली जलपूर्ति तथा मल निस्तारण समिति, 4. ग्रामीण क्षेत्र समिति, एव 5 शिक्षा समिति।

कुछ अधिनियमो मे साविधिक समितियो के स्थान पर स्थाई समितिया बनाई जाती हैं। अधिनियम द्वारा सृजित स्थाई समितिया कार्य, अधिकार और शक्तियो की दृष्टि से साविधिक समितियो की तरह ही होती हैं। मध्यप्रदेश नगर निगम अधिनियम मे एक सर्वउद्देशीय स्थाई समिति की व्यवस्था की गई है जिस मे 10 पार्षद सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त 7 विशेष उद्देश्य परामर्श समिति भी वहा बनायी गयी हैं जिनमे 9 पार्षद सम्मिलित किये जाते हैं। ये 7 समितिया हैं. 1. सार्वजनिक निर्माण समिति 2. लोक स्वास्थ्य एव हाट समिति, 3. शिक्षा समिति, 4. चिकित्सालय समिति, 5 जलकल समिति, 6 विधि राजस्व एव सामान्य उद्देश्य समिति, 7. लोक सम्बन्ध समिति।

किसी भी नगर निगम मे स्थाई समिति शक्तियो और कार्यों की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण समिति मानी जाती है। यह समिति मार्ग दर्शन समिति

के रूप मे कार्य करती है जो अनेक कार्यकारी, पर्यवेक्षकीय वित्तीय और कार्मिक शक्तियो का उपयोग करती है। स्थाई समिति मे अलग-अलग राज्यो में सदस्यो की सख्या पृथक-पृथक होती है। इनमे प्राय 7 से लेकर 16 सदस्य तक होते हैं। स्थाई समिति अपने मे से एक अध्यक्ष चुन लेती है। स्थाई समिति के अध्यक्ष का पद राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है क्योकि निगम मे राजनीतिक दृष्टि से उसका स्थान मेयर के बाद माना जाता है। स्थाई समिति नगर आयुक्त के कार्यों मे सहायता करती है। सामान्यत नगर आयुक्त बजट एव अनेक वित्तीय मामलो मे स्थाई समिति की स्वीकृति आवश्यक रूप से लेता है।

स्थाई समिति परिषद एव आयुक्त के बीच की कड़ी मानी जाती है और व्यवहार में दोनो के सबधो को नियन्त्रित और प्रभावित करती है। स्थाई समिति को यह अधिकार होता है कि परिषद की बैठको के अन्तराल की अवधि मे वह प्रशासनिक कामकाज पर नियमित ध्यान रखे और आवश्यकता होने पर उसे नियन्त्रित भी करती है। स्थाई समिति एव नगर आयुक्त के परस्पर सबधो के बारे मे यह कहा जाता है कि नगर आयुक्त स्थाई समिति के सदस्यो के हाथ की कठपुतली बन जाता है। नगर आयुक्त की शक्तियो के सद्व्यवहार पर यह मर्यादा आरोपित की गयी है कि वह अपने कार्यों की स्थाई समिति से स्वीकृति प्राप्त करेगा। इस कारण अनेक बार नगर आयुक्त अपनी स्वतन्त्र सत्ता खो बैठता है और स्थाई समिति के हाथ का खिलौना बन जाता है। कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं कि स्थाई समिति के सदस्य उचित-अनुचित कार्य नगर आयुक्त मे कराने लगते है और उसके बदले मे नगर आयुक्त को यह कहकर आश्वस्त करते हैं कि उसके प्रस्तावो को स्थाई समिति में अवश्य समर्थन देंगे। इस तरह की परस्पर समझौतावादी प्रवृत्ति से अनेक बार नगर निगम की कुशलता को आघात पहुचता है।

स्थाई समिति का कार्यकाल एक वर्ष का होता है। इसका चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से होता है। इन दोनो ही कारणो से स्थाई समिति, परिषद या नगर आयुक्त की तुलना मे कमजोर सिद्ध होती है।

2 गैर सांविधिक समिति

गैर सांविधिक समितिया ऐसी समितियाँ होती हैं जिनकी रचना नगर निगम की परिषद अपने प्रस्ताव के द्वारा करती है। इन समितियो का अधिनियम मे कोई उल्लेख नही होता। परिषद अपने उत्तरदायित्वो अथवा कार्यों को सफलता-पूर्वक सम्पादित करने के लिए कोई भी समिति बनाने का निर्णय ले सकती

है। प्राय: सभी नगर निगमो मे ऐसी गैरबाविधिक समितियों की रचना की जाती है। सभी राज्यो मे उनकी सख्या, सगठन और कार्यों मे अन्तर पाया जाता है। परिषद किसी भी कार्य की महत्ता को देखते हुए उसमे अन्तर्निहित महत्वपूर्ण बिन्दुओ पर गम्भीर विचार-विमर्श करते हुए निर्णय लेने और उन्हे कार्यान्वित करने के लिए ऐसी समितिया बनाने के लिए सक्षम होती है। जनता को विभिन्न प्रकार की सेवाए उपलब्ध कराने के लिए भी ऐसी समितियां बनायी जाती हैं। इस प्रकार बनायी जाने वाली समिति कार्यकाल की दृष्टि से अस्थाई होती है और अपने निर्दिष्ट कार्य को पूरा करने के पश्चात यह प्राय: विलुप्त हो जाती है। उदाहरणार्थ दिल्ली मे एशियाई खेलो के आयोजन (1982) के समय अनेक समितिया नगर निगम ने इस प्रकार की बनायी थी जो अपने दायित्व सम्पादन के बाद समाप्त हो गई।

नगर निगम के कार्य

नगर निगम अपने क्षेत्र मे रहने वाले निवासियो की स्थानीय आवश्यकताओ को पूरा करने और समस्याओ को दूर करने से सम्बन्धित अनेकानेक कार्यों को सम्पन्न करता है। राजस्थान मे तो कोई नगर निगम नही है इसलिए निगम के कार्यों का राजस्थान के सन्दर्भ मे कोई विवरण दिया जाना सम्भव नही है। कलकत्ता एव मद्रास के नगर-निगमो का सृजन करने वाले अधिनियम मे, निगम के कार्यों का सामान्य रूप से उल्लेख किया गया है, इसके विपरीत मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश के नगर निगमो का निर्माण करने वाले अधिनियमो मे उनके कार्यों का विस्तार से विवरण दिया गया है। सभी राज्यो मे यह आम प्रवृत्ति पायी जाती है कि नगर निगमो को व्यापक कार्य सौपे जाते हैं। इस कारण उनके कार्यों की सूची काफी विस्तृत हो जाती है। नगर निगमो से यह अपेक्षा की जाती है कि वे उन्ही कार्यों का सम्पादन करेंगे जो कार्य स्पष्ट तौर पर उन्हे अधिनियम द्वारा निर्दिष्ट किये गये है। यदि कोई नगर निगम कार्यों के बारे मे कोई भ्रम की स्थिति अनुभव करते है, तो ऐसा मामला निगम राज्य सरकार के निर्देश हेतु प्रेषित कर सकता है।

सभी अधिनियमो मे नगर निगम के कार्यों को दो भागो मे विभाजित किया गया है अनिवार्य तथा ऐच्छिक। विभिन्न राज्यो के अधिनियमो के अवलोकन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि सभी राज्यो द्वारा नगर निगमो को प्रदत्त उत्तरदायित्व लगभग एक जैसे है। अन्तर केवल इतना है कि कोई एक कार्य किसी अधिनियम मे अनिवार्य कार्यों की सूची मे सम्मिलित है तो किसी अन्य अधिनियम मे वह ऐच्छिक कार्यों मे स्थान पाया हुआ है। जैसे पशु चिकित्सालयो

की स्थापना ग्रौर उनका सचालन मध्यप्रदेश मे ग्रनिवार्य सूची मे सम्मिलित है ता दिल्ली मे यह कार्य ऐच्छिक सूची के ग्रन्तर्गत रखा गया है। ऐसा ग्रन्तर कोई महत्ता नही रखता क्योकि नगर निगम व्यवहार मे कार्यो का सम्पादन करते समय ग्रपनी सुविधा ग्रौर ग्राथिक स्थिति से परिचालित होता है न कि ग्रधिनियम मे कार्यों की दी गयी ग्रनिवार्य या ऐच्छिक सूची से।

सभी राज्यो के ग्रधिनियमो मे निर्दिष्ट ग्रनिवार्य एव ऐच्छिक कार्यों को निम्नाकित सूची मे व्यक्त किया जा सकता है :

1 पीने योग्य शुद्ध जल का प्रबन्ध तथा जल स्रोतो का निर्माण, ग्रौर उनका ग्रनुरक्षण तथा जल वितरण।
2 विद्युत का प्रबन्ध,
3. नालियो एव जनसुविधाग्रों—शौचालयो ग्रादि का निर्माण तथा रख-रखाव,
4 सडक परिवहन सेवाग्रो की व्यवस्था,
5 सार्वजनिक मार्गों का निर्माण, उनका रखरखाव, नामकरण एव ग्रावश्यक हो तो उनका सख्याकन,
6 सार्वजनिक मार्गों, नालियो की गन्दगी तथा कूडे-करकट की सफाई,
7. गन्दी बस्तियो की सफाई,
8 सार्वजनिक मार्गों तथा ग्रन्य सार्वजनिक स्थानों मे प्रकाश, पानी के छिडकाव तथा सफाई की व्यवस्था,
9 जन्म ग्रौर मृत्यु का लेखा-जोखा रखना,
10 मृतक क्रियाग्रो के स्थानो का प्रबन्ध तथा उनमे नियमन,
11 बीमारियो की रोकथाम के लिए टीके लगाने की व्यवस्था,
12 चिकित्सालयो तथा प्रसूति एव बाल कल्याण केन्द्रो की स्थापना एव रखरखाव
13 प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था,
14 खतरनाक भवनो को निरापद बनाना या उन्हे हटाना
15 सार्वजनिक मार्गों के ग्रवरोधो को हटाना,
16 ग्रग्निशमन सेवाग्रो की व्यवस्था करना,
17 खतरनाक एव घातक व्यापारो पर नियन्त्रण करना,
18 जल वितरण, सडक परिवहन एव जल वितरण सेवाग्रो के लिए उद्यमो की रचना, स्थापना एव उनका प्रबन्ध करना,
19. नगर निगम की सम्पत्ति का रखरखाव

20 खाद्य पदार्थों और भोजनालयो का नियमन एवं नियन्त्रण,
21 निगम के प्रशासन के सम्बन्ध मे वार्षिक प्रतिवेदनों एवं नक्शों का प्रकाशन ।

ऐच्छिक कार्य

1 सार्वजनिक पार्कों, उद्यानो, पुस्तकालयो, सग्रहालयो, नाट्यशालाओ, अखाडो तथा क्रीडास्थलो का निर्माण एव उनका अनुरक्षण,
2. सार्वजनिक उपयोग के लिए भवनो का निर्माण,
3 विशिष्ट अतिथियो का स्वागत,
4 मेलो एव प्रदर्शनियो का आयोजन और व्यवस्था,
5 आवारा पशुओ को पकडना,
6. सडको के किनारे छायादार वृक्षो का रोपण एव उनकी देखभाल,
7 गरीबो तथा अपाहिजो की सहायता,
8. सार्वजनिक स्थानो पर सगीत का प्रबन्ध,
9. विवाहो का पजीकरण,
10 भवनो एव भूमि का सर्वेक्षण ।

नगर निगमो से, अधिनियम मे यह अपेक्षा की जाती है कि अपने अनिवार्य दायित्वो का कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के पश्चात यदि उनके पास समय, श्रम और साधन उपलब्ध रहे तो वे ऐच्छिक सूची मे इगित कार्यों को प्राथमिकता से सम्पादित करेगे ।

निगम की वित्तीय व्यवस्था

किसी भी नगर निगम को अपने कार्यों के कुशलतापूर्वक निर्वाह के लिए वित्त की आवश्यकता होती है । नगर निगमो की आय मुख्यत. उन करो से होती है जो उसके द्वारा अपने क्षेत्र मे लगाये जाते हैं । नगर निगमों द्वारा प्राय: सम्पत्ति कर, वाहन कर, पशु कर, नाट्यशालाओ पर कर, विज्ञापनो (समाचार पत्रो को छोडकर) पर कर, व्यावसायिक कर, शिक्षा कर, मनोरंजन कर, बिजली की खपत और बिक्री पर कर, नगरीय भूमि के बढते हुए मूल्य पर कर इत्यादि लगाये जाते हैं । ये सभी कर नगर निगमो द्वारा अपने अधिनियम मे निर्दिष्ट प्रक्रिया से लगाये जाते हैं ।

उत्तरप्रदेश के नगर निगमो को सम्पत्ति कर, बिजली कर, जल निकास कर, सफाई कर, मशीन चालित वाहनो को छोडकर अन्य वाहनो पर कर एवं पशुओ पर कर लगाने के अनिवार्य स्रोत अधिनियम मे उपलब्ध कराये गये हैं ।

करो के अलावा नगर निगमो को अनेक प्रकार की अतिरिक्त फीस आदि से आय होती है। नगर की सीमा मे लगने वाली प्रदर्शनियो, सर्कस आदि पर नगर निगम शुल्क वसूल करता है, आवारा, बेकार पशुओ पर भी उनके मालिको से शुल्क वसूल किया जाता है। इसके अतिरिक्त सम्पत्ति हस्तान्तरण आदि पर भी फीस ली जाती है। नगर निगम को इन दोनो स्रोतो के अलावा राज्य सरकार द्वारा निश्चित अनुदान भी प्राप्त होता है। यह अनुदान राज्य सरकार जनसंख्या के आधार पर प्रति व्यक्ति निश्चित कर देती है।

नगर निगमों पर नियन्त्रण

सम्बन्धित राज्य सरकार नगर निगम पर इस दृष्टि से नियन्त्रण करती है कि नागरिको की सेवार्थ गठित यह निकाय पूर्णतः कुशलता और मितव्ययता से कार्य कर रहा है। राज्य सरकार द्वारा नगर निगम पर नियन्त्रण के अनेक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उपाय हैं जो इस प्रकार देखे जा सकते हैं :

1. नगर निगम का आयुक्त राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है।
2. नगर निगम के आयुक्त को किसी भी समय कोई योजना, तथ्य, सूचनाएं या रेकार्ड मगवाने के लिए राज्य सरकार निर्देश दे सकती है।
3. नगर निगम द्वारा सम्पादित किसी कार्य या उसकी किसी सम्पत्ति के निरीक्षण अथवा देखरेख के लिए राज्य सरकार कोई भी पर्यवेक्षक नियुक्त कर प्रतिवेदन मगा सकती है।
4. यदि राज्य सरकार यह अनुभव करे कि निगम अपने किसी कार्य का सम्पादन नही कर रहा है तो राज्य सरकार निगम को उस कार्य को करने का निर्देश दे सकती है। किसी निगम द्वारा राज्य सरकार के ऐसे निर्देश की यदि अवहेलना की जाये तो राज्य सरकार अपने स्तर पर उस कार्य को करवाने की पहल कर सकती है और इस प्रक्रिया मे हुए व्यय को उसके अनुदान से काट सकती है।
5. राज्य सरकार प्रत्येक नगर निगम को अनुदान देती है। अनुदान देते समय अनेक शर्तें निर्धारित की जाती हैं। राज्य सरकार द्वारा अनुदान की प्रक्रिया को नियन्त्रण का एक सशक्त माध्यम माना जाता है।
6. यदि राज्य सरकार यह अनुभव करे कि नगर निगम अपने दायित्वो का कुशलता, मितव्ययता और निष्ठा से सम्पादन करने मे असफल रहा है या प्रदत्त दायित्वो का दुरुपयोग कर रहा है या दायित्वो के निष्पादन मे अकुशलता और भ्रष्टाचार गम्भीर सीमा तक फैल गया है तो निर्वा-

चित निगम को भंग कर, प्रशासक नियुक्त कर सकती है। राज्य सरकार द्वारा नियन्त्रण का यह सबसे कठोर और अन्तिम उपागम समझा जाता है।

नगर निगम में स्वायत्तता और उत्तरदायित्व की समस्या

नगर निगम स्थानीय स्वायत्त शासन की सर्वोच्च इकाई है जिसकी सर्जना राज्य सरकार के किसी विशेष या सामान्य अधिनियम के अन्तर्गत की जाती है। सम्बद्ध अधिनियम द्वारा, स्थानीय इकाई की सीमाओं, कार्यों, दायित्वों, कार्मिकों, कर व्यवस्था एवं वित्तीय स्रोतों और अन्य सभी आवश्यक पहलुओं का विनिश्चय कर दिया जाता है। अधिनियम में यह भी स्पष्ट परिभाषित कर दिया जाता है कि नगर निगम किन सीमाओं में कार्य करेंगे और राज्य सरकार उसके कार्यों पर कितना, कैसा, नियन्त्रण रखेगी। अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण सम्बन्धी अपनी शक्ति का उपयोग राज्य सरकार इस प्रकार करे कि उसी अधिनियम के अन्तर्गत सृजित नगर निगम अपनी स्वीकृत स्वायत्तता में अनावश्यक हस्तक्षेप महसूस न करे। यह तर्क भी दिया जाता है कि चूंकि नगर निगम के सदस्यों का निर्वाचन उस क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों के बहुमत द्वारा किया जाता है अतः नगर निगम को नगरीय कार्यों के सम्पादन और समस्याओं के समाधान में पूर्ण स्वायत्तता दी जानी चाहिए।

स्वायत्तता का अर्थ

स्वायत्तता से अभिप्राय राज्य के किसी भाग या 'इकाई' के अपने सांविधिक परिधि में स्वयं के प्रशासन-प्रबन्ध या नियम-निर्माण के अधिकार से है। दूसरे शब्दों में, स्वायत्तता, सरकार के विभिन्न स्तरों पर राज्य सत्ता का अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र उपयोग है जिसका निर्धारण उच्च सत्ता द्वारा किया जाता है। सोवियत रूस के एन्साइक्लोपीडिया के अनुसार, "स्वायत्तता, विकेन्द्रीकरण की प्रतीक है किन्तु यह विकेन्द्रीकरण किसी संघीय इकाई की विकेन्द्रीकरण की मात्रा से कम है। किसी भी स्वायत्त संस्था का एक महत्वपूर्ण लक्षण उसमें निहित लोचशीलता है।"

कोई भी संगठन या स्वायत्तशासी निकाय अपनी उच्च सत्ता द्वारा निर्दिष्ट और अधिकृत क्षेत्र में अपनी स्वायत्तता के अन्तर्गत निर्णय ले पाने में सक्षम होता है। जैसे कोई भी नगर निगम, अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त स्वायत्तता का उपयोग करते हुए स्थानीय नगरीय सेवाओं के कुशल संचालन हेतु आवश्यक नियम-उपनियम बना सकता है, कर्मचारियों की भर्ती कर सकता है,

नगरीय सीमा मे निवासियो पर कर लगा सकता है, उन्हे वसूल करता है, अपनी सम्पत्ति का क्रय-विक्रय कर सकता है इत्यादि।

स्वायत्तता के विभिन्न पक्ष

स्वायत्तता के अर्थ को कई दृष्टियो से देखा जाता है। स्वायत्तता का वैधानिक, प्रशासकीय, न्यायिक एव वित्तीय पक्ष होता है।

कोई भी संस्था या स्थानीय शासन की इकाई अर्थात नगर निगम सम्बद्ध अधिनियम के अन्तर्गत, अपने कार्य सचालन हेतु नियमो-उपनियमो का निर्माण करने के लिए अधिकृत होता है। यह इसका वैधानिक स्वायत्तता मानी जा सकती है। इसी तरह दैनिक प्रशासनिक कामकाज के सचालन हेतु भी नगर निगम कुछ विशिष्ट प्रशासनिक निर्णय, प्रशासनिक प्रक्रियाओ और कर्मचारियो की भर्ती, उनके कामकाज तथा अन्य प्रशासनिक गतिविधियो के सम्बन्ध मे जो निर्णय निर्दिष्ट क्षेत्र हेतु लेता है उन्हे हम प्रशासनिक स्वायत्तता मान सकते हैं। इसी तरह नगर निगम अपने क्षेत्र मे अवैधानिक निर्माण या अतिक्रमण अथवा गैर कानूनी कार्यों को हटाने का निर्णय देकर स्वायत्तता का उपयोग करता है। यद्यपि इन सस्थाओ के ऐसे निर्णयो की उच्च स्तर पर अपील होती है। नगर निगम की स्वायत्तता का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र आर्थिक स्वायत्तता का है जिसके अन्तर्गत नगर निगम अपने बजट की विभिन्न मदो के लिए अपनी सुविधानुसार धन का आवटन करने हेतु स्वतन्त्र रहता है। स्वायत्त शासन की ये सस्थाए अपने लेखा रखने एव लेखा परीक्षण से सम्बन्धित कार्यक्षेत्र मे उस प्रक्रिया से मुक्त हैं जो सरकारी विभागों मे अपनायी जाती है। अधिनियम मे निर्दिष्ट सीमाओ के अन्तर्गत ये सस्थाए खुले बाजार से ऋण लेकर उसका उपयोग कर सकती हैं, अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह अपनी वस्तुओ का क्रय-विक्रय भी कर सकती हैं।

स्वायत्तता का यह विवेचन सैद्धान्तिक है वस्तुतः व्यवहार मे स्वायत्तता की मात्रा में प्रत्येक राज्य मे कार्यरत नगर निगमो मे अन्तर पाया जाता है।

स्वायत्तता की आवश्यकता एव उपयोगिता

जनतन्त्र को आम आदमी तक पहुचाने के उद्देश्य मे प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया मे स्थानीय स्वशासन सस्थाओं का निर्माण किया गया है। स्वभावत इन सस्थाओ को अपने क्षेत्र की व्यवस्था करने के लिए शक्तिया और दायित्व दिये गये हैं। इन दायित्वो का कुशल सम्पादन तभी सम्भव है जब पग-पग पर नियन्त्रण की अपेक्षा कुछ निर्णय लेने की स्वतन्त्रता दी जाए। इसी

आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए स्थानीय संस्थाओ को अपने क्षेत्र मे शासन करने की स्वायत्तता दी जाती है।

क्षेत्रीय जनता द्वारा चुने हुए नगर निगम के प्रतिनिधि अपने क्षेत्र की जन समस्याओ का निवारण तब तक नही कर सकते जब तक उन्हे अपनी विचारधारा और भावना के अनुरूप सटीक दिशा मे निर्णय लेने की स्वायत्तता न मिले। इस स्वायत्तता के दिये जाने के बाद उनसे यह अपेक्षा करना सार्थक होता है कि वे दिन प्रतिदिन की समस्याओ को सुलझाने में उच्च अधिकारियो का मुँह नही ताकेगे। स्वायत्तता की माग के पीछे हमेशा यही तर्क काम करता रहा है कि इसके अभाव मे क्षेत्रीय समस्याओ का निवारण सम्भव नही है।

चूं कि नगर निगम ऐसी सेवाओं का सम्पादन करता है कि जिनका जन जीवन पर व्यापक और प्रत्यक्ष असर पड़ता है अतः इन सेवाओ की दक्षता व कुशलतापूर्ण संचालन के लिए निगम को व्यापक स्वायत्तता दी जानी नितान्त आवश्यक है। यदि जनता द्वारा निर्वाचित स्थानीय प्रतिनिधियो को समस्या समाधान की स्वायत्तता नही दी जावेगी तो उन प्रतिनिधियो पर से जनता का विश्वास हट जायेगा। यह स्थिति जनतन्त्र के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

स्वायत्तता पर उत्तरदायित्व की मर्यादा

नगर निगम सहित स्थानीय शासन की कोई भी संस्था यद्यपि विधान के अन्तर्गत स्वायत्तता का उपयोग करती है किन्तु वही विधान उन्हे राज्य के प्रति उत्तरदायी भी बनाता है। यदि अधिनियम नगर निगम पर राज्य सरकार के नियन्त्रण की विधिया और सीमाए प्रस्तावित करता है तो इसका अभिप्राय यह है कि नगर निगम अपने कार्य के लिए राज्य सरकार के प्रति उत्तरदायी भी है। वैसे भी राज्य सरकार लोकतात्रिक व्यवस्था का उच्च निकाय है और जिस संस्था की सर्जना उसके अधिनियम द्वारा हो रही है उसके कार्य कलापो पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण रखने का उसे सर्वथा अधिकार है। राज्य सरकार अनुभव और साधनो की दृष्टि से भी नगर निगम की तुलना मे अधिक सम्पन्न होती है अतः एक उचित नियन्त्रण राज्य सरकार का नगर निगमो पर होना चाहिए। नगर निगम की वित्तीय शक्तिया सीमित होती हैं और उसे राज्य सरकार द्वारा वित्तीय सहायता दी जाती है इसलिए यह स्वाभाविक है कि वित्तीय सहायता देने वाली सत्ता को यह नियन्त्रण रखना चाहिए कि उसके द्वारा दी जा रही वित्तीय सहायता का कैसा उपयोग हो रहा है?

यहाँ इस तथ्य पर विचार किया जाना चाहिए कि राज्य सरकार नगर निगम पर किसी भी तरह का नियन्त्रण क्यों करना चाहती है ? इसके उत्तर में यह स्पष्ट होता है कि राज्य सरकार अपने नियन्त्रण के माध्यम से यह सुनिश्चित करना चाहती है कि नगर निगम अपने दायित्वों का भली-भांति निर्वाह कर रहा है या नहीं और प्राप्त शक्तियों का कहीं दुरुपयोग तो नहीं किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में इसका अभिप्राय यह है कि राज्य सरकार नगर निगम को उत्तरदायी बनाये रखना चाहती है। यहां यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि नगर निगम स्वयं ऐसा अनुशासन रखे कि जिससे नागरिकों के स्थानीय कष्टों का त्वरित समाधान होता हो और उसके आचरण में ऐसा प्रतीत होता हो कि वह अधिनियम में प्रदत्त दायित्वों के प्रति उत्तरदायी है और उन दायित्वों के निर्वाह में तनिक भी शिथिल नहीं है। यदि नगर निगम इस प्रकार का दायित्व अनुभव करे तो राज्य सरकार को अधिक हस्तक्षेप के अवसर ही नहीं मिलेंगे और इस तरह नगर निगम की स्वायत्तता में कोई व्यवधान भी उपस्थित नहीं होगा।

आदर्श स्थिति

स्वायत्तता की वास्तविक और आदर्श स्थिति, स्वायत्तता और उत्तरदायित्व का सतुलन होना चाहिए। नगर निगम को चाहिए कि अपनी स्वायत्तता का उपयोग करते हुए अपने क्षेत्र के बहुआयामी विकास को गति प्रदान करे। इसी प्रकार नियन्त्रणकारी सत्ता राज्य सरकार को चाहिए कि नियन्त्रण की दिशा सार्थक, सौहार्दपूर्ण, रचनात्मक तथा सहभागिता के रूप में विकसित करे। राज्य सरकार को नगर निगम पर पुलिस सार्जेण्ट की तरह नहीं बल्कि शिक्षक की तरह दोष निवारक दृष्टि रखते हुए पर्यवेक्षक रहना चाहिए। नगर निगम को भी स्वायत्तता का अर्थ 'स्वतन्त्रता' न समझते हुए, जिम्मेदारी से प्रशासनिक आचरण करना चाहिए ताकि जन समस्याओं का त्वरित और सतोषजनक समाधान निकाला जा सके। राज्य सरकार का भी यह उत्तरदायित्व है कि इन सस्थाओं को स्वायत्तता के सही अर्थ से अवगत कराते हुए, इन्हें समय-समय पर दिशा निर्देश देती रहे।

समीक्षा

नगर निगम का अकुशल कार्यकरण एवं अपरिपक्व आचरण कभी-कभी राजनीतिक हस्तक्षेप को आमन्त्रित कर देता है जिसका स्वाभाविक दुष्परिणाम "स्वायत्तता के हनन" के रूप में सामने आता है। अत नगर निगम को अपने दायित्वों के प्रति सचेष्ट और कर्त्तव्यनिष्ठ रहना चाहिए ताकि अक्षमता के कारण

किसी प्रकार का अनायास हस्तक्षेप उनके कामकाज मे न हो सके। अनेक बार यह आरोप लगाया जाता है कि नगर निगम समय पर अपना बजट तैयार करने और सरकार को वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के प्रति आलस्यभाव का परिचय देते हैं। जो किसी भी रूप मे इनकी स्वायत्तता के लिए अच्छी स्थिति नही है। नगर निगमो को सदैव इस तथ्य को हृदयगम करना होगा कि उत्तरदायित्व के अभाव मे स्वायत्तता की माग करना सर्वथा निरर्थक है।

सन्दर्भ

1. एस. आर. निगम : लोकल गवर्न्मेंट, एस. चाद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1987, पृ 193–94
2. विलियम ए रॉब्सन : "ग्रेट सिटीज आव द वर्ल्ड", लदन जार्ज एलन एण्ड अनविन, 1954, पृ. 51–54.
   उद्धृत श्रीराम माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ. 188–89.
3. एस. आर निगम, पूर्वोक्त, पृ. 196.



5

नगरपरिषद/पालिका : संरचना, शक्तियां एवं कार्य

भारत मे नगरीय स्थानीय प्रशासन की दूसरी महत्वपूर्ण इकाई नगर-पालिका होती है। देश के विभिन्न राज्यो मे इसे नगरपरिषद, नगरपालिका नगरमण्डल इत्यादि विभिन्न नामो से जाना जाता है। नगरीय प्रशासन की यह सर्वाधिक प्रचलित और लोकप्रिय इकाई है। देश भर मे, वर्तमान मे लगभग दो हजार नगरपालिकाए कार्यरत हैं। देश का कोई भी ऐसा राज्य नही है जहा नगरीय प्रशासन का यह निकाय नही पाया जाता हो। किसी राज्य मे इनकी सख्या, उस राज्य के आकार, उसके नगरीयकरण की स्थिति, जनसख्या के घनत्व और राज्य सरकार की स्थानीय प्रशासन मे रुचि एव पहल पर निर्भर करती है। महाराष्ट्र मे इनकी सख्या सर्वाधिक है जहा 230 नगरपालिकाए हैं और न्यूनतम सख्या केन्द्रशासित प्रदेशो मणिपुर, अण्डमान निकोबार तथा त्रिपुरा मे है जहा प्रत्येक मे केवल एक एक नगरपालिका है।

नगरपालिकाए गैरसप्रभु शासकीय सस्थाए मानी जाती हैं। इनकी रचना सगठन, शक्तियां और काय सबधित राज्य सरकार द्वारा पारित अधिनियम से निर्धारित होते हैं। स्थानीय शासन चू कि राज्य सूची का विषय है अत नगर-पालिकाओ के सगठन, कार्यों, शक्तियो द्वारा उनके गठन के मापदण्डो अथवा आधार के बारे मे देश भर मे कोई एक रूपता नही पायी जाती है। नगर-पालिकाओ के गठन की पहल सर्वप्रथम अग्रेजो के शासनकाल मे की गयी थी। अग्रेज शासको ने इस देश के लोगो को राजनीतिक शिक्षा देने के अपने सिद्धान्त के अनुसार सर्वप्रथम स्थानीय शासन का क्षेत्र ही भारत के निवासियो के लिए खोला था। जब 1919 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा, भारतवर्ष मे द्वैध शासन की स्थापना की गयी थी तो स्थानीय शासन को हस्तान्तरित विषयों की

सूची में रख दिया गया और उसका उत्तरदायित्व निर्वाचित मन्त्री को प्रदान किया गया। इस प्रकार इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही देश में नगरपालिकाओं की रचना मे सबंधित अधिनियम बनाये जाने लगे। स्वतत्रता के पूर्व जिन राज्यों ने नगरपालिकाओं के गठन से सम्बन्धित अधिनियम पारित किये उनमे प्रमुख इस प्रकार थे

1. बम्बई जिला नगरपालिका अधिनियम, 1901
2. पजाब नगरपालिका अधिनियम, 1911
3. सयुक्त प्रान्त नगरपालिका अधिनियम, 1916
4. मद्रास जिला नगरपालिका अधिनियम, 1920
5. बिहार एव उडीसा नगरपालिका अधिनियम, 1922
6. बम्बई म्यूनिसिपल बोर्ड अधिनियम, 1925
7. बगाल नगरपालिका अधिनियम, 1932

स्वतन्त्रता के पश्चात और विशेष तौर पर 1956 मे राज्यों के पुनर्गठन के बाद अनेक राज्यो ने अपने यहाँ नगरपालिका अधिनियम बनाये। 1956 के राज्यो के पुनर्गठन के परिणाम स्वरूप राज्यो की सीमाओ का नये सिरे से निर्धारण हुआ इसलिये प्रत्येक राज्य मे पहले से चले आ रहे स्थानीय शासन की सरचना को एकीकृत स्वरूप दिये जाने की आवश्यकता अनुभव की गयी। स्वतत्रता के पश्चात जिन राज्यो ने नगरपालिका अधिनियम, सशोधित कर लिये या नये बना लिए उनमें प्रमुख इस प्रकार हैं .

1. जम्मू-कश्मीर नगरपालिका अधिनियम, 1951
2. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959
3. आसाम नगरपालिका अधिनियम, 1960
4. मध्यप्रदेश नगरपालिका अधिनियम, 1961
5. गुजरात नगरपालिका अधिनियम, 1963
6. कर्नाटक नगरपालिका अधिनियम, 1964
7. केरल नगरपालिका अधिनियम, 1965
8. आन्ध्रप्रदेश नगरपालिका अधिनियम, 1965 और
9. महाराष्ट्र नगरपालिका अधिनियम, 1965,

नगरपालिकाओं की स्थापना

नगरपालिकाओ की स्थापना प्रायः उन नगरो मे की जाती है जो महानगरो की श्रेणी मे नही आते और जिनकी नागरिक समस्याएं भी इतनी जटिल

नहीं होती कि उनके लिए नगर निगम की स्थापना करना आवश्यक हो जाये। फिर नगर के निवासियों की जन-समस्याओं की व्यवस्था करने के लिए, एक निश्चित आबादी को ध्यान में रखकर विभिन्न राज्य अपने यहां नगरपालिकाओं की स्थापना का निर्णय लेते हैं। नगरपालिकाओं की स्थापना, उनकी सीमाएं निर्धारित करना तथा उनके कार्यों पर नियन्त्रण रखना आदि उत्तरदायित्व राज्य सरकारों के ही हैं। विभिन्न राज्यों में नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए अलग अलग मानदण्ड सुविधानुसार निश्चित किये हुए हैं। उनमें से प्रमुख इस प्रकार है

चार्ट : 1

राज्य	जनसंख्या	आय	अन्य मापदण्ड
1. बिहार	5 हजार से अधिक	—	1 जनसंख्या का घनत्व एक हजार प्रति वर्ग मील से अधिक। 2 वयस्क पुरुष जनसंख्या का तीन चौथाई भाग खेती के अलावा व्यवसाय करता हो।
2. आन्ध्र प्रदेश	25 हजार	—	—
3. गुजरात	10से 30 हजार	—	प्रशासनीय परम्पराओं के अनुसार
4. केरल	15 से 25 हजार	—	अधिकतर लोग खेती के अति-रिक्त व्यवसाय करते हों।
5. मध्यप्रदेश	10 हजार स अधिक	—	
6. तमिलनाडु	10 हजार	—	—
7. महाराष्ट्र	10 हजार	—	—
8. कर्नाटक	10 हजार	—	—

9. राजस्थान	8 हजार	—	—
10. उत्तरप्रदेश	20हजार वार्षिक	40हजार वार्षिक	प्रशासकीय परपराम्रो के म्रनुसार
11. हिमाचल प्रदेश	—	—	कोई वैधानिक मानदण्ड नही प्रशासकीय परंपरा के म्रनुसार जनसख्या और घनत्व को ध्यान मे रखा जाता है ।
12. पश्चिमी बगाल	20 हजार	—	—
13. पंजाब	10हजार से म्रधिक	—	—
14. उडीसा	10हजार मे म्रधिक	—	1, जनसख्या का म्रौसत घनत्व एक हजार प्रति वर्ग मील से म्रधिक 2. दो तिहाई वयस्क पुरुष खेतो को छोडकर अन्य व्यवसाय करते हो
15. जम्मू-कश्मीर	—	—	कोई वैधानिक मानदण्ड नही, प्रशासकीय परम्परा के म्रनुसार,
16. हरियाणा	10 हजार से म्रधिक	—	—

नोट : 1. अन्य राज्यो के बारे मे सूचना उपलब्ध नही है ।

2. यह सूचना ग्रामीण नगरीय संबंध समिति के प्रतिवेदन पर आधारित है ।

उपरोक्त विवरण से प्रतीत होता है कि अधिकतर राज्यो मे नगरपालिका की स्थापना के लिए जनसख्या के एकमात्र मानदण्ड को अधिक महत्व दिया है । कुछ राज्यों ने वार्षिक आय को भी एक मानदण्ड के रूप मे मान्यता दे रखी है । राजस्थान सरकार ने 8 हजार या उनसे अधिक जनसख्या वाले कस्बा क्षेत्र

को नगरपालिका बनाये जाने हेतु उचित माना है। जनसख्या एव आय के आधार पर *राजस्थान मे नगरपालिकाओ को 4 श्रेणियो मे वर्गीकृत किया हुआ है।* यह वर्गीकरण राजस्थान सरकार ने 20 दिसम्बर 1977 को एक अधिसूचना जारी कर, किया था जिसे निम्न सारिणी मे वर्गीकृत किया गया है

चार्ट : 2

राजस्थान में नगरपालिकाओं का वर्गीकरण

श्रेणी	नाम	संख्या	जनसंख्या तथा आय का आधार
I	नगरपरिषद	19	(अ) 50 हजार से अधिक जनसख्या
II	नगरपालिका मण्डल	27	(अ) 25 हजार तथा इससे अधिक जनसख्या ।
			(ब) 15 हजार से 25 हजार जन-सख्या परन्तु प्रति व्यक्ति आय 25 रुपये से अधिक
			(स) जिला मुख्यालय
III	नगरपालिका मण्डल	61	(अ) 15 हजार से 25 हजार जनसख्या
			(ब) 15 हजार से कम जनसख्या परन्तु प्रतिव्यक्ति आय 20 रुपये से अधिक
IV	नगरपालिका मण्डल	89	(अ) 15 हजार से कम जनसख्या
	कुल योग	196	

नगरपालिकाओं की सरचना

नगरपालिकाओ की सरचना को भी, नगर निगम की भांति ही उसके निम्नांकित घटको के विवरण की सहायता से समझा जा सकता है :

1. परिषद (निर्वाचित निकाय)
2. अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष
3. अधिशासी अधिकारी एव आयुक्त तथा
4. समितियां ।

1. निर्वाचित निकाय . परिषद

नगरपालिका का विचार विमर्शकारी निकाय "परिषद" इस प्रणाली की प्रमुख संस्था होती है। इसमे नगर के निवासियो द्वारा निर्वाचित सदस्य तथा उनके द्वारा सहवरित सदस्य और कुछ सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होते है। सम्पूर्ण नगर को चुनाव के लिए वार्डों मे विभक्त कर दिया जाता है और प्रत्येक वार्ड से वयस्क मताधिकार के आधार पर सदस्यो का चुनाव होता है जिन्हे पार्षद कहते हैं। वार्ड और सदस्यो की सख्या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। सरकार इनकी सख्या मे वृद्धि या कमी कर सकती है। यदि निर्वाचन द्वारा परिषद मे महिलाओ का प्रतिनिधित्व नही हो पाता है तो दो महिला सदस्यो के सहवरण का प्रावधान है। अपवाद स्वरूप किसी विशिष्ट क्षेत्र, जो नगर या कस्बा नही हो, परन्तु पहाडी क्षेत्र हो, के विकास के लिए राज्य सरकार राज पत्र मे अधिसूचना के माध्यम से सदस्यो को मनोनीत कर सकती है।[1]

परिषद के कार्यकाल का विभिन्न राज्यो मे 3 से 5 वर्ष निर्धारण किया हुआ है। राजस्थान मे यह कार्यकाल निर्वाचन के पश्चात प्रथम बैठक की तिथि से 3 वर्ष है। सरकार इस कार्यकाल को अधिकतम दो वर्ष बढाने के लिए अधिकृत है किन्तु व्यवहार मे इससे आगे भी वह इस प्रावधान का उपयोग करती रहती है। राज्य सरकार इस कार्यकाल को बढाकर 5 वर्ष किये जाने पर विचार कर रही है।

परिषद को नगर की जनप्रतिनिधि सभा कहा जा सकता है। यह नगर पालिका का विचार विमर्शकारी निकाय है जिस पर नगरीय प्रशासन के लिए नीति निर्धारण और नियमो के निर्माण का दायित्व होता है। परिषद ही नगरपालिका का वार्षिक बजट पारित करती है। बजट पर चर्चा करते समय परिषद, स्थानीय सेवाओ का स्तर निर्धारित करती है। यह नगर के नियोजित विकास, सफाई और रखरखाव के सन्दर्भ मे सामान्य नीति निर्धारित करती है। इस हेतु महत्वपूर्ण विकास योजनाओ पर परिषद मे व्यापक विचार-विमर्श होता है। नगरीय शासन के सचालन के लिए परिषद को उपनियम बनाने के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। किसी भी नये कर का प्रस्ताव सर्वप्रथम परिषद की स्वीकृति के लिए रखा जाता है और उसके पश्चात ही उसे राज्य सरकार की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। परिषद अपने कार्य सचालन के लिए समितियो का गठन करने के लिए अधिकृत है। परिषद ही अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है तथा उन्हे पदच्युत भी कर सकती है। इस तरह स्थानीय जनप्रतिनिधि सभा के रूप मे परिषद स्थानीय लोगो की आकाक्षाओ का प्रतीक होती है।

2 अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष

नगर की वयस्क जनता द्वारा निर्वाचित परिषद अपने सदस्यो मे से ही अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का 3 वर्ष की अवधि के लिए निर्वाचन करती है।[2] नगर परिषद का अध्यक्ष परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है तथा साथ ही कार्यकारी उत्तरदायित्वो का निर्वाह भी करता है। इस प्रकार वह एक साथ दोहरे दायित्वो का सम्पादन करता है। एक ओर वह नीति निर्माण मे निर्वाचित परिषद का नेतृत्व करता है तो दूसरी ओर वह नीतियों के कार्यान्वयन मे अधिशासी अधिकारी का पर्यवेक्षण और नियन्त्रण भी करता है। वह नगर का प्रथम नागरिक कहलाता है। वह नगरपालिका कर्मचारियो की सेवाओ से सम्बन्धित मामले जैसे वेतन, भत्ते, अवकाश इत्यादि का निपटारा करता है।[3] नगरपालिका का सरकार या जनता से होने वाला पत्र व्यवहार उसके माध्यम से किया जाता है। इसके अतिरिक्त वह बजट, वक्तव्य, पत्रावलिया तथा स्थानीय प्रशासन से सबधित प्रलेख, प्रस्ताव, वार्षिक प्रतिवेदन इत्यादि का परिषद मे तथा तदनन्तर सरकार को प्रस्तुतीकरण का कार्य भी करता है। स्थानीय प्रशासन से सम्बन्धित सभी अभिलेखो का वह रक्षक होता है। वह नगरपालिका के वित्तीय और कार्यकारी प्रशासन की देखरेख करता है और उसके आदेशो को परिषद की जानकारी मे लाता है। वह नगरपालिका द्वारा पारित सकल्प की एक प्रति राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त नियुक्त प्राधिकारी को भेजने के लिए भी उत्तरदायी होता है।[4]

अध्यक्ष अपने पद से स्वय त्याग पत्र भी दे सकता है तथा किन्हीं परिस्थितियो मे उसे परिषद से पद मुक्त भी किया जा सकता है। यदि अध्यक्ष बिना सूचना परिषद की बैठको मे एक माह तक अनुपस्थित रहे या निर्दिष्ट नीति से उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव परिषद अपने बहुमत से पारित कर दे तो उसे हटाया जा सकता है।[5]

अध्यक्ष की अनुपस्थिति या पद रिक्त होने की स्थिति मे उसके सभी अधिकारो तथा शक्तियो का प्रयोग उपाध्यक्ष द्वारा किया जाता है।[6] कोई भी उपाध्यक्ष अध्यक्ष को लिखित मे सूचना देकर अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है। उसके त्यागपत्र देने के पश्चात रिक्त हुए स्थान पर नव निर्वाचित उपाध्यक्ष अवशिष्ट अवधि के लिए ही पद धारण करता है। अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष द्वारा त्यागपत्र दे दिए जाने, किन्तु उस त्यागपत्र के प्रभावशाली होने से पूर्व उसे वापस भी लिया जा सकता है। त्यागपत्र सक्षम अधिकारी को प्रस्तुत होने पर सूचना प्राप्ति की तिथि से एक माह बाद प्रभावशील होता है। यह प्रावधान भी किया

गया है कि यदि त्यागपत्र सक्षम अधिकारी को प्रस्तुत न हो तो वह वैध त्यागपत्र नही माना जाता है।

अध्यक्ष के कर्त्तव्य

राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 की धारा 67 एवं 68 मे अध्यक्ष के कर्त्तव्य गिनाये गये हैं जिनमे प्रमुख इस प्रकार हैं .

1 वह नगरपालिका की बैठक आमन्त्रित करेगा और उनकी अध्यक्षता करेगा, जब तक की कोई उपयुक्त कारण उसे ऐसा करने से रोक न दे, वह बैठक का कार्य सचालन करेगा।

2. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम द्वारा उसे सौंपी गयी शक्तियो और कर्त्तव्यो का प्रयोग करेगा।

3. नगरपालिका के वित्तीय और कार्यकारी प्रशासन पर पर्यवेक्षण व नियन्त्रण रखेगा।

4 नगरपालिकाओ के हिसाब-किताब, रेकार्ड और कर्मचारियो से सम्बन्धित मामलो का पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करेगा। नियमो के अधीन रहते हुए समस्त कार्मिक मामलो का समाधान करेगा।

5 नगरपालिका द्वारा पारित सकल्प की प्रतिलिपि सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकारी को प्रस्तुत करेगा।

अध्यक्ष के कर्त्तव्यो की भाति ही उपाध्यक्ष के कर्त्तव्यो का विवरण भी सम्बन्धित कानूनो से दिया जाता है।

3. अधिशासी अधिकारी तथा आयुक्त

नगरपालिकाओ मे, परिषद द्वारा निर्धारित नीतियो को कार्यान्वित करने के लिए नियुक्त प्राधिकारी को अधिशासी अधिकारी कहा जाता है। राजस्थान के बडे नगरो की नगर परिषदो मे नियुक्त इस प्राधिकारी को आयुक्त भी कहते हैं। प्राय. सभी राज्यो मे इस प्राधिकारी की नियुक्ति सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा की जाती है। नगर परिषदों मे नियुक्त यह सरकारी अधिकारी प्राय: नगर निगम मे आयुक्त की भाति ही सरकारी कार्यों का सम्पादन करता है किन्तु नगर निगम से इसकी स्थिति किंचित भिन्न है। नगर निगम में जहां आयुक्त को प्रशासनिक निकाय का सर्वेसर्वा बनाया गया है और उनके कार्यों मे मेयर की कोई भूमिका या नियन्त्रण नही होता है वहां नगरपालिकाओ मे नियुक्त

यह अधिशाषी अधिकारी प्रशासनिक शक्तियों का उपयोग नगरपालिका के अध्यक्ष के साथ सयुक्त रूप से करता है।

दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि नगरपालिका मे विचारात्मक एवं कार्यकारी अधिकारी शाखाओ मे वैसा पार्थक्य नही पाया जाता जैसा नगर निगम मे होता है। नगरपालिका का मुख्य अधिशाषी अधिकारी पालिका के कर्मचारियो पर प्रशासनिक नियन्त्रण रखता है, उच्च श्रेणी के कर्मचारियो के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकता है किन्तु उसके निर्णय के विरुद्ध *स्थाई समिति मे अपील की जा सकती है। तकनीकी कर्मचारियो पर प्रशासनिक* नियन्त्रण रखने मे वह सक्षम नही होता यद्यपि वह उनका पालिका की परिधि मे स्थानान्तरण कर सकता है। चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियो की नियुक्ति उसके द्वारा अध्यक्ष के साथ परामर्श के पश्चात की जा सकती है। अपने इन समस्त प्रशासनिक अधिकारो के उपयोग की प्रक्रिया मे, नगरपालिका अध्यक्ष उसे निर्देशित और नियन्त्रित कर सकता है। अध्यक्ष द्वारा अधिशाषी अधिकारी पर निर्देशन और नियन्त्रण के इस अधिकार का एक अन्तर्निहित परिणाम यह भी होता है कि पालिका के विभिन्न पार्षद भी प्रशासनिक कार्यों मे जब-तब हस्तक्षेप करने लगते हैं। नगरपालिकाओ मे कर्मचारियो के दो वर्ग बन जाते हैं जो इन दोनो शाखाओ के द्वारा प्रोत्साहित किए जाते रहते है। इस प्रकार स्थानीय शासन की इन दोनो शाखाओ के परस्पर सम्बन्ध अविश्वास, तनाव और मतभेदो मे ग्रस्त हो जाते हैं।

राजस्थान के बडे नगरो की नगर परिषदो मे नियुक्त आयुक्त भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी होते हैं जबकि उससे छोटी श्रेणी की नगरपालिकाओ मे ये राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो मे से नियुक्त किये जाते हैं। अन्तिम दो श्रेणी की नगरपालिकाओ मे नियुक्त अधिशाषी अधिकारी राजस्थान नगरपालिका सेवा के वरिष्ठ अधिकारी होते हैं। इस श्रेणी के अधिकारी भी प्रारम्भ मे राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित किये जाते हैं।

समितियाँ

नगर निगम की भांति ही नगर परिषद मे भी कार्य सुविधा की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की समितियो का निर्माण किया जाता है। राजस्थान मे सभी नगर परिषदो/पालिकाओ मे दो प्रकार की समितियां गठित की जाती हैं सांविधिक तथा गैर सांविधिक। सांविधिक समितियो के गठन, शक्तियो तथा कार्यों सम्बन्धी विस्तृत विवरण सम्बन्धित नगरपालिका अधिनियम मे ही दिया

जाता है जब कि गैर साविधिक समितियो की नियुक्ति नगरपालिकाए अपनी आवश्यकतानुसार स्वविवेक से कर सकती हैं। सभी समितियो को अलग-अलग कार्य सौंपे जाते हैं और अपने कार्य निष्पादन के लिए परिषद के नियन्त्रण मे रहते हुए उसके प्रति उत्तरदायी रहती हैं। समितिया अपने कार्य निष्पादन के प्रतिवेदन परिषद को प्रस्तुत करती हैं। परिषद को यह पूर्ण अधिकार होता है कि समितियो के प्रतिवेदन को वह चाहे तो यथारूप स्वीकार कर ले और यदि उचित समझे तो उसकी अभिशंसाओ मे परिवर्तन कर दे। राजस्थान में, राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 मे यह व्यवस्था है कि प्रत्येक नगर परिषद की एक कार्यकारिणी समिति होगी जिसमे निम्नांकित सदस्य सम्मिलित होगे :[7]

1 परिषद का अध्यक्ष,
2. परिषद का उपाध्यक्ष,
3 परिषद द्वारा निर्वाचित परिषद के 7 पार्षद,
4. परिषद द्वारा गठित समितियो के अध्यक्ष,
5. नगरपालिका आयुक्त समिति का पदेन सचिव।

प्रत्येक नगर परिषद मे कार्यपालक समिति के अतिरिक्त निम्नलिखित समितिया भी होगी :[8]

1. वित्त समिति
2 स्वास्थ्य और स्वच्छता समिति
3. भवन और संकर्म समिति
4. नियम-उपनियम उपसमिति
5. लोकवाहन समिति

ये सभी समितिया ऐसी शक्तियो, कर्तव्यो और कृत्यो का प्रयोग, कार्यान्वयन और निर्वहन कर सकती हैं जो उन्हे परिषद द्वारा प्रत्यायोजित की जाये। यदि नगरपालिका का अध्यक्ष किसी समिति का सदस्य है तो वह उस समिति का पदेन अध्यक्ष होता है।[9] यह प्रावधान भी किया गया है कि यदि पालिका का उपाध्यक्ष किसी ऐसी समिति का सदस्य है, जिसमे अध्यक्ष सदस्य न हो, तो वह ऐसी समिति का पदेन अध्यक्ष होगा।[10] यदि किसी समिति मे उपरोक्त दोनो मे से कोई पदेन अध्यक्ष न हो तो पालिका की परिषद एक अध्यक्ष नियुक्त करती है। जिन समितियो की बैठक मे उसका अध्यक्ष उपस्थित न हो तो समिति का अध्यक्ष उसके लिए अस्थाई अध्यक्ष नियुक्त कर सकता है। समितियो की बैठक नियमानुसार उसके अध्यक्ष के द्वारा आमन्त्रित की जाती है। समिति की बैठक मे कार्य संचालन के लिए उसके आधे सदस्यो का उपस्थित होना अनिवार्य माना

गया है ।[11] समिति द्वारा दिये गये प्रत्येक आदेश के पुनरीक्षण के लिए परिषद में अपील किये जाने का प्रावधान भी रखा गया है। सभी समितियाउन कार्यों का सम्पादन करती है जो परिषद द्वारा उन्हें निर्दिष्ट किये जाते हैं। उपयु॓क्त विवरण में इंगित कार्यकारिणी समिति का गठन राजस्थान की केवल बड़ी नगरपरिषदों में किया जाता है जब कि अन्य 5 प्रकार की समितियों का गठन भी नगरपालिकाओं में किया जाना अनिवार्य माना गया है।

सांविधानिक समितियों के अलावा परिषद जब भी आवश्यकता समझे, विशिष्ट कार्यों के लिए गैर सांविधिक समितियों का निर्माण कर सकती है। उनको दिये जाने वाले कार्य, दायित्व और शक्तियों का निर्धारण परिषद द्वारा कर दिया जाता है।

नगरपालिका की बैठकें

सभी राज्यों के अधिनियमों में नगरपालिका की बैठक बुलाने के बारे में प्रावधान किया जाता है। राजस्थान में अधिनियम की धारा 70 के अनुसार यह अपेक्षा की गयी है कि सामान्य कार्य सम्पादन के लिए नगरपालिका की प्रत्येक माह में कम से कम एक साधारण बैठक होनी चाहिए। अध्यक्ष का यह कर्तव्य है कि वह सामान्य बैठक के अतिरिक्त, अध्यक्ष जब भी उचित समझे, एक विशेष बैठक आमन्त्रित कर सकता है। ऐसी विशेष बैठक अध्यक्ष द्वारा सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई सदस्यों की लिखित प्रार्थना पर आमंत्रित की जाती है। बैठक की अध्यक्षता अध्यक्ष द्वारा तथा उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष द्वारा की जाती है। यदि अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों ही अनुपस्थित है तो परिषद के अपने कार्य संचालन के लिए अपना अस्थाई अध्यक्ष चुन सकते हैं। परिषद में निर्णय उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों (अध्यक्ष सहित) के बहुमत से किया जाता है। समान मत होने की स्थिति में अध्यक्ष को द्वितीय निर्णायक मत देने का अधिकार होता है। बैठक की गणपूर्ति के लिए परिषद की कुल संख्या के एक तिहाई सदस्यों का उपस्थित होना आवश्यक है।

नगरपालिका की शक्तियाँ

नगरपालिकाओं को शक्तियां प्रदान करने की दो प्रणालियां प्रचलित हैं :

1. सामान्य शक्ति प्रदायिनी प्रणाली

इस प्रणाली के अन्तर्गत नगरपरिषदों को यह स्वतन्त्रता दी जाती है कि

वे ऐसा कोई भी कार्य कर सकती हैं जिसे वे अपने निवासियो के लिए आवश्यक और हितकारी समझे। यद्यपि ऐसा करते समय उन पर मर्यादा लगायी जाती है कि वे ऐसा कोई काम न करे जो केन्द्र अथवा राज्य सरकार के कार्य-क्षेत्र मे आता हो। इस प्रणाली मे नगरपालिकाओ को पहल करने का एक व्यापक क्षेत्राधिकार मिलता है। यह प्रणाली फ्रास मे प्रचलित है।

2. विशिष्ट अधिकार दान प्रणाली

इस प्रणाली के अन्तर्गत नगरपालिकाओ को कुछ विशेष कार्य सम्पन्न करने के लिए अधिकार दिये जाते हैं। नगरपालिकाए केवल निर्दिष्ट कार्यों को करने के लिए ही सक्षम होती हैं। ब्रिटेन मे यही प्रणाली प्रचलित है और भारत-वर्ष मे भी ब्रिटिश जमाने मे स्थापित नगरपालिकाओ को इसी प्रणाली द्वारा अधिकार प्रदान किया गया है। स्वतन्त्र भारत मे भी इसी प्रणाली को जारी रखा गया है।

इस प्रणाली मे नगरपालिकाएं केवल उन्ही कार्यों को करती है जो अधिनियम द्वारा उन्हें दिये जाते है। अधिनियम में उन कार्यो को करने के लिए यदि कोई प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक होता है। नगरपालिकाए यदि अधि-नियम के प्रावधानो, निर्देशो या प्रक्रिया की अवेहलना करती है तो उसके कार्यो को न्यायालय मे चुनौती दी जा सकती है। नगरपालिकाओ के अधिकारो की इन दोनो प्रणाली मे नगरपालिकाओ का कार्यक्षेत्र, अधिकार क्षेत्र और कार्य प्रक्रिया निश्चित होती है और नगरपालिकाओ को राज्य सरकार के निर्देशो के लिए पर-मुखापेक्षी नही रहना पडता। इस तरह अधिनियम के प्रावधानो की निर्दिष्ट परि-सीमा मे, इस प्रणाली के अधीन नगरपालिकाएँ स्वायत्तता का सही उपयोग करती हैं।

नगरपालिका की शक्तियो को निम्नांकित शीर्षको मे व्यक्त किया जा सकता है :

1. विधायी शक्तियां

नगरपालिकाओ को सबंधित अधिनियम की सीमाओ मे रहते हुए नियम और उपनियम बनाने का अधिकार होता है। प्रत्येक नगरपालिका को अपने कार्य संचालन के बारे मे तथा अपनी शक्तियो और दायित्वो को समितियो को प्रत्या-योजित करने के बारे मे आवश्यक नियम बनाने की शक्तिया होती हैं। नगर-पालिकाए अपने कर्मचारियो तथा पदाधिकारियो के मार्गदर्शन के लिए भी आव-

प्राथमिक या अनिवार्य कार्य

नगरपालिकाओ के प्रथम प्रकार के ये अनिवार्य दायित्व ऐसे है जिन्हे सम्पादित करना नगरपालिकाओ के लिए अनिवार्य दायित्वो की श्रेणी मे रखा गया है । यदि नगरपालिकाए अपने प्राथमिक दायित्वो का निर्वाह न करे तो किसी भी प्रभावित नागरिक को यह अधिकार होता है कि वह इन अनिवार्य कार्यों को करवाने के लिए नगरपालिका के विरुद्ध परमादेश याचिका (रिट ऑफ मैण्डामस) किसी भी उच्च न्यायालय या भारत के उच्चतम न्यायालय मे प्रस्तुत कर सकता है । प्रभावित नागरिक द्वारा प्रस्तुत इस तरह की परमादेश याचिका मे प्रस्तुत तथ्यो को न्यायालय यदि स्वीकार कर ले तो न्यायालय नगरपालिका को अनिवार्य कार्यों को सम्पन्न करने का उचित आदेश जारी कर सकता है ।

कुछ राज्यो के अधिनियमो मे यह प्रावधान किया गया है कि राज्य सरकार किसी अनिवार्य कार्य को करने से नगरपालिका को मुक्ति दे सकती है या किसी अनिवार्य कार्य को ऐच्छिक भी घोषित कर सकती है । यद्यपि ऐसा करने के लिए राज्य सरकार को समुचित सूचना निर्धारित प्रक्रिया मे जारी करना आवश्यक होता है । जब तक ऐसी अधिसूचना जारी न की जाय सभी नगरीय कार्यों का सम्पादन नगरपालिकाओ के लिए आवश्यक समझा जाता है । एक बार इस तरह की अधिसूचना जारी हो जाये तो जैसी भी सूचना जारी होती है वह नगरपालिका और नागरिको के लिए प्रभावी समझी जाती है । इस प्रकार के प्रावधान के बाद न्यायालय उस सन्दर्भ मे परमादेश जारी नही कर सकते । नगरपालिकाओ द्वारा किये जाने वाले अनिवार्य कार्यों को निम्नांकित सूची मे व्यक्त किया गया है :

1. भवन निर्माण के नियमो को लागू करना,
2. नगरीय भूमि की अनाधिकृत अतिक्रमण से रक्षा करना,
3. मानव जीवन के लिए खतरनाक भवनो को गिराना,
4. सड़क, बाजार, सार्वजनिक मार्गों का निर्माण और रखरखाव,
5. नालियो एव सार्वजनिक सुविधाओ का निर्माण और उनकी सफाई,
6. सार्वजनिक मार्गों एव स्थानों पर प्रकाश की व्यवस्था तथा जल छिड़काव का प्रबन्ध,
7. घृणाजनक, खतरनाक तथा हानिकारक व्यापारो, उद्यम अथवा प्रथाओं का नियमन,

सड़को की सफाई तथा उन पर प्रकाश और जल की व्यवस्था,

9. अग्निशमन सेवाओं का प्रबन्ध,
10. मृतक क्रियास्थलों का प्रबन्ध,
11 शुद्ध तथा स्वास्थ्यवर्धक जल की पूर्ति,
12. टीके लगाने की व्यवस्था,
13. मार्गों का नामांकन और मकानों का संख्यांकन,
14. जन्म तथा मृत्यु का पंजीकरण,
15. सार्वजनिक चिकित्सालयों की स्थापना और प्रबन्ध,
16. प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था,
17. पशुगृह की स्थापना और व्यवस्था,
18 महामारी से बचाव के प्रबन्ध ।

2. ऐच्छिक या गौण कार्य

ऐच्छिक या गौण कार्य ऐसे हैं जिन्हे निष्पादित करना या न करना नगरपालिका की क्षमता और इच्छा पर निर्भर करता है । प्रायः सभी अधिनियमों में इस प्रकृति के कार्यों की व्यवस्था है । अनिवार्य कार्यों और ऐच्छिक कार्यों में अन्तर यह है कि जहाँ अनिवार्य कार्य नगरपालिका द्वारा सम्पन्न न किये जाने की स्थिति मे नागरिक न्यायालय मे परमादेश याचिका प्रस्तुत कर सकता है वही ऐच्छिक कार्यों के सन्दर्भ मे वह ऐसा नही कर सकता । इन कार्यों को नगरपालिका द्वारा न किये जाने की स्थिति मे नागरिक राजनैतिक दबाव या अन्य दबाव की स्थिति तो बना सकते हैं किन्तु इन्हे करने के लिए न्यायालय से कोई आदेश जारी नही करवा सकते । ऐच्छिक कार्यों की सूची इस प्रकार है :

1. नयी सड़कों अथवा सार्वजनिक भवनों का निर्माण और उनका रख-रखाव,
2. पार्क, उद्यान तथा सार्वजनिक स्थानों पर रेडियो सुनने के स्थानों का निर्माण और रखरखाव,
3 पुस्तकालयों, संग्रहालयों तथा वाचनालयों की स्थापना,
4. शिक्षा का विस्तार,
5. धर्मशाला, विश्रामगृह, हाट तथा अन्य इसी तरह के सार्वजनिक स्थानों का निर्माण और रखरखाव,
6. सार्वजनिक स्थानों पर संगीत की व्यवस्था,

7. वृद्ध लोगो के लिए विश्राम स्थलो की व्यवस्था,
8. बाल कल्याण केन्द्रो की स्थापना और रखरखाव,
9. जनस्वास्थ्य की अभिवृद्धि के लिए कार्यक्रमो का आयोजन,
10. निम्न आय समूह के लोगो के लिए आवास की व्यवस्था,
11. आवास हेतु लोगो को ऋण उपलब्ध करवाने की व्यवस्था,
12. मेलो और प्रदर्शनियो का आयोजन,
13. अनाथालयो तथा स्त्रियो के लिए उद्धारगृहो का निर्माण और उनकी व्यवस्था,
14. मार्गों के किनारे तथा अन्य स्थानो पर वृक्षारोपण तथा अनुरक्षण,
15. नगरपालिका की सीमाओ के भीतर पर्यवेक्षण सुविधाओ की व्यवस्था,
16. नगरपालिकाओ के कर्मचारियो के कल्याणवृद्धि हेतु कार्यक्रमो का आयोजन,
17. नगरीय अधिनियम की अपेक्षाओ की पूर्ति के लिए किसी भी अन्य कार्य का निष्पादन ।

अनिवार्य और ऐच्छिक कार्यो की उपरोक्त सूची अपने आप मे पर्याप्त और पूर्ण नहीं है बल्कि दृष्टान्तपरक है । उपरोक्त सूची मे उन प्रमुख कार्यों को इगित किया गया है जो उस कोटि मे अधिनियमो द्वारा सम्मिलित किये गये हैं । नगरपालिकाओ के निर्माण के अधिनियम अलग-अलग राज्यो के द्वारा पारित किये जाते हैं । इसलिए कार्यो की सूची मे यत्किंचित अन्तर होना अवश्यम्भावी और स्वाभाविक होता है किन्तु सभी राज्यो के अधिनियमो मे दोनो कोटि के जो महत्त्वपूर्ण कार्य सम्मिलित किये गये हैं, उन्हे उपरोक्त सूची मे स्थान देने का प्रयत्न किया गया है ।

3. विशिष्ट कार्य

उपरोक्त दोनो सूचियो मे इगित अनिवार्य एव ऐच्छिक कार्यो के अलावा भी कुछ अधिनियमो मे नगरपालिकाओ द्वारा सम्पादित किये जाने वाले विशेष कर्त्तव्यो का उल्लेख किया गया है । राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 मे नगरपालिकाओ द्वारा सम्पादित किये जाने वाले तीसरे प्रकार के कार्यों को "विशेष कर्त्तव्य" शीर्षक के अन्तर्गत अधिनियम मे स्थान दिया गया है ।[11] इस अधिनियम मे इन विशेष कार्यों को अनिवार्य कार्यों की श्रेणी के समान महत्त्व का

घोषित किया है जिन्हे सम्पन्न करवाने के लिए नागरिक न्यायपालिका का हस्तक्षेप भी आमन्त्रित कर सकता है। इनमे प्रमुखत: दो कार्य बताये गये हैं :

1. खतरनाक बीमारी के समय विशेष चिकित्सा सहायता तथा आवास सुविधा उपलब्ध करवाने तथा उक्त प्रकार की बीमारी के आक्रमण को और उनके पुनरागमन को रोकने के लिए उपाय करना, जो अपेक्षित हैं।

2. अकाल, अभाव या प्राकृतिक आपदाओ के समय नगरपालिका सीमा में निराश्रित लोगो को राहत पहुँचाना तथा उनके लिए राहत कार्यों की स्थापना और उनका रखरखाव करना।

इस तथ्य का उल्लेख पूर्व मे किया जा चुका है कि नगरपालिकाओ को किसी कार्य को करने से मुक्त करना या अनिवार्य कार्य को ऐच्छिक घोषित करना इत्यादि की घोषणा राज्य सरकार कर सकती है।

नगरपालिकाओ की आय के प्रमुख स्रोतो और व्यय सम्बन्धी प्रावधानो तथा नगरपालिका पर राज्य सरकार के नियन्त्रण और दोनो के परस्पर सम्बन्धो इत्यादि के बारे मे पुस्तक के आगामी अध्यायो मे यथास्थान पर विचार किया गया है।

सन्दर्भ

1. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 1959
2. उपरोक्त, धारा 65
3. उपरोक्त, धारा 67 (ङ)
4. उपरोक्त, धारा 67 (च)
5. होशियार सिह, "पावर्स एण्ड फंक्शन्स ऑफ म्यूनिसिपल चेयरमैन इन राजस्थान", जर्नल स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थान, बम्बई, वोल्यूम XII, न सख्या 1, जुलाई–सितम्बर, 1970.
6. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, धारा 69 (2ख)
7. उपरोक्त, धारा 73

8. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, धारा 73 (3)
9. उपरोक्त, धारा 75 (1)
10. उपरोक्त, धारा 75 (2)
11. उपरोक्त, धारा 76 (4)
12. उपरोक्त, धारा 88 का परंतुक (1)
13. उपरोक्त, धारा 51
14. उपरोक्त, धारा 99

6

भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण : सिद्धान्त और व्यवहार

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और पंचायतीराज दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् एशिया और अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों ने लोकतन्त्र की जड़ों को मजबूत बनाने एवं सामान्य जन को अपने नागरिक और राजनीतिक कार्यों में वास्तविक भागीदार बनाने की दृष्टि से लोकतांत्रिक संरचना का अधिकतम विकेन्द्रीकरण करने का प्रयोग आरम्भ किया। इस प्रयोग को "ग्राम रूट डेमोक्रेसी" के नाम से अभिहित किया गया।[1]

इसे धरातल पर लोकतन्त्र के नाम से भी अभिव्यक्त किया जाता है। धरातल पर लोकतन्त्र से अभिप्राय यह है कि ऐसी राजनीतिक संरचना जिसमें लोकतन्त्र केवल राष्ट्रीय और प्रान्तीय स्तरों तक सीमित नहीं हो बल्कि उसका विस्तार वास्तविक अर्थ में स्थानीय स्तरों तक भी होता होगा। इस प्रकार यह पद्धति लोकतन्त्र में लोगों की सहभागिता को सही अर्थों में सुनिश्चित करने का माध्यम है। एक ऐसा लोकतन्त्र जो केवल निर्वाचित प्रतिनिधियों तक सीमित नहीं है और जो केवल राष्ट्रीय और प्रान्तीय स्तरों तक संकुचित नहीं है, तथा जिसमें जनता की सहभागिता प्रत्येक तीसरे या पांचवें वर्ष होने वाले चुनावों के समय ही अभिव्यक्त नहीं होती अपितु उनकी सहभागिता उनके अपने दैनिक आचरण से सम्बन्धित सार्वजनिक कार्यों और अपने क्षेत्र, गांव और कस्बा के दैनिक प्रबन्ध में अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार धरातल पर लोकतन्त्र की अवधारणा अनिदर्शन- विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्र की धारणा है जिसमें सार्वजनिक कार्यों के प्रबन्ध का आरम्भ और अन्त केवल उच्च स्तर पर नहीं होता अपितु स्थानीय क्षेत्रों में सामान्य लोगों के विस्तृत जाल के माध्यम से होता है। सामान्य लोगों की इस संरचना को न्यूनाधिक रूप में लोगों की लघु लोकतन्त्रीय सरकार, लोक-

तात्विक चिन्तन और ग्राम के वास्तविक केन्द्र के रूप में जाना जा सकता है। संक्षेप में धरातल पर लोकतन्त्र की यह अवधारणा केवल लोकतन्त्र का "मुख दर्शन" मात्र नहीं है बल्कि किसी भी देश की धरती में लोकतन्त्र के गहराई से बीजारोपण का प्रयत्न है।[2]

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का अर्थ

लोकतन्त्र उस व्यवस्था को कहते है जिसमे राज्य की प्रभुसत्ता लोक अर्थात् उस भू भाग के निवासियो मे निहित होती है। जिस व्यवस्था मे देश के समस्त नागरिक शासन के कार्यों मे किसी न किसी स्तर पर भाग लेते हो और उनकी आवाज अनिवार्यतः कुछ महत्व रखती हो, उसे सच्चा प्रजातन्त्र कहा जा सकता है। जब राज्य की सत्ता केन्द्र मे निहित होती है तो उसे केन्द्रीय शासन कहते हैं और जब यही सत्ता जनता मे विभिन्न स्तरो पर बाट दी जाती है तो इसे विकेन्द्रीकृत सत्ता कहते हैं।

सभी लोकतान्त्रिक देशो मे शासन के निर्णय यद्यपि जनता के अपने चुने हुए प्रतिनिधियो द्वारा लिए जाते है किन्तु उनका निष्पादन लोकसेवा द्वारा किया जाता है। शासन के कार्य सचालन का यह सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य है। किंतु आधुनिक लोकतन्त्रीय देशो मे नौकरशाही की शक्तियो का इतना अनियन्त्रित और असीमित विस्तार हो गया है कि लोकतान्त्रिक रूप से चुने हुए प्रतिनिधियो की भूमिका कभी कभी गौण होती प्रतीत होती है। वस्तुत लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण शासन की शक्तियो का नौकरशाही के विभिन्न स्तरो पर प्रत्यायोजन नही है अपितु लोकतान्त्रिक सत्ता का राष्ट्रीय स्तर से नीचे राज्य, जिला, विकास खण्ड एव ग्राम स्तर पर अधिकतम विकेन्द्रीयकरण द्वारा निर्णय करने की अधिकतम शक्ति जनता मे निहित हो तभी सच्चा लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हो सकता है।

इस अवधारणा पर 1957 मे केन्द्र-सरकार द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रमो के क्रियान्वयन के आकलन एव मूल्याकन हेतु नियुक्त बलवन्त राय मेहता समिति ने भी गहन चिन्तन किया। इस समिति का निष्कर्ष भी यही था कि वास्तविक प्रजातन्त्र उस समय फलीभूत होगा जब प्रत्येक गाँव मे ग्रामसभाएँ एव ग्राम पचायतें स्थापित हो जाएंगी और सामान्य जन वास्तविक स्वतन्त्रता का अनुभव करेंगे।[3]

लोकतन्त्र एक जीवन दर्शन है। राजनीति मे इसके प्रयोग की अवधारणा मे इसके विकेन्द्रीकरण का विचार भी अन्तर्निहित है। राजनीति मे

लोकतन्त्र के प्रयोग का अभिप्राय न केवल राज्य सत्ता में लोगों की भागीदारी का प्रयास है अपितु सरकार के दैनिक कामकाज मे लोगों को सहभागी बनाना भी है। राजनीतिक प्रक्रिया के रूप मे लोकतन्त्र को परिभाषित करते समय राजनीतिक चिंतकों ने यद्यपि भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये हैं किंतु उन सभी के विश्लेषण मे लोकतन्त्र में लोगों की अधिकतम सहभागिता का तत्व, सामान्य रूप से अभिव्यक्त हुआ है। प्रसिद्ध विद्वान जे एस मिल ने लिखा है कि, एक ऐसी सरकार, जिसमे सभी लोगों की भागीदारी है, ही सामाजिक राज्य की समस्त आवश्यकताओं को पूर्णत सतुष्ट कर सकती है।[4] लोगों की सहभागिता लोकतन्त्र का हृदयस्थल अथवा सार है। जिस व्यवस्था मे अपनी सरकार के सचालन मे लोगों की सहभागिता, जितनी अधिक, निरन्तर, सक्रिय, रचनात्मक और निकट की होगी वह व्यवस्था लोकतन्त्र के राजनीतिक आदर्श के उतने ही समीप समझी जायेगी। "लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण लोगों की यह सहभागिता प्राप्त करने का एक सशक्त उपाय है। इसका ध्येय शासन कार्यों मे लोगों की अधिकतम और जीवत सहभागिता को सुनिश्चित करना होता है।[5] यहा यह जिज्ञासा व्यक्त की जा सकती है कि लोकतन्त्र की अवधारणा मे जब विकेन्द्रीकरण का विचार अन्तर्निहित है तो "विकेन्द्रीकरण" के आरम्भ मे "लोकतांत्रिक" शब्द क्यों लगाया जाता है। विद्वानों ने मत व्यक्त किया है कि विकेन्द्रीकरण के पूर्व लोकतान्त्रिक शब्द का उपयोग निरर्थक नहीं है वस्तुत. लोकतान्त्रिक शब्द विकेन्द्रीकरण के उद्देश्य को अभिव्यक्त करता है जो सत्ता विकेन्द्रीकरण मे लोगों के व्यापक, अधिकतम और निकटतम सहयोग की आकांक्षा को अधिक स्पष्टता देता है।[6]

"विकेन्द्रीकरण" के पूर्व "लोकतान्त्रिक" शब्द के उपयोग करने से इसका अर्थ प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण को पृथक रूप से समझने मे भी सहायता करता है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा प्रशासन मे कुशलता लाने के विचार से अभिप्रेरित है प्रशासन मे जब शक्तियो का विकेन्द्रीकरण किया जाता है तो उसका उद्देश्य प्रशासन के निचले स्तरो पर निष्पत्ति और प्रशासनिक कार्मिको की गति वृद्धि के माध्यम से उनकी कुशलता बढाने से होता है जबकि लोकतात्रिक विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य शासन के कार्यों मे सरकार के प्रत्येक स्तर राष्ट्रीय, प्रान्तीय और विशेषत स्थानीय पर जनता की अधिकतम सहभागिता प्राप्त करना होता है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण मे प्रशासन के निचले स्तरो पर किसी योजना को अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक कार्यान्वित करने का अधिकार निहित देखा जा सकता है। इसमें योजना उच्च स्तर के लोगों के द्वारा बनाई जाती है और उसकी क्रियान्विति की प्रक्रिया मे नीचे के स्तर की स्वतन्त्रता अभीष्ट होती है।

जबकि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को स्थानीय स्तर पर लोगों का अपने कल्याण की योजनाओं को बनाने व पहल करने तथा स्वायत्तता पूर्वक उन्हें कार्यान्वित करने के अधिकार के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार "लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण", प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की तुलना में अधिक व्यापक है और दोनों में अन्तर उनके उद्देश्य को लेकर किया जा सकता है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण जहाँ लोगों की सहभागिता पर बल देता है वहीं प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य 'कुशलता' को बढ़ावा देना होता है।[7]

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के विचार को प्रत्यायोजन या विसकेन्द्रण के समानार्थक समझकर भ्रमित नहीं होना चाहिए। यद्यपि इन तीनों शब्दों में कुछ समान गुण हो सकते हैं फिर भी ये समानार्थक नहीं हैं। प्रत्यायोजन या विसकेन्द्रण में सत्ता का उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारी को हस्तान्तरण होता है जो उस सत्ता के उपयोग के लिए अपनी इच्छा के अनुरूप स्वतन्त्र नहीं होता अपितु उसका निर्वाह उच्च अधिकारी के निर्देशों और मोद या प्रसाद की सीमाओं के अन्तर्गत करना होता है। जबकि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण लोककरण लोकतान्त्रिक सिद्धांत का विस्तार है, इसमें स्थानीय स्तर पर लोगों का अपने कार्यों के, बिना किसी उच्च हस्तक्षेप के, प्रबन्ध का अधिकार निहित है। इस प्रकार लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के विचार में जहाँ लोगों का अधिकार अन्तर्निहित देखा जा सकता है वहाँ प्रत्यायोजन उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारी को प्रदत्त सुविधा मात्र है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण एक ऐसा सिद्धान्त है जो स्थानीय लोगों को मौलिक सत्ता के उपभोग का अधिकार प्रदान करता है जबकि प्रशासनिक प्रत्यायोजन या विसकेन्द्रण, किसी भी प्रशासनिक संगठन में प्रशासनिक कुशलता प्राप्त करने का उपागम मात्र है जिसमें अधीनस्थ अधिकारी द्वारा ऐसी सत्ता का उपयोग किया जाता है जो उसे उच्च अधिकारी द्वारा दी गई है।[8]

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा, रूस और चीन जैसे साम्यवादी देशों में प्रचलित लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण की धारणा पूर्णतः भिन्न है। इन साम्यवादी देशों में लोकतन्त्र और केन्द्रीय नेतृत्व की शक्तियों के केन्द्रीकरण का सम्मेलन किया गया है। इन देशों की जनता जनतांत्रिक तरीके से, प्राथमिक तौर पर अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है तथा अपने शासन की नीति सबंधी व्यापक मुद्दों का चयन करती है किन्तु इन दोनों देशों की जनता जब प्राथमिक तौर पर व्यापक नीतियों का निर्धारण कर अपने प्रतिनिधियों को चुन देती है तो इस बिन्दु पर उनकी लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता समाप्त प्राय हो जाती है। इसके

पश्चात निर्वाचित नेतृत्व, जनता द्वारा स्वीकृत व्यापक नीतियो को कार्यान्वित करने हेतु रीति-नीति निर्धारित करना है और आवश्यक आदेश देता है। केन्द्रीय नेतृत्व के इन आदेशो का कोई विरोध, आलोचना या उनके प्रति कोई संकोच या प्रतिरोध व्यक्त नही किया जा सकता। इस स्तर पर जनता भी, अपने प्रतिनिधियो द्वारा निर्धारित रीति-नीति अथवा कार्य प्रणाली के प्रति कोई विरोध व्यक्त करने मे सक्षम नही है। जनता के लोकतान्त्रिक अधिकार प्राथमिक स्तर पर नीतियो के निर्धारण तक सीमित माने जाते हैं और एक बार स्वीकृत नीतियो के निष्पादन पर केन्द्रीय नेतृत्व का पूर्ण अधिकार और नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। इस तरह इन साम्यवादी देशो मे लोकतन्त्र, नीतियो के निर्माण की प्राथमिक प्रक्रिया तक सीमित है और तत्पश्चात की समस्त प्रक्रियाओ पर केन्द्रीय नेतृत्व का केन्द्रीकरण स्थापित है। यद्यपि इस स्थिति मे गोर्बाचेव की पैरेस्त्राइका नीति के पश्चात परिवर्तन आ रहा है।

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण मे जहाँ शक्तियो का उच्च स्तर मे स्थानीय स्तर तक विकेन्द्रीकरण होता है वहाँ लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण मे शक्तियो का नीचे के लोकतान्त्रिक स्तरो से उच्च नेतृत्व की ओर केन्द्रीकरण होता है। विद्वानो ने इस प्रक्रिया को लोकतान्त्रिक और लोकप्रिय स्तरो मे शक्तियो का केन्द्रीय नेतृत्व के प्रति पूर्ण समर्पण भी कहा है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण मे शासन के उच्च स्तर द्वारा जो शक्तियाँ नीचे के स्तरो को हस्तान्तरित की जाती है उसमे उच्च स्तर पर लोकतान्त्रिक भावना विद्यमान रहती है जो नीचे के स्तरो को सत्ता और स्वायत्तता दोनो प्रदान करती हैं। इस तरह इस प्रक्रिया से सम्पूर्ण लोकतान्त्रिक व्यवस्था मे प्रत्येक स्तर पर लोकतन्त्र की स्थापना का प्रयत्न होता है जबकि लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण मे अधिनायकवादी नेतृत्व को लोकतान्त्रिक आधार प्रदान करने का प्रयत्न किया जाता है। सारतः यह व्यक्त किया जा सकता है कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण मे जहाँ लोकतन्त्र मे लोगो की सहभागिता व स्वायत्तता पर बल दिया जाता है वहाँ लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण मे लोगो की सहभागिता तथा सत्तावाद दोनो पर बल होता है, यद्यपि यह बल सत्तावाद पर अधिक होता है।[1]

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की विशेषताएं

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण शब्द शासन के उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर तीन दिशाओ मे शक्तियो के स्वायत्ततापूर्ण हस्तान्तरण का उद्घोष करता है :

1. राजनीतिक दृष्टि से यह निर्णय करना कि शासन की नीति और कार्यक्रम क्या होंगे,
2. निर्धारित दायित्वों को पूर्ण करने के लिए आर्थिक समायना के प्रबन्ध का अधिकार हो तथा
3. प्रशासनिक दृष्टि से, बिना किसी उच्च हस्तक्षेप के, अपने कार्यों के निर्देशन, पर्यवेक्षण और व्यावहारिक प्रायोजन का अधिकार।

इस प्रकार लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण एक ऐसी राजनीतिक धारणा है जो शासन के कार्यों और निर्णयों में लोगों की भागीदारी का विस्तार करती है। यह धारणा उच्च स्तर से नीचे के स्तर के जनप्रतिनिधियों को सत्ता की स्वायत्तता सहित विकेन्द्रीकरण करती है। सत्ता का यह विकेन्द्रीकरण उपरोक्त इंगित तीन दशाओं में-राजनीतिक निर्णय, निर्माण, वित्तीय नियन्त्रण और प्रशासकीय प्रबन्ध-में होता है। प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण की विशेषताओं को निम्नांकित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है

1. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण लोगों को अपनी ही सरकार के प्रबन्ध में अधिकतम और व्यापक सहभागिता सुनिश्चित करता है।
2. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया शक्तियों के सम्बद्ध हस्तान्तरण का आग्रह करती है।
3. इस प्रक्रिया में जो सत्ता निम्न स्तरीय इकाइयों को प्राप्त होती है उसके उपयोग में उन्हें नीति निर्माण, कार्यक्रमों के निर्धारण और उनके क्रियान्वयन की रीति नीति के विनिश्चय तथा आर्थिक समाधनों के प्रबंध में पर्याप्त स्वायत्तता मिलती है।
4. इस प्रक्रिया में जो सत्ता विकेन्द्रीकृत की जाती है उसका उपयोग जिस तन्त्र के द्वारा किया जाता है वह निर्वाचित होना चाहिए, यदि वह तन्त्र निर्वाचित नहीं है तो वहाँ विकेन्द्रीकरण तो होगा किन्तु वह विकेन्द्रीकरण लोकतान्त्रिक नहीं कहा जा सकता।
5. इस प्रक्रिया में विकेन्द्रीकृत सत्ता का उपयोग निर्वाचित निकाय के सदस्यों या किसी समिति के द्वारा होना चाहिए न कि एक व्यक्ति के द्वारा। यदि सत्ता का उपयोग एक व्यक्ति में निहित कर दिया गया तो लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का मन्तव्य नष्ट हो जायगा।
6. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का यह राजनीतिक सिद्धान्त एक सीमा तक निम्न स्तरीय सस्थाओं के दैनन्दिन कार्यकरण से राज्य सरकार अथवा

केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप का निषेध करता है। सैद्धान्तिक तौर पर तो यह माना जाता है कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण मे निम्न स्तरीय सस्थाओ पर उच्च स्तरीय सस्थाओ का नियन्त्रण नही होना चाहिए किन्तु यह एक अतिवादी और विशुद्ध सैद्धान्तिक दृष्टिकोण है। व्यवहार मे स्थानीय सस्थाओ को निश्चित क्षेत्र मे स्वायत्तता प्रदान की जाती है। इस स्वायत्तता के क्षेत्र मे अनावश्यक, अवांछित अथवा अतिरिक्त हस्तक्षेप नही किया जाना चाहिए अन्यथा यह हस्तक्षेप लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के मूल उद्देश्य पर ही आघात करता है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वशासन

यहाँ यह जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वशासन की अवधारणा एक दूसरे की पर्यायवाची हैं, या पूरक है या परस्पर इनमे कोई भिन्नता है। वस्तुत. दोनो अवधारणाएं एक दूसरे की इस अर्थ मे पर्यायवाची मानी जा सकती है कि दोनो का मूल उद्देश्य शासन कार्यों मे लोगो की अधिकतम सहभागिता और स्वायत्तता प्राप्त करना होता है। ये दोनो ही प्रकार की अवधारणाए स्थानीय कार्यों के प्रबन्ध मे उच्च स्तरीय नियन्त्रण को सीमित करती है, दोनो मे अन्तर इतना सा है कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण जहाँ राजनीतिक अवधारणा मात्र है, वही स्थानीय शासन उसका एक संस्थागत रूप माना जा सकता है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा शासन कार्यों मे स्वायत्तता पर अधिक बल देती है। यह अवधारणा, स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाइयो के अधिक प्रजातन्त्रिकरण, अधिक सत्ता, अधिक दायित्व, पहल और गतिविधियो के प्रबन्ध मे और अधिक स्वायत्तता के उपयोग का आग्रह करता है।

उपरोक्त विवरण मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा के सैद्धातिक पक्ष का विवेचन किया गया है। आगामी पृष्ठो मे लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा के व्यावहारिक पक्ष का विश्लेषण और उसकी मीमासा प्रस्तुत की जा रही है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का व्यावहारिक पक्ष

भारत के सविधान के अनुच्छेद 40 मे यह निर्देश दिया गया है कि राज्य पंचायतो की स्थापना एव उनके विकास पर ध्यान देगा। इसके पश्चात प्रथम पचवर्षीय योजना मे यह स्पष्ट कर दिया गया था कि विकास कार्यों के सम्पादन मे पचायतें एक अभिकर्ता (एजेंट) के रूप मे कार्य करेंगी। द्वितीय

पचवर्षीय योजना मे भी यह बल दिया गया कि पचायतो को और अधिक अधिकार दिए जायें। ग्रामीण क्षेत्रो म उत्पादन के कार्यक्रमो की योजना बनाना, बजट तैयार करना, ग्राम और सरकार क मध्य सम्बन्ध सेतु स्थापित करना तथा सामुदायिक विकास कार्यों के लिए श्रमदान सगठित करने इत्यादि की भूमिका उन्हे विशेष रूप से दी जा सकती है। 1952 मे देश मे व्यापक स्तर पर सामुदायिक विकास योजना लागू की गई जिसम सिद्धान्तत. यह स्वीकार कर लिया गया था कि ग्राम की वास्तविक उन्नति तभी हो सकती है जब इस कार्यक्रम को जनता की समितियो के माध्यम स क्रियान्वित करवाया जाय। समय समय पर किये गये मूल्याकनो से यह स्पष्ट हो गया कि सामुदायिक विकास की यह योजना, जनता का कार्यक्रम तभी बन सकती है जब इस जनता के प्रतिनिधियो के हाथो मे सौप दिया जाये। इसी समय अनुभव भी कर लिया गया था कि प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए जनता को और अधिक अधिकार दिये जाने की आवश्यकता है। देश मे ऐसा वातावरण बन गया जिसमे इस प्रश्न पर गम्भीर चिन्तन किया जाने लगा कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम एव पचवर्षीय योजनाओ को कैसे सफल बनाया जाये, इसी क्रम मे योजना आयोग की योजना कार्यक्रमो की समिति ने श्री बलवन्त राय महता की अध्यक्षता मे एक अध्ययन दल बनाया जिसे उक्त समस्या पर सर्वांगीण दृष्टि स विचार कर अपना सुझाव प्रस्तुत करने को कहा गया।

बलवत राय मेहता समिति ने अनुशसा की कि राजनीतिक सत्ता का उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर विकेन्द्रीकरण कर दिया जाये ताकि विकास कार्यक्रमो की योजना बनाने एव उन्हे कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व स्थानीय क्षेत्र के चुने हुए प्रतिनिधियो का हो जाय। बलवत राय मेहता ने इस अनुशसा को प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया। स्थानीय स्वशासन के विद्वानो ने मेहता प्रतिवेदन को लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा पर एक वैधानिक प्रपत्र स्वीकार किया है जो इस अवधारणा के सिद्धान्त और व्यवहार दोनो की समुचित अभिव्यक्ति अपने कलेवर मे समाविष्ट करता है।

12 जनवरी, 1958 को राष्ट्रीय विकास परिषद ने बलवन्त राय मेहता समिति की अभिशसाओ को यथारूप स्वीकार कर लिया। स्थानीय स्वायत्त शासन की केन्द्रीय समिति ने भी अपनी स्वीकृति इन अनुशसाओ को प्रदान कर दी। मेहता समिति द्वारा प्रस्तुत अभिशसाओ मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का जो प्रतिमान प्रस्तुत किया गया उसे कालान्तर मे पचायतीराज के नाम से जाना गया। केन्द्र सरकार ने विकेन्द्रीकरण हेतु पचायती राज की इस योजना

इस योजना को एक आदर्श प्रतिमान के रूप में स्वीकार तो कर लिया किंतु यह प्रत्येक राज्य की इच्छा पर छोड दिया गया कि वे पचायती राज को जिस रूप मे चाहे अपने यहाँ अपना लें। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पचायती राज की यह योजना स्थानीय स्वायत्त शासन की योजना है और स्थानीय स्वायत्त शासन चू कि राज्य सूची का विषय है इसलिए केन्द्र सरकार ने अपनी शक्तियो की सवैधानिक सीमाओ को पहचानते हुए समस्त राज्यो के लिए एक आदर्श ढाचा तो सुझा दिया किंतु उसे अपनाने के लिए राज्यो को स्वाभाविक और अपेक्षित स्वायत्तता दे दी गई। किंतु इस प्रतिमान के कुछ मौलिक सिद्धान्त निर्धारित कर दिये गये, जिन्हें ध्यान मे रखने का आग्रह राज्यो से किया गया।

पचायती राज के मौलिक सिद्धान्त

1. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु प्रस्तावित पचायती राज की योजना ग्राम से लेकर जिला स्तर तक तीन स्तरीय होनी चाहिये। ये सस्थाए जीवत रूप से एक दूसरे से सबधित रहे।
2. इन सस्थाओ को, शक्ति और दायित्वो का वास्तविक हस्तान्तरण होना चाहिए।
3. इन सस्थाओ को योग्य बनाने के लिए तथा उत्तरदायित्वो के निर्वाह को आसान बनाने के लिए पर्याप्त वित्तीय स्रोत् हस्तान्तरित किये जाने चाहिए।
4. इन सस्थाओ को समस्त विकास कार्यक्रमो के सम्पादन का दायित्व दिया जाये।

प्रजातात्रिक विकेन्द्रीकरण की इस योजना को पचायती राज के रूप मे राजस्थान ने सबसे पहले अपनाया। इस योजना का उद्घाटन देश के प्रथम प्रधान-मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर नगर मे 2 अक्टूबर, 1959 को एक विशाल जन समूह के समक्ष दीप जला कर किया। इसके उपरात आन्ध्र-प्रदेश ने एक नवम्बर, 1959 को इस योजना को लागू किया। कालान्तर मे देश के अधिकाश राज्यो ने इस योजना को अगीकार कर लिया है।

मेहता समिति द्वारा सुझाया गया ढांचा मूल रूप से ग्रामीण क्षेत्रो के नागरिकों की, सरकारी विकास कार्यों मे सहभागिता को सुनिश्चित करने की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया था। बलवन्त राय मेहता की उक्त योजना को पंचायती राज के त्रिस्तरीय ढाचे के रूप में जाना जाता है। ये तीन स्तर है :

1. ग्राम पचायत-ग्राम स्तर पर,
2. पचायत समिति-खण्ड स्तर पर, तथा
3. जिला परिषद-जिला स्तर पर।

मेहता समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की इस त्रिस्तरीय योजना के कार्य, क्षेत्र, शक्तियाँ, वित्त, कर्मचारी वर्ग तथा उन पर नियन्त्रण इत्यादि का समूचा विवरण अपने प्रतिवेदन मे सुझाया था जिसका सारांश सपेक्ष मे यहाँ दिया जा रहा है।

1. ग्राम पचायत

मेहता समिति ने सुझाया था कि प्रत्येक ग्राम के स्तर पर एक ग्राम पचायत होगी जिसका निर्माण वयस्क मताधिकार द्वारा किया जायगा किन्तु स्त्रियो तथा अनुसूचित जातियो तथा जन जातियो के सदस्यो के न चुने जाने की स्थिति मे प्रत्येक वर्ग से दो-दो सदस्यो का सहवरण किया जायेगा। ग्राम पचायत निम्नलिखित अनिवार्य कार्यों का सम्पादन करेगी :

1. घरेलू उपयोग के लिए जल की व्यवस्था,
2. गलियो, नालियो और मार्गों की सफाई
3. नालियो, मार्गों और तालाबो का रखरखाव,
4. गाँवो मे प्रकाश की सार्वजनिक व्यवस्था,
5. भूमि का प्रबन्ध,
6. सकट मे सहायता प्रदान करना,
7. गाँव की सडको, पुलो और नालो का समुचित रखरखाव,
8. पशुओ से सबधित अभिलेखो का सरक्षण
9. प्राथमिक पाठशालाओ का पर्यवेक्षण,
10. पिछड़े हुए वर्गों का कल्याण
11. आकडो का सग्रह तथा सरक्षण।

मेहता समिति ने इस बात पर बल दिया था कि अब राजस्व वसूलने का कार्य सरकारी कर्मचारी 'पटवारियो' से लेकर ग्राम पचायत को दिया जा सकता है। समिति ने सुझाव दिया था कि ग्राम पचायतें ग्रामीण क्षेत्रो मे समस्त विकास परियोजनाओं और अन्य कार्यक्रमो मे पचायत समिति की अभिकर्ताओ के रूप मे कार्य करेंगी।

समिति ने ग्राम पचायत की आय के अग्रलिखित साधन सुझाए थे

1. सम्पत्ति कर अथवा गृह कर,
2. हाटों तथा बाजारों पर कर,
3. प्रकाश शुल्क
4. सफाई कर,
5. जल कर,
6. गाड़ियों, साइकिलों, नावों, बोझा उठाने वाले पशुओं आदि वाहनों पर कर,
7. चुंगी अथवा सीमा कर,
8. मवेशी खानों से आय,
9. स्थानीय क्षेत्रों में कार्यरत कसाई खानों पर शुल्क,
10. स्थानीय क्षेत्र में बिकने वाले पशुओं पर शुल्क,
11. पंचायत समिति तथा राज्य सरकार से अनुदान।

समिति ने इस बात पर पर्याप्त ध्यान दिया था कि ग्रामीण क्षेत्रों में करों की वसूली संतोषजनक नहीं है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए समिति ने अभिशंसा की थी कि कानून द्वारा यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि ग्राम पंचायत का जो सदस्य कर अदा न करे उसकी सदस्यता 6 माह में स्वतः समाप्त हो जाये। ग्रामीण क्षेत्र में कर का भुगतान समय पर करने वाले नागरिकों को भी आगामी पंचायत चुनावों में मतदान से वंचित किया जा सकता है। ग्राम पंचायतों के बजट की स्वीकृति तथा निरीक्षण एवं उनके कार्यकलापों पर नियन्त्रण का अधिकार समिति द्वारा पंचायत समिति में निहित किया गया था।

2 पंचायत समिति

बलवंत राय मेहता समिति ने खण्ड या ब्लॉक स्तरीय निकाय को "पंचायत समिति" का नाम दिया है। अपनी विस्तरीय योजना में समिति ने इस खण्ड स्तरीय निकाय को सर्वाधिक प्रभावशाली निकाय के रूप में परिकल्पित किया था। समिति ने पंचायत समिति को एक सांविधिक और निर्वाचित संस्था के रूप में प्रस्तुत किया था जिसके कार्य विस्तृत हैं और पर्याप्त वित्तीय साधनों सहित आवश्यक कार्यकारी शक्तियां उसके पास हैं। समिति का मत था कि यह संस्था ग्रामीण क्षेत्रों में एक शक्तिशाली और कार्यकारी निकाय के रूप में उभरेगी जिसे राज्य सरकार द्वारा निरूपित समस्त विकास योजनाओं के निष्पादन का व्यावहारिक दायित्व दिया जायेगा। इस संस्था को राज्य सरकार के हस्तक्षेप और व्यापक नियन्त्रण से मुक्त होकर कार्य करने की अभिशंसा की गई थी; यद्यपि इसके पथ प्रदर्शन का दायित्व राज्य सरकार में निहित किया गया था।

पंचायत समिति का अधिकार क्षेत्र लगभग एक तहसील के आकार जितना होता है। समिति ने विचार विमर्श के बाद यह अनुभव किया था कि ग्राम पंचायत-क्षेत्रफल, जनसख्या और वित्तीय संसाधनों की दृष्टि में छोटी इकाई है और जिला स्तर की संस्था जनता से इतनी दूर होती है कि जन साधारण उसके कार्य कलाप में सक्रिय भाग नहीं ले पाता है। इसीलिए समिति ने संस्तुति की थी कि पंचायत समिति का अधिकार क्षेत्र वही होना चाहिए जो एक विकास खण्ड का है। एक विकास खण्ड में 20 से 30 और अधिकतम 40 ग्राम पंचायतें हों, जिनकी प्रत्येक की जनसख्या 4 हजार से अधिक न हो।

कार्य क्षेत्र एवं वित्त

पंचायत समिति ग्रामीण स्थानीय शासन की सक्रिय और सशक्त इकाई के रूप में कार्य करने के अतिरिक्त विकास खण्ड में कृषि, पशु पालन, सहकारिता, लघु सिंचाई, ग्रामीण उद्योग, प्राथमिक शिक्षा स्थानीय संचार साधन, स्वास्थ्य, चिकित्सा अथवा अन्य स्थानीय सुविधाओं का सम्पादन करेगी। समिति ने यह मत व्यक्त किया था कि जो कार्य क्षेत्र पंचायत समिति को दे दिया जाये उसमें राज्य सरकार कोई कार्य नहीं करेगी और किन्हीं विशेष परिस्थितियों में यदि उसे कुछ करना आवश्यक जान पड़े तो वह पंचायत समिति के माध्यम से ही करेगी। राज्य सरकार की भूमिका पंचायत समिति के सन्दर्भ में, मार्गदर्शन, पर्यवेक्षण, उच्च स्तरीय आयोजन तथा वित्तीय सहायता प्रदान करने तक सीमित रहनी चाहिए।

बलवंत राय मेहता समिति ने पंचायत समिति के वित्तीय आय के निम्नलिखित साधन अपने प्रतिवेदन में सुझाये थे

1. विकास खण्ड में जो भू-राजस्व राज्य सरकार द्वारा वसूल किया जाये उसका एक निश्चित भाग पंचायत समिति को स्थानान्तरित हो।
2. भू-राजस्व, जल कर आदि पर उपकर,
3. सड़कों तथा पुलों पर चुंगी,
4. अचल सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर लगाये गये शुल्क पर अधिभार,
5. व्यवसायों तथा उद्यमों पर कर,
6. घाटों, मत्स्य क्षेत्रों से मिलने वाला किराया और लाभ,
7. मनोरंजन के साधनों पर कर,
8. तीर्थयात्री कर,
9. प्राथमिक शिक्षा सबंधी उपकर,

10. मोटर गाड़ी कर का एक निश्चित भाग भी राज्य सरकार द्वारा पचायत समिति को स्थानान्तरित हो,
11. मेलो और हाटो से होने वाली आय,
12. जनता से विभिन्न प्रकार की आय,
13. सरकार से अनुदान।

समिति ने यह अभिशसा की थी कि खण्ड क्षेत्र मे केन्द्र सरकार या राज्य सरकार जो भी विकास परियोजनाए कार्यान्वित करना चाहती है, अनन्य रूप से उनका निष्पादन पचायत समिति के माध्यम से ही होना चाहिए। पचायत समिति का एक निर्वाचित अध्यक्ष होना चाहिए। खण्ड की सभी पचायतो के सदस्य पचायत समिति के निर्वाचन मे भाग लें। पचायत समिति मे 20 से अधिक सदस्य नही होन चाहिए। निर्वाचित सभा मे दो महिलाओ का सहवरण किया जाये जिन्हे स्त्रियो तथा बच्चो से सबधित सार्वजनिक कार्यों मे रुचि और अनुभव हो। अनुसूचित जातियो तथा जन जातियो मे से भी सदस्यो का सहवरण किया जाये। पचायत समिति दो ऐसे स्थानीय निवासियो को ले सकती है जिनका प्रशासन, सार्वजनिक जीवन अथवा ग्रामीण विकास का अनुभव समिति के लिए लाभ सिद्ध हो सके। पचायत समिति के क्षेत्र मे कार्यशील सहकारी समितियो को भी पचायत समिति का प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है। पचायत समिति का कार्यकाल पाच वर्ष सुझाया गया था।

मेहता समिति ने यह सिफारिश की थी कि पचायत समिति के कार्यों मे उच्च स्तर से कोई हस्तक्षेप नही होना चाहिए, किंतु साथ ही उन्हे पूर्णतः नियन्त्रण मुक्त रखने के विचार से भी समिति सहमत नही थी। यदि पचायत समिति अपने दायित्वो का जन हित मे सम्पादन नही करे या पचायत समिति सविधान का उल्लघन करे या उसके कार्य, देश मे प्रवर्तित कानूनो के विरुद्ध हो तो इन स्थितियो मे राज्य सरकार पचायत समिति को निलम्बित, स्थगित या अधिक्रमित (भग) कर सकने के लिए अधिकृत होगी।

पचायत समिति मे दो प्रकार के कर्मचारी होगे। कुछ वे जो पचायत समिति मे नियुक्त होगे तथा कुछ वे जो ग्राम स्तर पर ही कृषि, सिंचाई, सड़को, इमारतो, लोक स्वास्थ्य, पशु पालन, सहकारिता, सामाजिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा इत्यादि का निरीक्षण करने वाले विभिन्न तकनीकी तथा प्रसार अधिकारी नियुक्त किये जाएँगे। समिति का मत था कि खण्ड विकास अधिकारी मे समस्त सवैधानिक और प्रशासनीय शक्तियां अन्तर्निहित होगी जिनका उपयोग वह उसी

तरह कर सकेगा जिस प्रकार नगरपालिका में ये शक्तियां कार्यकारी अधिकारी कमिश्नर को मिली हुई होती है। ये सभी अधिकारी राज्य सरकार के कर्मचारी सवर्ग में से लिए जाने चाहिए, इनकी सेवाएं राज्य सरकार से इस संस्था में प्रतिनियुक्ति पर समझी जायेगी। जब तक यह अधिकारी पंचायत समिति में नियुक्त होंगे उनका वेतन एवं अन्य समस्त सुविधाएं पंचायत समिति वहन करेगी। समिति में प्रस्तावित प्रसार अधिकारी तकनीकी रूप से अपने सबंधित जिला कार्यालय से नियन्त्रित होंगे और प्रशासनिक दृष्टि से वे खण्ड विकास अधिकारी के नियन्त्रण में कार्य करेंगे; दूसरी ओर ग्राम स्तरीय कर्मचारियों—ग्रामसेवक, प्राथमिक शाला के अध्यापक इत्यादि की भर्ती जिला स्तर पर की जानी चाहिए और उन्हें जिले की पंचायत समितियों में नियुक्ति दी जाये। ग्राम स्तरीय ये समस्त कार्मिक खंड विकास अधिकारी के पूर्ण नियन्त्रण में कार्य करेंगे।

3 जिला परिषद

बलवन्त राय मेहता समिति का विचार था कि जिला परिषद केवल पर्यवेक्षणीय इकाई के रूप में स्थापित की जाए। चूंकि जिला प्रशासन की एक इकाई बनी हुई है और इस इकाई में कार्यरत विभागों के सामंजस्य की दृष्टि से इसका कोई विकल्प नहीं है, इसलिए जिले के अन्तर्गत बनाई जाने वाली पंचायत समितियों के निर्देशन, पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के लिए जिला स्तर पर एक ऐसा संगठन स्थापित किया जाए जो इनमें सामंजस्य और सहयोग स्थापित कर सके। मेहता समिति ने जिला परिषद की अभिकल्पना इसी उद्देश्य के लिए की थी और इसीलिए समिति द्वारा जिला परिषद को कोई कार्यकारी शक्तियां नहीं दी गई हैं। जिला परिषद का अध्यक्ष जिले की समस्त पंचायत समितियों के अध्यक्षों, जिले के विधायकों, सांसद सदस्यों इत्यादि के द्वारा चुना जाना चाहिए। जिला परिषद में जिला स्तरीय समस्त महत्वपूर्ण विभागों—चिकित्सा लोक स्वास्थ्य, कृषि, पशु चिकित्सा जन स्वास्थ्य अभियान्त्रिकी विभाग, शिक्षा, पिछड़े वर्गों का कल्याण, सार्वजनिक निर्माण तथा अन्य विकास विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी भी सम्मिलित किये जाने चाहिए। समिति ने जिला परिषद के सभापति के रूप में जिलाधीश और उसके एक अन्य कार्यकारी अधिकारी को सचिव बनाये जाने की सिफारिश की थी।

समिति ने जिला परिषद के निम्नांकित कार्य सुझाये थे

1 जिले की पंचायत समितियों के बजट का परीक्षण और अनुमोदन,

2. राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त धन राशि का अधीनस्थ पचायत समितियो मे न्याय सगत वितरण,
3 जिले की पचायत समितियो की योजनाओ को एकीकृत करते हुए स्वीकृति प्रदान करना,
4 पचायत समितियो द्वारा प्रस्तुत अनुदान प्राप्ति के आवेदनो को अग्रसरित करना,
5. जिले की समस्त पचायत समितियो के कार्यों का पर्यवेक्षण एव नियन्त्रण ।

इस प्रकार बलवत राय मेहता समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की जो त्रिस्तरीय सरचना प्रस्तुत की थी उसके स्वरूप का साराश उपर्युक्त पक्तियो मे व्यक्त किया गया है ।

व्यवहार मे अनुभूत विकृतियाँ

प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा पर अपना महत्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय स्वय बलवत राय मेहता समिति इसकी अन्तर्निहित विसगतियो, सीमाओ और सफलता के सभावित खतरो से अवगत थी । समिति की मान्यता थी कि प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रस्तावित योजना को कार्यान्वित कर दिए जाने से प्रशासन की कुशलता मे ह्रास हो जायेगा । यद्यपि उनकी मान्यता यह भी थी कि प्रशासनिक कुशलता की यह अवनति, इन सस्थाओ के सस्थागत और संगठनात्मक विकृतियो को दूर कर दिए जाने से, समाप्त हो जायेगी । समिति ने इस दिशा मे दूसरा भय इन सस्थाओ मे भ्रष्टाचार व्याप्त हो जाने के बारे मे व्यक्त किया था । समिति ने लोगो की अज्ञानता, अधिकारियो की चालाकी और समाज मे विकसित होने वाले विशिष्ट अधिकार सम्पन्न समूहो इत्यादि को सभावित भ्रष्टाचार के कारको के रूप मे रेखाकित किया था । समिति ने यह सभावना भी व्यक्त की थी कि लोकतान्त्रिक सस्थाओ के चुनावो से समाज और ग्रामीण क्षेत्रो मे गुटबाजी को प्रोत्साहन मिलेगा ।[11]

इन तथ्यो से यह स्पष्ट हो जाता है कि बलवत राय मेहता समिति अपने प्रतिवेदन मे प्रस्तावित लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के कार्यान्वयन के मार्ग मे सभावित कठिनाइयो और उसकी सीमाओ से भली भांति अवगत थी । हमारे राज्यो ने मेहता समिति द्वारा प्रस्तावित लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की पचायती राज की जो योजना अपने यहाँ कार्यान्वित की है उनके व्यावहारिक

अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि मेहता समिति ने अपने प्रतिवेदन मे जिन विकृतियो का अनुमान व आँकलन किया था, वे सही पायी गयी हैं। पचायती राज के सव्यवहार मे, देश भर मे जो विकृतियाँ अनुभव की गई है वे बिन्दुवार इस तरह व्यक्त की जा सकती हैं :

1. मेहता समिति ने अपने प्रतिवेदन मे यह भय व्यक्त किया था कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना कार्यान्वित कर दिए जाने मे प्रशासन मे ह्रास होगा। देश भर मे पचायती राज सस्थाए वास्तव मे अकुशलता की प्रतीक बनकर रह गई हैं। ये सस्थाए जनतान्त्रिक दबावो के कारण प्राय प्रशासनिक कुशलता को तिलाजलि दे बैठी हैं। लोकतान्त्रिक रूप मे चुने हुए प्रतिनिधि प्रशासनिक कार्यकुशलता के किसी मापदण्ड या मर्यादा को स्वीकार करने के लिए तैयार ही नही होते हैं जिनका अनिवार्य परिणाम प्रशासनिक कुशलता के पराभव मे होता है।

2. इन सस्थाओ मे व्यापक भ्रष्टाचार फैल गया है लोकतान्त्रिक रूप मे चुने हुए प्रतिनिधियो ने नौकरशाही के साथ ऐसा अनुपम सामजस्य बिठाया है कि इन सस्थाओ के ये दोनो घटक मिलकर प्राय भ्रष्टाचार करने और उससे बचने के उपाय ढूढते रहते हैं।

3. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की पचायती राज की योजना कार्यान्वित होने मे समय-समय पर होने वाले पचायती राज चुनावो से ग्रामीण क्षेत्रो मे सौहार्द का सामान्य वातावरण नष्ट हो गया है और ग्रामीण क्षेत्रो मे गुटबाजी का माहौल बन गया है। इन दोनों ही विकृतियो का मेहता समिति ने अपने प्रतिवेदन मे भी पूर्वानुमान कर लिया था।

4. पचायती राज की योजना को मेहता समिति के प्रतिवेदन की अपेक्षाओ के अनुकूल यथारूप कार्यान्वित करने मे राज्य सरकारो का दृष्टिकोण भी शिथिल बन पड़ा है। उसका यह व्यवहार निम्नांकित बिन्दुओ मे प्रमाणित होता है

(अ) राज्य सरकारें पचायती राज सस्थाओ के चुनाव समय पर नही कराती है। कहीं-कहीं तो चुनाव 3 की बजाय 13 वर्ष तक नही कराए गए है। राज्य सरकारो की यह मनोवृत्ति लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना के प्रति उनकी उदासीनता का प्रमाण मानी जा सकती है।

(ब) समस्त राज्य सरकारें इस तथ्य से भली भांति परिचित है कि पचायती राज सस्थाओ की आर्थिक दशा अत्यन्त कमजोर है और स्वतन्त्र रूप से

उनके आर्थिक ससाधनो का अभाव है। इस तथ्य से परिचित होते हुए भी केन्द्र सरकार या राज्य सरकारें इस स्थिति मे सुधार के लिए कोई ठोस उपाय नही कर रही है।

5 लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए पचायती राज की योजना प्रस्तुत करते हुए मेहता समिति ने यह भी मत व्यक्त किया था कि विकास कार्यों के साथ जनता की अधिकतम सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए यह योजना प्रस्तुत की जा रही है किन्तु व्यवहार में उनकी यह आशा फलीभूत होती प्रतीत नही हुई। वस्तुत. चुनाव के समय जनता राजनीतिक रूप मे किंचित अधिक सक्रिय हो जाती है किन्तु चुनावो के पश्चात विकास कार्यक्रमो मे जो भागीदारी, जागृति और सहभागिता नागरिको से अपेक्षित है उसका विकास ये सस्थाए नही कर पाती हैं। यहां यह व्यक्त करने मे कोई सकोच नही है कि पचायती राज, मेहता समिति के मूल उद्देश्य "विकास कार्यों मे नागरिको की सहभागिता" को साकार नहीं कर पाया है।

6. पचायती राज की सस्थाओ को ग्रामीण अचलो मे विकास का वाहक बनाना मेहता समिति के प्रतिवेदन का दूसरा लक्ष्य था किन्तु यह लक्ष्य भी पूर्ण रूप से सार्थक नही हो पाया है। प्रथम तो राज्य सरकारो ने पचायती राज की सस्थाओ को विकास के अधिक दायित्व ही नही दिए और यदि यत्किंचित दायित्व दिए भी हैं तो पचायती राज की सस्थाएं उन्हें सतोषजनक सीमा तक पूर्ण नही कर सकी है। यहां उदाहरण के रूप मे यह उल्लेख किया जा सकता है कि राजस्थान मे पचायत समितियो को ग्रामीण क्षेत्रो मे प्राथमिक शिक्षा के सचालन का दायित्व सौंप दिया है। व्यवहार मे ग्रामीण क्षेत्रो मे पचायती राज द्वारा सचालित प्राथमिक शिक्षा की जो दुर्दशा हो रही है उसे राजस्थान के ग्रामवासी ही जानते है।

7. पचायती राज की सस्थाओ को उत्तरदायित्व का जो आत्मबोध होना चाहिए था वह भी नही हो पाया है।

8. पचायती राज की सस्थाएं कितनी निष्क्रिय हैं इस बात का अनुमान इस तथ्य से लगाया जाता है कि ग्राम सभा की वर्ष मे नियमित बैठक बुलाने का कार्य पचायती राज की ये सस्थाएं व्यवहार मे प्राय. करती ही नही हैं जबकि सरकारी प्रतिवेदनो मे ये बैठकें प्रत्येक गांव मे वर्ष मे दो बार आयोजित की हुई पाई जाती हैं। व्यवहार और सिद्धान्त का

यह अन्तर इन संस्थाओं के कार्यकरण की विसंगतियों को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

9. ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता के माध्यम से स्वावलम्बन का सपना भी इसीलिए अधूरा रह गया कि सहकारिता के आन्दोलन को जन-जन तक पहुंचाने का कार्य पंचायती राज संस्थाओं को दे दिया गया।

10. पंचायती राज की संस्थाएं संविधान में परिकल्पित सामाजिक न्याय की दिशा में अपनी भूमिका को रेखांकित कर पाने में असफल रही हैं। यही कारण है कि भारत के संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित आदर्श, परिकल्पना के स्तर तक ही रह गया है, यथार्थ में उन्हें कार्यान्वित नहीं किया जा सका है।

पंचायती राज की संस्थाओं को सृजित करने के मूल में प्रमुख उद्देश्य लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को साकार रूप देना था। किन्तु उपरोक्त अनुभूत कमियों या विकृतियों के कारण यह सपना पूरी तरह मूर्तरूप नहीं ले पाया है। अतः आवश्यकता यह है कि इन विकृतियों का यथासंभव शीघ्र निराकरण किया जाय ताकि देश की जनता गांधीजी के ग्राम स्वराज्य और लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के सपने को पूर्णतः साकार होता देख सके।

पंचायती राज की अब तक की कहानी सफलता की अपेक्षा असफलता की अधिक है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के व्यवहार का यह पक्ष भविष्य के लिए सर्वाधिक चिन्तन की चेतावनी देता है।

सन्दर्भ

1. वेबस्टर्स की "न्यू ट्वन्टीयथ सेंचुरी डिक्शनरी आव इंगलिश लैंगवेज" (इंडियन एडीशन) 1960, पृ 795 पर 'ग्रासरूट्स" का अर्थ–जिसका उद्भव आम आदमी द्वारा उन्हीं के बीच हो–दिया गया है अर्थात् वह राजनीतिक आन्दोलन जो सामान्य जन के द्वारा अपने स्तर पर शुरू किया जाये।
2. आर बी जैन, पंचायती राज, वाल्यूम आफ आई आई पी ए, नई दिल्ली पृ 11.

3. रिपोर्ट आफ बलवत राय मेह्ता कमेटी ऑन डेमोक्रेटिक डिसेंटरलाइजेशन; सामुदायिक विकास एव सहकारिता मत्रालय, भारत सरकार, 1957.
4. उद्धृत मास्टर्स ऑव पोलिटिकल थाट, सम्पादित लेन डब्लू. लेनीस्टर, वॉल्यूम 111, जॉर्ज एच. हैरप एण्ड क. लि. लन्दन, 1959. पृ 141.
5 इकबाल नारायण, डेमोक्रेटिक डिसेंट्रेलाइजेशन : द आइडिया, द इमेज एण्ड द रियलिटी, सकलित आर. बी. जैन, पूर्वोक्त, पृ.11
6 उपरोक्त
7. उपरोक्त, पृ 11-12.
8. उपरोक्त, पृ 12-13
9 उपरोक्त, पृ 14.
10. पॉल मेयर, एडमिनिस्ट्रेटिव आर्गेनाइजेशन, उद्धृत, उपरोक्त, पृ 16.
11. रिपोर्ट आव दी टीम फॉर दी स्टडी आव कम्युनिटी डवलपमेट एण्ड नेशनल एक्सटेंशन सर्विस, उद्धृत, आर. बी. जैन, पूर्वोक्त, पृ. 19-20



7

जिला परिषद्

भारत मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की जो त्रि-स्तरीय योजना बलवत-राय मेहता ने प्रस्तुत की थी उसमे जिला परिषद सर्वोच्च इकाई है।[1] इसे ग्रामीण स्थानीय शासन की शिखर इकाई भी माना जाता है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, जिला परिषद, जिला स्तर पर गठित एक ऐसा स्थानीय निकाय है, जो स्वतन्त्रता के पश्चात से जिलो मे विकास की योजनाओ और कार्यक्रमो के निष्पादन मे पर्यवेक्षकीय भूमिका का निर्वाह कर रहा है। बलवत राय मेहता समिति (1957) ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की जो योजना प्रस्तुत की उसमे हम देख चुके हैं कि खण्ड स्तर पर स्थापित पचायत समिति को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसीलिए समिति का यह विचार था कि जब खण्ड स्तर पर एक प्रभावशाली पचायत समिति होगी तो जिला स्तर पर किसी प्रभावशाली निकाय की आवश्यकता नही होगी। समिति ने यह मत भी व्यक्त किया कि यदि दोनो स्तरो पर ही प्रभावशाली सस्थाए स्थापित कर दी गयी तो उनमे परस्पर टकराव, तनाव और सघर्ष की सभावनाए बढ जाएगी। इसलिए जिला स्तरीय इकाई जिला परिषद को उन्होने एक प्रभावहीन और केवल पर्यवेक्षकीय इकाई के रूप मे प्रस्तुत किया है। समिति का विचार था, चूकि जिला लम्बे समय से प्रशासन की इकाई बना हुआ है और दूर-दराज के क्षेत्रो मे कार्य करने वाले विभिन्न शासकीय विभागो के मध्य सामजस्य स्थापित करता आ रहा है, इस जिले के अन्तर्गत गठित होने वाली पचायत समितियो के लिए यह आवश्यक होगा कि जिला स्तर पर कोई ऐसी सरचना हो, जो जिले की पचायत समितियो के मध्य प्रशासकीय सामजस्य स्थापित कर सके। इसीलिए समिति ने जिला परिषद की स्थापना का सुझाव दिया था।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि बलवतराय मेहता समिति ने लोक-तांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस सर्वोच्च इकाई 'जिला परिषद' को सीमित कार्यक्षेत्र

और दायित्व सौंपने की अपेक्षा इसे अपने अधीन गठित की जाने वाली पचायत समितियों एव उनके क्षेत्रो की ग्राम पचायतो के निदेशन, पर्यवेक्षण, नियन्त्रण और समन्वय स्थापित करने का कार्य ही दिया था।

महाराष्ट्र और गुजरात को छोड कर सभी राज्यो ने पचायत समितियों को, पचायती राज सरचना की प्रमुख प्रशासकीय इकाई बनाना स्वीकार कर लिया। महाराष्ट्र सरकार का यह विचार था कि खण्ड स्तर पर उपलब्ध प्रशासनिक और तकनीकी ज्ञान तथा तत्सम्बन्धी नियुक्त कार्मिक वर्ग विकास के कार्यक्रमो को क्रियान्वित करने के लिए समुचित और पर्याप्त नही होगे। इस कार्य के लिए जिला स्तर पर कार्यरत सस्था ही पूर्णत उपयुक्त होगी क्योकि इसके पास न केवल आवश्यकता के अनुरूप प्रशासनिक और तक्नीकी कर्मचारी उपलब्ध होगे अपितु जिले मे समन्वित विकास के लिए उपयुक्त तन्त्र और आवश्यक साधन भी होगे। महाराष्ट्र सरकार ने बी आर. मेहता समिति की अनुशसाओ से असहमत होते हुए यह निर्णय किया कि यदि हम राजनीतिक शक्ति का ऊपर से नीचे की ओर वास्तविक विकेन्द्रीकरण करना चाहते हैं तो जिला स्तर की सस्था को शक्तिशाली बनाना उचित रहेगा। इसी प्रकार गुजरात सरकार ने भी महाराष्ट्र जैसा ही निर्णय किया और यह तर्क दिया कि जिला स्तरीय सस्था प्रशासन के कार्यों को प्रभावी और कुशलतापूर्ण तरीके से करने मे न केवल सक्षम है बल्कि समन्वय स्थापित करने मे जो व्यावहारिक अनुभव इसे प्राप्त है वह किसी अन्य सस्था के पास नही है। इस सस्था ने अब तक नागरिको को श्रेष्ठ प्रशासन उपलब्ध कराया है, इसलिए जिला स्तरीय इकाई को ही अधिक शक्ति, दायित्व और महत्व दिया जाना व्यावहारिक होगा।

बलवतराय मेहता समिति द्वारा प्रस्तुत अनुशसाओ को विचार-विमर्श और निर्णय हेतु राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष भी प्रस्तुत किया गया था। जिसने यह निर्णय लिया कि पचायती राज व्यवस्था त्रिस्तरीय ही होनी चाहिए और इन तीनो सस्थाओ मे परस्पर सहसम्बन्ध भी स्थापित किये जाने उचित होगे। राष्ट्रीय विकास परिषद ने यह निर्णय भी लिया कि यह बात राज्यो पर छोड दी जानी चाहिए कि वे ग्रामीण विकास की दृष्टि से अपने राज्यो मे विकास के कार्यक्रमो को क्रियान्वित करने के लिए प्रशासकीय जिम्मेदारी चाहे तो पचायत समितियो को या जिला परिषदो को सुविधानुसार सौंप सकते हैं।

जिला परिषद एक निगम निकाय है। इस नाते इसका अपना शाश्वत उत्तराधिकार है और उसकी अपनी मुहर होती है, वह किसी पर मुकदमा चला

सकती है और उस पर भी मुकदमा चलाया जा सकता है। अपने इस कानूनी व्यक्तित्व के आधार पर वह किसी के साथ संविदा करने के लिए अधिकृत होती है। इस प्रकार कानून की दृष्टि से जिला परिषद का एक विधिक व्यक्तित्व है और एक व्यक्ति की तरह वह कानूनी अधिकारों और शक्तियों का उपभोग करने के लिए सक्षम मानी जाती है।

भारत के सभी राज्यों में इसका नाम एक जैसा नहीं है। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में इसे जिला परिषद ही कहते हैं। वहीं तमिलनाडु और कर्नाटक में उसे जिला विकास परिषद और आसाम में महकमा परिषद के नाम से जाना जाता है। गुजरात सरकार द्वारा पंचायत अधिनियम का 1986 तक संशोधित जो प्रारूप प्रकाशित किया गया है उसके अनुसार जिला स्तरीय इकाई का जिला पंचायत का नाम दिया हुआ है।[2] इनकी संरचना का प्रायः सभी राज्यों में इस तरीके से निर्धारित किया हुआ है कि तीनों ही निकाय अवयवी रूप से एक दूसरे से सम्बद्ध रहें।

जिला परिषदों का गठन तथा संरचना

जिला परिषद चूंकि पंचायती राज संरचना की सर्वोच्च इकाई है इसलिए देशभर में इसकी संरचना में मोटे तौर पर निम्नलिखित सदस्य होते हैं[3]

1. जिले की पंचायत समितियों के अध्यक्ष
2. जिले के सभी निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले संसद सदस्य (लोकसभा तथा राज्यसभा दोनों के सदस्य)
3. जिले के सभी निर्वाचन क्षेत्रों के निर्वाचित विधान मण्डल के सदस्य (यदि राज्य में उच्च सदन हो तो उसके सदस्य भी),
4. सहकारी समितियों का एक प्रतिनिधि, सामान्यतः जिला सहकारी समिति का अध्यक्ष,
5. एक निश्चित संख्या में परिगणित जातियों और परिगणित जनजातियों के सदस्य,
6. कुछ सहयोजित सदस्य जिन्हें प्रशासन, सार्वजनिक जीवन अथवा ग्राम विकास का अनुभव हो।

राजस्थान में संरचना

राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम के अनुसार

राजस्थान राज्य की सरकार, राज-पत्र मे अधिसूचना द्वारा किसी जिले के लिए उसमे अंकित दिनाक से एक जिला परिषद का गठन कर सकती है।[4]

प्रत्येक जिला परिषद उस जिले का नाम धारण करेगी जिसके लिए वह गठित की जाए और शाश्वत उत्तराधिकार तथा मुद्रा से युक्त एक निगमितनिकाय होगा, जो सम्पत्ति को अवाप्त करने, धारण करने तथा उसके निपटने एव सविदा करने की शक्ति से सम्पन्न होगी और वह अपने निगमित नाम मे वाद संस्थित कर सकेगी तथा उसके विरुद्ध भी वाद-संस्थित किया जा सकेगा।[5]

प्रत्येक जिला परिषद की सरचना उसके चार प्रकार के सदस्यो से गठित होती है जो इस प्रकार हैं :[6]

पदेन सदस्य

1. जिले की सभी पचायत समितियो के प्रधान,
2. जिले मे रहने वाला राज्यसभा का सदस्य,
3. जिले से निर्वाचित लोकसभा सदस्य,
4. जिले से निर्वाचित विधान सभा के सदस्य,
5. जिला विकास अधिकारी (जिलाधीश)।

उपरोक्त सभी सदस्यो मे से जिला विकास अधिकारी को जिला परिषद की बैठक मे मताधिकार या किसी निर्वाचन हेतु अभिप्रेत पद को प्राप्त करने का अधिकार नही है।

सहयोजित या सहवृत सदस्य

1. दो महिलाए : यदि पदेन सदस्यो की क्रम सख्या एक से चार तक कोई भी महिला, जिला परिषद की सदस्य नही है या एक महिला, यदि उपरोक्त श्रेणी मे केवल एक ही महिला ऐसी सदस्य है।
2. एक अनुसूचित जाति का सदस्य : यदि पदेन सदस्यो मे, एक से चार तक ऐसा कोई भी व्यक्ति जिला परिषद का सदस्य नही है।
3. एक अनुसूचित जनजाति का सदस्य : यदि इस प्रकार की जनजातियों की जनसख्या जिले की कुल जनसख्या के 5 प्रतिशत से अधिक हो।

सहसदस्य

1. केन्द्रीय सहकारी बैंक का अध्यक्ष या उसका मनोनीत प्रतिनिधि,
2. जिला सहकारी सघ का अध्यक्ष (यदि जिले मे सहकारी सघ हो)

अपर (अतिरिक्त) सदस्य

किसी पचायत समिति का प्रधान या उप-प्रधान यदि प्रमुख पद पर निर्वाचित किया जाता है तो अपने पद पर रहने तक अधिनियम के अनुसार जिला परिषद का अपर सदस्य माना जावेगा।[7]

प्रधान के बारे में कुछ विशेष उपबंध

पचायत समितियों के प्रधान की जिला परिषद की सदस्यता के बारे में निम्नलिखित विशेष उपबंध किये गये हैं :

1. जिला परिषद का सदस्य बनने से इंकार करने पर या ऐसी सदस्यता से त्याग-पत्र देने पर या अन्य कारणों से सदस्य नहीं रहने पर पचायत समिति का कोई प्रधान ऐसा करने की तिथि से प्रधान भी नहीं रहेगा। उसके स्थान पर आने वाला व्यक्ति प्रधान होने से जिला परिषद का पदेन सदस्य हो जावेगा।
2. जब प्रधान का पद रिक्त हो, तो उप-प्रधान जिला परिषद का सदस्य होगा।
3. जब प्रधान और उप-प्रधान दोनों के पद रिक्त (खाली) हों, तो पचायत समिति द्वारा निर्वाचित व्यक्ति (अस्थायी प्रधान) जिला परिषद का सदस्य होगा।[8]

संसद तथा विधानसभा के सदस्यों के बारे में विशेष उपबंध

उस जिले में रहने वाला राज्यसभा का सदस्य जिला परिषद का सदस्य होता है। लोकसभा या विधानसभा के सदस्यों का निर्वाचन क्षेत्र यदि एक से अधिक जिलों में फैला हुआ हो, तो ऐसे सदस्य उन सभी जिलों की जिला परिषदों के सदस्य रहेंगे। यह पदेन सदस्यता है, अतः विधानसभा, राज्यसभा या लोकसभा का सदस्य नहीं रहने पर वह व्यक्ति जिला परिषद का सदस्य भी नहीं रहेगा।

सहयोजन कौन करेगा ?

जिला परिषद के लिए नियमानुसार सहयोजित किये जाने वाले सदस्यों के निर्वाचन में जिला परिषद के निम्नलिखित सदस्य भाग लेते हैं

1. समस्त प्रधान,
2. जिले में रहने वाला राज्यसभा का सदस्य,

3 लोकसभा के सदस्य,
4 विधानसभा के सदस्य ।

इस प्रकार केवल इन्ही सदस्यो को सहयोजन मे मत देने का अधिकार दिया गया है ।

सहयोजन के लिए उम्मीदवार कौन हो सकेगा ?

सहयोजन के लिए निम्न व्यक्ति चुनाव मे पात्र माने गये हैं

1. जो खण्ड के निवासी हो,
2 पचायतो के निर्वाचको और ग्रामसभा के सदस्यो में से हो ।

सहयोजन की प्रक्रिया (तरीका)

अधिनियम के अनुसार सदस्यो के सहयोजन के लिए एक विशेष बैठक बुलाई जावेगी ।[9] सहयोजन की कार्यवाही राजस्थान जिला परिषद (सदस्यो का सहयोजन) नियम 1979, मे दिये गये प्रावधानो के अनुसार सम्पन्न की जाती है । सम्बन्धित जिलाधीश, विनिर्दिष्ट सदस्यो की विशेष बैठक, उन्हे ऐसी बैठक की लिखित सूचना देने के पश्चात, आयोजित करता है । नियमो मे यह प्रावधान भी किया गया है कि विनिर्दिष्ट सदस्यो की किसी रिक्ति के होते हुए भी, सदस्यो का सहयोजन किया जा सकेगा और इस प्रकार किया गया कोई भी सहयोजन, ऐसी रिक्ति के होते हुए भी, विधि मान्य होगा । इस प्रकार आहूत बैठक का सभापतित्व जिलाधीश या अपर जिलाधीश या राज्य सरकार द्वारा तदर्थ रूप से नियुक्त कोई अन्य अधिकारी करेगा जिसे कि जिलाधीश मनोनीत करे ।[10] यदि आवश्यक कोरम की कमी से या किसी अन्य पर्याप्त कारण से यह सहयोजन न हो पाये तो इस प्रकार की बैठक का सभापतित्व कर रहे अधिकारी इस बैठक को अन्य किसी ऐसी दिनाक तक, जो कम से कम सात दिन बाद की हो, स्थगित कर देगा और पुन. बुलाई गई ऐसी स्थगित बैठक मे गणपूर्ति की अपेक्षा नही होगी ।[11]

इस प्रकार स्थगित की बैठक के लिए नियत दिनाक की एक सूचना जिला परिषद के कार्यालय के सूचना पट्ट पर चिपकाई जावेगी तथा विनिर्दिष्ट सदस्यो मे से प्रत्येक को डाक प्रमाण-पत्र के अधीन प्रेषित की जावेगी और इस प्रकार सम्प्रेषित सूचना को सदस्यो पर, सामान्य डाक के अनुसार तामील हुआ माना जायेगा ।[12]

इस प्रकार पुन: बुलाई गई स्थगित बैठक मे भी यदि विनिर्दिष्ट सदस्यो द्वारा, अधिनियम मे अपेक्षित सदस्यो का सहयोजन न हो सके, तो राज्य सरकार ऐसे

सदस्य या सदस्यो को मनोनीत करेगी तथा इस प्रकार मनोनीत प्रत्येक सदस्य सम्यक्त सहयोजित माना जायेगा।

जब किसी सहयोजित सदस्य का स्थान रिक्त हो जावे तो उसे भरने के लिए सहयोजन की बैठक जिला प्रमुख या उसकी अनुपस्थिति मे उपप्रमुख द्वारा बुलाई जायेगी तथा वही उसका सभापतित्व करेगा और शेष कार्यवाही प्रचलित नियमो के अनुसार ही की जायेगी।

जिला परिषद के सदस्यो की योग्यता

जिला परिषद के सदस्यो के लिए योग्यता के सम्बन्ध मे नियमो मे नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए सदस्यता सबंधी अयोग्यता का विवरण दिया गया है। निम्नलिखित अयोग्यता धारण करने वाले किसी भी व्यक्ति को जिला परिषद की सदस्यता के लिए अपात्र ठहराया गया है

1. यदि वह केन्द्र या राज्य सरकार की नियमित सेवा मे है
2. यदि उसकी आयु 25 वर्ष से कम है,
3. जिला परिषद या पचायत समिति मे वैतनिक पद पर है
4. पचायत समिति या जिला परिषद द्वारा दिये किसी ठेके मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साझीदार है,
5. यदि दुराचरण के कारण सरकारी सेवा से हटाया गया है
6. यदि शारीरिक या मानसिक रोग या कोढ के कारण कार्य करने के अयोग्य हो,
7. किसी न्यायालय द्वारा दुराचरण या अस्पृश्यता निवारण अधिनियम 1955 के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया हो
8. पचायती राज सस्थाओ द्वारा भेजे गये बिल के अन्तर्गत कर का भुगतान दो माह से अधिक समय तक न किया गया हो,
9. किसी मुकदमे मे पचायत समिति या जिला परिषद या उसके विरुद्ध अधिवक्ता हो,
10. सरपच, उप सरपच, प्रधान या उप-प्रधान के पद के लिए अयोग्य होजाय।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कोई भी व्यक्ति जिला प्रमुख निर्वाचित होने के लिए तब तक पात्र नही होता जब तक कि वह किसी पचायत या नगरपालिका का निवासी तथा मतदाता न हो अथवा राजस्थान ग्रामदान अधिनियम, 1971

की धारा 13 के अधीन स्थापित जिले की ग्रामसभा का सदस्य न हो तथा जिसमे हिन्दी पढने तथा लिखन की योग्यता न हो। नियमो मे यह प्रावधान भी किया गया है कि कोई व्यक्ति प्रमुख तथा ससद सदस्य या नगरपालिका का सदस्य अथवा नगरपरिषद का सदस्य, दोनो पद एक साथ धारण नही कर सकेंगे। यदि ऐसा व्यक्ति जिला प्रमुख निर्वाचित हुआ हो, जो पहले से ही ससद या विधान मण्डल का सदस्य या नगरपालिका अथवा नगरपरिषद का सदस्य है, तो प्रमुख के परिणाम की घोषणा की तारीख से 14 दिन समाप्त होने पर वह प्रमुख नही रहेगा जब तक कि उसने ससद या राज्य विधान मण्डल या नगर परिषद, यथा स्थिति, को अपनी सीट से पहले ही त्याग-पत्र न दे दिया हो।[13]

निम्नलिखित परिस्थिति मे जिला परिषद के किसी सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जाती है :

1 यदि उपर्युक्त वर्णित किसी अयोग्यता से ग्रस्त हो जाय।

2 यदि जिले मे रहना बन्द कर दे। नियमो मे यह अपेक्षित है कि चुनाव, सहवरण या नामजदगी के पश्चात प्रतिवर्ष प्रधान और प्रमुख को उस जिले मे 240 दिन और अन्य सदस्यो को 180 दिन रहना आवश्यक है।

3 जिला परिषद की बैठको मे लगातार पाँच बार प्रमुख की पूर्व अनुमति के बिना अनुपस्थित रहने पर।

4. यदि सदस्यता से त्याग-पत्र दे दे और ऐसा दिया हुआ त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया हो।

5 मृत्यु हो जाने पर।

जिला परिषद का अध्यक्ष (प्रमुख)

प्रत्येक जिला परिषद मे उसका एक राजनीतिक मुखिया होता है, जिसे राजस्थान मे जिला प्रमुख के नाम से जाना जाता है।[14] आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु उडीसा, हरियाणा, पजाब तथा पश्चिम बगाल मे यह सभापति (चेयरमैन) कहलाता है। इसी प्रकार असम, गुजरात, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक मे उसे प्रेसीडेंट कहते हैं किन्तु बिहार तथा उत्तरप्रदेश मे वह अध्यक्ष तथा राजस्थान मे प्रमुख कहलाता है।

विभिन्न राज्यो मे जिला परिषद के इस अध्यक्ष को जिस भी नाम से जाना जाता हो, वह जिला परिषद की बैठको का सभापतित्व करते हुए उनकी कार्यवाही का सचालन करता है। वह पंचायती राज व्यवस्था की प्रधी-

नन्य इकाईयो और उनके कार्यों का निरीक्षण करता है और इस निरीक्षण का प्रतिवेदन जिला परिषद के समक्ष प्रस्तुत करता है। जिला परिषद मे नियुक्त प्रशासनिक अधिकारी "सचिव" के, काम के सम्बन्ध मे वह अपनी राय भी लिखता है जिसे सचिव के वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन के साथ सलग्न कर दिया जाता है।

महाराष्ट्र, जहा कि जिला परिषद को कार्यकारी शक्तियो से युक्त एक शक्तिशाली इकाई बनाया गया है, मे अध्यक्ष अनेक प्रशासनिक अधिकारो का प्रयोग करता है। वह जिला परिषद के प्रस्तावो तथा आदेशो के कार्यान्वयन के सम्बन्ध मे मुख्य कार्यकारी अधिकारी के कार्यों का प्रशासनिक पर्यवेक्षण करता है। वहा उसे यह अधिकार भी दिया गया है कि यदि उसे ऐसा लगे कि कोई भी आपातकालीन कदम उठाना, जिले की स्थिति को देखते हुए अनिवार्य प्रतीत होता है तो, ऐसा कदम उठा सकता है। किन्तु इस प्रकार किये गये कार्य का प्रतिवेदन जिला परिषद की बैठक मे उसे प्राथमिक रूप से रखना पडता है। उसका चुनाव प्रायः जिला परिषद के लिए निर्धारित पूरी अवधि के लिए होता है और प्रायः सभी राज्यो मे उसे अविश्वास प्रस्ताव के द्वारा हटाने का प्रावधान भी किया गया है।

राजस्थान में जिला प्रमुख

उपरोक्त विवरण मे व्यक्त किया जा चुका है कि राजस्थान एक ऐसा राज्य है जहा जिला परिषद के अध्यक्ष को जिला प्रमुख के नाम से जाना जाता है।

प्रमुख के लिए पात्रता

जिला प्रमुख के पद के उम्मीदवार को दो शर्तें पूरी करनी होगी :

1. वह किसी पचायत या नगरपालिका का निवासी तथा मतदाता हो अथवा राजस्थान ग्रामदान अधिनियम, 1971 की धारा 13 के अधीन स्थापित जिले की किसी ग्रामसभा का सदस्य हो, और
2. हिन्दी पढने तथा लिखने की योग्यता रखता हो।

निर्वाचक मण्डल

अधिनियम के सशोधित प्रावधानों के अनुसार प्रमुख के निर्वाचक मडल में निम्नाकित मतदाता होगे ।[18]

1. जिला परिषद के सदस्यों में जिले की समस्त पंचायत समितियों के प्रधान, जिले में रहने वाला राज्यसभा का सदस्य, जिले से निर्वाचित लोकसभा का सदस्य, जिले से निर्वाचित विधानसभा के सदस्य तथा जिला परिषद के सभी सहवृत या सहयोजित सदस्य,

2. जिले की पंचायत समितियों के सदस्य जिसमें समस्त सरपंच, विधानसभा के सदस्य, ग्रामसभा के अध्यक्षों द्वारा निर्वाचित सदस्य तथा सभी सहयोजित सदस्य।

इस प्रकार सहयुक्त सदस्य तथा सरकारी प्रतिनिधियों (कलेक्टर तथा सब डिवीजनल अधिकारी) के अलावा जिला परिषद तथा पंचायत समितियों के अन्य सभी सदस्य प्रमुख के चुनाव के लिए मतदाता होते हैं।

पूर्व में, प्रमुख के चुनाव के लिए कुछ विशेष शर्तों का उल्लेख किया जा चुका है जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि कोई व्यक्ति एक साथ दो पदों को धारण नहीं कर सकेगा अर्थात् प्रमुख तथा सांसद या विधानसभा सदस्य या नगरपालिका सदस्य, वह एक साथ नहीं रह सकेगा। पहले से ही इन पदों को धारण करने वाला व्यक्ति यदि अपने पूर्व पद का त्याग न कर दे तो प्रमुख के चुनाव परिणाम घोषित होने की तारीख से, 14 दिन बाद वह प्रमुख नहीं रहेगा। इसी तरह यदि कोई व्यक्ति जिला प्रमुख है और उपरोक्त में बताये गये किसी अन्य पद पर चुन लिया गया है तो भी यही शर्त लागू होती है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति दो जिला परिषदों का अध्यक्ष चुन लिया जाता है तो भी उसे चुनाव परिणाम की घोषणा के बाद 14 दिन की अवधि में एक जिला परिषद की सदस्यता को त्यागना होता है।

निर्वाचन की वैधता

जिला प्रमुख या उप-प्रमुख के चुनाव की वैधता बनाये रखने के लिए अधिनियम में यह स्पष्टीकरण दिया गया है कि जिला परिषद के सदस्यों अर्थात् मतदान करने वाले सदस्यों में से किसी सदस्य के पद रिक्त होने पर भी प्रमुख या उप-प्रमुख का चुनाव कराया जा सकेगा और ऐसा चुनाव विधि मान्य होगा।[18] इसी तरह लोकसभा और विधानसभा के सदस्य यदि उनके चुनाव क्षेत्र में पड़ने वाली सभी जिला परिषदों के प्रमुख या उप-प्रमुख के चुनाव में भाग न ले सकें तो इस असफलता के कारण ऐसा चुनाव अवैध नहीं हो जायेगा।[19]

निर्वाचन का तरीका

राजस्थान में जिला परिषदों के प्रमुख तथा उप-प्रमुख और पंचायत समितियों के प्रधान तथा उप-प्रधान के निर्वाचन के लिए, राजस्थान के निर्वाचन विभाग द्वारा 12 जून 1979 को कुछ नियम घोषित किये गये हैं जिनके अनुसार यह चुनाव कराये जाते हैं। इन घोषित नियमों को राजस्थान 'पंचायत समिति तथा जिला परिषद (प्रधान तथा प्रमुख का निर्वाचन) नियम 1979" के नाम से जाना जाता है। इन नियमों में चुनाव के लिए अधिसूचना, उम्मीदवारों द्वारा नाम निर्देशन, नाम निर्देशन पत्र प्राप्त होने पर प्रक्रिया, उनकी समीक्षा, नाम वापस लेने की प्रक्रिया, सविरोध और निर्विरोध निर्वाचन की प्रक्रिया, चिह्नों का आवंटन, मतपत्र का प्रारूप, निर्वाचन का स्थान, मतदान अधिकारियों की नियुक्ति, निर्वाचकों और पात्र व्यक्तियों की सूची, मतदान की रीति, मतदान प्रारम्भ होने से पूर्व की प्रक्रिया, मतदान के स्थान में प्रवेश, मतपत्र देने की प्रक्रिया, निर्वाचकों की पहचान, मतदान बन्द करना, मतों की गणना, गणना की प्रक्रिया और परिणाम की घोषणा, निर्वाचन के परिणाम का प्रकाशन इत्यादि के बारे में सभी नियम विस्तार से दिये गये हैं। इन्हीं नियमों में सभी प्रकार के प्रारूपों का विवरण भी दिया गया है।[20]

जिला परिषद के अपर सदस्य

अधिनियम के अनुसार जब पंचायत समिति का प्रधान या उप-प्रधान प्रमुख के पद पर चुन लिया जाता है, तो वह जिला परिषद का अपर सदस्य हो जायेगा और वह पदेन सदस्य समझा जायगा।[21] इन्हीं नियमों में यह प्रावधान भी किया गया है कि प्रधान या उप-प्रधान के इस प्रकार प्रमुख निर्वाचित हो जाने की तिथि से वह पंचायत समिति का प्रधान नहीं रहेगा और उसका वह पद रिक्त हो जायेगा।[22]

इस चुनाव के सम्बन्ध में यदि कोई निर्वाचन सम्बन्धी विवाद उपस्थित होता है तो उसका निपटारा "राजस्थान पंचायत समिति तथा जिला परिषद (निर्वाचन याचिका) नियम, 1959" के अनुसार किया जायगा।[23]

जिला परिषद का उप-प्रमुख

राजस्थान में, प्रत्येक जिला परिषद में एक उप-प्रमुख भी होता है। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उप प्रमुख पद हेतु उम्मीदवार निम्नांकित सदस्यों में से होगा और निम्नांकित सदस्य ही उसका निर्वाचक मण्डल, अर्थात् मतदाता होंगे।[24]

1. जिले की समस्त पंचायत समितियों के प्रधान,
2. जिले में रहने वाला राज्यसभा का सदस्य,
3. जिले में लोकसभा के सदस्य,
4. जिले के विधानसभा सदस्य,
5. जिला परिषद के सहयोजित सदस्य।

उप-प्रमुख का यह निर्वाचन विहित रीति से "राजस्थान पंचायत समिति तथा जिला परिषद (उप-प्रधान तथा उप-प्रमुख निर्वाचन) नियम, 1979" के अनुसार आयोजित किया जाता है।[25]

उप प्रमुख की पदावधि तथा रिक्त स्थानों की पूर्ति, निर्वाचन की वैधता तथा निर्वाचन याचिका सम्बन्धी उपबन्ध, जो प्रमुख के बारे में लागू होते हैं, उप-प्रमुख के बारे में भी प्रभावी होंगे।[26]

जिला परिषद की अवधि

राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम, 1959 में वर्णित उपबन्धों के अनुसार जिला परिषद की पदावधि ऐसी दिनांक से, जो राज्य सरकार अधिसूचित करे, तीन वर्ष की निश्चित की गयी थी। अधिनियम में यह व्यवस्था भी की गई थी कि राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना के द्वारा इस अवधि को समय समय पर कुल मिलाकर एक बार में एक वर्ष की अवधि के लिए बढ़ा सकेगी।

पंचायती राज संस्थाओं की यह तीन वर्ष की अवधि व्यवहार में कुछ कम प्रतीत हुई है। केन्द्रीय सरकार द्वारा देश भर में पंचायती राज संस्थाओं और स्थानीय निकायों को सशक्त और सम्वर्द्धित करने के लिए पूर्ववर्ती सरकार ने 65वाँ जो संविधान संशोधित करने का संकल्प व्यक्त किया गया था उसमें इन संस्थाओं की अवधि भी केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार की भांति पांच वर्ष करने का प्रावधान किये जाने का संकेत दिया गया है।[27]

इसके सदस्यों की पदावधि के बारे में अधिनियम, यह उपबन्ध करता है कि पंचायत समिति के प्रधान तब तक जिला परिषद के सदस्य रहेंगे, जब तक कि वे प्रधान के पद पर बने रहते हैं।[28] इसी तरह राज्यसभा या लोकसभा या विधान सभा के सदस्य या केन्द्रीय सहकारी बैंक के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष या जिला सहकारी संघ के अध्यक्ष, ये सब अपने पद के आधार पर जिला परिषद के सदस्य होते हैं। अतः जब कभी वे अपने मूल पद से हट जाते हैं, वे जिला परिषद के सदस्य भी नहीं रहते हैं।[29]

इसी प्रकार सहयोजित सदस्य भी जिला परिषद की पूरी पदावधि तक सदस्य रहते हैं और सहयोजित सदस्य, का पद रिक्त होने पर अधिनियम में दिये गये तरीके से, उस खाली स्थान को अन्य व्यक्ति का सहयोजन कर भर लिया जाता है।[30] किन्तु ऐसे सहयोजन की बैठक जिला प्रमुख या उसकी अनुपस्थिति में उप-प्रमुख द्वारा बुलाई जायेगी और वही उसका सभापतित्व करेगा। इस प्रकार सहयोजन द्वारा रिक्त स्थानों को भरने के लिए अधिनियम की धारा 44 तथा सम्बन्धित नियमों के अनुसार कार्यवाही की जाती है।

प्रमुख अथवा कतिपय सदस्यों के त्याग-पत्र

प्रमुख, उप-प्रमुख अथवा जिला परिषद के अन्य सदस्य (जिला विकास अधिकारी के अलावा) लिखित में एक नोटिस, जिस पर उसके स्वयं के हस्ताक्षर हों, जिला परिषद को देकर अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है। ऐसा दिया हुआ त्याग-पत्र ऐसी दिनांक से प्रभावशील होगा जब यह नोटिस जिला परिषद के सचिव द्वारा प्राप्त किया गया हो।[31] परन्तु अधिनियम आगे प्रमुख के बारे में यह प्रावधान भी करता है कि उसका त्याग पत्र ऐसी दिनांक से प्रभावी होगा जिस दिनांक को राज्य सरकार की उस पर स्वीकृति जिला परिषद के कार्यालय में प्राप्त होती है।[32]

प्रमुख और उप-प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव

पंचायती राज की इस सर्वोच्च इकाई के राजनीतिक अध्यक्ष, प्रमुख और उसकी सहायता के लिए निर्वाचित उप प्रमुख यदि जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने में असफल रहते हैं तो जिला परिषद के सदस्यों को यह अधिकार है कि वे उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रख सकते हैं। अविश्वास के इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि पंचायत समिति के प्रधान और उप-प्रधान के विरुद्ध अविश्वास की जिस प्रक्रिया का विवरण आगामी अध्याय में दिया जा रहा है, अधिनियम के अनुसार, वही प्रक्रिया प्रमुख एवं उप प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास के सन्दर्भ में अपनायी जाती है।

अधिनियम के प्रावधान इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था करते हैं कि ऐसा अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के आशय का एक लिखित नोटिस जिस पर जिला परिषद के कुल सदस्यों में से कम से कम एक तिहाई सदस्यों के हस्ताक्षर होंगे और जिसके साथ प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि संलग्न होगी, और प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से किसी एक सदस्य द्वारा निदेशक, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग को दिया जाएगा। निदेशक इसकी

सूचना राज्य सरकार को देगा। इस तरह प्रस्तुत प्रस्ताव की प्राप्ति के 30 दिन की अवधि के भीतर, 15 दिन का एक नोटिस सदस्यो को देते हुए निदेशक द्वारा जिला परिषद की बैठक अविश्वास प्रस्ताव पर विचार के लिए बुलाई जायेगी। यदि अविश्वास का प्रस्ताव प्रमुख के विरुद्ध विचारणीय है तो ऐसी बैठक की अध्यक्षता निदेशक, ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग और यदि प्रस्ताव उप-प्रमुख के विरुद्ध हो तो उस बैठक की अध्यक्षता जिला प्रमुख करेगा। प्रथम बार प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव के समर्थन मे, चाहे वह प्रमुख के विरुद्ध हो या उप-प्रमुख के विरुद्ध, 2/3 बहुमत आने पर ही पारित हुआ माना जायेगा। ऐसा प्रस्ताव यदि गणपूर्ति पूर्ण न होने या वाछित बहुमत प्राप्त न करने के कारण पारित नही होता है तो इस तरह का कोई आगामी प्रस्ताव छ माह की समाप्ति के पश्चात ही प्रस्तुत किया जा सकेगा जिसे केवल सामान्य बहुमत प्राप्त हो जाने पर ही पारित मान लिया जायेगा। अधिनियम यह प्रावधान भी करता है कि प्रमुख या उप-प्रमुख द्वारा कार्यभार संभालने के प्रथम छ माह की अवधि मे *उनके विरुद्ध कोई अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत नही किया जा सकता है।*[33]

जिला परिषद की समितियां

जिला परिषद अनेक समितियो द्वारा कार्य करती है। राजस्थान मे यह यद्यपि केवल एक परामर्शदात्री सस्था है किन्तु फिर भी अधिनियम यह प्रावधान करता है कि प्रत्येक जिला परिषद द्वारा अधिनियम की धारा 20 की उपधारा (1) मे वर्णित विषयो के समूहो मे से प्रत्येक के लिए एक तथा चार स्थायी समितियो का गठन किया जा सकेगा। अधिनियम मे इन समितियो को उप समितियो की सज्ञा दी गई है।

यहा, इस प्रसग को अधिक स्पष्ट कर देने की दृष्टि से, अधिनियम की धारा 20 की उपधारा (1) मे वर्णित विषयो का यथा-रूप उल्लेख करना वाछित प्रतीत होता है

(क) प्रशासन, वित्त, करारोपण तथा कमजोर वर्गों तथा पिछड़े क्षेत्रो का कल्याण,

(ख) उत्पादन कार्यक्रम जिसमे कृषि, पशुपालन, सिंचाई, सहकारिता, कुटीर उद्योग तथा अन्य सम्बद्ध विषय सम्मिलित हैं,

(ग) शिक्षा, जिसमे सामाजिक शिक्षा सम्मिलित है,

(घ) सामाजिक सेवायें, जिनमे ग्रामीण जलप्रदाय, स्वास्थ्य तथा सफाई, ग्रामदान, यातायात तथा सामुदायिक कल्याण से सम्बन्धित अन्य विषय सम्मिलित हैं।

जिला परिषद उपरोक्त विषयो के लिए चार स्थाई समितिया गठित करेगी तथा पाचवी स्थाई समिति भी उनमे से किसी विषय पर बना सकगी। राजस्थान की जिला परिषदो तथा पचायत समितियो म, समितियो के गठन और सचालन के लिए राज्य सरकार द्वारा कुछ नियम बनाये गये है उनमे स कुछ प्रमुख है :

1. राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद (स्थाई समितियो के गठन) नियम, 1965,[34]
2. राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद (स्थाई समितियो के सदस्यो की पदनिवृति) नियम, 1962,
3. राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद (स्थाई समितियो मे रिक्त स्थानो की घोषणा) नियम, 1969,
4. राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद (कार्यसचालन) नियम, 1965।

उपरोक्त नियमावलिया राजस्थान सरकार द्वारा इसलिए निर्मित की गई हैं ताकि राजस्थान के पचायत राज की इन दो प्रमुख इकाईयो के कार्य सचालन मे किसी प्रकार के भ्रम और सदेह की स्थिति को निवारित किया जा सके।

राजस्थान मे सादिक अली समिति के सुझावो के अनुसार राज्य सरकार ने राज्य मे कार्यरत जिला परिषदों के लिए निम्नलिखित चार समितियो के गठन का प्रावधान किया है

1. प्रशासन एव वित्त समिति,
2. उत्पादन समिति,
3. शिक्षा समिति,
4. सामाजिक कल्याण समिति।

राज्य सरकार का यह भी निर्देश है कि यदि आवश्यक हो तो जिला परिषद उपरोक्त समितियो के अतिरिक्त एक और समिति का गठन कर सकती है। इस प्रकार इन समितियो की अधिकतम सख्या पाच निर्धारित की गई है।

समितियों का गठन तथा चुनाव

प्रत्येक स्थाई समिति मे कुल सात सदस्य होगे जिनमे से पाँच सदस्य पचायत समिति के सदस्यो मे से चुने जायेंगे तथा दो सदस्य उस विषय के योग्य

ग्रौर ग्रनुभवी व्यक्तियो मे से सहयोजित किये जायेंगे।[35] इस चुनाव तथा सहवरण का तरीका पूर्व मे इंगित, 'स्थाई समितियो का गठन नियम, 1965" के ग्रनुसार होता है। जिला परिषद का प्रमुख प्रशासन एव वित्त समिति का पदेन ग्रध्यक्ष होता है। इसी प्रकार जिस स्थाई समिति मे उप-प्रमुख निर्वाचित होकर ग्राता है उसमे उप प्रमुख ही उसका पदेन ग्रध्यक्ष होता है। किन्तु यह नियम प्रशासन से सम्बन्धित स्थाई समिति के ग्रतिरिक्त लागू होता है। किसी भी स्थाई समिति के ग्रध्यक्ष की ग्रनुपस्थिति मे, स्थाई समिति उपस्थितिस दस्यों मे मे किसी सदस्य को ग्रध्यक्ष निर्वाचित कर ग्रपना कार्य सचालन करती है। नियम यह प्रावधान भी करते हैं कि कोई व्यक्ति एक से ग्रधिक स्थाई समिति का सदस्य नही रह सकेगा।

कार्य शक्तिया तथा कार्यावधि

जिला परिषद के समान ही स्थाई समिति की कार्यावधि होती है। ये स्थाई समितिया उन्हे सौंपे गये विषयों पर ही कार्य करेंगी तथा उन शक्तियो का प्रयोग करेंगी, जो जिला परिषद द्वारा समय-समय पर उन समितियो को प्रत्यायोजित की जाती हैं। जिला परिषद की साधारण सभा एक सकल्प द्वारा स्थाई समितियो को सामान्य रूप से ग्रपनी सम्पूर्ण शक्तिया या उन पर कुछ सीमाए लगाकर प्रत्यायोजित कर सकती है या राज्य सरकार के निर्देशो के ग्रनुसार भी किसी प्रकार की शक्तियो का प्रत्यायोजन जिला परिषद इन स्थाई समितियो को कर सकती है।

इन स्थाई समितियो की शक्तियो ग्रौर कार्यों के सम्बन्ध मे यह व्याख्या की जाती है कि यदि जिला परिषद स्पष्ट रूप मे शक्तियो ग्रौर कार्यों का प्रत्यायोजन नही करे, तो स्थाई समितियो के गठन के प्रस्ताव मे ग्रन्तर्निहित विविक्षा ग्रन्तर्निहित प्रभाव मे ऐसी शक्तियो के प्रत्यायोजन की घोषणा की जा सकती है।

समितियों के सदस्यों की पदच्युति

प्रत्येक स्थाई समिति के सदस्यो मे मे एक तिहाई सदस्य प्रति वर्ष पदनिवृत्ति हो जायेंगे। ग्रधिनियम यह भी प्रावधान करता है कि ग्रध्यक्ष की पूर्वानुमति लिए बिना लगातार पाच बैठको मे ग्रनुपस्थित रहने वाले सदस्य के स्थान को रिक्त घोषित कर दिया जायेगा। ऐसी रिक्ति की घोषणा हेतु नियमानुसार सूचना सदस्य को रजिस्ट्रीकृत डाक या सदेशवाहक के द्वारा भेजी जायेगी ग्रौर यदि ऐसी सूचना उसे व्यक्तिगत रूप मे या उसके परिवार के साथ रहने वाले प्रौढ पुरुष को दे दी गई हो तो वह विधिवत तामील हुई मानी जायेगी।[36] इसी प्रकार

की सूचना सदस्य के लगातार अनुपस्थित रहने पर चौथी बैठक के पश्चात भेजी जायेगी और यदि ऐसी सूचना भेजे जाने के पश्चात भी वह सदस्य कोई समुचित कारण प्रदर्शित नहीं करता है या बैठक मे उपस्थित नही होता है तो परिषद अपनी बैठक में उस पर विचार करेगी और उसके स्थान को रिक्त घोषित करने की कार्यवाही कर सकेगी।

इन समितियो के कार्य सचालन के लिए पृथक से नियम बनाये गये हैं जिनके अनुसार समितिया अपना कार्य सचालित करती हैं।[37]

जिला परिषद की बैठकें

जब-जब आवश्यक हो जिला परिषद अपनी बैठकें करेगी किन्तु जिला परिषद की किन्ही भी दो बैठको के बीच का अन्तराल तीन महीने से अधिक का नही होगा।[38] इस प्रावधान का अन्तर्निहित अर्थ यह है कि जिला परिषद की बैठक तीन माह मे आयोजित करना आवश्यक है।

जिला विकास अधिकारी तथा अन्य अधिकारियो के अधिकार

अधिनियम यह प्रावधान करता है कि जिला विकास अधिकारी को जिला परिषद की उप-समितियो की बैठको मे उपस्थित होने और उन उनके विचार-विमर्श मे भाग लेने का अधिकार होगा।[39] राज्य के विकास विभागो के समस्त अधिकारियो को जिला परिषद या उसकी किसी उप समिति की बैठको म उपस्थित रहने तथा अपने विभाग से सबधित मामलो के बारे मे ऐसी बैठको म होने वाले विचार-विमर्श म भाग लेने का अधिकार भी प्रदान किया गया है।[40]

यदि जिला परिषद को यह आवश्यक प्रतीत हो कि सरकार के किसी डिवीजन स्तर के अधिकारी को उसकी किसी बैठक म, उस मुद्दे पर, जो अधिनियम के अधीन जिला परिषद के कर्त्तव्यो और कृत्यो म सम्बन्धित हो, विचार जानने या उससे कोई जानकारी प्राप्त करने के प्रयोजन म आवश्यक है तो परिषद की बैठक मे कम स कम 15 दिन पूर्व ऐसे अधिकारी का लिखित सूचना द्वारा ऐसी बैठक मे उपस्थित होने की अपेक्षा की जा सकती है। इस प्रकार अपेक्षित अधिकारी का जिला परिषद की बैठक म भाग लेना आवश्यक है किन्तु बीमारी या अन्य यथोचित कारण म वह इस प्रकार की उपस्थिति म मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है। ऐसा अधिकारी स्वय उपस्थित न हो सकें तो अपने किसी सहायक या अन्य सक्षम अधीनस्थ अधिकारी को अपने विचार या ज्ञान पास उपलब्ध सूचना म अवगत करायगा और बैठक म उसका अपने प्रतिनिधि के रूप मे भेजेगा।[41]

जिले के विकास से सम्बन्धित प्रशासनिक विभागों के अधिकारियों से जिला परिषद की बैठकों में भाग लेने की अधिनियम की यह अपेक्षा जिला स्तर पर विकास कार्यों में समन्वय स्थापित करने के लिए की गई है।

सचिव की नियुक्ति

राज्य सरकार प्रत्येक जिला परिषद के लिए एक सचिव नियुक्त करेगी जो राज्य सेवा या भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य या राज्य सरकार के अधीन कोई पद धारण करने वाला व्यक्ति होगा और वह राज्य सरकार द्वारा, प्रमुख के परामर्श से, स्थानान्तरित किया जा सकेगा।[42]

राजस्थान में जिला परिषदों में अब तक राज्य सेवा के पदाधिकारी ही सचिव के रूप में नियुक्त किये जाते थे किन्तु 1988 में सम्पन्न जिला परिषदों के चुनावों के पश्चात्, राज्य सरकार ने जब से जिला परिषदों को अधिक कार्यकारी शक्तियां देने का मानस घोषित किया है तब से जयपुर और डिविजन स्तर की, अन्य जिला परिषदों में भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी सचिव के रूप में नियुक्त किया जाने लगा है। इस अधिकारी को अब मुख्य कार्यकारी अधिकारी एवं सचिवके नाम से जाना जाता है।

मुख्य कार्यकारी अधिकारी एवं सचिव की शक्तियां और कृत्य

राजस्थान सरकार के एक नवीनतम आदेश द्वारा जिला परिषद के इस अधिकारी के अधिकारों का स्पष्टीकरण किया गया है। इस आदेश के अनुसार उसके अधिकार इस प्रकार हैं[43]

(अ) प्रशासनिक अधिकार

1. जिला परिषदों में कार्यरत राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद के कर्मचारियों के विरुद्ध सी.सी.ए. नियमों के अन्तर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाही करके दण्ड देने के पूर्ण अधिकार। इसके खिलाफ अपील सुनने का अधिकार जिला कर्मचारी वर्ग समिति को होगा।
2. सरकारी सेवा के पंचायत समिति एवं जिला परिषद में प्रतिनियुक्त अधिकारियों एवं विकास अधिकारियों के खिलाफ सी. सी. ए. नियमों के नियम 17 के अन्तर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाही करके दण्ड देना। इसकी अपील निदेशक को होगी।
3. विकास अधिकारियों पर प्रशासनिक नियन्त्रण।

4. विकास अधिकारियो एव अन्य अधिकारियो के यात्रा कार्यक्रमो का अनुमोदन एव यात्रा भत्ता बिलो पर प्रतिहस्ताक्षर करना ।
5. जिला परिषद के निर्णयो का क्रियान्वयन ।
6. राज्य सरकार एव जिला परिषद मे प्रतिनियुक्त अधिकारियो के दो माह तक के अवकाश स्वीकृत करना ।
7. विकास अधिकारियो एव जिला परिषद मे प्रतिनियुक्त अधिकारियो के वार्षिक कार्य मूल्याकन प्रतिवेदन भरना एव पचायत समितियो म प्रतिनियुक्त अधिकारियो एव कर्मचारियो के वार्षिक कार्य मूल्याकन का पुनरीक्षण ।
8 जिला परिषद मे चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियो एव पचायत समितियो एव जिला परिषद के मत्रालयिक कर्मचारियो की रिक्तियो पर नियमानुसार नियुक्ति करना । जिला स्तर पर कर्मचारियो का पदस्थापन एव स्थानान्तरण करना ।
9. जिला परिषद की बैठको का आयोजन एव सदस्य सचिव के रूप मे कार्य करना ।
10 स्वय के कार्यालय का वर्ष मे कम से कम दो बार निरीक्षण करना ।
11. पचायत समितियो का वर्ष मे दो बार निरीक्षण करना एव कम से कम एक वर्ष मे 10 पचायतो का निरीक्षण करना ।

(ब) वित्तीय अधिकार

1. वर्तमान मे निर्धारित वित्तीय सीमा को बढाकर 5.00 लाख रुपए तक के चैक काटने के अधिकार परन्तु वेतन के असीमित चैक काटने के अधिकार ।
2 50,000/–रुपये तक नियमानुसार व्यय करने के वित्तीय अधिकार ।
3. विकास अधिकारी के पद पर दो माह तक कार्यवाहक विकास अधिकारी को वित्तीय अधिकार देने की शक्तिया ।
4 पचायत समितियो द्वारा अपेक्षित वित्तीय स्वीकृतियो का 1.00 लाख रुपये की सीमा तक स्वीकृति जारी करने के अधिकार ।
5. आदेश क्रमाक एफ 951 (19)/निजी/प्राय लेखा, 3839 दिनाक 10-6–86 (पृष्ठ स 182 से 187/सी) द्वारा पचायत समितियो एव

जिला परिषद को निजी आय के उपयोग एव व्यय करने के सम्बन्ध मे प्रदत्त कलेक्टर के सभी अधिकार।

(स) व्यवस्था सम्बन्धी अधिकार

1. जब तक जिला ग्रामीण विकास अभिकरण अलग है तब तक विकास की समस्त योजनाओ के सामयिक प्रतिवेदन जिला ग्रामीण विकास अभिकरण द्वारा जिला परिषद को प्रस्तुत किए जावें, ताकि इसकी समीक्षा जिला परिषद द्वारा ही की जा सके।

2. जिला कलेक्टर एव अन्य विभागो के अधिकारियो के साथ मुख्य-कार्यकारी अधिकारी का समन्वय पारस्परिक सहयोग का होना चाहिए। मुख्य कार्यकारी अधिकारी जिला कलेक्टर के अधीन न होकर परस्पर सहयोग करने वाले अधिकारी के रूप मे जाना जावे। जिला कलेक्टर का विकास कार्यों तथा पचायती राज सस्थाओ के विकास मे अप्रत्यक्ष सहयोग रहेगा। प्रत्यक्ष सम्बन्ध मुख्य कार्यकारी अधिकारी का ही होगा।

3. जिला स्तर के विभिन्न कार्यक्रमो के क्रियान्वयन हेतु अलग-अलग उप-समितिया होगी जिनका मुख्य कार्यकारी अधिकारी सदस्य सचिव होगा। ऐसी उप समिति का अध्यक्ष जिला परिषद का प्रमुख अथवा उसके द्वारा मनोनीत सदस्य होगा एव सम्बन्धित जिला स्तरीय अधिकारी सदस्य होगे।

4. राज्य सरकार के विभिन्न विभागो की योजनाओ/कार्यों मे जिला स्तर पर समन्वय स्थापित करना एव सुनिश्चित करना कि जिला स्तरीय अधिकारियो द्वारा पचायत समितियो के सम्बन्धित प्रसार अधिकारियो को तकनीकी सहयता दी जा रही है।

5. यह सुनिश्चित करना कि पचायती राज सस्थाओ को सौंपी गई योजनाओ मे तकनीकी सुदृढता के लिए तकनीकी विभागो के जिला स्तरीय अधिकारी अपन उत्तरदायित्व मे भागीदार होते हैं।

6. यह सुनिश्चित करना कि जिला स्तरीय अधिकारी जिला परिषद एवं पचायत समितियो की बैठको मे भाग लेते हैं और जहां आवश्यक हो उनकी उप समितिया बनाकर इन सस्थाओ द्वारा नोटिस जारी करवाना।

7. वह यह भी सुनिश्चित करेंगे कि विभिन्न विभागों द्वारा जिला परिषदो मे पदस्थापित अधिकारी अपन कर्त्तव्यो को पूरी तरह निभाते हैं एव

सम्बन्धित विभागों द्वारा जारी किये गये निर्देशों का पालन करते हैं।

8. जिला सस्थापन समिति के सदस्य सचिव के रूप में कार्य करना।

9. जिला परिषद के सारे रेकार्ड को अपने स्तर पर बनाये रखना एवं उसका सधारण।

10. जिला परिषद की बैठकों, उसकी उप समितियों एवं जिला सस्थापन समितियों की विज्ञप्तियां निकालना।

11. जिला परिषद की बैठकों एवं उसकी उपसमितियों के लिए कार्यसूची तैयार करना, बैठकों में भाग लेना, उनके कार्यवाही विवरण तैयार करना तथा राज्य सरकार एवं कलेक्टर को कार्यवाही विवरण की प्रतिलिपि भेजना।

12. जिला परिषद की बैठकों, समितियों एवं जिला सस्थापन समितियों में लिए गये निर्णयों की पालना करना।

13. राज्य सरकार को प्रस्तुत करने हेतु बजट तैयार करके जिला परिषद को प्रस्तुत करना।

14. पचायत समितियों का लगातार भ्रमण करना, उनकी कार्य पद्धति का परीक्षण करना और निरीक्षण के दौरान यह जांच करना कि जिन कार्यों के लिए उन्हें धनराशि आवंटित की गई है उसका उपयोग उन्हीं पर किया जा रहा है। यह सुनिश्चित करना कि पचायत समिति में कार्यरत विकास अधिकारी एवं अन्य प्रसार अधिकारियों द्वारा वांछित कार्य करके वास्तविक प्रगति की गई है।

15. जिला परिषद में पचायत समितियों द्वारा प्रस्तुत बजट सकलित कर प्रस्तुत करना।

16. समय-समय पर यह जांच करना कि पचायती राज संस्थाओं द्वारा सचालित कार्यक्रमों विशेषकर जो भारत सरकार एवं ग्रामीण विकास एवं पचायती राज विभाग द्वारा हस्तान्तरित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में समाज के कमजोर वर्गों को उचित प्राथमिकता दी जा रही है।

17. पचायत समितियों एवं उनकी स्थाई समितियों द्वारा पारित प्रस्तावों की लगातार जांच करना और यह देखना कि जो प्रस्ताव पारित किए

गये हैं वे नियमो एव राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर जारी किये गये निर्देशो के अनुरूप हैं।

18 पचायत समितियो के दौरो पर वे उच्च माध्यमिक विद्यालयो, आयुर्वेद औषधालयो, सामाजिक वानिकी आदि का भ्रमण करेंगे व उनके द्वारा सचालित कार्य पद्धति की जांच करेंगे।

19. यह सुनिश्चित करेंगे कि पचायत समिति द्वारा राज्य सरकार को सामयिक प्रस्तुत किये जाने वाले प्रपत्र एव रिपोर्ट्स समय पर प्रस्तुत किये जाते है।

20. सभी पचायती राज सस्थाओ के निरीक्षण प्रतिवेदनो की अनुपालना सुनिश्चित करना।

21 वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्ट तैयार करना।

22 अधिक से अधिक पचायतो का भ्रमण करने की कोशिश करें एवं उनकी बैठको मे भाग लें, उन्हे प्रेरित करें कि वे पचायत की बैठकें नियमानुसार बुलाए एव ग्राम सभाओं का आयोजन करने और उन्हे समाज सेवको की सख्या बढाने हेतु भी प्रेरित करें।

23. पचायत स्तर से पचायत समितियो द्वारा तैयार की जाने वाली योजनाओ मे मदद करेंगे, ऐसा करते हुए वे जिला योजना समिति निगमो से सम्पर्क बनाये रखेंगे।

24. पचायत समितियो एव पंचायतो द्वारा आरोपित करो एवं ऋणो की वसूली की प्रगति देखेंगे।

25. पंचायतों, पचायत समितियो एव जिला परिषद की आडिट रिपोर्ट्स की समय पर अनुपालना करवाने की व्यवस्था करना तथा त्रैमासिक प्रगति समय पर भेजना।

अवकाश एवं वार्षिक कार्य मूल्यांकन

1. *उसका वार्षिक कार्य मूल्यांकन प्रतिवेदन निदेशक* ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग द्वारा लिखा जावेगा। इस प्रतिवेदन के लिखने से पूर्व सम्बन्धित जिला प्रमुख से पृथक मे टिप्पणी मांगी जावेगी। यह टिप्पणी वार्षिक कार्य मूल्यांकन प्रतिवेदनो के साथ लगायी जावेगी एव प्रतिवेदन का भाग ही मानी जावेगी। प्रतिवेदन का प्रथम पुनरीक्षण (रिव्यू) विकास आयुक्त द्वारा किया जावेगा।

2. मुख्य कार्यकारी अधिकारी का आकस्मिक अवकाश जिला प्रमुख द्वारा स्वीकृत किया जावेगा, जबकि उपार्जित अवकाश निदेशक, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग द्वारा स्वीकृत किया जावेगा।

जिला परिषद की शक्तियां तथा उसके कृत्य

प्रत्येक जिला परिषद की निम्नांकित शक्तियां होंगी [14]

1. इस सम्बन्ध में बनाये गये नियमों के अनुसार जिले की पंचायत समितियों के बजटों की परीक्षा करना;
2. राज्य सरकार द्वारा जिले में आवंटित तदर्थ अनुदानों को पंचायत समितियों में वितरित करना,
3. पंचायत समितियों द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समन्वय करना,
4. पंचायतों तथा पंचायत समिति के कार्यों में समन्वय करना,
5. किसी विकास कार्यक्रम के सम्बन्ध में ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करना, जिसे राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा उसे प्रदान करे या सौंपे;
6. ऐसी शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे कृत्यों का पालन करना जो इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन उसे प्रदान की जावें या सौंपे जावें,
7. ऐसे मेलों और उत्सवों को छोड़ कर जिनका प्रबन्ध राज्य सरकार द्वारा किया जाता है, या उसके बाद किया जावेगा, अन्य मेलों और उत्सवों का, पंचायत के मेलों और उत्सवों के रूप में वर्गीकरण करना और इसके बारे में किसी पंचायत या पंचायत समिति द्वारा अभ्यावेदन किये जाने पर, उक्त वर्गीकरण का पुनर्विलोकन करना,
8. राष्ट्रीय राजमार्गों, राज्य के मार्गों और जिले की मुख्य सड़कों को छोड़ कर, पंचायत समिति की सड़कों और गांव की सड़कों के रूप में वर्गीकरण करना,
9. अपने जिले की सीमा के अन्तर्गत कार्यरत पंचायत समितियों की गतिविधियों की सामान्य देख-रेख करना,
10. जिले में सभी सरपंचों, प्रधानों और पंचों व पंचायत और पंचायत समितियों के सदस्यों के शिविर, सम्मेलन और संगोष्ठियाँ आयोजित करना।
11. पंचायतों तथा पंचायत समितियों की गतिविधियों से सम्बन्धित सभी मामलों में राज्य सरकार को परामर्श देना;

12. राज्य सरकार द्वारा जिला परिषद को विशेष रूप से विनिर्दिष्ट किसी विधि अथवा कार्यकारी आज्ञा को कार्यान्वित करने सम्बन्धी मामले में राज्य सरकार को परामर्श देना;

13. पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन विभिन्न योजनाओं को जिले के भीतर कार्यान्वित करने सम्बन्धी सभी विषयों पर राज्य सरकार को परामर्श देना,

14 जिले के लिए निर्धारित सभी कृषि व उससे सम्बद्ध उत्पादन कार्यक्रमों, निर्माण कार्यक्रमों/नियोजनों तथा अपने लक्ष्यों की निगरानी करना और यह देखना कि वे उचित रूप में निष्पादित, परिपूरित तथा कार्यान्वित किये जा रहे हैं तथा वर्ष में कम से कम दो बार ऐसे कार्यक्रमों और लक्ष्यों की प्रगति की समीक्षा करना;

15. ऐसे आंकड़े संग्रह करना जो वह आवश्यक समझे;

16 जिले में स्थानीय प्राधिकारियों की गतिविधियों सम्बन्धी सांख्यिकी (आंकड़े) अथवा कोई अन्य सूचना प्रकाशित करना, तथा

17 किसी भी स्थानीय प्राधिकारी से उनके कार्यकलापों के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्रस्तुत करने की अपेक्षा करना।

कार्यों की उपरोक्त सूची से यह स्पष्ट होता है कि राजस्थान में इस अधिनियम द्वारा जिला परिषद को जो कार्य सौंपे गये हैं वे निष्पादकीय प्रकृति के नहीं अपितु पर्यवेक्षकीय प्रकृति के हैं। इस स्थिति में आजतक कोई वैधानिक परिवर्तन तो नहीं आया है, किन्तु 1988 में सम्पन्न इन संस्थाओं के चुनावों के पश्चात राज्य सरकार ने अपनी घोषणाओं में जिला परिषद को अधिक अधिकार देने का रुझान व्यक्त किया है।

प्रमुख तथा उप-प्रमुख की शक्तियां तथा कृत्य

(I) किसी जिला परिषद का प्रमुख :

(क) उसकी बैठकें आयोजित करेगा,

(ख) उसके अभिलेखों को पूर्णतः देख सकेगा,

(ग) उसके सचिव और उसके सचिवालय में कार्यरत कर्मचारी वर्ग पर प्रशासनिक नियन्त्रण रखेगा,

(घ) जिले के भीतर किसी पंचायत समिति के प्रधान के त्याग-पत्र पर विचार करेगा। तथा उसे स्वीकार करेगा,

(च) पंचायतों में उत्साह उत्पन्न करने के लिए प्रोत्साहन देगा तथा उनके द्वारा संचालित कार्यक्रमों तथा योजनाओं में उनका मार्ग प्रदर्शन करेगा तथा उनमें सहयोग और स्वेच्छा पूर्वक संगठन की भावना हेतु सहयोग देगा,

(छ) ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग करेगा जो उनको इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन प्रदान की जावे।

2. जिले की पंचायत समितियों की गतिविधियों का मूल्यांकन करने और उनके कार्यक्रमों और समस्याओं का अध्ययन करने में समर्थ होने के लिए प्रमुख समय समय पर पंचायत समितियां, उनके प्रधानों, उनके विकास अधिकारियों और उनके सदस्यों के मार्गदर्शन करने के दृष्टिकोण से —

(क) जिले के खण्डों में जा सकेगा,

(ख) जिले की पंचायत समितियों द्वारा किये जा रहे कार्यों का और सम्बन्धित अभिलेखों और साधारणतया उनके कार्यों का निरीक्षण कर सकेगा ताकि उनमें और प्रत्येक खण्ड में पंचायत समितियों और पंचायतों के मध्य स्वस्थ्य सम्बन्ध विकसित हो सकें और निर्धारित स्थूल नीतियों के अनुसार उनके बारे में निश्चित सख्या तक कार्यक्रम बढ़ सके।

3. प्रमुख प्रत्येक वर्ष के अन्त में जिला परिषद के सचिव के उस वर्ष के कार्यों की रिपोर्ट जिला विकास अधिकारी को भेजेगा, जो उसको सचिव से सम्बन्धित गोपनीय रिपोर्ट के साथ लगा देगा।

4. जब प्रमुख का पद रिक्त हो तो जिला परिषद का उप प्रमुख उस समय तक, जब तक कि नया प्रमुख निर्वाचित न हो जाय जिला परिषद के प्रमुख की शक्तियों का प्रयोग तथा कृत्यों का पालन करेगा।

5. जब कभी प्रमुख [illegible] अनुपस्थित हो, तो उसके कृत्य, ऐसे अवकाश की अवधि में [illegible]।

6. जब प्रमुख का [illegible] अवकाश पर गया हो या उप-प्रमुख का पद भी [illegible] अवकाश पर गया हुआ हो तो, प्रमुख की शक्तियों का [illegible] जिला परिषद के एक सदस्य द्वारा [illegible] द्वारा विहित रीति से निर्वाचित किया जाए।"

7. जिला परिषद [illegible] निर्वाचित होता है परन्तु प्रमुख, [illegible] को निर्वाचित की जावे, प्रमुख

की शक्तियो का प्रयोग तथा कृत्यो का पालन तब तक करेगा जब तक कि नया प्रमुख अथवा उप-प्रमुख निर्वाचित न हो जाए तथा वह पद न सभाल ले अथवा जब तक कि प्रमुख अथवा उप-प्रमुख अवकाश से लौट न आये।

जिला विकास अधिकारी की शक्तियां

जिला विकास अधिकारी, अर्थात् 'कलेक्टर' जिले की प्रशासनिक संरचना का शीर्षस्थ अधिकारी होने के नाते जिला प्रशासनिक टीम का कप्तान माना जाता है। जिला स्तर पर कार्यरत इस पचायती राज सस्था 'जिला परिषद' के सम्बन्ध मे विकास अधिकारी को अधिनियम निम्न शक्तियां प्रदान करता है :[47]

1. विभिन्न योजनाओ के निष्पादन मे की गयी प्रगति की समीक्षा तथा जिला परिषद के विनिश्चयो एव सकल्पो की क्रियान्विति की जाच करना तथा सुधारो के लिए सुझाव देना,

2. राज्य सरकार के विभिन्न विकास विभागो के जिला स्तर के कार्य को समन्वित करना,

3. यह परीक्षा करना कि पचायत समिति को प्रदत्त राशि उन्ही प्रयोजनो के लिए काम मे लाई जा रही है, जिनके लिए वे निर्धारित की गई हैं।

4. यह सुनिश्चित करना कि जिले मे पचायत समितियो द्वारा सचालित सेवाओ के न्यूनतम स्तर का सधारण किया जा रहा है तथा विकास अधिकारी एवं उसका कार्यालय पूर्ण-रूपेण अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं,

5. ऐसे अन्य कृत्यो तथा कर्तव्यो का निर्वाह करना जो इस अधिनियम द्वारा उसे सौंपे जाए।

इस प्रकार, जिला विकास अधिकारी के रूप मे उपरोक्त कार्य जिलाधीश को एक समन्वयकर्त्ता अधिकारी के रूप मे स्थापित करते हैं। इस समन्वयकर्त्ता की स्थिति से एक कदम आगे जिला परिषद एवं पचायत समितियो के निर्णायक के रूप मे भी कार्य एवं शक्तिया जिलाधीश को यह अधिनियम विशिष्ट रूप से प्रदान करता है। अधिनियम की धारा 68 एवं 69 उसे अधिकृत करती *हैं कि जिले मे कार्यरत पचायत समितियों अथवा जिला परिषद मे चल रहे किसी भी विकास कार्य का न केवल वह अवलोकन और निरीक्षण ही कर सकता है* अपितु वह उनका निर्देशन और नियन्त्रण भी कर सकता है।[48]

जिला परिषद के कार्यों का प्रशासनिक नियन्त्रण, जैसा कि पूर्व मे इंगित किया जा चुका है, जिला परिषद मे नियुक्त सचिव के द्वारा किया जाता

है। हमारे देश के लोकतांत्रिक ढांचे की व्यवस्था के अनुरूप जिला प्रमुख इस सचिव पर राजनीतिक नियन्त्रण भी रखता है। सचिव के अलावा जिला परिषद के अन्य कर्मचारियों की संख्या, पद, सेवा की शर्तें तथा वेतन व भत्तों का निश्चय राज्य सरकार के द्वारा किया जायगा। जिला परिषद सरकार की स्वीकृति से, अतिरिक्त पदों का सृजन भी कर सकेगी। इस प्रकार जिला परिषद में उनके गठन के समय स्थानान्तरित कर्मचारी तथा बाद में जिला परिषद द्वारा नियुक्त कर्मचारी उसकी कार्मिक संरचना के अवयव मान गये हैं। कार्मिक वर्ग, वित्तीय प्रशासन एवं राजकीय नियन्त्रण के सम्बन्ध में विवरण, पुस्तक के पृथक अध्यायों में विस्तार से दिये जा रहे हैं।

जिला परिषद की नियम तथा उप नियम बनाने की शक्तियां

जिला परिषद एवं पंचायत समिति उन प्रयोजनों को जिनके लिए उनका गठन हुआ है, क्रियान्वित करने के लिए समय-समय पर ऐसे उप-नियम बना सकेंगी, जो इस अधिनियम के उपबन्धों या उनके अन्तर्गत बनाये गये नियमों से असंगत नहीं हैं।[49] इस सम्बन्ध में अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि जिला परिषद इस तरह का कोई उप नियम बनाने में पूर्व प्रस्तावित उप नियमों के प्रारूप को उस पर विचार करने की तिथि इंगित करते हुए, नोटिस द्वारा या प्रकाशित करेगी और उस तिथि से पूर्व सम्बन्धित व्यक्तियों की आपत्ति और सुझावों पर विचार करेगी।[50] पंचायत समिति या जिला परिषद द्वारा इस प्रकार बनाया गया कोई उप नियम, तब तक प्रभावशील नहीं होगा जब तक कि वह राज्य सरकार के द्वारा स्वीकृत न कर दिया जाय।

अधिनियम को कार्यान्वित किये जाने हेतु राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा नियम बना सकने में सक्षम बनायी गयी है।[51] इस प्रकार राज्य सरकार द्वारा बनाये गये समस्त नियम शीघ्रातिशीघ्र राज्य विधान सदन द्वारा अनुमोदित कराये जायेंगे।[52] राज्य सरकार द्वारा इस प्रकार बनाये गये नियम और उप-नियम समस्त प्रयोजनों के लिए अधिनियम का एक अंग माने जाते हैं और राज पत्र में प्रकाशित होने की दिनांक से वे प्रवर्तित होते हैं।

अधिनियम के अन्तर्गत यह प्रावधान भी किया गया है कि राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों या जिला परिषद द्वारा बनाये गये उप नियमों का प्रथम बार उल्लंघन किये जाने पर एक सौ रुपये तक का दंड और उसके पश्चात् पुन: उल्लंघन किये जाने पर प्रत्येक दिन के लिए पांच रुपये तक का दंड दिया जा सकता है।[53]

प्रशासनिक प्रतिवेदन

प्रत्येक पचायत समिति जिला परिषद को और प्रत्येक जिला परिषद राज्य सरकार को प्रत्येक वर्ष के लिए, ऐसे वर्ष की समाप्ति के पश्चात यथा सभव शीघ्र अपने प्रशासन के सम्बन्ध मे एक प्रतिवेदन ऐसे प्रपत्र मे तथा ऐसे विस्तृत विवरणो सहित, जो भी विहित किये जाए, प्रस्तुत करेगी।[54] इस सम्बन्ध मे "राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद (प्रशासन प्रतिवेदन) नियम, 1959" बनाये गये हैं जिसमे प्रतिवेदन का प्रपत्र तथा तैयार करने का तरीका तथा उस पर विचार करने सम्बन्धी समस्त उपबन्ध दिये गये है।[55]

राजस्थान मे जिला परिषद को सशक्त बनाने हेतु उठाये गये कदम

1988 मे पचायती राज सस्थाओ के चुनाव सम्पन्न कराने के पश्चात राजस्थान सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रो के विकास कार्यों से सम्बन्धित अनेक नूतन कार्यों का दायित्व जिला परिषदो को सौपा है। इनमे प्रमुख तौर पर ग्रामीण क्षेत्रो की उच्च प्राथमिक शिक्षा, हैण्ड पम्पो का रख रखाव, उनके मिस्त्रियो को प्रशिक्षण, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो के उपकेन्द्रो का सचालन और जिले मे कार्यरत आयुर्वेदिक औषधालयो का नियन्त्रण ऐसे प्रमुख कार्य है जिन्हे जिला परिषदो को सौंपा गया था। यद्यपि यहा यह उल्लेखनीय है कि इनमे से कतिपय कार्य ही जिला परिषदो को व्यवहार मे हस्तान्तरित किये जा सके हैं और आयुर्वेदिक औषधालयो के सचालन इत्यादि कार्य व्यवहार मे जिला परिषदो को हस्तान्तरित नही हो पाये हैं। उच्च प्राथमिक शिक्षा का कार्य यद्यपि जिला परिषदो को पूरी तरह दिया जा चुका है किन्तु न केवल सम्बन्धित अध्यापको मे, अपितु समाज मे भी इस स्थिति के प्रति असन्तोष व्याप्त है। राजस्थान मे 1990 के चुनावो के पश्चात पदासीन हुई सरकार ने इस कार्य को पुनः शिक्षा विभाग को देने का मानस व्यक्त किया है, यद्यपि औपचारिक निर्णय इस सम्बन्ध मे विचाराधीन है।

सन्दर्भ

1. रिपोर्ट ऑफ द टीम फार द स्टडी आफ कम्युनिटी प्रोजेक्ट्स एण्ड नेशनल एक्सटेंशन सर्विस, वाल्यूम 1, नई दिल्ली, कमेटी ऑन प्लान प्रोजेक्टस, 1957, पृष्ठ 7
2. द गुजरात पचायत एक्ट, 1961, लॉ डिपार्टमेंट गुजरात सरकार 1961

3. श्रीराम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा-3, 1084 पृ 106।
4. श्री कृष्णदत्त शर्मा एवं सुनीता दाधीच, राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम, एवन एजेंसीज, जयपुर, 1983, पृ. 122।
5. उपरोक्त, धारा (2)
6. उपरोक्त, धारा 3
7. यह प्रावधान अधिनियम की धारा 43 में किया गया है।
8. अधिनियम की धारा 3(1) परन्तुकों में यह प्रावधान किये गये हैं।
9. उपरोक्त, धारा 44
10. उपरोक्त, धारा 44 (2)
11. उपरोक्त, धारा 44 (3)
12. उपरोक्त, धारा 44 (4)
13 उपरोक्त, धारा 45 (1) परन्तुक
14. उपरोक्त, धारा 45 (1)
15 उपरोक्त
16. उपरोक्त, धारा 45(2)
17. उपरोक्त, धारा 45(3)
18. उपरोक्त, धारा 45(4) (1)
19. उपरोक्त धारा 45 (4) (2)
20. विस्तृत विवरण हेतु दृष्टव्य श्री कृष्णदत्त शर्मा एवं सुनीता दाधीच, पूर्वोक्त सन्दर्भ, (2) पृ. 26
21. अधिनियम, धारा 45 (6)
22. उपरोक्त, धारा 45 (7)
23. उपरोक्त, धारा 45 (10)
24 उपरोक्त धारा 45 क-1
25. उपरोक्त, धारा 45 क-2
26. उपरोक्त, धारा 45 क-3
27 1989 में यह 64वां संविधान पारित नहीं हो पाया था।
28 अधिनियम, धारा 46 3 (1)
29 उपरोक्त, धारा 3 (11)
30. उपरोक्त, धारा 46 3 (111)
31. उपरोक्त धारा 49
32. उपरोक्त

33. अविश्वास प्रस्ताव के ये प्रावधान अधिनियम मे धारा 49 मे दिये गये हैं।
34. अधिनियम की धारा 20 व 50 के कार्यान्वयन हेतु
35. अधिनियम की धारा 20 (3)
36. अधिनियम की धारा 20 (6) (7)
37. रा. प. स. तथा जिला परिषद (कार्य सचालन) नियम, 1965
38. अधिनियम, धारा 51
39. उपरोक्त, धारा 53 (1)
40. उपरोक्त, धारा 53 (2)
41. उपरोक्त, धारा 54 (1)
42. उपरोक्त, धारा 55 (1) (2)
43. यह राज्यादेश ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग राजस्थान सरकार के हिन्दी मासिक 'राजस्थान विकास' के जनवरी 1990 के अक मे पृष्ठ 11–13 पर प्रकाशित हुआ है।
44. उपरोक्त, धारा 57
45. उपरोक्त, धारा 58
46. इस हेतु राजस्थान जिला परिषद (अस्थायी प्रमुख का निर्वाचन) नियम, 1959 द्रष्टव्य हैं।
47. अधिनियम की धारा 59
48. विस्तृत जानकारी हेतु अधिनियम की धारा 68 व 69 द्रष्टव्य हैं।
49. अधिनियम की धारा 80
50. उपरोक्त, धारा 80 (2)
51. उपरोक्त, धारा 79 (1)
52. उपरोक्त, धारा 79 (2)
53. उपरोक्त, धारा 81
54. उपरोक्त, धारा 74 (1)
55. ये उपबन्ध श्री कृष्णदत्त शर्मा एव सुनीता दाधीच, पूर्वोक्त, मे खण्ड–2 मे द्रष्टव्य हैं।

8

पंचायत समिति

बलवंत राय मेहता समिति द्वारा सुझाई गयी पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना का मध्यवर्ती सोपान पंचायत समिति कहलाता है। भारत के सभी राज्यों में इस निकाय को, इसी नाम से नहीं जाना जाता बल्कि विभिन्न राज्यों में इसका नाम और स्थिति भिन्न-भिन्न पायी जाती है। राजस्थान, महाराष्ट्र, उड़ीसा, बिहार और आन्ध्रप्रदेश में इसे पंचायत समिति, आसाम में आंचलिक पंचायत समिति, पश्चिमी बंगाल में आंचलिक परिषद, उत्तरप्रदेश में क्षेत्रीय समिति, गुजरात में तालुका परिषद, मध्यप्रदेश में जनपद पंचायत, कर्नाटक में तालुका-विकास-परिषद, और तमिलनाडु में पंचायत संघ परिषद के नाम से जाना जाता है। विभिन्न राज्यों में इसका कार्यकाल भी एक समान नहीं है किन्तु यह तीन से 5 वर्ष के बीच निर्धारित किया हुआ है। राजस्थान, आसाम, बिहार, हरियाणा, पंजाब तथा आन्ध्रप्रदेश में यह 3 वर्ष, गुजरात, कर्नाटक, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में 4 वर्ष, तथा तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में यह 5 वर्ष निर्धारित किया हुआ है। सभी राज्यों में पंचायत समिति का कार्यकाल पंचायतों के कार्यकाल के समान ही पाया जाता है। इस समय सम्पूर्ण देश के विभिन्न राज्यों में लगभग 4500 पंचायत समितियाँ कार्य कर रही हैं।

पंचायत समिति की रचना खण्ड स्तर पर की जाती है। पंचायती राज के प्रवर्तन के पश्चात्, ग्रामीण विकास को गति देने की दृष्टि से यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक जिले को कुछ विकास खण्डों में विभक्त कर दिया जावे। इस तरह के विकास खण्डों की रचना और गठन करने का आदेश सम्बन्धित राज्य सरकारों द्वारा जारी किया गया है। विकास खण्ड नामक यह इकाई पूर्व में प्रचलित तहसील नामक राजस्व इकाई के भौगोलिक क्षेत्र से कुछ भिन्न भी है, यद्यपि दोनों का क्षेत्राधिकार और भौगोलिक आकार एक जैसा नहीं है। तहसील जहाँ प्रमुख रूप से नागरिकों के राजस्व सम्बन्धी कार्यों के सम्पादन के लिए

उत्तरदायी होती है वहीं विकास खण्ड को नागरिकों के बहुमुखी विकास के लिए निर्माता और योजनाओं को कार्यान्वित करने वाला तन्त्र बनाया गया है। राजस्थान में विकास खण्ड का भौगोलिक क्षेत्र तहसील के भौगोलिक आकार से किंचित अधिक है।

पंचायत समिति की रचना में भी सभी राज्यों में एकरूपता नहीं पायी जाती। यद्यपि सभी राज्यों में इसकी संरचना में निर्वाचित, पदेन, सहयोगी और सहयोजित सदस्य सम्मिलित होते हैं। सभी राज्यों में पंचायत समिति के क्षेत्र में आने वाली पंचायतों के सरपंच, पंचायत समिति के पदेन सदस्य होते हैं। उस क्षेत्र से निर्वाचित राज्य विधान मण्डल के सदस्य पंचायत समिति के सदस्य होते हैं किन्तु उन्हें मतदान का अधिकार न होने कारण सहयोगी सदस्य कहा जाता है। पंचायत समिति के कार्यकरण में राज्य की पिछड़ी जातियों तथा अनसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों तथा उनकी स्त्रियों को पंचायत समिति में प्रतिनिधित्व देने के लिए उन्हें सहवरण द्वारा लेने का प्रावधान किया जाता है। कुछ राज्यों में, पंचायत समिति क्षेत्र में कार्यरत सहकारी समितियाँ एवं लोक प्रशासन, सार्वजनिक जीवन तथा ग्रामीण विकास का अनुभव रखने वाले व्यक्तियों को भी पंचायत समिति में प्रतिनिधित्व देकर उनके विशेषज्ञ ज्ञान का जनहित में उपयोग सुनिश्चित करने का प्रावधान किया गया है। भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायत समिति की सामान्य संरचना को निम्नांकित सारिणी द्वारा समझने में सहायता मिलेगी

पंचायत समिति

1. क्षेत्र में आने वाली पंचायतों के सरपंच	1. दो महिलाएँ यदि पूर्वतः न चुनी गई हों
	2. एक अनुसूचित जाति का सदस्य
	3. एक अनुसूचित जनजाति का सदस्य
	4. एक सहयोगी संस्थाओं का का प्रतिनिधि
	5. क्षेत्र की विधान सभा में निर्वाचित सदस्य

6 क्षेत्र का एक निपुण कृषक
7. ग्रामसभाओं के अध्यक्ष
8. दो व्यक्ति लोकप्रशासन तथा ग्रामीण विकास के विशेषज्ञ

उपरोक्त चार्ट मे पचायत समिति की उस सामान्य सरचना को अभिव्यक्ति दी गयी है जो प्राय सभी राज्यो मे पायी जाती है।

राजस्थान मे पचायत समिति की संरचना

राजस्थान मे पचायत समिति की रचना, राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, 1959 पर आधारित है। इस अधिनियम की धारा 6 राज्य सरकार को अधिकृत करती है कि वह राजपत्र मे अधिसूचना द्वारा किसी जिले के अन्तर्गत पचायत समिति का गठन, पुनर्गठन तथा परिसीमन कर सकती है। अधिनियम मे यह भी कहा गया है कि जब किसी खण्ड के लिए एक पचायत समिति गठित कर दी गयी हो और उसके बाद राज्य सरकार उसी खण्ड का पुन परिसीमन करे अर्थात खण्ड की सीमाओ मे परिवर्तन कर दे, तो ऐसी स्थिति मे राज्य सरकार यद्यपि धारा 1 के अधीन उस पचायत समिति का पुन गठन कर सकती है। किन्तु जब इस प्रकार पुनर्गठन का आदेश राज्य सरकार द्वारा दिया जाये तो पचायत समिति के प्रधान, उप-प्रधान तथा सहयोजित सदस्यो का पुनर्गठित पचायत समिति के लिए उसी प्रकार निर्वाचित समझने के लिए सरकार निर्देश दे सकेगी। पचायत समिति के परिसीमन तथा पुनर्गठन की अधिसूचना, वैधता की दृष्टि से राजपत्र मे पृथक-पृथक जारी करनी होती है।

अधिनियम के अनुसार पचायत समिति का नाम उस खण्ड के नाम पर होगा जिसके लिए वह गठित की गई है। जैसे सागानेर खण्ड के लिए गठित पचायत समिति का नाम, "पचायत समिति, सागानेर" होगा। अधिनियम मे कहा गया है कि राजपत्र मे अधिसूचना निकालकर राज्य सरकार किसी पचायत समिति का नाम बदल सकती है।

अधिनियम की अपेक्षाओ के अनुसार पचायत समिति का विधिक स्वरूप इस प्रकार है

1. पचायत समिति का नाम उस खण्ड के नाम पर होगा, जिसके लिए वह गठित की गई है।

2. वह एक निगमित निकाय होगा, जिसका :

(क) शाश्वत उत्तराधिकार होगा,

(ख) उसकी सामान्य मुद्रा होगी,

(ग) वह सम्पत्ति अर्जित कर सकेगी, उसे रख सकेगी और उसे बेच सकेगी अर्थात् पंचायत समिति को सम्पत्ति सबन्धी पूरे अधिकार हैं,

(घ) अपने निगमित नाम से वह किसी के विरुद्ध कोई वाद (दावा) कर सकेगी या उसके विरुद्ध कोई दावा किया जा सकेगा।

निगमित निकाय से अभिप्राय यह है कि पंचायत समिति एक विधिक संकाय या व्यक्ति है। कानून इसे विधिक या काल्पनिक व्यक्ति का स्वरूप देता है। निगमित निकाय की परिभाषा करते हुए लार्ड हेल्सबरी ने कहा है कि "यह ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो एक सकाय के रूप में संगठित हैं, जिसकी विशेष सख्या निर्धारित है जो सहवरित उत्तराधिकार रखती है तथा उसे कानून की नीति द्वारा एक ऐसी कार्यक्षमता प्रदान की गयी है कि वह बहुत से मामलों में एक व्यक्ति की तरह कार्य करती है। वह सम्पत्ति ग्रहण करती है, उसे किसी को दे सकती है, देनदारियों की सविदाएं कर सकती है। वह कानूनी कार्यवाही अर्थात वाद (दावा) कर सकती है और इसी प्रकार उसके विरुद्ध वाद किया जा सकता है। वह सत्र के साथ प्रमुविधाओं (प्रिवीलेजेज) का उपभोग कर सकती है और बहुत से राजनीतिक अधिकारों को उस सस्थान की सरचना के अनुसार अपने गठन के समय या बाद में अपने अस्तित्वकाल में प्रकट कर सकती है।

एक निगमित निकाय की अपनी सामान्य मुद्रा (सील) होती है। विधिक दृष्टि से यह सामान्य मोहर किसी भी सस्था के निगमित होने का साक्ष्य मानी जाती है। पंचायत समिति की ओर से दी गयी आज्ञा या निष्पादित किये गये दस्तावेज पर उसकी मोहर का उपयोग करना आवश्यक माना गया है। इसके बिना उस दस्तावेज को विधिक रूप में मान्य नहीं माना जा सकता।

किसी भी संस्था के विधिक स्वरूप का एक आवश्यक तत्व यह है कि उसकी पहचान लगातार या शाश्वत हो अर्थात उसके मूल सदस्य तथा उत्तराधिकारी एक माने जाते हैं। सदस्यों का एक समूह या दल आ सकता है और जा सकता है। प्रजातांत्रिक सकाय में निर्वाचन के साथ सदस्यों के फेरबदल की प्रक्रिया सदा चलती रहती है किन्तु पंचायत समिति के उस क्षेत्र के सदस्यों का

कानूनी व्यक्तित्व सदा बना रहता है । उसका वही सम्पूर्ण रूप सदा शाश्वत काल के लिए बना रहता है । उसके सदस्य बदलते रहते है पर निकाय नही बदलता, वह शाश्वत है, चिरजीवी है । इस प्रकार एक सकाय पर जो दायित्व या कर्तव्य एक बार बाध्यकर हो जाते हैं, वह वह उसके उत्तराधिकारियो 'प्रान वाले सदस्यो) पर भी बाध्यकर रहते है ।

किसी भी निगमित निकाय को सम्पत्ति प्राप्त करने, तथा उसके निर्वर्तन या प्रतरण (स्थानातरण) करने का अधिकार होता है । पचायत समिति भी ऐसी सभी कार्यवाही अपने नाम स कर सकती है और इस हेतु मोहर का प्रयोग कर सकती है, यद्यपि इसके लिए पचायत समिति को सकल्प पारित करना होता है ।

पचायत समिति अपने स्वय के नाम से किसी व्यक्ति के विरुद्ध वाद या कानूनी कार्यवाही किसी न्यायालय मे कर सकती है और इसी प्रकार पचायत समिति के विरुद्ध कोई अन्य व्यक्ति वाद या कानूनी कार्यवाही कर सकता है ।

इस प्रकार राजस्थान की पचायत समितिया भी उपरोक्त विधिक स्वरूप मे दी गयी स्थिति, प्रभाव और अधिकारो का पूर्णत उपयोग करती है । **राजस्थान मे इस समय कुल 237 पचायत समितिया कार्यरत हैं ।**

राजस्थान मे पचायत समिति की सरचना मे अधिनियम के अनुसार निम्नाकित सदस्य होते हैं

1 पदेन सदस्य

(1) पचायत समिति क्षेत्र की सभी पचायतो के सरपच,

(2) पचायत समिति क्षेत्र से निर्वाचित विधानसभा सदस्य,

(3) उपखण्ड अधिकारी, (एस डी. ओ.) जिसकी अधिकारिता मे वह खण्ड स्थित है, पदेन सदस्य होगे, परन्तु उसे कोई मताधिकार नही होगा ।

2. निर्वाचित सदस्य

अधिनियम मे यह प्रावधान किया गया है कि खण्ड की सभी ग्राम सभाओ के अध्यक्षो द्वारा अपने मे से, विहित रीति से निर्वाचित सदस्य पचायत समिति मे प्रतिनिधित्व करेंगे । इस प्रकार निर्वाचित किय जाने वाले सदस्यो की सख्या सम्बन्धित जिलाधीश द्वारा निर्धारित की जायेगी । जिलाधीश के लिए इस सम्बन्ध मे यह निर्देश अभिलिखित किये गये हैं कि यदि ग्रामो के समूह की कुल जनसख्या एक हजार से अधिक न हो तो उन पर एक प्रतिनिधि और यदि एक

हजार से अधिक हो तो प्रत्येक एक हजार व्यक्तियो पर एक और प्रतिनिधि चुना जा सकेगा। यदि किसी पचायत समिति क्षेत्र मे केवल एक ही ग्राम सभा हो तो उसका अध्यक्ष उस पचायत समिति का सदस्य निर्वाचित हुआ समझा जायेगा।

3 सहयोजित या सहवरित सदस्य

अधिनियम की धारा 8 की उपधारा 2 के अधीन निम्नांकित सदस्य पंचायत समितियो मे सहवरित किये जाते हैं

(1) दो महिलाए,
(2) दो अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि,
(3) दो अनुसूचित जन जाति के सदस्य, यदि पचायत समिति क्षेत्र मे इनकी सख्या, कुल जनसख्या के 5 प्रतिशत से अधिक हो, और
(4) एक प्रतिनिधि सहकारी समितियो की प्रबन्ध समितियो के द्वारा निर्वाचित।

4. सह सदस्य

(1) कृषि निपुण कृषक एक,
(2) पचायत समिति क्षेत्र मे कार्यरत ग्राम सेवा सहकारी समितियो के अध्यक्षो का एक प्रतिनिधि जो ऐसी समितियो के अध्यक्षो द्वारा स्वयं उन्ही मे से चुना जाये,
(3) पचायत समिति क्षेत्र मे कार्य कर रही विपणन समितियो के अध्यक्षो का एक प्रतिनिधि जो ऐसी समितियो के अध्यक्षो द्वारा उन्ही मे से चुना गया हो,
(4) ग्राम सेवा तथा विपणन समितियो के अतिरिक्त पचायत समिति क्षेत्र मे कार्यकारी समितियो के अध्यक्षो का एक प्रतिनिधि जो ऐसी समितियो के अध्यक्षो द्वारा उन्ही मे से चुना गया हो।

अपर (अतिरिक्त) सदस्य

अधिनियम की धारा 9 के अनुसार किसी सरपच या उप सरपच को प्रधान चुन लिया जाता है, तो वह पचायत समिति का "अपर सदस्य" होता है।

पंचायत समिति की सदस्यता के लिए अनर्हताए

राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, 1959 मे पचायत समिति की सदस्यता के लिए योग्यता के सबध मे अनर्हताओ (अयोग्यताए)

की गणना की गयी है। अधिनियम मे कहा गया है कि निम्नांकित कोटि मे आने वाले लोग सदस्य या प्रधान बनने के लिए अयोग्य होंगे। यदि वह

1. केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार अथवा किसी स्थानीय संस्था के अधीन पूर्णकालिक या अंशकालिक वैतनिक नियुक्ति धारण करता है,
2. 25 वर्ष से कम आयु का है,
3. सरकारी सेवा से दुराचार के कारण हटाया गया है और लोकसेवा से पुन: नियोजन हेतु अनर्ह घोषित किया गया हो,
4. पचायत समिति के अधीन कोई वैतनिक या लाभ का पद धारण करता हो,
5. प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वय या अपने साझीदार द्वारा पंचायत समिति को सामान की आपूर्ति करने के लिए किसी संविदा मे हिस्सा रखता हो,
6. कुष्ठ रोगी हो या अन्य किसी ऐसे शारीरिक या मानसिक दोष या रोग से पीड़ित हो जो उसे कार्य के लिए अयोग्य बना दे,
7. किसी सक्षम न्यायालय द्वारा नैतिक पतन, छुआछूत या अन्य अपराध के लिए न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया हो,
8. दिवालिया हो,
9. पचायत समिति द्वारा 1959 के अधिनियम के अधीन या पचायत द्वारा राजस्थान पचायत अधिनियम, 1953 के अधीन आरोपित किसी कर या फीस की रकम का भुगतान उसने बिल प्रस्तुत करने की तिथि से दो माह के भीतर नहीं किया हो,
10. पचायत समिति की ओर से अथवा उसके विरुद्ध विधि व्यवसायी (अभिभाषक) के रूप मे नियोजित है,
11. राजस्थान पचायत अधिनियम, 19·3 की धारा 17 की उपधारा 4 (ख) के अधीन किसी पचायत के सरपच या उपसरपच या पच या न्याय उप समिति के अध्यक्ष या सदस्य के निर्वाचन के लिए अयोग्य हो,
12. अधिनियम की धारा 40 की उपधारा 3 के अधीन प्रधान या उपप्रधान के निर्वाचन के लिए अयोग्य हो।

अधिनियम मे यह भी कहा गया है कि किसी नैतिक दुराचार या अस्पृश्यता अधिनियम आदि प्रयोजन के लिए दोष सिद्धि की तिथि से 6 वर्ष व्यतीत हो जाने पर या राज्य सरकार की इस निमित्त किसी सामान्य या विशेष आज्ञा

द्वारा यदि वह निर्वाचन के योग्य घोषित कर दिया गया हो तो इसमे भी वह निर्वाचन के लिए पात्र हो जायेगा । इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियमो के अन्तर्गत किसी फीस या कर की अदायगी न करने के कारण अयोग्य था और नामाकन पत्र प्रस्तुत करने की दिनाक से पहले यदि उसने इस फीस या कर का भुगतान कर दिया हो तो, उसकी अयोग्यता विलोपित समझी जायेगी ।

अधिनियम यह व्यवस्था भी करता है अनर्हता के किसी भी प्रश्न का निर्णय सक्षम न्यायाधीश के द्वारा किया जायेगा । अधिनियम की धारा 17 इस बात की व्याख्या करती है कि सदस्यो के लिए अनर्हता का प्रश्न क्या है, ऐसा प्रश्न कब उठाया जायेगा, कौन उठा सकता है और न्यायालय के निर्णय का क्या प्रभाव होगा ।

पचायत समिति के पदाधिकारी

पचायत समितियो मे 'निर्वाचित सभा' के सदस्यो का विवरण उपरोक्त प क्तियो मे दिया जा चुका है । पचायत समितियो के कार्य सचालन मे जिन पदाधिकारियो का प्रमुख योगदान होता है उनमे प्रमुख हैं

1 प्रधान,
2. उप प्रधान,
3 विकास अधिकारी,
4 प्रसार अधिकारी

प्रथम दो पदाधिकारी—प्रधान एव उप प्रधान—प चायत समिति स्तर पर जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं जबकि विकास अधिकारी एव अन्य प्रसार अधिकारी राज्य की लोक सेवा के अग होते हैं । खण्ड स्तर पर प चायत समिति द्वारा निर्धारित नीतियो को क्रियान्वित करने एव राज्य सरकारा द्वारा खण्ड स्तर पर कार्यान्वियन हेतु हस्तान्तरित परियोजनाओ के निष्पादन मे जन प्रतिनिधियो तथा लोकसेवको की जिम्मेदारियो को प चायत समिति के स्तर पर सयुक्त किया गया है । लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की इस सबसे सशक्त इकाई के स्तर पर सैद्धान्तिक तौर पर यह अपेक्षा की गयी है कि विकास योजनाओ के निष्पादन मे जन प्रतिनिधि और लोकसेवक मिलकर कार्य करें । न तो अकेली नौकरशाही जन प्रतिनिधियो के सहयोग के अभाव मे नीतियो और कार्यक्रमो का प्रभावी कार्यान्वयन कर सकती है और न ही जन प्रतिनिधि लोकसेवको के सहयोग के अभाव मे यथार्थ और व्यावहारिक नीतियो का निरूपण कर सकते हैं । लोक-

तात्रिक शासन व्यवस्था के इस मर्म को समझते हुए ही, पचायतीराज के समस्त स्तरो पर जन प्रतिनिधियो और लोकसेवको के प्रयत्नो मे सामजस्य स्थापित किया गया है। खण्ड स्तर पर यह सामजस्य सरकारी प्रतिनिधि–विकास अधिकारी और जन प्रतिनिधि–प्रधान–के माध्यम मे सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया गया है।

प्रधान का चुनाव

राजस्थान मे प्रधान के चुनाव का निर्वाचक मण्डल वर्तमान मे इस प्रकार है :

1 पचायत समिति के सभी सदस्य, (सब डिविजनल ऑफीसर को छोड़कर)
2. पचायत समिति क्षेत्र की सभी पचायतो के निर्वाचित एव सहवरित सदस्य,
3 पचायत समिति क्षेत्र की सभी ग्राम सभाओ के अध्यक्ष

पचायत समिति के प्रधान के चुनाव का यह विस्तृत निर्वाचन मण्डल, राजस्थान मे 1964 मे नियुक्त सादिक अली समिति के प्रतिवेदन की अभिशसाओ का परिणाम है। इसके पूर्व प्रधान के चुनाव मे केवल पचायत समिति के सदस्य, जो सख्या मे 30 से 50 के आसपास होते थे, भाग लेते थे। मतदाताओ की इस सीमित सख्या के कारण प्रधान के चुनाव मे उन पर दबाव और उनके अपहरण तक की घटनाए होने लगी थी। इस प्रकार की अशुभ समावनाओ को समाप्त करने तथा प्रधान की कार्य प्रणाली की स्वतन्त्रता को अधिक सुनिश्चित करने के लिए सादिक अली समिति ने प्रधान के चुनाव हेतु निर्वाचन मण्डल को विस्तृत करने का सुझाव दिया था जिसे राज्य सरकार ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अब न केवल पचायत समिति के सभी निर्वाचित एव सहवरित सदस्य प्रधान के चुनाव मे भाग लेते हैं अपितु पचायत समिति क्षेत्र की सभी पचायतो के समस्त निर्वाचित एव सहवरित पच भी अपने खण्ड स्तर के राजनीतिक नतृत्व के चुनाव मे सक्रिय भाग लेते हैं।

पंचायत समिति मे सहवरण की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात जिले का जिलाधीश, निर्वाचन विभाग द्वारा घोषित कार्यक्रम के अनुसार, प्रधान के चुनाव के लिए पंचायत समिति की बैठक आमन्त्रित करता है। चुनाव हेतु बुलायी गयी इस बैठक की अध्यक्षता स्वय जिलाधीश या उसके द्वारा अधिकृत अतिरिक्त जिलाधीश करता है। प्रधान पद का निर्वाचन, "राजस्थान पंचायत समिति एव

जिला परिषद (प्रधान तथा प्रमुख निर्वाचन) नियम, 1979" मे दिये गये तरीके मे गुप्त मतदान प्रणाली से होता है।

प्रधान के लिए पात्रता

"कोई व्यक्ति प्रधान निर्वाचित होने के लिए तब तक पात्र नही होगा जब तक कि वह किसी पचायत का निवासी अथवा मतदाता या राजस्थान ग्राम दान अधिनियम, 1971 की धारा 13 के अधीन स्थापित उस खण्ड की किसी ग्राम सभा का सदस्य न हो तथा हिन्दी पढने लिखने के योग्य न हो।

इस प्रकार प्रधान पद के लिए पात्रता की जो दो प्रमुख शर्तें राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, 1959 मे निर्धारित की गयी है उन्हे सरल शब्दो मे इस तरह व्यक्त किया जा सकता है :

1. वह किसी पचायत का निवासी और मतदाता हो,
2. उसे हिन्दी पढने और लिखने का ज्ञान हो।

प्रधान पद के लिए राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम की धारा 12 (1) (क) के परन्तुक मे कुछ विशेष शर्तों का उल्लेख भी किया गया है जो इस प्रकार है :

1. कोई व्यक्ति प्रधान और ससद सदस्य या विधान सभा सदस्य दोनो पदो पर नही रह सकता। यदि कोई ससद या विधान सभा सदस्य प्रधान चुना जाता है तो प्रधान के चुनाव परिणाम से 14 दिन पूरे होने पर वह प्रधान नही रह सकता, बशर्ते कि उसने ससद या विधान सभा की सीट से त्यागपत्र नही दिया हो। इसी प्रकार कोई प्रधान भी चुनाव लड़कर विधान सभा या ससद का सदस्य चुन लिया जावे तो वह चुनाव के 14 दिन पूरे होने पर प्रधान नही रह सकता बशर्ते की उसने ससद या विधान सभा की सीट से त्यागपत्र नही दे दिया हो।
2. वह दो पचायत समितियो का प्रधान नही रह सकता। उसे एक से त्यागपत्र देना होगा, अन्यथा 14 दिन पूरे होने पर वह किसी भी पचायत समिति का प्रधान नही रह सकेगा।

इसी अधिनियम की धारा 12 (2) के अन्य "परन्तुक" मे यह व्यवस्था भी की गई है कि यदि प्रधान या उप प्रधान का चनाव होने के समय पंचायत समिति के किसी सहयोजित सदस्य का पद या किसी निर्वाचित सदस्य का पद खाली हो या विधान सभा के किसी सदस्य ने ऐसे चुनाव मे मतदान नही किया

है तो भी प्रधान और उप प्रधान का चुनाव वैध (मान्य) होगा। यह रक्षक-उपबंध है, जो ऐसे चुनाव को अवैध घोषित होने से बचाता है।

पदावधि तथा रिक्त स्थान

अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार चुने गये प्रधान की पदावधि या कार्य काल वही होगा जो उस पचायत समिति का है। परन्तु यदि प्रधान का पद बीच में रिक्त हो जाये तो उसके स्थान पर चुने गये प्रधान का कार्य काल उसके पहले वाले प्रधान की बची हुई अवधि के लिए ही होगा।

उप प्रधान का निर्वाचन तथा पदावधि

एस.डी.ओ. और सहयोजित सदस्यों को छोड़कर पचायत समिति के शेष सदस्यों में से किसी एक को उप प्रधान चुना जाता है। उप प्रधान के चुनाव में भाग लेने वाले निर्वाचक मण्डल में निम्नांकित सदस्य होते हैं :

(1) खण्ड की समस्त ग्राम पचायतों के सरपच,
(2) खण्ड से निर्वाचित विधान सभा सदस्य,
(3) ग्राम सभाओं से निर्वाचित सदस्य, तथा
(4) सहयोजित सदस्य

इस प्रकार निर्वाचित उप प्रधान की पदावधि या कार्यकाल पचायत समिति के कार्यकाल के बराबर होता है. परन्तु नियमों में यह प्रावधान भी किया गया है कि उप प्रधान का पद यदि बीच में रिक्त हो जाये तो उसके स्थान पर चुने गये उपप्रधान का कार्यकाल उसके पहले वाले उप प्रधान की बची हुई अवधि के लिए ही होगा।

प्रधान और उप प्रधान के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव

पचायत समिति के प्रधान या उप प्रधान में अविश्वास का भाव व्यक्त करने वाला कोई प्रस्ताव अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप लाया जा सकता है। ऐसा प्रस्ताव करने के आशय का एक लिखित नोटिस, जिस पर पचायत समिति के कुल सदस्यों में से कम से कम एक तिहाई सदस्यों के हस्ताक्षर होंगे और जिसके साथ प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि सलग्न होगी और प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से किसी एक सदस्य द्वारा वह उस जिलाधीश को व्यक्तिगत रूप में प्रस्तुत किया जायेगा, जिसके अधिकार क्षेत्र में वह पचायत समिति है। ऐसा नोटिस प्राप्त होने के 30 दिन की अवधि में, सदस्यों को 15 दिन का नोटिस देते हुए जिलाधीश उस प्रस्ताव पर विचारार्थ पचायत समिति

की बैठक बुलाता है। ऐसी बैठक की अध्यक्षता जिलाधीश या अतिरिक्त जिलाधीश स्वय करता है। इस प्रकार बुलायी गयी पचायत समिति की बैठक के सम्मुख अध्यक्ष द्वारा प्रस्ताव विचारार्थ रखा जाता है। प्रस्ताव पर दो घण्टे की बहस के पश्चात सदस्यो का मतदान कराया जाता है। जिलाधीश या अतिरिक्त जिलाधीश इस प्रकार की बहस मे न तो भाग लेता है और न ही मतदान करता है। यदि ऐसा प्रस्ताव सदस्यो के दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित कर दिया जाये तो उसके पारण की सूचना पचायत समिति के सूचना पट्ट पर लगायी जाती है और इसीके साथ प्रधान या उपप्रधान, जिनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित हुआ है, पद मुक्त हो जाता है।

यदि उक्त रीति से प्रस्ताव पारित नही होता है अथवा गणपूर्ति के अभाव के कारण बैठक आयोजित नही हो पाती है तो उसी प्रधान या उपप्रधान मे अविश्वास व्यक्त करने वाले किसी पश्चातवर्ती प्रस्ताव का नोटिस तब तक नही दिया जायेगा जब तक कि पूर्व बैठको की तारीख से 6महीने व्यतीत न हो जायें। ऐसा प्रस्ताव जब दुबारा लाया जाता है तो उसके समर्थन मे दो तिहाई सदस्यो के मत की अनिवार्यता के स्थान पर निर्वाचक मण्डल के साधारण बहुमत का समर्थन प्राप्त होने पर उसे स्वीकृत मान लिया जाता है। इस हेतु राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद (प्रधान, उप प्रधान, प्रमुख मे अविश्वास का प्रस्ताव) नियम 1961 बनाये गये है। इन्ही नियमो मे यह प्रावधान भी किया गया है कि किसी प्रधान या उप प्रधान को हटाने के लिए प्रस्तावित किया जाने वाला अविश्वास प्रस्ताव ऐसे व्यक्ति द्वारा पद भार सभालने के 6 महीने के भीतर नही लिया जायेगा। इसी प्रकार गणपूर्ति के लिए भी यह प्रावधान किया गया है कि इस प्रकार की बैठक मे मत देने के लिए अधिकृत व्यक्तियो की कुल सख्या की एक तिहाई सख्या गणपूर्ति हेतु वाछित मानी जावेगी।

प्रधान या उप प्रधान को पद मुक्त या निलम्बित करना

यदि राज्य सरकार की सम्मत्ति मे, किसी पचायत समिति का प्रधान या उप प्रधान या सदस्य उक्त पंचायत समिति के समुचित कार्य सचालन मे राज्य सरकार की आज्ञाओ का जान बूझकर पालन न करे या पालन करने से इकार करे या उसमे निहित शक्तियो का दुरुपयोग करे या वह अपने कर्तव्य पालन मे दुराचरण कार्य का दोषी पाया जाये तो राज्य सरकार उन्हे स्पष्टीकरण हेतु युक्ति युक्त अवसर देने के पश्चात तथा उस मामले मे जिला परिषद से विचार विमर्श करने के पश्चात ऐसे प्रधान या सदस्य को उसके पद से हटा सकती है।

राज्य सरकार किसी प्रधान, उप प्रधान या सदस्य को, जिसके विरुद्ध जांच *अधिनियम के अन्तर्गत प्रारम्भ की गयी है या जिसके विरुद्ध किसी विधि* न्यायालय में कोई आपराधिक कार्यवाही ऐसे अपराध के लिए, जिसमें नैतिक पतन अन्तर्वलित हो, या लंबित हो, निलम्बित कर सकेगी और उसे उक्त निलम्बन अवधि में पंचायत समिति के किसी कार्य या कार्यवाही में भाग लेने से रोक सकेगी।

अधिनियम यह प्रावधान भी करता है कि अपने पद से हटाये गये कोई प्रधान, उपप्रधान या सदस्य उसके हटाये जाने की तारीख से 5 वर्ष की अवधि के लिए प्रधान या उप प्रधान के रूप में पुनः निर्वाचन के योग्य नहीं होंगे।

विकास अधिकारी

पंचायत समिति के प्रशासनिक दायित्वों के निष्पादन के लिए उसे आवश्यक प्रशासन तन्त्र उपलब्ध कराया जाता है। खण्ड विकास अधिकारी इस प्रशासन तन्त्र का प्रमुख या नियन्त्रक अथवा सर्वोच्च अधिकारी होता है। भारत वर्ष में प्रायः सभी राज्यों ने पंचायती राज का जो ढांचा अपनाया हुआ है उसमें पंचायत समिति के नियन्त्रक अधिकारी के रूप में पूरे भारत वर्ष में खण्ड विकास अधिकारी की एक स्वतन्त्र प्रशासकीय छवि विकसित हुई है। जिले में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रशासनिक अधिकारी यदि जिलाधीश है तो खण्ड स्तर पर खण्ड विकास अधिकारी इसी शृंखला में दूसरा महत्वपूर्ण व्यक्ति माना जा सकता है।

खण्ड विकास अधिकारी की भर्ती या नियुक्ति की दो मुख्य प्रणालियां प्रचलित हैं। प्रथम प्रणाली के अन्तर्गत कुछ राज्यों यथा असम, बिहार, उत्तर-प्रदेश, जम्मू कश्मीर, उड़ीसा, पंजाब और हरियाणा में पद के लिए राज्य के लोक सेवा आयोग द्वारा प्रत्यक्ष भर्ती की जाती है। इस पद हेतु सामान्यतः 35 से 35 वर्ष की आयु के और कला, विज्ञान, कृषि तथा पशु चिकित्सा में स्नातक उपाधिधारी व्यक्ति योग्य समझे जाते हैं। इस प्रकार के अभ्यर्थियों के लिए कुछ न्यूनतम प्रशासनिक अनुभव निर्धारित किये जाते हैं। कर्नाटक में राजस्व कृषि, सहकारिता अथवा समाज कल्याण विभागों में 3 से 5 वर्ष तक का प्रशासनिक अनुभव इस पद हेतु आवश्यक माना गया है। इस प्रणाली के विपरीत कुछ अन्य राज्यों यथा आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, केरल और राजस्थान में दूसरी प्रथा प्रचलित है। जिसके अन्तर्गत राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में पहले से ही नियुक्त और कार्यरत व्यक्तियों में से पद वृद्धि अथवा स्थानान्तरित या परावर्तन पर खण्ड विकास अधिकारी को लिया जाता है। खण्ड विकास अधिकारी को

चू कि अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रो मे विकास कार्यों का निरीक्षण करना होता है। इसलिए इस पद पर नियुक्ति क लिए ग्राम तौर पर राजस्व विभाग या कृषि विभाग के अधिनस्थ अधिकारियो मे से व्यक्तियो को परावर्तन पर मांगा जाता है। ऐसे सभी राज्यो मे खण्ड विकास अधिकारी के कुछ प्रतिशत पद पंचायत समिति मे कार्य कर रहे प्रसार अधिकारियो के लिए भी सुरक्षित रखे जाते हैं। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि खण्ड स्तर पर विकास कार्योंका निरीक्षण कर रहे इस अधिकारी को उन्नत कार्य करने की प्रेरणा मिल सके।

राजस्थान मे, राजस्थान पंचायत समिति (विकास अधिकारियो, प्रसार अधिकारियो, तथा अन्य अधिकारियो की प्रतिनियुक्ति की शर्तें तथा अनुबन्ध) नियम, 1959 बनाये गये हैं। इन नियमो मे कहागया है कि किसी व्यक्ति को जो राज्य सरकार के अधीन किसी पद पर है, पंचायत समिति मे प्रतिनियुक्ति पर विकास अधिकारी या अन्य अधिकारी, प्रसार अधिकारी या अन्य अधिकारी के रूप मे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जा सकेगा। इस प्रकार प्रतिनियुक्ति पर लिए गये अधिकारी अपने पैतृक सवर्ग मे उसी प्रकार वार्षिक वृद्धि या पदोन्नति पाते रहेंगे जिस प्रकार वह तब पाते जब प्रतिनियुक्ति पर नही होते। वह अधिकारी उन्ही सेवा नियमो से शासित रहेगा जो उस सेवा पर लागू होते है जिससे कि वह सम्बद्ध है। उसकी प्रतिनियुक्ति की अवधि सम्बन्धित नियुक्ति अधिकारी द्वारा या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जायेगी यदि उसके अपने पैतृक विभाग मे उसकी पदोन्नति देय हो गयी है या अन्य प्रशासनिक कारणो से उसे वापस बुलाया जाना उचित जान पडता है तो सम्बन्धित विभाग भी उसे वापस बुलाने की कार्यवाही कर सकता है।

राजस्थान सरकार द्वारा, राजस्थान पंचायत समिति (विकास अधिकारियो का चयन) नियम, 1968 विनिर्मित और प्रकाशित किये गये हैं। इन नियमो मे यह कहा गया है कि विकास अधिकारी की नियुक्ति के लिए चयन करते समय राजस्थान पशुपालन सेवा के समूह ग 11 मे पद धारण करने वाले अधिकारियो, जिन्हे 5 वर्ष की सेवा का अनुभव जिसमे कम से कम 2 वर्ष पशु प्रसार अधिकारी के पद का अनुभव सम्मिलित हो तथा राजस्थान कृषि अधिनस्थ सेवा के सदस्यो जिन्हे भी 5 वर्ष का अनुभव हो, को प्राथमिकता दी जायेगी। इन्ही नियमो मे ऐसे अधिकारियो को विकास अधिकारी नियुक्त करने के लिए भी प्रावधान रखा गया जो इन नियमो के प्रकाशन के पूर्व इस पद पर कार्य का अनुभव रखते थे। इस तरह सहकारिता प्रसार अधिकारियो, शिक्षा प्रसार अधिकारी तथा अन्य प्रसार अधिकारियो, महिला पोषाहार प्रसार अधिकारियो सहित जिन्हें पंचायत समिति मे कम से कम 5 वर्ष की सेवा का अनुभव हो, को भी

इस पद पर नियुक्त करने का प्रावधान किया गया है । नियमो मे राज्य सरकार को यह अधिकार भी दिया गया है कि यदि वह आवश्यक समझे, तो राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियोको विकास अधिकारी के पदो पर अस्थाई रूप से नियुक्त कर सकती है । विकास अधिकारी के रूप मे नियुक्ति के लिए व्यक्तियो का चयन करते समय उसके व्यक्तिगत, चरित्र, व्यवहार, कुशलता, बुद्धि तथा ऊर्जा, दौरे करने की क्षमता, सत्यनिष्ठा, तकनीकी योग्यता तथा ज्ञान, सेवा का पुराना अभिलेख और कार्य का पिछला अनुभव विशेष रूप से पचायत समितियो मे, का ध्यान रखते हुए किये जाने का उल्लेख किया गया है ।

राजस्थान पशुपालन सेवा से या कृषि विभाग मे विकास अधिकारियो के पद पर चयन हेतु निर्दिष्ट की गयी प्रक्रिया मे कहा गया है कि विकास अधिकारियो के रिक्त पदो को इन विभागो के अधिनस्थ अधिकारियो मे से नियमानुसार भरने हेतु सम्बन्धित विभाग के निदेशक को पात्र अधिकारियो की सूची भेजते समय सम्बन्धित निदेशक उन अधिकारियो की, जिनके नाम उस सूची मे किये गये हैं, गोपनीय पजिकाएं भी विकास विभाग को भेजेगा । ऐसे अधिकारियो का चयन करने वाले विकास विभाग के स्तर पर जो समिति है उसमे लोकसेवा आयोग का अध्यक्ष या उसका प्रतिनिधि इस समिति का अध्यक्ष होगा । समिति के सदस्यो मे कृषि विभाग का विशिष्ट शासन सचिव, शासन सचिव नियुक्ति (कार्मिक) या उसका प्रतिनिधि जो उप शासन सचिव से निम्न श्रेणी का न हो और निदेशक कृषि, निदेशक पशुपालन, यथा स्थिति तथा निदेशक सामुदायिक विकास एव पचायत इसके सदस्य सचिव के रूप मे होगे । यह समिति विचारणीय प्रस्तुत नामो पर उपरोक्त वर्णित गुणो के अनुसार विचार करेगी और भरे जाने वाले रिक्त पदो की सख्या के बराबर अभ्यर्थियो का चयन करेगी । चयनित अधिकारियो की कुल सख्या की 50 प्रतिशत सख्या मे सुरक्षित सूची भी बनायी जायेगी । विकास अधिकारी के पद के लिए विभिन्न विभागो के अधिनस्थ अधिकारियो मे से चयन की प्रक्रिया के व्यापक प्रावधान इन घोषित नियमो मे दिये गये हैं ।

राजस्थान मे विकास अधिकारियो के पद पर नियुक्ति के लिए राजस्थान सरकार ने 1960 से 70 के दशक मे राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो को भी कुछ समय तक नियोजित किया था और शेष पदो पर कृषि, पशुपालन सहकारिता आदि विभागो के अधिकारियो मे से नियुक्ति की जा रही है । चू कि दो दशक तक राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति इन पदो पर लगभग बन्द कर दी गयो थी किन्तु 1985 के पश्चात पुन राज्य

सरकार ने राजस्थान की लगभग 100 महत्वपूर्ण पंचायत समितियों में विकास अधिकारी के पद पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को नियुक्त किया है और शेष पंचायत समितियों में अन्य विभागों के अधिकारी ही पूर्व की भांति नियुक्त किये गये हैं।

विकास अधिकारी की नियुक्ति एवं शक्तियां

विकास अधिकारी पंचायत समिति का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है और इस नाते पंचायत समिति के स्तर पर कार्यान्वित की जा रही या की जाने वाली समस्त नीतियों के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी उस पर होती है। इस हेतु विकास अधिकारी पंचायत समिति में कार्यरत समूचे प्रशासनिक कार्मिक वर्ग पर नियन्त्रण करता है। इस स्तर पर जितने भी प्रसार अधिकारी कार्य करते हैं वे प्रशासनिक दृष्टि से उसके प्रशासनिक नियन्त्रण में रहते हुए उसके प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं। यद्यपि ये समस्त प्रसार अधिकारी तकनीकी विषयों में अपने जिला स्तरीय विभागीय अधिकारी के निर्देशन और पर्यवेक्षण में कार्य करते हैं। यह एक ऐसी स्थिति है जहां प्रशासनिक अधिकारियों के सन्दर्भ में 'आदेश की एकता' के सिद्धान्त का उल्लंघन होता सा दिखाई देता है। किन्तु इस प्रक्रिया में अब तक इस स्थिति ने सहजता प्राप्त कर ली है और समस्त प्रसार अधिकारी प्रशासनिक रूप से विकास अधिकारी के नियन्त्रण में और तकनीकी रूप से अपने विभाग के अधिकारियों के नियन्त्रण में कार्यरत रहते हैं।

पंचायत समिति का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होने के नाते विकास अधिकारी को मुख्यतः निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करने होते हैं

1. वह पंचायत समिति तथा उसकी विभिन्न स्थाई समितियों के द्वारा निर्धारित नीतियों और पारित प्रस्तावों के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होता है।
2. पंचायत समिति का वह मुख्य कार्यकारी अधिकारी ही नहीं है अपितु वह पंचायत समिति का सचिव भी होता है और इस रूप में पंचायत समिति के प्रधान या अध्यक्ष के निर्देशन में कार्य करते हुए वह पंचायत समिति तथा उसकी स्थाई समितियों की बैठकों की कार्यवाही का नियमित रेकार्ड रखता है।
3. वह पंचायत समिति की बैठकों में सम्मिलित होता है, वहां उठाये गये प्रश्नों का उत्तर देता है, विचार विमर्श में सम्मिलित होता है किन्तु निर्णय

लेते समय यदि मतदान की स्थिति आती है तो वह उसमे सम्मिलित नही होता।

4. पंचायत समिति के समस्त अभिलेखो या प्रमाण पत्रो को वह अपने हस्ताक्षर द्वारा प्रमाणिकता प्रदान कर, उन्हे जारी करता है।

5. पंचायत समिति के कोष से धन निकालना और उसे सही प्रकार से व्यय या वितरित करने के लिए वह उत्तरदायी होता है। इसी अधिकार के अन्तर्गत वह पंचायतो की वित्तीय स्थिति का निरीक्षण भी कर सकता है।

6 वह पंचायत समिति की स्वीकृति से, पंचायत समिति की ओर से संविदा करने और उसे निष्पादित करने के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

7 वह पंचायत समिति मे कार्यरत समस्त कर्मचारी वृन्द तथा अधिकारियो का एवं पंचायत समिति द्वारा निष्पादित सेवाओ मे सलग्न कर्मचारियो पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करता है।

8. यदि पंचायत समिति मे किसी प्रकार की वित्तीय अनियमितता, गबन या घोटाला हो जाये तो प्राथमिक रूप से समुचित कार्यवाही करता है, और नियमानुसार उच्चाधिकारियो को उसकी सूचना देता है।

9 राज्य सरकार द्वारा पंचायत समिति को जो परियोजनायें वित्तीय मद सहित हस्तान्तरित की जाती है उनके सही कार्यान्वयन के लिए वह जिम्मेदार होता है।[10] वह पंचायत समिति के अन्तर्गत आने वाली समस्त पंचायतो समस्त कर्मचारियो, प्रतिनिधियो और स्वैच्छिक सस्थाओ मे सामजस्य स्थापित करता है ताकि योजना का अधिकतम लाभ जन साधारण को मिल सके।

राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम, 1959 के अन्तर्गत राजस्थान की पंचायत समितियो के विकास अधिकारियो की जो शक्तियां और कर्तव्य उसमे गिनाये गये हैं वे इस प्रकार हैं

1 वह प्रधान तथा स्थाई समिति के अध्यक्षो के निर्देशो के अनुसार पंचायत समिति तथा उसकी स्थाई समिति की बैठको के लिए नोटिस जारी करेगा ऐसी समस्त बैठको मे उपस्थित होगा तथा उनकी कार्यवाही का विवरण लेखबद्ध तथा प्रसारित करेगा, वह ऐसी बैठको के विचार विमर्श मे भाग लेगा,

2. पंचायत समिति की निधि में से धन आहरित तथा वितरित करेगा, यद्यपि प्रधान लिखित में कारण लेखबद्ध करते हुए विकास अधिकारी द्वारा निर्दिष्ट किसी भुगतान को रोक सकेगा और पंचायत समिति या सम्बन्धित समिति के समक्ष ऐसे मामलो को प्रस्तुत कर सकेगा,

3. पंचायत समिति के पूर्व अनुमोदन से, उसके लिए तथा उसकी ओर से संविदाओ को निष्पादित करेगा;

4 समस्त पत्रों व दस्तावेजो को पंचायत समिति के लिए वह उसकी ओर से हस्ताक्षरित व प्रमाणित करेगा,

5. पंचायत समिति के लेखो की लेखा परीक्षा के दौरान ध्यान में लाये गये या उसके प्रावधान मे बदले गये किसी भी दोष या अनियमितता को दूर करने के लिए कदम उठायेगा;

6. पंचायत समिति के धन या अन्य सम्पत्ति के सम्बन्ध में गबन, चोरी या हानि या धोखाधड़ी से सम्बन्धित मामलो की अविलम्ब उच्चाधिकारियों को सूचना देगा;

7. राज्य सरकार, जिला परिषद या इस सम्बन्ध मे प्राधिकृत किसी अन्य अधिकारी को पंचायत समिति या उसकी किसी भी स्थाई समिति की प्रत्येक बैठक मे पारित संकल्पो की व कार्यवाहियो की प्रतिलिपिया या उनके द्वारा अपेक्षित अन्य प्रलेखो की प्रतिलिपिया या उनके उद्धरण प्रस्तुत करेगा;

8. विकास कार्य के लिए आवश्यक स्वैच्छिक संगठनो का गठन करने मे तथा उनकी ऐसी योजनाओ को तैयार करने मे पंचायतो की सहायता करेगा, जो पंचायत समिति की नीति के अनुरूप हो तथा जिनका उद्देश्य पंचायत क्षेत्रो मे कृषि उत्पादन व सहकारी सगठनो को बढ़ावा देना हो,

9 वह यह देखेगा कि सम्बन्धित प्राधिकारियो द्वारा सभी कार्यक्रम ठीक प्रकार से निष्पादित किये जा रहे है;

10. वह यह भी देखेगा कि पंचायतो द्वारा कराये जा रहे निर्माण कार्य निर्धारित मापदण्डो के अनुरूप हैं और निर्दिष्ट समय मे पूरे किये जा रहे हैं;

11. पंचायत समिति की ओर से पंचायतों की वित्तीय स्थिति का, विशेष रूप

से करारोपण और उनकी वसूली, दिये गये ऋणों की वसूली और नियमित लेखों के सधारण के सन्दर्भ में निरीक्षण करेगा;

12 इस अधिनियम के प्रयोजनार्थ पंचायत समिति के कार्यक्षेत्र में स्थित पंचायतों पर सामान्य पर्यवेक्षण रखेगा; तथा

13. वह पंचायत समिति के मामलों में कार्यरत समस्त प्रकार के कर्मचारियों, जिनमें उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जैसा भी सम्बन्ध है, उनके कार्यों पर पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण रखेगा। किन्तु तकनीकी अधिकारियों पर तकनीकी मामलों में नियन्त्रण उनके सम्बन्धित विभाग के अधिकारियों का होगा।

विकास अधिकारी, पंचायत समिति के प्रधान के मुख्यालय से अनुपस्थिति में किसी भी आपातकालीन स्थिति जैसे आग, बाढ़, महामारी, या व्यापक रोग की दशा में किसी ऐसे कार्य के निष्पादन के आदेश दे सकेगा जिसके लिए सामान्यतः पंचायत समिति या उसकी स्थाई समिति की स्वीकृति आवश्यक है किन्तु उसकी राय में यदि ऐसी स्वीकृति लेना जन कल्याण की दृष्टि से विलम्बकारी हो जायेगी तो जनता के कल्याण व सुरक्षा की दृष्टि से ऐसे कार्य के निष्पादन का वह आदेश दे सकेगा और उसका समस्त व्यय पंचायत समिति की निधि से भुगतान किया जायेगा। इस प्रकार की आपातकालीन शक्तियों के सद्व्यवहार के लिए अधिनियम के अन्तर्गत 1959 में ही नियम भी बनाये गये हैं, जिनमें यह अपेक्षा की गयी है कि ऐसी शक्तियों का प्रयोग विकास अधिकारी उन नियमों के अनुसार ही करेगा।

पंचायत समिति के विकास अधिकारी द्वारा निष्पादित भूमिका को विद्वानों द्वारा तीन रूपों में देखा गया है। प्रथमतः वह पंचायत समिति कार्यालय का प्रमुख है, द्वितीयतः पंचायत समिति स्तर पर कार्य करने वाले समस्त प्रसार अधिकारियों के दल का शिखरतम अधिकारी है और पंचायत समिति का सचिव है। विभिन्न राज्यों में उसकी यह भूमिका भिन्न-भिन्न रूपों में और कहीं कहीं समग्र रूप में दिखाई देती है। बिहार और बंगाल में उसे विकास कार्यों के पर्यवेक्षण के अतिरिक्त कुछ नियामकीय कार्यों जैसे भूमि का हस्तान्तरण चल सम्पत्ति का विक्रय लगान वसूली करना और जमा करना, अनाधिकृत भवनों के निर्माण को रोकना, सरकारी भूमि के अतिक्रमण को रोकना कृषि सम्बन्धी आंकड़ों का संकलन इत्यादि कार्य भी करने होते हैं। प्रायः सभी राज्यों में विकास अधिकारियों को निर्वाचन के समय चुनाव सम्बन्धी कार्य भी करने पड़ते हैं।

विभिन्न राज्यो मे खण्ड विकास अधिकारियो के काम काज के बारे मे जो विवरण मिलता है उससे यह प्रतीत होता है कि प्राय सभी राज्यो मे विकास अधिकारी कार्यों के भार से दबा होता है और उस पर इतने कार्यों की जिम्मेदारी डाल दी गयी है कि उन कार्यों का समुचित निरीक्षण और पर्यवेक्षण वह इतनी क्षमता और दक्षता से नही कर पाता जितना उसे करना चाहिए। उसे राज्य सरकार द्वारा जारी अनेक औपचारिक पत्रो का नित्य उत्तर देना पडता है और राज्य सरकार के इन पत्रो की आधिकारिक महत्ता के कारण उनका उत्तर तैयार करवाने मे वह इतना सलग्न हो जाता है कि प्राय अन्य महत्वपूर्ण कार्य अनायास ही उपेक्षित हो जाते हैं। यह स्थिति पचायती राज सस्थाओ के सृजन की दार्शनिक अपेक्षाओ के प्रतिकूल है जिसका निवारण अपेक्षित है।

प्रसार अधिकारी

पंचायत समिति के प्रशासन तन्त्र मे विकास अधिकारी के पश्चात, समिति के दायित्वो के समुचित निर्वाह मे प्रसार अधिकारियो की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। विकास अधिकारी के अधीन पचायत समिति मे शिक्षा, सहकारिता, पशुपालन, उद्योग, जन स्वास्थ्य, सिंचाई इत्यादि विभागो के प्रसार अधिकारी कार्य करते हैं। पचायत समिति चूकि पचायत राज की ऐसी इकाई है जिसे विकास कार्यक्रमो के कायन्वियन का दायित्व निभाना पड़ता है इसीलिए राज्य सरकार के विभिन्न विकास से सम्बन्धित विभागो के कुछ कनिष्ठ अधिकारी पचायत समिति के स्तर पर विकास अधिकारी के नियन्त्रण मे नियुक्त किये जाते हैं ताकि वे उन विभागो से सम्बन्धित विकास परियोजनाओ के पचायत समिति स्तर पर कार्यान्वियन मे तात्कालिक सहायता और तकनीकी निर्देशन उपलब्ध करा सकें। इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखकर प्राय सभी राज्यो मे पंचायत समितियो को प्रसार अधिकारियो से सुसज्जित किया जाता है। प्राय सभी राज्यो मे प्रसार अधिकारी के इन पदो पर पंचायत समिति मे जो अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं वे राज्य सरकार के सम्बन्धित विभाग से प्रतिनियुक्ति पर लिये जाते हैं।

राजस्थान मे सम्बन्धित अधिनियम मे यह कहा गया है कि राज्य सरकार प्रत्येक पचायत समिति के लिए एक विकास अधिकारी तथा ऐसे अन्य प्रसार अधिकारी गण तथा लेखा लिपिक भी जो वह आवश्यक समझे, नियुक्त करेगी। ऐसे नियुक्त अधिकारी एव लिपिक या तो राज्य सेवा के किसी सवर्ग के होगे या राज्य सरकार के अधीन पद धारण करने वाले व्यक्ति होगे। यह अधिकारी विहित शर्तों के अनुसार पचायत समिति को प्रतिनियुक्ति पर भेजे गये समझे

जायेंगे तथा राज्य सरकार द्वारा प्रधान के परामर्श से वह स्थानान्तरित किये जा सकेंगें। इसी तरह अधिनियम मे एक स्थान पर यह कहा गया है कि राज्य सरकार उपर्युक्त विनिर्दिष्ट पदों के अलावा प्रत्येक श्रेणी के पदों की संख्या भी निर्धारित करेगी जो वह प्रत्येक पंचायत समिति के लिए आवश्यक समझे और ऐसे पदों पर नियुक्त व्यक्तियों के वेतनमान, भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें निश्चित करेगी।

उपरोक्त अधिकारियों के अतिरिक्त पंचायत समिति में सर्वेक्षक (ओवरसीयर), सामाजिक शिक्षा संगठन कार्यकर्ता, ग्राम सेवक, ग्राम सेविकाए, प्रगति सहायक, ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता, लेखाकार एवं आंडीटर, वरिष्ठ लिपिक, खजांची, टंकणकर्ता, कनिष्ठ लिपिक, सन्देश वाहक (पशु चिकित्सा), चिकित्सा अधिकारी, कम्प्यूटर, महिला स्वास्थ्य निरीक्षक, सफाई कर्मचारी और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी या तो पंचायत समिति के मुख्यालय में नियुक्त होते हैं या पंचायत समिति के प्रशासनिक नियन्त्रण में उसके ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत हैं।

पंचायत समिति के कार्य

हमारे देश की पंचायती राज की संरचना मे पंचायत समिति एक महत्वपूर्ण इकाई है, जिसे ग्रामीण क्षेत्रों मे विकास कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का दायित्व सौंपा गया है। महाराष्ट्र, गुजरात और अब कर्नाटक आदि प्रान्तों को छोड़कर शेष सभी राज्यों मे पंचायत समिति पंचायत राज के ढांचे मे प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती है। सभी राज्यों मे कृषि विकास, सहकारिता के प्रसार, ग्रामीण स्वास्थ्य के रखरखाव, शिक्षा प्रसार, पशुपालन संवर्धन, कुटीर उद्योगों, मत्स्य पालन, सिंचाई, ग्रामीण स्वच्छता एवं सफाई, स्वास्थ्य शिक्षा, संचार साधन, ग्राम्य वन, पिछड़े वर्गों के लिए उत्थानात्मक कार्य, सामाजिक विकास और आपातकालीन सहायता इत्यादि विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों का निर्वाह पंचायत समिति करती है। इन क्षेत्रों के अलावा सम्बन्धित राज्य सरकारें उसे नये कार्य आवंटित कर सकती हैं। पंचायत समिति उपरोक्त विविध विषयों से सम्बन्धित परियोजनाओं के ग्राम पंचायतों के क्षेत्रों मे कार्यान्वयन की स्थिति का सतत पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करने के लिए भी उत्तरदायी होती है। इन कार्यों के कुशल सम्पादन हेतु ग्राम पंचायतों को तकनीकी और वित्तीय सहायता भी पंचायत समिति द्वारा उपलब्ध करायी जाती है। प्रायः सभी राज्यों मे पंचायत समिति अपने अधीनस्थ ग्राम पंचायतों के वित्तीय प्रशासन और बजट पर आवश्यक नियन्त्रण रखती है और बजट के निष्पादन की किसी भी स्थिति पर अपना नियन्त्रण प्रभावी कर सकती है।

पचायत समिति द्वारा सम्पादित कार्यों को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है :

1. नागरिक सेवाओ से सम्बन्धित कार्य, तथा
2. विकास से सम्बन्धित कार्य

1. नागरिक सेवाओ से सम्बन्धित कार्य

इस प्रथम कोटि के कार्यों के सपादन मे प्राय पचायत समितिया निम्न कार्यों को संपादित करने के लिए उत्तरदायी मानी जाती है

(1) खण्ड क्षेत्र मे पीने योग्य जल की व्यवस्था
(2) ग्रामीण क्षेत्रो मे सडको के निर्माण मे सहायता देना
(3) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो तथा प्रसूति केन्द्रो की स्थापना एव उनका संधारण
(4) चिकित्सकीय एव स्वास्थ्य सेवाओ की व्यवस्था
(5) प्राथमिक शिक्षा और कही कही उच्च प्राथमिक शिक्षा हेतु विद्यालयो की व्यवस्था, प्रौढ शिक्षा केन्द्रो तथा वयस्क साक्षरता केन्द्रो की स्थापना एव उनका सधारण
(6) ज्ञानार्जन हेतु सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना एव उनकी व्यवस्था
(7) युवा मण्डलो, महिला मण्डलो तथा किसान गोष्ठियो की स्थापना
(8) नालियो और सार्वजनिक उपयोग हेतु कुण्डो आदि का निर्माण
(9) शारीरिक तथा सास्कृतिक क्रियाकलापो को प्रोत्साहन

2. विकास से सम्बन्धित कार्य

अपने इस दायित्व के अन्तर्गत पंचायत समिति क्षेत्र मे विकास से सम्बन्धित निम्नांकित कार्य कलापो मे पंचायत समिति की भूमिका अपेक्षित मानी जाती है :

(1) उन्नत कृषि हेतु उच्च कोटि के बीजो की व्यवस्था और किसानो मे उनका वितरण, उन्नत खाद तथा उर्वरको की उपलब्धि, उनके वितरण और उपयोग को प्रोत्साहित करने के उपाय,
(2) बेकार पडी भूमि को कृषि योग्य बनाना तथा उसका संरक्षण,
(3) कृषि कार्यों के लिए किसानो को विविध प्रकार के ऋण की व्यवस्था,

(4) सामुदायिक विकास के अन्तर्गत आने वाले सभी कार्यक्रमों का कार्यान्वयन,

(5) किसानों को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराना, उपलब्ध सुविधा में वृद्धि करना, कुओं को गहरा करना, पुराने कुओं का जीर्णोद्धार करना, नये कुओं को खुदवाना, तालाबों की मरम्मत करना तथा सिंचाई के लघु साधनों की खोज एवं उपलब्धि,

(6) गांव-गांव में पर्यावरण संरक्षण हेतु वृक्षारोपण और सामाजिक वानिकी का विकास करना,

(7) पशुपालन के क्षेत्र में पशुओं, भेड़ों तथा दुधारू पशुओं की नवीन नस्लों का प्रचलन करना और दुग्ध व्यवसाय की उन्नति करना,

(8) उन्नत किस्म के चारे की उपलब्धि और प्रचार प्रसार,

(9) पशुओं में रोगों की रोकथाम तथा उनका उपचार,

(10) पंचायत समिति क्षेत्र में सहकारी समितियों की स्थापना और उनके पक्ष में वातावरण का विकास,

(11) विभिन्न क्षेत्रों में सम्बन्धित प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना और उनका संधारण,

(12) कुटीर, ग्रामीण तथा लघु उद्योगों के क्षेत्र में आवश्यक जानकारी एकत्र करना तथा खण्ड क्षेत्र में उनका प्रचार-प्रसार और संवर्धन करना।

उपरोक्त दोनों वर्गों में जिन कार्यों का संकेत किया गया है वे ऐसे कार्य हैं जिनका आमतौर पर पंचायत समितियां निष्पादन करती हैं।

राजस्थान में सम्बन्धित अधिनियम में यह कहा गया है कि प्रत्येक पंचायत समिति, इस अधिनियम के द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त समस्त शक्तियों तथा उसे सौंपे गये समस्त कर्त्तव्यों का पालन करेगी और इस अधिनियम के प्रयोजनों के पालनार्थ राज्य सरकार द्वारा उसे जो अन्य शक्तियां प्रदान की जायें उनका प्रयोग, तथा जो अन्य कर्तव्य प्रत्यायोजित किये जायें, या सौंपे जायें, उनका पालन करेगी। विशेष रूप से पंचायत समिति निम्नांकित कार्यों का सम्पादन करेगी

1. सामुदायिक विकास

(1) अधिक नियोजन, उत्पादन तथा सुख सुविधाएं प्राप्त करने के लिए ग्राम संस्थाओं का संगठन;

(2) पारिस्परिक सहकारिता के सिद्धान्त पर आधारित ग्राम समुदाय मे आत्म सहयोग तथा स्वावलम्बन की प्रवृत्ति उत्पन्न करना;

(3) समुदाय की भलाई के लिए ग्रामीण क्षेत्रो मे काम मे नही लिए जाने वाले समय तथा शक्ति का प्रयोग।

2. कृषि

(1) परिवार, ग्राम तथा खण्ड के लिए अधिक कृषि उत्पादन के लिए योजनाए बनाना तथा उनको पूरा करना;

(2) थल तथा जल के साधनो का प्रयोग तथा नवीनतम शोध पर आधारित खेती की सुधारी हुई रीतियो का प्रसार,

(3) ऐसे सिंचन कार्यों, जिनकी लागत रू. 25,000 से अधिक न हो, का निर्माण तथा सधारण;

(4) सिंचाई के कुओ, बाधो, एनीकटो तथा मेड़ बाधो के निर्माण के लिए सहायता का प्रावधान,

(5) भूमि को कृषि योग्य बनाना तथा कृषि भूमियो का भूसरक्षण;

(6) बीज वृद्धि के फार्मो का सधारण—रजिस्टर्ड बीज उत्पादको को सहायता तथा बीज वितरण;

(7) फल तथा सब्जियो का विकास,

(8) खादो तथा उर्वरको को लोकप्रिय बनाना तथा उनका वितरण;

(9) स्थानीय खाद सबधी साधनो का विकास;

(10) उन्नत कृपि औजारों के प्रयोग, खरीद तथा निर्माण को बढावा देना तथा उनका वितरण;

(11) पौधो की रक्षा;

(12) राज्य आयोजना मे बनाई गई नीति के अनुसार व्यापारिक फसलों का विकास,

(13) सिंचाई तथा कृषि के विकास के लिए उधार तथा सुविधाए।

3. पशुपालन

(1) अभिजात अभिजनन साडो की व्यवस्था करके शुद्र सांडो को बधिया करके और कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रो की स्थापना तथा सधारण द्वारा स्थानीय पशुओ की क्रमोन्नति करना।

(2) ढोर, भेड, सूप्रर, कुक्कुट भ्रादि ऊटो को सुधरी नस्लो को प्रस्तुत करना, इनके लिए सहायता देना तथा लघु आधार पर अभिजनन फार्मों को चलाना,

(3) छूत की बीमारियो को रोकना,

(4) सुधरा हुआ चारा तथा पशुखाद्य प्रस्तुत करना,

(5) प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रो तथा छोटे पशु औषधालयो की स्थापना तथा सधारण,

(6) दुग्धशालाओ की स्थापना व दूध भेजने का प्रबन्ध,

(7) ऊन को श्रेणीबद्ध करना,

(8) क्षुद्र ढोरो की समस्या सुलझाना,

(9) पचायत के नियत्रण के अधीन तालाबो मे मछली पालन का विकास करना ।

4. स्वास्थ्य तथा ग्राम स्वच्छता (सफाई)

(1) टीका लगाने सहित स्वास्थ्य सेवाओ का सधारण तथा विस्तार और व्यापक रोगो की रोकथाम,

(2) पीने योग्य सुरक्षित पानी की सुविधाओ का प्रबन्ध,

(3) परिवार नियोजन,

(4) औषधालयो, दवाखानो, डिस्पेन्सरियो, प्रसूति केन्द्रो तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो का निरीक्षण,

(5) व्यापक स्वच्छता तथा स्वास्थ्य के लिए अभियान चलाना तथा (क) आहार पौष्टिकता (ख) प्रसूति तथा शिशु तथा (ग) छूत की बीमारियो के सबन्ध मे लोगो को शिक्षित करना ।

5. शिक्षा

(1) अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जन जातियो के लिए चलाए जाने वाले विद्यालयो को सम्मिलित करते हुए प्राथमिक विद्यालय,

(2) प्राथमिक पाठशालाओ को बुनियादी पद्धति मे परिवर्तित करना,

(3) माध्यमिक स्तरो तक छात्रवृत्तिया व आर्थिक सहायता जिनमे अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जन जातियों व अन्य पिछड़ी जातियो के सदस्यो के लिए छात्रवृत्तियाँ व आर्थिक सहायता सम्मिलित है.

(4) बच्चियो की शिक्षा का विकास करना तथा शाला माताओं (स्कूल मदर्स) का नौकरी मे रखा जाना,

(5) कक्षा 1 से 5 तक के विद्यार्थियो को छात्रवृतिया तथा वजीफे देना,

(6) अध्यापको के लिए क्वार्टरो का निर्माण करना।

6 समाज शिक्षा

(1) सामुदायिक व विनोद केन्द्रो की स्थापना,

(2) पुस्तकालयो की स्थापना,

(3) युवक सगठनो की स्थापना,

(4) ग्रामवासियो तथा ग्रामसाथियो के प्रशिक्षण तथा उनकी सेवाओ के उपयोग को विशेष रूप से ध्यान मे रखते हुए महिलाओ और बालको के बीच काम करना,

(5) प्रौढ शिक्षा,

7. सचार साधन

अन्त. पचायत सड़को तथा ऐसी सडकों पर पुलियाओं का निर्माण तथा सधारण।

8. सहकारिता

(1) सेवा सहकारी समितियो, औद्योगिक, सिंचाई, कृषि तथा अन्य सहकारी सस्थाओ की स्थापना तथा उन्हें शक्तिशाली बनाने मे सहायता देकर सहकारी कार्य को प्रोत्साहित करना,

(2) सेवा सहकारी सस्थाओ मे भाग लेना तथा उन्हे सहायता देना।

9 कुटीर उद्योग

(1) रोजी कमाने के अधिक अवसर देने के लिए तथा गाँवो मे आत्मनिर्भरता को बढावा देने के लिए कुटीर एव छोटे पैमाने के उद्योगो का विकास,

(2) *उद्योग तथा नियोजन सबधी सम्भाव्य साधनो का सर्वेक्षण,*

(3) उत्पादन एवं प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना एव सधारण,

(4) कारीगरों तथा शिल्पकारो की कुशलता को बढाना,

(5) सुधरे हुए औजारो को लोकप्रिय बनाना।

10 पिछड़े हुए वर्गों के लिए कार्य

(1) अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जनजातियो तथा अन्य पिछडे वर्गों के लिए सरकार द्वारा सहायता प्राप्त छात्रावासो का प्रबन्ध

(2) समाज कल्याण के स्वय सेवी सगठनो को मजबूत बनाना तथा उनकी गतिविधियो या समन्वय करना,

(3) सयम, मद्यनिषेध एव समाज सुधार सम्बन्धी प्रचार

11 आपातकालीन सहायता

आग, बाढ, महामारियो तथा अन्य व्यापक प्रभावशाली आपदाओ की दशा मे आपातिक सहायता का प्रबन्ध,

12 आंकडों का सग्रह

ऐसे आकडो का सग्रह तथा सकलन जो कि पचायत समिति जिला परिषद या राज्य सरकार द्वारा आवश्यक समझे जावें,

13 न्यास

ऐसे किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाए गए न्यासो का प्रबन्ध जिसके लिए पचायत समितियो की निधि का प्रयोग किया जाय,

14 वन

(1) ग्राम वन

(2) बारी-बारी से चराई,

15 ग्रामीण भवन निर्माण,

16 प्रचार

(1) सामुदायिक रूप से सुनाने की योजना,

(2) प्रदर्शनियाँ,

(3) प्रकाशन।

17 विविध

(1) पचायत की समग्र गतिविधियो पर्यवेक्षण तथा उनका पथ प्रदर्शन एव ग्राम पचायतो के लिए योजनाओ का निर्माण,

(2) भयानक अथवा हानिकारक व्यापारो, धन्धों तथा रिवाजों का नियमन,

(3) गन्दी बस्तियों का पुनरुद्धार,

(4) हाटों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं—उदाहरणार्थ सार्वनिजक पार्कों, बागो, फलोद्यानो व फार्मों आदि की स्थापना, प्रबन्ध, संधारण तथा निरीक्षण,

(5) रंगमचो की स्थापना तथा प्रबन्ध,

(6) खण्ड मे स्थित दरिद्रालयो, आश्रमो, अनाथालयो, पशुचिकित्सालयो तथा अन्य संस्थाओं का निरीक्षण,

(7) अल्प बचत तथा बीमा के जरिये मितव्ययता को प्रोत्साहन ।

(8) पंचायत समिति के क्षेत्र में मेलो का आयोजन और उनका प्रबन्ध,

(9) लोककला और संस्कृति को प्रोत्साहन एवं उसका सम्वर्द्धन ।

राजस्थान में पंचायत समिति में प्राण संचार

राजस्थान, पंचायती राज को अपनाने वाला अग्रणी राज्य रहा है। किन्तु पंचायती राज संस्थाओं के प्रथम दो बार आयोजित चुनावों के पश्चात् पंचायती राज के चुनाव का समयबद्ध आयोजन यहाँ किन्हीं कारणो से नहीं कराया जा सका। 1964 के बाद इन संस्थाओं के जो चुनाव प्रति तीन वर्ष बाद होने चाहिए थे वे नही कराये जा सके और 1178 तक इन संस्थाओं मे वे ही पदाधिकारी पदासीन रहे जो 1964 मे चुने गये थे। यह तथ्य अत्यन्त विडम्बनाकारी रहा कि इस दौरान लोकसभा और राज्यो की विधानसभाओं के चुनाव तो समय पर आयोजित होते रहे किन्तु पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव की तरफ पदासीन कार्यपालिका ने कोई सक्रिय ध्यान नही दिया।

जनवरी, 1982 मे बीकानेर में आयोजित पंचायती राज के सम्मेलन में राजस्थान में पंचायती राज को सशक्त बनाने की दृष्टि से विचार-विमर्श हुआ और उसके परिणामस्वरूप पंचायती राज को न केवल कुछ नूतन दायित्व हस्तान्तरित किये गये अपितु पंचायती राज संस्थाओं के पदाधिकारियो के भत्तो मे भी वृद्धि की गयी। यहाँ एक और तथ्य का उल्लेख करना प्रासंगिक है। राजस्थान मे श्री शिवचरण माथुर 1981 में और दुबारा 1988 मे जब मुख्यमन्त्री बने तो अपना दायित्व धारण करने के तुरन्त बाद दोनो बार उन्होंने पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव समयबद्ध कराने को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की। इस प्राथमिकता के अन्तर्गत उन्होंने 1981 मे और उसके बाद 1988 मे न केवल पंचायती राज संस्थाओं की तीनो इकाइयो के चुनाव कराये अपितु इन तीनो ही स्तरो पर कार्यरत संस्थाओं को अधिकार देने के प्रति भी कुछ राजनीतिक निर्णय किये। इसी क्रम मे प्रथम बार 1981 मे चुनाव कराये जाने के पश्चात उन्होंने बीकानेर

मे एक पचायती राज सम्मेलन आयोजित किया जिसमे पचायती राज सस्थाओ को अधिकार देने के बारे मे अनेक निर्णय किये।

इस सम्मेलन मे यह घोषणा की गई थी कि ग्रामीण क्षेत्रो मे क्रियान्वित किये जाने वाले वे समस्त कल्याण एव विस्तार कार्यक्रम, जिनकी प्रभावी देख-रेख उन तकनीकी अधिकारियो द्वारा की जा सकती है, जो पचायत समिति स्तर पर उपलब्ध हैं, या उपलब्ध कराये जा सकते हैं, पंचायत समितियो को हस्तान्तरित किये जायें। उस समय विशिष्ट योजना सगठन, कृषि, पशुपालन, भेड व ऊन, शिक्षा, चिकित्सा एव स्वास्थ्य, वन विभाग, सार्वजनिक निर्माण विभाग और उसके निर्माण सम्बन्धी कुछ कार्यक्रम, सिचाई, जन-स्वास्थ्य एव अभियान्त्रिकी विभाग उद्योग, जनजाति क्षेत्रीय विकास और उन क्षेत्रो मे कृषि, शिक्षा तथा समाज कल्याण के विभिन्न कार्यक्रम पचायती राज सस्थाओ को सौपे जाने का निर्णय किया गया। यद्यपि इस सम्मेलन मे जो निर्णय किये गये उनके अनुरूप पचायती राज सस्थाओ को हस्तान्तरित योजनाओ को पूरी तरह इन्हें नही सौंपा जा सका इसलिए कुछ क्षेत्रो मे यह आरोप लगाया जाता है कि बीकानेर सम्मेलन मे पचायती राज सस्थाओ को सशक्त बनाने के लिए कागजी कार्यवाही अधिक हुई और व्यवहार मे उतना काम नही हुआ जितना इस सम्मेलन मे सकल्प व्यक्त किया गया था।

इसके पश्चात 1988 मे सम्पन्न पचायती राज सस्थाओ के चुनावो के पश्चात पुन श्री माथुर की अध्यक्षता मे सितम्बर 1988 मे राज्य सरकार के स्तर पर पचायती राज के सुदृढीकरण के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श किया गया था। इस समय भी राज्य सरकार द्वारा पचायती राज सस्थाओ को और अधिक कार्यक्रम और कार्य हस्तान्तरित करने के लिए कुछ निर्णय लिये गये थे। हस्तान्तरित किये जाने वाले कार्यों की भावी सफलता को सुनिश्चित करने के लिए उन्होने अपने इस विचार-विमर्श मे राज्य स्तर पर कार्यरत विभाग से सम्बन्धित विभिन्न विभागो के सचिवो को भी सम्मिलित किया। ऐसा इसलिए किया गया ताकि पूर्व की भाँति मन्त्रीपरिषद द्वारा पचायती राज सस्थाओ को जो कार्य सौंपे जाने का निर्णय किया जाय वह व्यवहार मे भी कार्यरूप ले सके और केवल कागजी कार्यवाही बनकर न रह जाय।

इस विचार-विमर्श स्वरूप राज्य सरकार द्वारा पचायती राज सस्थाओ को नई शक्तियाँ, अधिकार और कर्तव्य हस्तान्तरित किये जाने के बारे मे जो प्रमुख निर्णय लिये गये, उनमे से कुछ के बारे मे विवरण जिला परिषद मे

सम्बन्धित विगत अध्याय मे दिया जा चुका है । पचायत समिति को प्रमुख तौर पर सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी तथा विकेन्द्रित पौधशाला कार्यक्रम हस्तान्तरित किया गया है । इन कार्यक्रमो की क्रियान्विति के लिए जिला परिषद के स्तर पर अन्य सहायक कर्मचारियो सहित एक सहायक वन सरक्षक तथा पचायत समिति स्तर पर एक रेंजर, वनपाल और वन रक्षको के पद हस्तान्तरित करने का निर्णय सरकार ने किया है इसी प्रकार जिला ग्रामीण विकास अभिकरण मे भी कुछ वन कर्मियो की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है । इस प्रकार ग्रामीण विकास के कतिपय नये कार्यक्रमो का पचायत समितियो को हस्तान्तरण कर ग्रामीण विकास मे उन्हे अधिक प्रभावी भूमिका सपादित करने का अवसर राज्य सरकार ने प्रदान किया है । □

9

ग्राम-पंचायत

भारत मे, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया मे ग्रामीण अंचलो के नागरिको को अपने स्वयं के मामलो का प्रशासन चलाने के लिए स्वशासन का जो अधिकार दिया गया है वह ग्रामपंचायतो एवं ग्रामसभा के माध्यम से साकार हुआ है। विगत अध्यायो मे इस बात पर विस्तृत विचार किया जा चुका है कि भारत मे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को बलवंत राय मेहता समिति की अभिशंसाओ ने किस प्रकार गति प्रदान की। यहाँ इस बात का उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि राजस्थान मे पंचायती राज का त्रिस्तरीय ढांचा यद्यपि 1959 मे अपनाया गया था किन्तु राजस्थान के गांवो मे ग्राम पंचायतो का गठन, राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1953 के प्रवर्तन के साथ ही हो गया था। इस तरह राजस्थान भारतीय संघ का ऐसा राज्य है जो न केवल मेहता समिति द्वारा अनुशंसित पंचायती राज के त्रिस्तरीय ढांचे को अपनाने मे अग्रणी रहा अपितु उसके पूर्व भी पंचायतो की स्थापना करने की दिशा मे 1953 [illegible] ही सक्रिय हो गया था। प्रस्तुत अध्याय मे ग्राम पंचायत के मेहता समिति द्वारा सुझाये गये ढांचे और राजस्थान राज्य द्वारा अपनायी गई इसकी व्यावहारिक संरचना का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्राम पंचायत एक ऐसी निर्वाचित इकाई है जो ग्राम सभा की कार्यकारी समिति होती है। भारत मे उसे कई भिन्न भिन्न नामो से जाना जाता है। आन्ध्र-प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, तमिलनाडु मे इसे पंचायत, बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पंजाब और पश्चिमी बंगाल मे ग्राम पंचायत तथा आसाम, गुजरात और उत्तर प्रदेश मे इन्हें गाँव पंचायत के नाम से जाना जाता है। लगभग [illegible] हजार की जनसंख्या पर एक पंचायत गठित की जाती है। विभिन्न राज्यों मे, ग्राम

पंचायत के सदस्यो की संख्या अलग अलग पायी जाती है जो प्राय: 5 से 31 के बीच होती है। इनका कार्यकाल भी 3 से लेकर 5 वर्ष तक है। आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा व राजस्थान मे तीन वर्ष, आसाम गुजरात, जम्मू कश्मीर, महाराष्ट्र और पश्चिमी बंगाल मे चार, केरल, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, हरियाणा, कर्नाटक, पंजाब तथा उत्तरप्रदेश मे यह पाँच वर्ष है।

ग्राम पंचायत का गठन

राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1953 राजस्थान मे ग्राम पंचायतो के गठन का मूल आधार है। इस अधिनियम के अनुसार राजस्थान की ग्राम पंचायत मे सदस्य और अधिकारी इस प्रकार होते हैं

1. निर्वाचित सदस्य
2. सहवरित सदस्य
3. सहसदस्य
4. उपसरपंच
5. सरपंच

1. निर्वाचित सदस्य

ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्य पंच कहलाते हैं। प्रत्येक पंचायत मे, राजस्थान मे कम से कम 5 और अधिकतम 20 सदस्य होते हैं। सदस्यो की यह संख्या प्रत्येक पंचायत क्षेत्र की जनसंख्या पर निर्भर करती है। जिले का जिलाधीश या उसके द्वारा प्राधिकृत अधीनस्थ अधिकारी प्रत्येक पंचायत क्षेत्र को सुविधाजनक रूप से वार्डों मे विभाजित कर देता है। इस तरह विभाजित किये गये वार्डों से गुप्त मतदान के माध्यम से पंचायत क्षेत्र के वयस्क मतदाताओं द्वारा, पंचो का चुनाव किया जाता है।[1] एक वार्ड से एक पंच चुना जाता है। पंचायत अधिनियम की धारा 5 मे कहा गया है कि वार्डो का निर्धारण करते समय विधान सभा की सम्बन्धित निर्वाचक नामावली मे उल्लिखित क्रम के अनुसार मकानों और निवासियो को सम्मिलित किया जायेगा ताकि वार्डों का विभाजन जातियो और वर्ग की भावना से मुक्त रहे।[2]

राज्य सरकार द्वारा पंचायत चुनावो की घोषणा के पश्चात, पंचायत क्षेत्र मे, इस निर्वाचन के लिए सम्बन्धित जिलाधीश सार्वजनिक सूचना प्रसारित करते हैं। इस सूचना मे वार्डों की संख्या, सदस्य संख्या, नामांकन पत्र वापस लेने की तिथि व समय और यदि आवश्यक हो तो मतदान की तिथि व समय, घोषित

किया जाता है। जिलाधीश प्रत्येक पंचायत क्षेत्र के लिए, राज्य के लोक सेवकों में से किसी एक व्यक्ति को उसके नाम तथा पद के सामर्थ्य से निर्वाचन अधिकारी नियुक्त करता है। कानून में यह व्यवस्था भी की गई है कि यदि किसी वार्ड में उम्मीदवारों के बीच प्राप्त मतों में समानता पायी जाये तो वहाँ भाग्य पत्रक द्वारा परिणाम निकाला जायेगा।

यदि वार्ड के मतदाता किन्हीं कारणों से अपने पंच का निर्वाचन नहीं कर पाते हैं तो सरकार द्वारा, उस वार्ड में किसी भी व्यक्ति को, जो पंच निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो, पंच नियुक्त किया जा सकता है। किन्तु ऐसा किये जाने की स्थिति में 6 माह की अवधि में उस वार्ड से पंच का चुनाव कराया जाना आवश्यक होता है। पंच द्वारा त्यागपत्र, उसकी मृत्यु या पद से हटाये जाने की दशा में स्थान रिक्त होने पर इस पद के लिए उपचुनाव कराये जाने का प्रावधान भी कानून में किया गया है।

पंच पद के लिए योग्यता

राजस्थान पंचायत अधिनियम 1953 में पंच पद हेतु योग्यताओं का, निषेधात्मक रूप में विवरण दिया गया है। अधिनियम में कहा गया है कि पंचायत चुनाव में जिस व्यक्ति का नाम मतदाता सूची में है वह पंच के रूप में चुना जा सकता है जब तक कि ऐसा व्यक्ति[3] :

1. केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार अथवा किसी स्थानीय निकाय के अधीन पूर्णकालीन या अंशकालीन वैतनिक नियुक्ति पर न हो,
2. राज्य सरकार की सेवा से नैतिक दुराचार के कारण सेवा मुक्त न किया गया हो एवं लोकसेवा में नियोजित किये जाने के लिए अयोग्य घोषित नहीं किया गया हो
3. ग्राम पंचायत में वेतन युक्त पद या लाभदेय पद धारण न करता हो,
4. आयु में 25 वर्ष से कम नहीं हो, ग्राम पंचायत के लिए या उसके द्वारा किये गये किसी कार्य या किसी अनुबन्ध में स्वयं या अपने साझेदार मालिक या नौकर के माध्यम से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष साझेदारी या हित नहीं रखता हो
5. किसी ऐसी शारीरिक अयोग्यता, मानसिक रोग या दोष से ग्रस्त नहीं हो जो उसे कार्य करने के लिए अयोग्य बनाती हो,
6. किसी सक्षम न्यायालय द्वारा नैतिक अपराध का दोषी नहीं ठहराया गया हो

7. किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित नही किया गया हो,
8. अस्पृश्यता निवारण अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत अपराध का दोषी नही ठहराया गया हो,
9. पंचायत अधिनियम की धारा 17 की उपधारा 4 (ख) के अधीन या राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम की धारा 40 की उपधारा (3) के अधीन चुनाव के लिए अयोग्य घोषित नही हो,
10. पचायत अधिनियम, 1953 एव पचायत समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1959 के अन्तर्गत आरोपित किसी कर या फीस की रकम को चुकाने मे विफल नही रहा हो,
11. पचायत की ओर से या उसके विरुद्ध किसी वाद मे अभिभाषक नियुक्त न किया गया हो,
12. राजस्थान मृत्युभोज निवारण अधिनियम, 1960 के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध का दोषी नही ठहराया गया हो।

राज्य सरकार जब किसी व्यक्ति को विभिन्न अपराधो के अन्तर्गत चुनाव लडने के लिए अयोग्य ठहराती है तो यह अयोग्यता छः साल के लिए होती है। राज्य सरकार इस छः साल की अवधि को विशेष आदेश द्वारा कम भी कर सकती है। किसी नागरिक के विरुद्ध जो कर या फीस बकाया रही है उसे यदि नामाकन पत्र भरने से पूर्व वह व्यक्ति जमा करा चुका हो तो वह अयोग्य नही समझा जाता है। कोई भी व्यक्ति एक से अधिक ग्राम पचायतो मे यह पद धारण नही कर सकता।

पचों का निर्वाचन

राज्य सरकार द्वारा जब भी राज्य मे पचायत चुनाव आयोजित करने की घोषणा की जाये तब पचायत वृत मे पंचायत के गठन के लिए सम्बन्धित जिलाधीश निर्वाचन की एक लोकसूचना जारी करता है। इस लोकसूचना के माध्यम से निर्वाचन कार्यक्रम की घोषणा जिलाधीश द्वारा की जाती है।

जिलाधीश जो इस काल मे जिला निर्वाचन अधिकारी के रूप मे कार्य करता है, प्रत्येक पचायत वृत के रिटर्निंग ऑफिसर के रूप मे कार्य करने के लिए किसी व्यक्ति को नाम से या पद के आधार पर नियुक्ति करता है।[4] इस प्रकार नियुक्त मतदान रिटर्निंग अधिकारी, नियत तिथि को निर्वाचन नियमो के अधीन ऐसा निर्वाचन नियमानुसार सम्पन्न कराने के लिए उत्तरदायी होता है।

वह प्रपन प्रधीन नियुक्त अधिकारियो की सहायता से, पच पद के लिए प्रस्तुत नामाकन पत्रो की जांच करता है, निदिष्ट समय मे नाम वापस लेने की घोषणा करता है तथा चुनाव के मैदान म प्रन्तिम रूप स रह गये प्रत्याशियो के मतदान कराने के लिए प्रावश्यक प्रबन्ध करता है । रिटनिंग अधिकारी और उसके सहायक कर्मचारी मतदान केन्द्र और मतदान कक्ष मे व्यवस्था बनाये रखने के लिए उत्तरदायी होते है । उनसे यह भी अपेक्षा की जाती है कि मतदान की गोपनीयता के लिए प्रत्येक मतदान केन्द्र मे इस तरह की व्यवस्था करेंगे जिसमें निर्वाचक प्रपन मत परदे के भीतर जाकर दे सकेंगे । निर्वाचन विभाग द्वारा रिटर्निंग अधिकारियो को पचायत चुनाव की एक नियमावली प्रदान की जाती है और उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि पचायत की समग्र निर्वाचन प्रक्रिया को वे उस नियमावली मे दिए गए नियमो के अनुसार सम्पन्न करायेंगे ।

2 सहवरित सदस्य

पचायत अधिनियम, 19-3 मे यह व्यवस्था की गई है कि पचायत चुनाव के परिणाम की घोषणा के पश्चात अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (1) के प्रधीन प्रावश्यक होने पर पच या पचो का सहवरण किया जा सकता है । अधिनियम यह अपेक्षा करता है कि .

1. पचायत मे दो महिलाओ का सहवरण किया जाना चाहिए, यदि पचायत मे चुनावो के माध्यम से कोई महिला नही चुनी गई है, यदि पचायत मे एक महिला चुन ली गई है तो सहवरण के माध्यम स एक महिला को लिया जायगा ।
2. अनुसूचित जातियो मे से दो व्यक्तियो का सहवरण किया जायेगा, यदि पचायत मे ऐसा कोई व्यक्ति नही चुना गया हो ।
3. अनुसूचित जन जाति मे स एक व्यक्ति सहवरण द्वारा लिया जायेगा, यदि चुनाव मे इस प्रकार एक व्यक्ति नही चुना गया हो तथा जनजाति क्षेत्र मे ऐसी जनजातियो की जनसख्या उसकी कुल जनसख्या की 5 प्रतिशत से अधिक हो ।

इस सम्बन्ध म यह व्यवस्था की गई है कि पचायत चुनाव सम्पन्न कराने के लिए जो मतदान दल अधिकृत किया जाता है, वही दल चुनाव परिणाम की घोषणा के पश्चात मतदान स्थल पर ही यह आकलन करते है कि क्या अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (1) के अधीन पच या पचो का सहयोजन आवश्यक है । यदि इस प्रकार का सहयोजन आवश्यक हो तो परिणाम की

घोषणा के तत्काल बाद अगले दिन सहवरण की प्रक्रिया पूरी करने के लिए निर्वाचित पंच एवं सरपंचों की बैठक आहूत की जाती है। इस प्रकार की बैठक बुलाये जाने के लिए प्रत्येक निर्वाचित पंच और सरपंच को लिखित सूचना दी जाती है और सहयोजन के लिए नियत स्थान और तारीख पर बैठक बुलायी जाती है, जिसका सभापतित्व रिटर्निंग अधिकारी स्वयं करता है। सहवरण के लिए नामांकन मांगे जाते हैं। कोई भी व्यक्ति जो पंचायत अधिनियम की धारा 11 के अधीन पंच के रूप में निर्वाचित होने के लिए योग्य है, प्रारूप 6 में अपने द्वारा पूर्ण तथा हस्ताक्षरित और नवनिर्वाचित सरपंच तथा पंचों में से किसी एक द्वारा प्रस्तावक के रूप में हस्ताक्षरित 'नाम निर्देशन पत्र' स्वयं पीठासीन अधिकारी को प्रस्तुत कर सकता है।[5] पीठासीन अधिकारी इस तरह प्राप्त नाम निर्देशन पत्रों की जांच करता है और यदि ऐसे नाम निर्देशनों की संख्या, सहयोजित किये जाने वाले पंचों की संख्या से अधिक हो, तो धारा 9 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट व्यक्तियों के प्रत्येक प्रवर्ग के लिए बैठक में उपस्थित सरपंच और और पंचों के मत हाथ उठाकर लिए जाते हैं और सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले व्यक्ति को सहयोजित घोषित कर दिया जाता है, किन्तु बराबर मत होने की स्थिति में परिणामों की घोषणा ऐसी रीति से, जो पीठासीन अधिकारी उचित समझें, लॉटरी निकालकर की जाती है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि एक ही प्रवर्ग के दो व्यक्तियों का साथ-साथ सहयोजन किया जाना है तो प्रत्येक निर्वाचित पंच या सरपंच के दो मत होंगे परन्तु एक ही उम्मीदवार के पक्ष में एक से अधिक मत कोई भी नहीं देगा।[6] इस प्रकार सहयोजित किये गये सदस्यों के नामों का, बैठक की समाप्ति पर प्रकाशन कर दिया जाता है और उसकी एक प्रतिलिपि निर्वाचन के समस्त अभिलेखों के साथ जिलाधीश को प्रेषित कर दी जाती है।

उपसहयोजन

यदि सहयोजित पंच का कोई पद रिक्त हो जाता है और धारा 9 के अधीन ऐसे सहयोजन के लिए आवश्यकता बनी रहती है तो इस प्रकार की रिक्ति को भरने हेतु *जिलाधीश द्वारा नाम निर्देशित अधिकारी निर्दिष्ट तिथि और समय* पर उप सहयोजन की कार्यवाही करता है।

3. सहसदस्य

ग्राम पंचायत के क्षेत्र में जो भी ग्राम सेवा सहकारी समितियां कार्यशील हैं उनके अध्यक्ष पंचायत के सहसदस्य होते हैं।[7] सहकारी समिति से तात्पर्य

ऐसी समिति से है जो राजस्थान सहकारी समिति अधिनियम, 1953 के अन्तर्गत पजीकृत है या पजीकृत मानी गई हो। ऐसे सदस्यो को ग्राम पचायत की सामान्य कार्यवाही और उसकी समितियो की कार्यवाही मे सक्रिय भाग लेने का अवसर प्राप्त होता है, किन्तु उन्हें मत देने का अधिकार नही होता।

4 उपसरपच

ग्राम पचायत मे पच और सरपच के अतिरिक्त, एक उपसरपच का पद भी होता है। पच और सरपच के लिए जो प्रत्यक्ष निर्वाचन कराया जाता है उसके साथ उपसरपच का चुनाव नही कराया जाता बल्कि यह चुनाव उन लोगो के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है जो ग्राम की जनता द्वारा पच और सरपच चुने गये है।

अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उपसरपच का चुनाव उसी दिन किया चाहिए जिस दिन पचायत के लिए वाछित सख्या मे पचो का सहवरण किया जाता है।[5] अधिनियम यह व्यवस्था करता है कि जिलाधीश द्वारा नियुक्त रिटर्निंग अधिकारी, पच एव सरपचो के चुनाव परिणाम की घोषणा के तत्काल बाद नव निर्वाचित पचो और सरपच की बैठक बुलायेगा। बैठक के लिए समय एव स्थान की सूचना मतदान के कम से कम दो घटे पूर्व पचायत कार्यालय के सूचना पट्ट पर लगाई जायेगी। यह सूचना सहवरित पचो को नही दी जाती क्योकि उपसरपच के चुनाव मे केवल निर्वाचित पच एव सरपच ही भाग लेते हैं। इस प्रकार बुलाई गई बैठक मे कोई भी निर्वाचित पच या सरपच लिखित मे एक पच का नाम उपसरपच पद के लिए प्रस्तावित करेगा। यदि वह पच जिसका नाम उम्मीदवार के रूप मे प्रस्तावित किया गया है, बैठक मे उपस्थित नही है तो उसकी लिखित सहमति प्रस्ताव के साथ प्रस्तुत की जायेगी किन्तु यदि ऐसा पच बैठक मे उपस्थित हो तो उसकी लिखित सहमति आवश्यक नही होती बल्कि मौखिक सहमति ही पर्याप्त मानी जा सकती है। निर्वाचन अधिकारी प्राप्त प्रस्तावों की जाच करेगा, सही पाये गये प्रस्तावों को निर्वाचकों के सामने पढकर घोषणा करेगा और उपस्थित पचो एव सरपच को आपत्ति प्रकट करने का समुचित अवसर प्रदान करेगा। यदि चुनाव के मैदान मे कुल एक ही प्रत्याशी है तो उसे उपसरपच निर्वाचित घोषित कर दिया जायगा किन्तु उम्मीदवारो की सख्या एक से अधिक होने पर मत हाथ उठाकर लिए जायेंगे व सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले व्यक्ति को निर्वाचित घोषित कर दिया जायेगा। बराबर मत आने की परिस्थितियो मे परिणाम भाग्य-पत्र (पर्ची डालकर) द्वारा घोषित किया

जायेगा। यदि कोई पंचायत उपसरपंच चुनने में असफल रहे, तो निर्वाचन अधिकारी, नव निर्वाचित पंचों में से किसी को भी, जो योग्य हो, उपसरपंच के पद पर नियुक्त कर सकते हैं। इस प्रकार नियुक्त उपसरपंच पूर्ण रूप से उसी प्रतिष्ठा और शक्तियों का उपयोग करेगा जो किसी निर्वाचित उपसरपंच के द्वारा की जाती है किन्तु छः माह की अवधि के अन्तर्गत नियमित उपसरपंच के निर्वाचन की व्यवस्था की जायेगी।

अधिनियम में उपसरपंच के उपचुनाव की व्यवस्था का उल्लेख भी किया गया है।[9] उपसरपंच का चुनाव आवश्यक होने की स्थिति में जिलाधीश इस सम्बन्ध में एक अधिकारी की नियुक्ति करेंगे जो इस उपचुनाव के लिए पंचायत के पंचों एवं सरपंच को निश्चित तिथि, समय और स्थान पर बैठक बुलायेगा और निर्धारित रीति से उप सरपंच का चुनाव सम्पन्न करायेगा।

उप-सरपंच के कार्य और शक्तियों के बारे में अधिनियम यह प्रावधान करता है कि वह ऐसे कर्तव्यों का निर्वाह करेगा जो सरपंच द्वारा उसे सौंपे जायें। उप-सरपंच के पद का वैसे कोई अधिक महत्व नहीं होता किन्तु सरपंच की अनुपस्थिति में या पद रिक्त होने पर वह सरपंच के समस्त कार्यों और शक्तियों का निष्पादन करने के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

5. सरपंच

ग्राम पंचायत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति, सारे ग्राम का मुखिया, सरपंच के नाम से जाना जाता है। अधिनियम यह व्यवस्था करता है कि प्रत्येक पंचायत के सरपंच का निर्वाचन, उसके लिए पंचों के निर्वाचन के साथ-साथ किया जायेगा।[10] सरपंच के चुनाव में ग्राम पंचायत क्षेत्र के समस्त वयस्क मतदाता भाग लेते हैं। इस प्रक्रिया से चुना हुआ सरपंच समूचे ग्राम का निर्वाचित प्रतिनिधि हो जाता है। सन् 1953 से लेकर 1958 तक सरपंच का चुनाव मतदाताओं द्वारा हाथ खड़ा करके किया जाता था।[11] किन्तु इसके पश्चात राजस्थान में जब पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था को अपनाया गया तब से सरपंच का चुनाव गुप्त मतदान द्वारा ही कराया जाने लगा है।

सरपंच पद के लिए, कोई भी व्यक्ति जो पंच चुने जाने की योग्यता रखता हो तथा उसे हिन्दी लिखने व पढ़ने का ज्ञान हो, चुनाव में भाग ले सकता है। ग्राम पंचायत के सरपंच को चूंकि ग्रामीण क्षेत्र में अनेक प्रशासनिक कार्यों का सम्पादन करना होता है इसलिए पढ़ने लिखने की योग्यता को अनिवार्य बनाया गया है। यह इसलिए भी किया गया है ताकि पंचायत का यह मुखिया

अपने पंचायत प्रशासन को चालने के लिए अन्य किसी व्यक्ति पर आश्रित न रहे ।[12] पचायत चुनाव के नियमो मे यह व्यवस्था की गई है कि पच एव सरपच के लिए मतदान चूंकि एक ही दिन और एक ही समय मे होते हैं इसलिए दोनो के लिए मतदान एक ही पेटी मे किया जा सकता है जब तक कि उनके लिए पृथक मत पेटी की व्यवस्था न कर दी गई हो ।[13] चुनाव कराने वाले कर्मचारियो से नियमो मे यह अपेक्षा की गई है कि किसी मतदान कक्ष मे आये हुए मतदाताओ को पच तथा सरपच दोनो के लिए पृथक-पृथक मतपत्र, पृथक-पृथक अधिकारी द्वारा जारी किये जायेंगे ।[14]

यदि कोई व्यक्ति जो सरपच चुने जाने के पूर्व विधानसभा या ससद का सदस्य हो तो चुनाव परिणाम के घोषित होने के चौदह दिन समाप्त होने पर उसे अपने द्वारा धारण किए जाने वाले दूसरे पद से त्यागपत्र देना होता है अन्यथा वह सरपच नही रह सकता है । यदि किसी पचायत क्षेत्र के मतदाता सरपच का निर्वाचन करने मे विफल रहते हैं तो रिटर्निंग अधिकारी द्वारा इस तथ्य की सूचना तत्काल सम्बन्धित जिलाधीश, पचायतो के प्रभारी अधिकारी और राज्य सरकार को दी जायेगी जो पचायत अधिनियम की धारा 13 की उपधारा 3 के अधीन किसी व्यक्ति को सरपच के रूप मे नियुक्त करेंगे । इस तरह नामजद किया हुआ व्यक्ति एक निर्वाचित सरपच की भांति ही कार्य करेगा किन्तु [illegible] माह की अवधि के अन्दर ही सरपच का नियमित चुनाव कराया जायेगा ।[15]

सरपच का उपनिर्वाचन

निम्नलिखित दशाओ मे से किसी दशा मे, अर्थात

1. जब कभी राज्य सरकार द्वारा नियम 48 के उपनियम (5) के अधीन किसी सरपच की नियुक्ति की जाये, या
2. जब कभी किसी सरपच की मृत्यु हो जाये या वह धारा 18 के अधीन अपना पद त्याग कर दे, या
3. जब कभी कोई सरपच अपना स्थान रिक्त कर दे या धारा 17 के अधीन उसको उसके पद से हटा दिया जाये, या
4. जब कभी धारा 19 के अधीन किसी सरपच के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाय,

तो धारा 20 के अधीन उपनिर्वाचन कराया जायेगा ।[16]

सरपंच पचायत की अवधि समाप्त होने तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक कि उसे उपरोक्त वर्णित किसी धारा के अनुसार हटा न दिया जाय ।

नियमो मे यह प्रावधान किया गया है कि सरपच अपने पद पर तब तक बना रहेगा जब तक कि नवनिर्वाचित सरपच कार्यभार नही संभालता है।[27]

पंचायत का कार्यकाल

राजस्थान मे ग्राम पचायत की अवधि प्रारम्भ से ही तीन वर्ष है। सादिक अली प्रतिवेदन में इसे पाच वर्ष करने का सुझाव दिया गया था जिसके आधार पर सरकार ने 1970 मे इसे पाच वर्ष कर दिया था किन्तु बाद मे इसे घटाकर पुनः तीन वर्ष कर दिया गया। इस अवधि की गणना उस तारीख से की जाती है जिस दिन राज्य सरकार पचायतो के विधिवत गठन की अधिसूचना जारी करती है।[18] जून-जुलाई 1988 मे राजस्थान मे सम्पन्न पचायती राज संस्थाओ के चुनाव के पश्चात राजस्थान की पदासीन सरकार ने यह मत व्यक्त किया था कि पचायतो का कार्यकाल भी विधानसभा के कार्यकाल के बराबर ही किया जाना उचित है।[19]

पचायत में प्रशासक की नियुक्ति

विशिष्ट परिस्थितियो मे राज्य सरकार को यह अधिकार है कि वह पचायत के कामकाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रशासक नियुक्त कर दे। इन परिस्थितियो का उल्लेख इस प्रकार किया गया है [20]

1. जब राज्य सरकार पचायत की वतमान सीमाओ का पुनः निर्धारण करे,
2. उपरोक्त कारण से जब कोई नयी पचायत स्थापित की जाये,
3. समस्त पचो का, सरपच सहित या उसको छोड़कर, चुनाव रद्द घोषित कर दिया गया हो,
4. किसी वर्तमान पंचायत की पदावधि समाप्त हो चुकी हो,
5. पचो या सरपंच का चुनाव तथा उसकी पश्चातवर्ती कार्यवाहियो पर किसी सक्षम न्यायालय द्वारा जारी आज्ञा से रोक लगा दी गई हो।

उपर्युक्त समस्त परिस्थितियों मे राज्य सरकार पचायत प्रशासन को ग्रामीण जनता की अकाक्षाओ के अनुरूप चलाने के लिए उनमे प्रशासक नियुक्त कर सकती है। ऐसी नियुक्ति की सूचना, उसकी अवधि इत्यादि का प्रकाशन सरकारी राजपत्र मे किया जाता है। इस प्रकार नियुक्त प्रशासक एक निर्वाचित सरपच की भांति ग्रामपचायत के कामकाज को चलाने के लिए अधिकृत होता है।

पंचों का पद से हटाया जाना और स्थान रिक्त होना

यदि किसी प्रशासनिक त्रुटि के कारण कोई ऐसा व्यक्ति पंच चुन लिया गया हो जो पंच चुने जाने की योग्यता पूरी नहीं करता है तो उसे उसके पद से मुक्त किया जा सकता है।[21] इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति पंचायत में चुन लिए जाने के पश्चात किसी अयोग्यता से ग्रस्त हो जाये तो एक बार उसे सुनवाई का अवसर देने के पश्चात, उसकी अयोग्यता से सन्तुष्ट होने पर सरकार उसका पद रिक्त घोषित कर सकती है। नियमों में यह प्रावधान भी किया गया है कि यदि कोई पंच, उपसरपंच या सरपंच अपने कार्यकाल की अवधि में पंचायत में बिना लिखित सूचना दिए लगातार पांच बैठकों में, अनुपस्थित रहे तो उसका पद स्वतः रिक्त हो जायेगा। इसी तरह यदि कोई उपरोक्त पदधारी व्यक्ति चुने जाने की तारीख से तीन महीने की अवधि में अपने पद की निर्धारित शपथ लेने में असफल रहे तो राज्य सरकार उसके स्थान को रिक्त हुआ घोषित कर सकती है। कोई भी पंच, उपसरपंच या सरपंच पंचायत के प्रभारी अधिकारी को सम्बोधित करते हुए अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है। ऐसा त्यागपत्र जिस तिथि को स्वीकार किया जाये उस तिथि से ऐसा पद रिक्त हो जायेगा। इस प्रकार के रिक्त हुए समस्त पदों को भरने के लिए नियमानुसार उपचुनाव कराये जायेंगे जिसका विवरण पूर्व में दिया जा चुका है।

अविश्वास प्रस्ताव

किसी भी ग्राम पंचायत के सरपंच एवं उपसरपंच के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्य यह अनुभव करें कि सरपंच या उपसरपंच पंचायत क्षेत्र के नागरिकों के प्रति अपने कर्तव्यों का निष्पादन उचित प्रकार से नहीं कर रहा है तो निर्धारित प्रपत्र में, निर्धारित रीति से अविश्वास प्रस्ताव की सूचना दी जा सकती है। यदि अविश्वास प्रस्ताव सरपंच के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है तो सरपंच को सम्मिलित करते हुए निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के तीन-चौथाई बहुमत द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पारित माना जाता है। उपसरपंच के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव केवल साधारण बहुमत से ही पारित किया जाता है। सहवरित और सहसदस्यों को न तो अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार है और न ही वे अविश्वास प्रस्ताव के पारित होने की प्रक्रिया में मतदान करते हैं। सरपंच या उपसरपंच जिनके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव का प्रस्ताव पारित किया गया है, ऐसा प्रस्ताव पारित होने के तीन दिन की अवधि में पंचायत के प्रभारी अधिकारी को अपना त्यागपत्र प्रस्तुत करके पद त्याग कर देते हैं।

न्याय उपसमिति का गठन

पचायत के चुनाव परिणामो की घोषणा के पश्चात चुनाव करवाने वाले अधिकारी न्याय उपसमिति के सदस्यो का निर्वाचन भी कराते हैं। इस हेतु सरपच तथा पचो की विशेष बैठक सम्बन्धित पचायत के कार्यालय मे या इसी प्रकार के किसी समान स्थान पर बुलाई जाती है। न्याय उपसमिति के सदस्यो का निर्वाचन राजस्थान पचायत अधिनियम, 1953 मे सन् 1975 मे किये गये सशोधन के आधार पर किया जाता है।[22]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान मे 1959 मे पचायती राज अपनाने के पश्चात, ग्रामीण क्षेत्रो मे लोगो के आपसी छोटे-छोटे विवादो को शीघ्र ही सुलझाने अथवा शीघ्र सस्ता न्याय दिलाने के उद्देश्य से 1961 मे न्याय पचायतो का गठन किया गया। उस समय एक न्याय पचायत 5 से 7 पचायत क्षेत्रो के लिए गठित करने की सिफारिश सादिक अली प्रतिवेदन मे की गई थी।[23] न्याय पचायतो का गठन उस समय ग्राम पचायतो से पृथक किया गया था। इस पृथक्करण के मूल म, ग्रामीण क्षेत्र के लोगो को राजनीति से मुक्त और सुलभ तथा शीघ्र न्याय उपलब्ध कराने का दर्शन अन्तर्निहित था। ये न्याय पचायतें राजस्थान मे सफलता पूर्वक कार्य नही कर सकी और इस कारण राजस्थान मे पचायती राज पर नियुक्त उच्च अधिकार प्राप्त गिरधारी लाल व्यास समिति ने 1973 मे यह अनुशसा की कि न्याय पचायतो की असफलता को देखते हुए इन्हे समाप्त कर दिया जाना चाहिए।[24] इसी समिति ने न्याय पचायतो की समाप्ति के साथ ही यह सुझाव भी दिया कि वर्तमान मे न्याय पचायतो द्वारा किये जाने वाले कार्यों को ग्राम पचायत की एक उपसमिति को सौंप दिया जाना चाहिए। ग्राम पचायत की यह उपमिति न्याय उपसमिति के नाम से जानी जायेगी जिसमे पाच सदस्य रखे जायें। इन पाच सदस्यो मे से चार ग्राम पचायत द्वारा चुने जायें जिनमें एक महिला को सम्मिलित किया जाय। ग्राम पचायत द्वारा चुने जाने वाले चार सदस्यो मे एक सदस्य अनुसूचित जाति और जनजाति का भी लिया जाये, यदि स्वय सरपंच इन वर्गों मे से न हो। सरपच इस न्याय उपसमिति का पाचवा पदेन सदस्य और अध्यक्ष होगा। यदि सरपच अनुपस्थित हो तो उपसरपच समिति की अध्यक्षता करेगा। गिरधारी लाल व्यास समिति ने इस उपसमिति के गठन के बारे मे यह भी सुझाया कि इसके दो सदस्य बारी-बारी से प्रति वर्ष निवृत होंगे जिनके स्थान पर ग्राम पंचायत दो नये सदस्य समिति के लिए चुन देगी।[25]

न्याय उप समिति के लिए निर्वाचित होने वाले चारों सदस्य पंचायत के निर्वाचित या सहवरित पंचों में से चुने जाते हैं। न्याय उप समिति के सदस्यों की प्रथम योग्यता उनका ग्राम पंचायत का पंच होने के अलावा स्पष्ट रूप से हिन्दी पढ़ने लिखने की योग्यता सम्पन्न होना चाहिए। यह प्रावधान भी किया गया है कि उसकी आयु तीस वर्ष से अधिक होनी चाहिए। न्याय उप-समिति का कार्यकाल पंचायत की अवधि के बराबर होता है। यदि पंचायत की अवधि बढ़ा दी जाती है तो न्याय उप समिति की अवधि भी स्वतः ही बढ़ी हुई मानी जाती है। न्याय उपसमिति के निवृत हुए सदस्यों को पंचायत के सदस्य चाहें तो फिर से चुन सकते हैं।

न्याय उपसमिति के निष्पक्ष कार्यकारण के लिए यह व्यवस्था की गई है कि उपसमिति का कोई सदस्य किसी ऐसे दावे की सुनवाई में भाग नहीं ले सकता है जो उसके स्वयं के निर्वाचन-वार्ड से सम्बन्धित हो। इसी तरह न्याय उपसमिति का कोई सदस्य किसी ऐसे मुकदमे की सुनवाई की कार्यवाही में भी भाग नहीं ले सकता है जिसमें उसके स्वयं के हित से सम्बन्धित कोई मुकदमा विचाराधीन हो। न्याय उपसमिति के किसी सदस्य के बारे में किसी पक्षकार को यदि आपत्ति हो तो भी आपत्ति किये जाने पर सम्बन्धित सदस्य आपत्ति किये हुए मुकदमे की कार्यवाही में भाग नहीं लेता है। इसी प्रकार यदि कभी न्याय उपसमिति की कार्यवाही के समय सरपंच और उपसरपंच दोनों ही अनुपस्थिति हों, या किसी पक्षकार ने समिति में उनकी उपस्थिति पर कोई आपत्ति प्रस्तुत की हो तो इन दोनों के सुनवाई में भाग नहीं लेने की परिस्थिति में, ग्राम पंचायत के निर्वाचित तथा सहवरित सदस्यों द्वारा अस्थाई तौर पर न्याय उपसमिति के लिए पांचवें सदस्य का चुनाव किया जाता है। न्याय उपसमिति के अध्यक्ष और सदस्य भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 के अन्तर्गत लोकसेवक माने जाते हैं और उन पर न्यायिक अधिकारी सरक्षण अधिनियम के प्रावधान लागू होते हैं।

यह न्याय उपसमिति पंचायत क्षेत्र के छोटे-मोटे फौजदारी व दीवानी दावे सुनकर उनका निष्पादन करती है। नियमों में इसका कार्यक्षेत्र, दावे की प्रक्रिया सुनवाई की प्रक्रिया और उसके द्वारा दिए जाने वाले दण्ड इत्यादि के प्रावधान दिए गये हैं।[26]

ग्राम पंचायत में समितियां

राजस्थान की ग्राम पंचायतों के कार्यकरण को सुगम, कुशल और

त्वरित बनाने की दृष्टि से, राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1953 में पंचायत स्तर पर समितियो के गठन की कोई व्यवस्था नही की गई थी। पंचायती राज के कुछ वर्षों के व्यावहारिक अनुभव के पश्चात, यह अनुभव किया गया कि समितियो की सहायता से इन सस्थाओ का प्रशासनिक कामकाज सुगम हो सकता है और प्रशासन की कार्यकुशलता तथा प्रभाव मे वृद्धि भी की जा सकती है। यह भी अनुभव किया गया कि समितियो की सहायता से न केवल नीतियो के निर्माण, उनके कार्यान्वयन तथा प्रशासनिक उपलब्धियों के मूल्याकन मे सहायता मिलती है अपितु इनके माध्यम से पंचायतो के कामकाज मे जनता का अधिकतम और सक्रिय सहयोग लेने के लिए भी प्रयत्न किया जा सकता है। समितिया किसी भी विषय पर गहन अध्ययन और विचार-विमर्श ही नही करती हैं अपितु वे प्रशासन म निरन्तरता भी बनाये रखती हैं।

समितियो की इसी उपादेयता को रेखाकित करते हुए सादिक अली समिति ने ग्राम पंचायत के स्तर पर शिक्षा समिति, उत्पादन समिति और निर्माण कार्यों के लिए समिति के गठन का सुझाव दिया था। राजस्थान सरकार ने सादिक अली समिति की अभिशसाओ का सम्मान करते हुए राजस्थान की ग्राम पचायतो मे इन समितियो के गठन के प्रशासनिक आदेश जारी किए हैं।[27] राजस्थान सरकार ने समितियो का गठन करते समय यह मत व्यक्त किया कि ग्राम पचायत स्तर पर समितियो का महत्व पचायत प्रशासन को निरतरता प्रदान करने की दृष्टि से उतना नही जितना कि उन्हे ग्रामीण विकास की दृष्टि से लोगों को जागरूक करने मे है। समितियो की सहायता से ग्रामीण जनता मे पचायत प्रशासन के प्रति अधिक अभिरुचि और जागृति उत्पन्न की जा सकती है; किन्तु यहा यह दुखद तथ्य भी उल्लेखनीय है कि ग्राम पचायतों में 1960 से 64 के मध्य समितिया सक्रिय रही किन्तु इसके पश्चात ये समितिया निष्क्रिय हो गई।[28] इस समय पचायत स्तर पर समितिया प्राय. निष्क्रिय ही मानी जा सकती हैं। इन समितियों का गठन चूकि प्रशासनिक आदेश से किया गया था अत वैधानिक आधार के अभाव मे इन समितियो को ग्राम पचायत के सचालको ने गभीरता से नही लिया।

इस सन्दर्भ मे यह सुझाव दिया जा सकता है कि पचायत स्तर पर समितियो की उपयोगिता ग्रामीण क्षेत्रो मे सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का वातावरण बनाने मे निर्णायक हो सकती है। आज समूचे देश मे समस्त सविधानविदो, राज नेताओ, प्रशासको और विद्वानो को यह चिन्ता पीडित कर रही है कि सविधान की प्रस्तावना मे उद्घोषणा के पश्चात भी देश के ग्रामीण अचलो

मे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का सकल्प अधूरा है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रो मे सामाजिक असमानता और अस्पृश्यता का वातावरण पाया जाता है। यदि देश की सरकार और देश के प्रशासक ग्रामीण क्षेत्रो मे सामाजिक और आर्थिक न्याय की व्यावहारिक उपलब्धि के प्रति गम्भीरता से सचेष्ट हो तो इस दिशा मे ग्राम पंचायतो की समितियो की निर्णायक और प्रभावी भूमिका हो सकती है। इन समितियो मे न केवल ग्राम पंचायत के निर्वाचित और सहवरित सदस्यों को ही स्थान दिया जाना चाहिए अपितु ग्राम स्तर पर कार्यरत प्रशासको यथा—अध्यापको, पटवारी, ग्रामसेवक और ग्राम के जागरूक, प्रतिष्ठित और अनुभवी नागरिको को भी समिति के साथ सयोजित किया जा सकता है। इस प्रकार की समिति भारत के सविधान मे परिकल्पित आदर्शों को कार्यरूप देने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती है। वस्तुत समाज की सरचना मे परिवर्तन लाने के लिए निश्चय ही कुछ लीक से हटकर करना होता है।

ग्राम पंचायत की कार्यप्रणाली

ग्राम पंचायत की बैठक नियमानुसार 15 दिन मे एक बार अवश्य होनी चाहिए किन्तु व्यवहार मे यह बैठक सरपंच द्वारा आवश्यकतानुसार आयोजित की जाती है। पंचायत की बैठक के लिए सदस्यो की एक तिहाई सख्या की उपस्थिति गणपूर्ति के लिए आवश्यक होती है। आम तौर पर यह बैठक सार्वजनिक होती है किन्तु उपस्थित पंचो के बहुमत से इसे गोपनीय बैठक म बदला जा सकता है। सरपंच और उसकी अनुपस्थिति म उपसरपंच बैठक की अध्यक्षता करता है। पंचायत के निर्णय बहुमत से लिए जाते हैं किन्तु यदि किसी विषय पर बराबर मत की स्थिति है तो अध्यक्ष निर्णायक मत भी दे सकता है। पंचायत मे लिए गये निर्णयों को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व सरपंच का होता है। ग्राम पंचायत के समस्त कार्य-कलापो पर उसी का नियन्त्रण होता है। वस्तुत ग्राम पंचायत की कुशलता कार्यक्षमता और प्रभावशीलता सरपंच के उत्साही व्यक्तित्व पर निर्भर करती है।

कार्य

ग्राम पंचायत, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की ऐसी इकाई है जो जन साधारण के सर्वाधिक निकट होती है। इसलिए ग्राम पंचायत को वे सभी कार्य सौंपे गये है जिन्हे सम्पन्न करने की अपेक्षा सामान्यत एक स्थानीय प्रशासन से की जाती है। पंचायत के कार्यों को प्राय दो भागो मे विभक्त किया जाता है अनिवार्य तथा ऐच्छिक। अनिवार्य कार्य वे है जो पंचायत को करने ही पड़ते हैं,

ग्रौर ऐच्छिक वे हैं जिन्हे वे चाहे तो कर सकती हैं। विभिन्न राज्यो मे कार्यों का इन दोनो वर्गों मे वर्गीकरण समान रूप से नही किया गया है। वस्तुत: विभिन्न राज्यो के ग्रधिनियमो मे ऐसा देखने को मिला है कि एक विशेष कार्य जो एक राज्य मे ऐच्छिक है वही दूसरे राज्य मे ग्रनिवार्य कार्य की श्रेणी मे गिना गया है। राजस्थान मे पंचायत ग्रधिनियम के तृतीय परिशिष्ट मे पचायत के कार्यों का उल्लेख किया गया है। इस परिशिष्ट मे वर्णित कार्यों को निम्नाकित शीर्षको मे व्यवस्थित रूप मे व्यक्त किया जा सकता है

1 स्वच्छता ग्रौर स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य

1. घरेलू उपयोग तथा मवेशियो के लिए पीने हेतु जल की व्यवस्था,
2. जन स्वास्थ्य का सरक्षण तथा उनमे सुधार,
3. सार्वजनिक मार्गों, नालियो, बाधो, तालाबो तथा कुओ ग्रौर अन्य सार्वजनिक स्थानो की सफाई,
4. ग्राम पंचायत के क्षेत्र मे स्वच्छता की व्यवस्था तथा मल निस्तारण का प्रबन्ध,
5. मृत पशुग्रो की लाशो को ग्राबादी से दूर हटाना,
6. दूध, चाय एव ग्रन्य इसी प्रकार की दूकानो का लाइसेंस या ग्रन्य तरीके से नियमन,
7. खेल के मैदानो तथा सार्वजनिक उद्यानो का निर्माण तथा उनका रखरखाव,
8 लावारिश लाशो तथा लावारिश मवेशियो का निपटारा,
9. श्मशानो तथा कब्रिस्तान की व्यवस्था तथा नियमन,
10. सार्वजनिक शौचालयो का निर्माण, उनका सधारण एव निजी शौचालयो का नियमन,
11. कूडाकरकट के ढेरो, घास, नागफनी ग्रादि को हटाना तथा काम मे न ग्राने वाले कुग्रो, पोखरो, खाइयों एव गड्ढो ग्रादि को भरना तथा उनका सुधार करना,
12. प्रसूति एव शिशु कल्याण हेतु कार्य करना,
13. किसी सक्रामक रोग से ग्रारम्भ होने, फैलने या पुन: ग्राक्रमण के निषेध के उपाय करना,
14. ग्रस्वास्थ्यकर बस्तियो का सुधार,

15. चिकित्सा की सुविधाएं उपलब्ध करवाना,
16. मनुष्यों एवं पशुओं को टीके लगवाने की व्यवस्था करना
17 नये मकानों के निर्माण, पुरानों का विस्तार अथवा परिवर्तन की अनुमति देना।

2. सार्वजनिक निर्माण से सम्बन्धित कार्य

1. सार्वजनिक मार्गों नालियों बांधों तथा पुलों का निर्माण तथा मरम्मत,
2 सार्वजनिक मार्गों या अन्य स्थलों में, जो जनता के लिए खुले होते हैं तथा किसी की निजी सम्पत्ति न हो, आने वाले अवरोधों तथा उन पर झुके हुए हिस्सों को हटाना,
3 पंचायत के अन्तर्गत आने वाले सार्वजनिक भवनों, चरागाहों, वन भूमि, तालाबों तथा कुओं का निर्माण, रखरखाव एवं नियमन,
4 नहाने एवं कपड़े धोने के लिए घाटों का निर्माण,
5 धर्मशालाओं का निर्माण एवं मरम्मत,
6 बाजारों का निर्माण और उनका रखरखाव,
7 पंचायत के क्षेत्र में सार्वजनिक मार्गों पर रोशनी की व्यवस्था,
8 सार्वजनिक मार्गों एवं बाजारों के किनारे पेड़ आदि लगाने की व्यवस्था करना,
9 ग्राम पंचायत के क्षेत्र में मेलों, बाजारों, क्रय-विक्रय हाटों पर तांगा स्टेण्डों एवं गाड़ियों आदि के ठहरने का प्रबन्ध करना,
10 श्मशान एवं कब्रस्तानों पर नियन्त्रण करना,
11 कांजीघर (जिनमें आवारा घूमने वाले पशुओं को पंचायत बन्द करती है) की व्यवस्था नियन्त्रण एवं प्रबन्ध,
12. आवारा एवं लावारिस कुत्तों का समाप्त करना,
1 पंचायत क्षेत्र में [illegible] सम्बन्धी कर्मचारियों के लिए मकानों की व्यवस्था करना,
14. अकाल के समय अकाल राहत कार्यों का संचालन, मकानों का निर्माण और अकाल पीड़ितों को रोजगार की व्यवस्था करना,
15 आबादी स्थलों का विस्तार तथा भवनों का निर्माण।

3 शिक्षा एवं संस्कृति सम्बन्धी कार्य

1 शिक्षा का प्रचार-प्रसार,

2. पुस्तकालयो तथा वाचनालयो की स्थापना और रखरखाव,
3. सार्वजनिक स्थानो पर रेडियो, टेलीविजन एव सचार व शिक्षा के अन्य साधनो को लगाना व उनका रखरखाव,
4 कला की उन्नति के लिए कार्य,
5. अखाडो तथा मनोरजनो की व्यवस्था और उनका रखरखाव,
6 पचायत के क्षेत्र मे मद्य निषेध, अस्पृश्यता निवारण तथा पिछड़े वर्गों के हितो की साधना एव उनकी सामाजिक तथा नैतिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना।

4 पशु प्रजनन (अभिजनन) तथा पशु रक्षा सम्बन्धी कार्य

1. पशु नस्ल सुधार एव पशु धन की देख-रेख करना तथा उनके रोगो की रोकथाम करना,
2. नस्ली सांड तथा उनका पालन

5 कृषि तथा वन परीक्षण सम्बन्धी कार्य

1. कृषि उन्नयन एव आदर्श कृषि फार्मों की स्थापना,
2 उन्नत बीजो के लिए पौध घर की स्थापना करना,
3 उन्नत बीजो का उत्पादन तथा प्रयोग,
4 खाद के साधनो का सरक्षण करना, मिश्रित खाद तैयार करना आदि,
5 पचायत क्षेत्र मे पड़ी बजर व परती भूमि पर खेती करवाना,
6. कृषि उपज मे वृद्धि के लिए कृषि मे निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त करना,
7 फसल संरक्षण करना,
8. सरकारी कृषि को प्रोत्साहन,
9. ग्राम वनो का वर्धन, परिरक्षण एवं सुधार,
10 छोटे छोटे सिचाई के कार्य करना,
11. डेयरी फार्मिंग को प्रोत्साहन।

6. पंचायत क्षेत्र की सुरक्षा सम्बन्धी कार्य

1. पचायत क्षेत्र और उसके अन्तर्गत होने वाली फसलो की रक्षा का प्रबध,
2 आग लग जाने पर उसे बुझाने का प्रबन्ध करना एवं सम्पत्ति की सुरक्षा करना,
3. कष्ट कारक, खतरनाक व्यापारो अथवा व्यवहारो को रोकना और उनकी समाप्ति।

7. प्रशासन सम्बन्धी कार्य

1 पेड़-पौधों एवं घरों आदि की गणना करना तथा उन पर नंबर लगाना,
2. जनगणना के कार्य में सहयोग करना,
3. पंचायत क्षेत्र में कृषि की उन्नति के उपाय करना,
4 ग्रामीण विकास योजनाओं को पंचायत समिति के नियन्त्रण और निर्देशन में रहते हुए क्रियान्वित करना तथा उनके लिए प्राप्त वित्तीय सहायता का लेखा रखना,
5 विभिन्न प्रकार के सर्वेक्षण करना,
6. एक ऐसे अभिकरण के रूप में कार्य करना जिससे केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा विशेष योजनाओं के प्रयोजन के लिए दी गयी सहायता पंचायत क्षेत्र के नागरिकों तक पहुँचायी जा सके,
7 मेलों, तीर्थ यात्राओं तथा त्यौहारों का प्रबन्ध और नियमन,
8 बेरोजगारी से सम्बन्धित आंकड़े तैयार करना,
9. जिन परिवादों पर पंचायत कार्यवाही करने के लिए सक्षम न हो, उनके बारे में सक्षम अधिकारी को प्रतिवेदन देना,
10 पंचायत अभिलेख तैयार करना और उनका समुचित रखरखाव करना,
11. जन्म, मृत्यु और विवाह के आंकड़े रखना,
12. पंचायत क्षेत्र में स्थित गांवों के लिए विकास योजनाओं को तैयार करना और उन्हें अनुमोदन के लिए पंचायत समिति तथा जिला परिषद प्रस्तुत करना ।

8. जन कल्याण सम्बन्धी कार्य

1. भूमि सुधार की योजनाओं को क्रियान्वित करने में सहायता करना,
2. विकलांगों निराश्रितों वृद्धजनों तथा रोगियों को राहत और सहायता देना,
3 प्राकृतिक प्रकोप एवं बाढ़ या महामारियों के समय निवासियों को समुचित सहायता करना,
4. पंचायत क्षेत्र में सामूहिक खेती एवं बहुउद्देशीय सहकारी समितियों के लिए वातावरण तैयार करना तथा उनका गठन करना,
5 राज्य सरकार की अनुमति से बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना तथा उस पर कृषि करना,

6. पचायत क्षेत्र मे विकास के लिए श्रम दान के कार्य का आयोजन करना,

7. उचित मूल्य की दूकानो को खोलना या सरकार के सम्बन्धित विभाग द्वारा खोली गयी ऐसी दूकानो का नागरिको के हित मे पर्यवेक्षण करना,

8. परिवार नियोजन के पक्ष पर राष्ट्रीय हित मे प्रचार-प्रसार एव सहयोग करना ।

9. ग्राम उद्योग के क्षेत्र में

ग्राम उद्योग के क्षेत्र मे भी ग्राम पचायतो को पर्याप्त कार्य करने होते है जिनमे से कुटीर तथा ग्रामोद्योगो का उन्नयन, उनका सुधार तथा प्रोत्साहन प्रमुख हैं ।

10. विविध कार्य

1. प्राथमिक विद्यालयो के अध्यापको के लिए गृह निर्माण,
2. स्कूलो की इमारतो तथा उनसे संबद्ध इमारतो का निर्माण करना,
3. जीवन बीमा तथा सामान्य बीमा कराना,
4. भारत सरकार की डाक सेवाग्रो मे सहायता करना,
5. एजेण्ट के रूप मे या ग्रन्यथा अल्प बचत प्रमाणपत्रों की बिक्री ।

राजस्थान एक ऐसा राज्य रहा है जिसने न केवल पचायती राज अपनाने मे देश भर मे पहल की थी अपितु समय-समय पर इसकी कार्य दशा की मीमासा भी यहा की जाती रही है । जनवरी 1982 मे बीकानेर मे पचायती राज पर एक वृहद सम्मेलन आयोजित किया गया था जिसमे पचायतो को अधिक सशक्त बनाने के लिए कुछ दिशा निर्धारक निश्चित किए गये थे । सम्मेलन ने यह अभिशसा की थी कि ग्रामीण क्षेत्रो मे स्वास्थ्य कार्यकर्ताओ के प्रारम्भिक चयन, ग्रामीण क्षेत्रो मे अवैध वृक्षो की कटाई व वन्य जीवो के सरक्षण की सूचना एव आरक्षित वन स्थापित करने हेतु भूमि का चयन और इस सम्बन्ध मे वन विभाग से सहयोग हैण्डपम्पो का सधारण, राष्ट्रीय निर्माण रोजगार योजना के क्रियान्वयन और परम्परागत पेयजल के साधनो के सधारण और परिचालन मे पचायतो को प्रत्यक्ष भूमिका दी जानी चाहिए । पंचायतो को प्रशासनिक दृष्टि से अधिक सक्षम बनाने के लिए राज्य सरकार ने ग्राम पचायतो मे ग्रुप सचिव की नियुक्ति के लिए भी पहल की थी । आवश्यकता इस बात की है कि राज्य सर-

कारें सभी पचायतों को ग्रुप सचिव की सवाऐं उपलब्ध करायें। ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत ग्रामसेवकों को इस अतिरिक्त जिम्मेदारी में, कुछ अतिरिक्त भत्ता देकर, सम्बद्ध किया जा सकता है। ऐसा कर दिए जाने से ग्राम पचायतों को प्रशासनिक सहायता मिल सकेगी और ग्राम पचायतें अधिक कुशलता पूर्वक कार्य निष्पादन कर पायेंगी।

सन्दर्भ

1. श्याम लाल पुरोहित, राजस्थान पचायत कोड, प्रथम वॉल्यूम, 1966, पृ. 27
2 मदर लाल दगोरा और भगवान सहाय त्रिवेदी, राजस्थान पचायत दर्शिका, 1976, पृ. 9–14
3. उपरोक्त, पृ. 23–32
4. राजस्थान सरकार, निर्वाचन विभाग, राजस्थान पचायत तथा न्याय उपसमिति निर्वाचन नियम, 1960 (16 अगस्त, 1986 तक सशोधित), पृ 8
5. उपरोक्त, पृ 23
6 उपरोक्त, पृ. 24
7. एम एन छगानी और एम. एन. श्याम, द राजस्थान पंचायत राज लॉज, 1965 सैक्शन 1, पृ. 13–16
8 मदर लाल दगोरा और भगवान सहाय त्रिवेदी, पूर्वोक्त, पृ 33–34
9 राजस्थान पचायत अधिनियम, 1953 (धारा 20)
10 राजस्थान सरकार, निर्वाचन विभाग, राजस्थान पचायत तथा न्याय उप समिति निर्वाचन नियम, 1960 (16 अगस्त 1986 तक सशोधित), पृ 21
11 रविन्द्र शर्मा, विलेज पचायत इन राजस्थान, 1974, पृ. 32–33
12 डॉ रविन्द्र शर्मा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, प्रिन्ट वैल पब्लिशर्स जयपुर, 1985, पृ. 47
13 राजस्थान सरकार, निर्वाचन विभाग, पूर्वोक्त, पृ. 21
14. उपरोक्त,

15. उपरोक्त,
16. उपरोक्त, पृ. 22
17. डॉ रविन्द्र शर्मा, पूर्वोक्त, पृ 48
18. भवर लाल दशोरा और भगवान सहाय त्रिवेदी, पूर्वोक्त, पृ. 33–34
19. जयपुर जिला परिषद के चुनाव के समय 18 जुलाई, 1988 को तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री शिवचरण माथुर द्वारा दिया गया भाषण, राजस्थान पत्रिका, 19 जुलाई, 1988
20. एस एल. पुरोहित, पूर्वोक्त, पृ. 15–16
21. उपरोक्त, पृ. 17–18
22. *यह सशोधन, राजस्थान पचायत (सशोधन) अध्यादेश, 1975 (अध्या*-देश सख्य. 24 सन 1975 (राजस्थान राजपत्र भाग 4 (ख), दिनाक 24 सितम्बर, 1975 को किया गया था।
23. सादिक अली प्रतिवेदन, पृ. 87–88
24. *गिरधारी लाल व्यास समिति प्रतिवेदन, 1973, पृ 44-45 और 160*
25. उपरोक्त,
26. इसके विस्तृत अध्ययन के लिए देखें, डॉ. रविन्द्र शर्मा, पूर्वोक्त पृ. 61–73
27. *इस सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी के लिए द्रष्टव्य सादिक अली* प्रतिवेदन,
पृ 339–44, तथा डॉ रविन्द्र शर्मा का पूर्वोक्त प्रकाशित शोध प्रबध
28. उपरोक्त,

10

ग्रामसभा

किसी भी पंचायत क्षेत्र के समस्त वयस्क नागरिकों के सम्मिलित स्वरूप या समूह को ग्रामसभा कहा गया है। दूसरे शब्दों में, इसे वयस्क नागरिकों की ग्रामसभा कहा जा सकता है। यह एक ऐसी संस्था है जो प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की अवधारणा से मेल खाती है। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में किसी राज्य की समस्त वयस्क जनता एक स्थान पर एकत्र होकर शासन सम्बन्धी कार्यों का सचालन करती है। हम यह जानते हैं कि आधुनिक प्रतिनिधि लोकतन्त्र में सत्ता के अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण के लिए या उसे जनता के प्रति अधिकतम उत्तरदायी बनाने के लिए पंचायती राज जैसी संस्थाओं को अपनाया गया है।

बलवंत राय मेहता समिति ने पंचायती राज का जो त्रिस्तरीय ढांचा सुझाया उसमें ग्रामसभा का कोई प्रावधान नहीं किया गया था। किन्तु भारतीय संघ के जिन जिन राज्यों में पंचायती राज अपनाया गया है उनमें से अधिकांश में ग्रामसभा नामक संस्था का प्रावधान किया गया है। यद्यपि सभी राज्यों में ग्राम सभा की रचना एक जैसी नहीं है, बिहार, उड़ीसा तथा राजस्थान में ग्राम पंचायत क्षेत्र के सभी वयस्क निवासी ग्रामसभा के सदस्य माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य राज्यों में पंचायत क्षेत्र के वे मतदाता जिनके नाम राज्य की विधानसभा की मतदाता सूची में होते हैं, वे ग्रामसभा के भी सदस्य माने जाते हैं।

महात्मा गांधी ने भारत में सच्चे लोकतन्त्र की कामना की थी। उनकी मान्यता थी कि सच्चा लोकतन्त्र केन्द्र में बैठे हुए 20 व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता, उसे प्रत्येक गांव के लोगों द्वारा नीचे के स्तर से चलाना होगा। गांधी जी ने ग्राम स्वराज्य की जो अवधारणा प्रतिपादित की थी उसमें "गांव" विकेन्द्री-

कुल राजनीतिक सत्ता का एक ऐसा घटक माना गया था जिसके माध्यम मे प्रत्येक व्यक्ति शासन के कार्यो मे प्रत्यक्ष भाग ले सकेगा।[1]

लोकनायक जय प्रकाश नारायण भी यह मानते थे कि भारतीय प्रजातन्त्र का आधार मजबूत नही है। उनका मानना था कि वयस्क मताधिकार देने मात्र से ही प्रजातान्त्रिक व्यवस्था स्थापित नहीं हो जाती है। उनकी राय में भारतीय प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की सरचना और स्वरूप को ऊपर की अपेक्षा नीचे की ओर सशक्त आधार प्रदान करने की आवश्यकता है। वे यह मानते थे कि ससद की बजाय ग्रामीण स्तर की सस्थाओ को अधिक शक्तियां दी जानी चाहिए ताकि लोकतन्त्र की जडें मजबूत होकर पुष्पित और पल्लवित हो सके।[2]

यद्यपि बलवन्त राय मेहता समिति ने पचायती राज के ढाचे में ग्रामसभा को कोई स्थान नही दिया था फिर भी पचायती राज अपनाने वाले राज्यों ने ग्रामसभा की रचना का महत्व स्वीकार किया है और इसे पचायती राज व्यवस्था के आधार के रूप मे विकसित किया है। यह माना गया है कि ग्राम स्तर पर पचायत, ग्रामसभा से ही अपना अधिकार ग्रहण करे और ग्रामसभा के प्रति निरन्तर उत्तरदायी रहे, क्योकि ग्रामसभा मे गाव के सभी वयस्क नागरिक सम्मिलित होते हैं।[3]

गाव के लोगो की ग्राम सभा का उक्त विचार हमारे गावो के लिए नया नही है। हमारे यहा इसकी परम्परा पुरातन काल से ही रही है, यद्यपि कालान्तर में इसकी क्षमता का ह्रास हो गया। पचायती राज का ढाचा अपनाने के पश्चात उसके एक अग के रूप मे, ग्रामसभा को नियमित और सुनियोजित ढग से आयोजित करने की परम्परा को पुनर्जीवित करने से, ग्रामीण लोगो के उत्साह वर्द्धन मे बड़ी मदद मिली है।[4] अब यह व्यापक रूप से अनुभव किया जा रहा है कि पचायती राज मे ग्रामसभा का महत्वपूर्ण स्थान है और इसके सार्थक योगदान को गभीरता से रेखांकित किया जाना चाहिए। यह अनुभव कर लिया गया है कि इसे एक बुनियादी सस्था के रूप मे कार्य करना चाहिए और ग्रामीण जीवन को सुदृढ बनाने तथा लोकतन्त्र की जडें मजबूत करने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन के रूप मे इसे विकसित किया जाना अपरिहार्य है। विद्वानो ने यह अनुभव किया है कि ग्रामसभा को एक ऐसे मच के रूप मे विकसित किया जाना चाहिए जहा लोग एकत्र होकर अपनी दैनन्दिन समस्याओ पर वाद-विवाद कर सकें। ग्राम सभा के माध्यम से, नागरिकों को प्रभावित करने वाले सभी मामलो पर जनमत का स्पष्टीकरण हो जाता है जिससे ग्राम पचायत को अपना कार्य करने के लिए

मार्गदर्शन भी सुलभ होता है । ग्रामसभा, ग्राम पंचायत को जनता की एक वास्तविक संस्था के रूप में विकसित करने का अत्यन्त अनुपम उपकरण है ।

राजस्थान में ग्रामसभा

राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1953 में कहा गया है कि "प्रत्येक पंचायत निर्धारित तरीके, निर्धारित समय और निर्धारित अन्तर के साथ पंचायत क्षेत्र के समस्त वयस्क नागरिकों की एक सभा बुलायेगी ।" राजस्थान पंचायत एवं न्याय पंचायत (सामान्य) नियम, 1961 के अधीन सरपंच अथवा उपसरपंच पर वर्ष में कम से कम दो बार मई और अक्टूबर में ग्राम के वयस्क नागरिकों की सामान्य सभा बुलाने का दायित्व डाला गया है । यह उल्लेखनीय है कि अधिनियम अथवा नियमों में "ग्रामसभा" शब्द का प्रयोग कहीं नहीं किया गया है । वर्तमान प्रावधानों में अधीन वयस्क नागरिकों की इस सामान्य सभा को कोई कानूनी मान्यता नहीं दी गयी है ।[1]

ग्रामसभा में निम्नलिखित अपेक्षाएं की गयी थी

1. ग्रामसभा लोकतान्त्रिक व्यवस्था को अधिक सुदृढ़ बनायेगी और प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का उपकरण बन सकेगी,
2. यह एक ऐसे मंच के रूप में कार्य करेगी जहां लोग आपस में मिल सकें और अपनी दैनन्दिन समस्याओं पर परस्पर चर्चा और विचार कर सकें ।
3. इससे ग्राम पंचायत पर न केवल नागरिकों का प्रत्यक्ष नियन्त्रण स्थापित हो सकेगा अपितु ग्राम पंचायत को जनता का मार्गदर्शन भी मिलेगा,
4. इससे लोगों द्वारा निर्वाचित पंचायत और निर्वाचकों के मध्य संचार में सहायता मिलेगी ।

ग्रामसभा का गठन

राजस्थान के ग्राम पंचायत अधिनियम 1953 में ग्रामसभा का प्रावधान उस समय जोड़ा गया जब 1959 में राजस्थान ने पंचायती राज विकेन्द्रीकरण की मेहता समिति योजना का कार्यान्वित किया । मूल ग्राम पंचायत अधिनियम, 1953 में इस हेतु जो नया प्रावधान सेक्शन 23 (ए) जोड़ा गया है उसका सार इस प्रकार है

प्रत्येक ग्राम पंचायत अपने क्षेत्र के सभी वयस्क नागरिकों की सभा आमन्त्रित करेगी जिसके आयोजन का तरीका सरकार द्वारा सुझाया जायगा ।

इस प्रकार बुलायी गयी सभा मे पचायत द्वारा किये गये कार्यों और प्रगति का विवरण प्रस्तुत किया जायेगा तथा उस विवरण पर नागरिको द्वारा सभा मे दिए गए सुझावो को ग्राम पचायत की आगामी बैठक मे विचारार्थ रखा जायेगा।

ग्रामसभा की बैठक

सभी राज्यो मे सामान्यत ग्रामसभा की वर्ष मे दो बैठकें होती हैं। उडीसा राज्य मे इसकी वर्ष मे एक ही बैठक होती है। राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1959 मे, जोडी गई नयी धारा 23 (ए) ग्रामसभा की बैठक आमन्त्रित करने, बैठक मे विचार विमर्श करने व पचायतो के बजट को प्रस्तुत करने के लिए ग्रामसभा की बैठकें वर्ष मे दो बार आयोजित करने का दायित्व निर्वाचित ग्राम पचायत पर डालती है। अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित नियमो मे यह प्रावधान भी किया गया है कि ग्रामसभा की एक बैठक मई से जुलाई और दूसरी बैठक अक्टूबर से दिसम्बर माह के बीच आयोजित की जानी चाहिए।[6] राजस्थान मे ग्रामसभा को बजट पर विचार करने की शक्ति तो दी गयी है किन्तु ग्रामसभा इस बजट को स्वीकृत या अस्वीकृत करने की शक्ति नही रखती, यद्यपि यह व्यवस्था की गई है कि ग्रामसभा की बैठक मे उस सम्बन्ध मे व्यक्त किये गये विचारो और टिप्पणियो को सावधानी से मिलकर ग्राम पचायत एव पचायत समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा। ग्रामसभा की बैठक प्राय. उस ग्राम मे आयोजित की जाती है, जहा पर ग्राम पचायत का कार्यालय या पचायत भवन होता है। ग्रामसभा की बैठक की अध्यक्षता सरपच और उसकी अनुपस्थिति मे उपसरपच करता है। सरपच एव उपसरपच दोनो की अनुपस्थिति की स्थिति मे, जनता द्वारा, उपस्थित पचो मे से किसी एक को ग्रामसभा की अध्यक्षता करने केलिए चुना जाता है। निर्वाचित ग्राम पचायत से यह अपेक्षा की जाती है कि इस प्रकार आहूत ग्राम सभा की बैठक मे ग्रामसभा पचायत के कार्य-क्रमो और कार्य प्रगति का विवरण प्रस्तुत किया जाये। ग्रामसभा के अध्यक्ष और सचिव पर यह दायित्व है कि ग्रामसभा की बैठक मे व्यक्त किए गए विचारो तथा टिप्पणियो को, निर्वाचित ग्राम पचायत की आगामी बैठक मे विचारार्थ रखा जायेगा। इस प्रकार निर्वाचित ग्राम पंचायत का यह दायित्व है कि अपने कामकाज मे वह, ग्रामसभा द्वारा व्यक्त विचारो का ध्यान रखेगी।

ग्रामसभा की बैठक आयोजित करने मे ग्रामीण जनता स्वय भी पहल कर सकती है यदि ग्राम के कुल वयस्क नागरिको का 25 प्रतिशत या 100 वयस्क नागरिक, लिखित मे ग्रामसभा की बैठक आयोजित करने का अनुरोध सरपच से करें तो सरपच को ऐसी बैठक आमत्रित करनी होती है। ग्रामीण निवासियो द्वारा

जब इस प्रकार की बैठक बुलाने का अनुरोध किया जाता है तो उसमें बैठक का समय तथा उसमें विचार किये जाने वाले बिन्दुओं (एजेण्डा) का संकेत भी करना होता है। यदि इस प्रकार का अनुरोध किये जाने पर, सरपंच ग्रामसभा की बैठक नहीं बुलाता है तो ऐसा अनुरोध करने वाले निवासी स्वयं ग्रामसभा की बैठक का आयोजन कर सकते हैं। इस प्रकार की बैठक केवल उसी ग्राम में की जानी चाहिए जहां ग्राम पंचायत का मुख्यालय हो। राजस्थान में ग्रामसभा की स्थिति मात्र सलाहकारी है। ग्रामसभा ग्रामपंचायत द्वारा नियोजित विभिन्न कार्यक्रमों पर अपनी राय व्यक्त कर सकती है, उसके द्वारा व्यक्त विचारों को मानना ग्रामपंचायत के लिए बाध्यकारी नहीं है।[7]

ग्रामसभा की बैठक आयोजित करने के बारे में यह प्रावधान किया गया है कि ग्रामवासियों को इसकी सूचना कम से कम 15 दिन पूर्व दी जानी चाहिए। इसी सूचना में उन्हें बैठक की तारीख, समय और कार्यसूची अंकित की जानी चाहिए। यह सूचना वन के लिए पंचायत क्षेत्र में आने वाले प्रत्येक गांव में प्रमुख प्रमुख स्थानों पर ऐसी सूचना लिखित में चिपकाई जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त पंचायत क्षेत्र के प्रत्येक गांव में ढोल बजाकर ऐसी बैठक की घोषणा की जानी चाहिए। इन दोनों विधियों के अतिरिक्त ग्राम पंचायत के सभी निर्वाचित पदाधिकारी पंचायत सचिव और ग्राम में कार्यरत सरकारी कर्मचारियों—अध्यापक और ग्रामसेवक आदि पर यह दायित्व होता है कि वे ग्रामसभा की बैठक की सूचना का अपनी क्षमतानुसार प्रसारण करें।[8]

बैठक की कार्यवाही का अभिलेखन

नियमों में यह प्रावधान किया गया है कि ग्रामसभा की बैठक की कार्यवाही का लिखित में अभिलेखन रखा जायेगा। नियमों में कहा गया है कि किसी भी वित्त वर्ष में होने वाली ग्रामसभा की प्रथम बैठक में ग्राम पंचायत का बजट प्रस्तुत किया जायेगा तथा उस बजट पर व्यक्त किये गये ग्रामवासियों के विचारों को लिखा जायेगा। ग्रामसभा की प्रत्येक बैठक में ग्रामीणों को इस बात से अवगत कराया जायेगा कि ग्राम पंचायत किन किन कार्यक्रमों पर कार्य कर रही है। इन बैठकों में ग्राम पंचायत की कार्य प्रणाली, प्रगति आदि की समीक्षा की जायेगी। ग्रामसभा की बैठक में इस बारे में जो भी विचार व्यक्त किये जायेंगे उन सब का हिन्दी में लिखित विवरण रखा जायेगा और यह विवरण सरपंच द्वारा हस्ताक्षरित होगा। सरपंच पर यह दायित्व डाला गया है कि ग्राम सभा व पंचायत दोनों का सचिव होने के नाते वह इस विवरण को ग्राम पंचायत की अगली बैठक में प्रस्तुत करेगा।

ग्रामसभा के अधिकार व कर्तव्य के बारे में पंचायती राज पर प्रस्तुत सादिक अली प्रतिवेदन में कहा गया है कि ग्रामसभा के अधिकार और कर्तव्यों की परिभाषा नपे-तुले शब्दों में करना कठिन है। धीरे-धीरे काम करने के माध्यम से एक परम्परा विकसित होगी और ग्रामसभा वह महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेगी जिससे पचायती राज की ऊपर की सस्थाए शक्ति प्राप्त करेंगी। हमारे विचार मे, ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाले समस्त महत्वपूर्ण मामलों पर ग्रामसभा को विचार करना चाहिए। लोगों को यह अनुभव होना चाहिए कि ग्रामसभा स्थानीय विकास मे उनकी आवाज को बुलन्द करने के लिए और उनके कष्टों को दूर करने मे सहायता देने के लिए है। ग्रामसभा की बैठक मे सामान्य विचार-विमर्श के लिए जो विषय कार्यक्रम में सम्मिलित किए जाने चाहिए, वे इस प्रकार हैं :[9]

1. पचायत का बजट
2. पचायत की ऑडिट रिपोर्ट और इसका अनुपालन
3. पचायत की योजना
4. योजना की प्रगति और विकास की विभिन्न प्रवृत्तियों की रिपोर्ट
5. पचायत के काम काज का ब्यौरा
6. ग्रामसभा के निर्णयों की क्रियान्विति का लेखा जोखा
7. ऋण और सहायता के रूप मे प्राप्त धन राशि के उपयोग की रिपोर्ट
8. सहकारी आन्दोलन सहकारिताओं से सम्बन्ध रखने वाले ग्राम विषय तथा सहकारी समितियों द्वारा सुझाए गए मुद्दों का विवरण
9. ग्रामीणों के सामान्य हितों के मामले जैसे ग्रामीण चरागाह, जलाशय, सार्वजनिक कुओं आदि,
10. ग्राम पाठशाला का कार्य सचालन
11. महत्वपूर्ण सूचनाओं और निर्णयों की जानकारी।

सादिक अली प्रतिवेदन मे यह भी कहा गया है कि ग्रामसभा मे होने वाले विचार विमर्श को केवल कार्यसूची मे सम्मिलित विषयों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि जनता के अभाव अभियोगों का भी एक निश्चित विषय उसमें विचारार्थ लिया जाना चाहिए। इस विषय के अन्तर्गत केवल वास्तविक शिकायतों पर ही विचार विमर्श की अनुमति होनी चाहिए, अनावश्यक और अनर्गल टिप्पणियां करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यदि शिकायतें ऐसी हों जिनको दूर करना स्थानीय पचायत के अधिकारों मे न हो तो ग्रामसभा को चाहिए कि ग्राम पचायत से आग्रह करे कि वह इस शिकायत को उच्च अधिका-

रियों के ध्यान में लाए। ग्रामसभा की बैठकों में प्रारम्भिक एक घण्टे का समय प्रश्नोत्तर के लिए दिया जाना चाहिए।[10]

ग्रामसभा की अप्रभावी भूमिका : एक मूल्यांकन

भारतवर्ष के जिन जिन राज्यों ने अपनी पंचायती राज की व्यवस्था में ग्रामसभा का प्रावधान किया है, उन सबके अवलोकन और मूल्यांकन से यह तथ्य निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो गया है कि ग्रामसभा एक ऐसी प्रभावहीन संस्था है जो ग्रामीण जनता पर कोई प्रभाव डालने में सफल नहीं हुई है। यह निष्कर्ष भारत सरकार द्वारा 1982 में, पंचायती राज की संरचना में ग्रामसभा की भूमिका के अध्ययन के लिए नियुक्त एक अध्ययन दल ने निकाला था।

राजस्थान में भी ग्रामसभा, पंचायती राज की व्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं बना सकी है और इसीलिए राजस्थान में सन 1961 में सरकार ने ग्रामसभा को सक्रिय बनाने के लिए ग्रामीण लोगों को संगठित करने और इस दिशा में आवश्यक पहल करने के लिए अपनी ओर से सक्रिय प्रयत्न किये थे। राज्य सरकार के विकास विभाग, जिलापरिषद तथा पंचायत समितियों ने ग्राम सभा को सक्रिय बनाने के लिए कई बार प्रयत्न किये किन्तु इन प्रयत्नों में कोई सफलता नहीं मिल सकी। 1964 में सादिक अली प्रतिवेदन ने भी ग्रामसभा के बारे में यह सर्वसम्मत मत व्यक्त किया कि "जिन लोगों से हम मिले हैं या पत्र व्यवहार किया है वे सभी इस बात पर एक मत हैं कि ग्रामसभा अभी तक एक प्रभावशाली संस्था नहीं बन पायी है। यह पाया गया है कि ग्राम सभा की बैठकें नियमित रूप से नहीं बुलायी जाती हैं और कुछ अपवादों को छोड़कर बैठकों में उपस्थिति भी अच्छी नहीं होती। ग्रामसभा ने अभी तक लोगों में आवश्यक उत्साह और रुचि पैदा नहीं की है"।[11]

राजस्थान में ग्रामसभा की प्रभावशीलता के बारे में जो अनुसंधान हुए हैं उनमें यह निष्कर्ष व्यक्त किया गया है कि ग्रामसभाओं का आयोजन गांवों में स्वयं ग्रामीणों की पहल और प्रयास से नहीं होता बल्कि उनका आयोजन सरकार और उसमें संलग्न प्रशासनिक अधिकारियों की पहल से होता है। इन ग्रामसभाओं पर प्रायः खण्ड के प्रशासनिक अधिकारी और कर्मचारी, विशेषकर राजस्व विभाग के कर्मचारी प्रभावी रूप से छाये रहते हैं। ग्रामीण जनता की उपस्थिति भी अत्यन्त निराशाजनक पायी गयी है उनमें भी महिलाओं की संख्या तो नगण्य सी थी।[12]

निष्क्रियता के कारण

सादिक अली प्रतिवेदन मे ग्रामसभा की निष्क्रियता के जो कारण बताये हैं वे इस प्रकार हैं [13]

1. उचित प्रचार का अभाव

इसकी बैठको सम्बन्धी सूचना जारी नही की जाती है और समय पर उन्हे प्रचारित भी नही किया जाता। इस कारण ग्रामीण जन ग्रामसभा की बैठक मे भाग नही ले पाते है।

2 अनुपयुक्त समय

बैठकें कभी-कभी ऐसे समय मे आयोजित की जाती हैं जब लोग फसल के कार्य मे व्यस्त होते हैं और कृषको के लिए वह समय उपयुक्त नही रहता।

3. सरपच की उदासीनता

बहुत से सरपच ग्रामसभा की ओर से उदासीन रहते हैं और बैठकें आयोजित करने का कष्ट नही उठाते। कुछ विषयो मे आलोचना के डर से भी वे लोगो को ग्राम सभा मे आने से डरते है।

4 कानूनी मान्यता का अभाव

इस समय पचायती राज कानून के अधीन ग्रामसभा का कोई निश्चित दर्जा नही है। इससे इस सस्था के विकास मे अवरोध उत्पन्न हुआ है।

5 कार्य और कार्यक्षेत्र की अपर्याप्तता

इस समय ग्रामसभा के कार्यों का क्षेत्र बहुत सीमित है। केवल आकडो की जानकारी दे देने और विभिन्न प्रवृत्तियो का घिसा-पिटा ब्योरा दे देने मात्र से लोगो मे उत्साह पैदा नही होता। ग्रामसभा मे जिन विषयो पर विचार-विमर्श किया जाय वे ऐसे होने चाहिए, जो लोगो की दैनन्दिन समस्याओ से सम्बन्ध रखते हो। ग्रामसभा मे शुष्क और घिसे-पिटे ढग के विचार-विमर्श नही होने चाहिए।

6. लोगों की निरक्षरता

गावो मे निरक्षर लोगो की सख्या अत्यधिक है। इस कारण उन्हे ग्राम सभा की बैठको मे आकृष्ट करने मे अनेक व्यावहारिक कठिनाइयो का सामना करना पडता है।

7. सचिव सम्बन्धी सहायता का अभाव

इस समय ग्रामसभा के लिए सचिव सम्बन्धी सहायता की कोई व्यवस्था नही है ।

ग्रामसभा के अप्रभावी होने के कुछ अन्य कारण इस प्रकार है

1 लोगों को जानकारी का अभाव

ग्राम पचायत और ग्रामसभा के बारे मे जो अनुसधान हुए हैं उनका भी यह निष्कर्ष है कि गावो के लोगो को वस्तुत यह जानकारी ही नही होती कि ग्राम पचायत के अतिरिक्त ग्रामसभा नामक एक और सस्था भी होती है । जिन ग्रामीणो को इन दोनो सस्थाओ के अस्तित्व का भान भी था उन्हे भी यह जानकारी नही थी कि दोनो सस्थाओ के पृथक पृथक दायित्व और कार्य क्या हैं ।

2 ग्रामसभा हेतु उपयुक्त स्थान की कमी

ग्रामसभा के आयोजन के प्रति निष्क्रियता का एक प्रभावशाली कारण यह भी पाया गया है कि ग्राम पचायत के क्षेत्र मे कोई ऐसा स्थान प्राय नही होता है जो ग्राम की समस्त वयस्क जनता के एकत्र होने हेतु सुविधाजनक और सर्वमान्य हो । प्राय एक ग्राम पचायत के क्षेत्र मे एक से अधिक गाव सम्मिलित होते हैं अत पचायत मुख्यालय पर आयोजित होने वाली इस बैठक मे पचायत क्षेत्र के अन्य गावो के लिए दूरी की असुविधा के कारण उपस्थित हो पाने मे कठिनाई अनुभव होती है ।

3 पचायत सदस्यों की अनिच्छा

प्राय यह भी देखा गया है कि ग्राम पचायत मे एक बार चुन कर आये हुए सदस्य ग्रामसभाओ के आयोजन के प्रति इसलिए इच्छुक नही होते क्योकि इन्ही बैठको मे ग्राम पचायत के कार्यकलापो और उसकी गतिविधियो के बारे मे न केवल प्रश्न किया जाता है बल्कि निर्वाचित सदस्यो और सरपच से उनके उत्तर की अपेक्षा भी की जाती है । इस प्रकार के वातावरण से बचने के लिए पदासीन सदस्य सदैव प्रयत्न करते रहते हैं और इसके कारण ग्रामसभा के आयोजन की सूचना का उचित प्रचार-प्रसार इस अन्तर्निहित अवरोध के कारण नहीं हो पाता है ।

4 ग्रामीण जनता की अरुचि

ग्राम के नागरिक प्राय ग्रामसभाओ को गम्भीरता से नहीं लेते । ग्रामीण जनता की इस अरुचि का एक कारण तो यह है कि गाव के लोग यह अनुभव

करते हैं कि सत्ता पक्ष ऐसी सभाओं मे अनावश्यक रूप से छाया रहता है और सभी लोगो को अपने विचार प्रस्तुत करने का समुचित अवसर नही मिलता। पंचायत चुनावो मे पराजित हुआ पक्ष प्रायः ऐसी बैठकों का सामूहिक बहिष्कार करते हुए भी देखा गया है।

ग्रामसभा को प्रभावी बनाने के लिए सुझाव

ग्रामसभा को सशक्त और प्रभावी बनाने का प्रश्न ग्रामसभा की बैठक मे होने वाली कार्यवाही की प्रकृति और ग्राम पचायतों को दिए गये कर्त्तव्यो और अधिकार पर निर्भर है। ग्रामीण विकास को गति देने के लिए ग्रामसभा को सार्थक और प्रभावी बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इसे सशक्त बनाने के लिए राजस्थान मे पचायती राज पर नियुक्त उच्च स्तरीय गिरधारी लाल व्यास समिति ने निम्नांकित सिफारिशें की थी [14]

1. राजस्थान मे भी गुजरात की भांति ग्रामसभा को वैधानिक मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। गुजरात मे ग्राम पचायत (ग्रामसभा बैठक एव कार्य) नियम 1964 के माध्यम से ग्रामसभा को न केवल वैधानिक मान्यता प्रदान की गयी है अपितु उसकी कार्य प्रक्रिया एव बैठक आयोजित करने के विभागीय नियम भी घोषित किये हुए हैं। इसी तरह की व्यवस्था राजस्थान मे भी की जानी चाहिए।
2. प्रत्येक ग्राम पचायत के क्षेत्र मे कार्यरत ग्रामसेवक और ग्रुप सचिव के लिए ग्रामसभा की बैठक मे उपस्थित होना अनिवार्य घोषित किया जाना चाहिए। सरपच के लिए भी वैधानिक रूप से यह अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए कि वह ग्रामसभा की बैठक मे उपस्थित रहें और यदि ग्रामसभा की लगातार तीन बैठको मे वह अनुपस्थित रहे तो उसे सरपच पद पर बने रहने के अयोग्य घोषित कर दिया जाय। नियमो मे यह स्पष्ट प्रावधान किया जाना चाहिए कि ग्रामसभा की बैठक आयोजित करना सरपच का प्रायमिक दायित्व है। पचायत समिति के प्रसार अधिकारियो तथा विकास अधिकारियो को भी ग्रामसभा की बैठक मे उपस्थित होने के लिए ऐसे निर्देश दिये जायें ताकि ग्रामसभा मे व्यक्त विचारो के आधार पर वे ग्रामीण विकास को व्यावहारिक दिशा दे सकें।
3. वर्तमान मे ग्रामसभा की बैठकें फसल बोने और फसल की कटाई के समय होती हैं। इस व्यवस्था को बदल कर प्रति वर्ष इसकी दोनो

बैठकें मई-जून तथा दिसम्बर-जनवरी में आयोजित करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. ग्रामसभा की बैठक में सामान्य जनता की सक्रिय सहभागिता वस्तुतः इस बात पर निर्भर करेगी कि उन्हें बैठक के परिणाम कितने सार्थक प्रतीत होते हैं। जनता की यह भागीदारी धीरे-धीरे स्वतः बढ़ेगी। इसलिए ग्राम सभा की बैठक के लिए कोई गणपूर्ति निर्धारित नहीं की जानी चाहिए।

5 पटवारी ग्रामीण जनता के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्मचारी होता है। ग्रामीणों की अधिकांश समस्याएं राजस्व विभाग से सम्बन्धित होती हैं अतः पटवारी के लिए भी यह आवश्यक बनाया जाना चाहिए कि वह ग्रामसभा की बैठकों में उपस्थित रहे। उसकी यह उपस्थिति ग्रामीण जनता के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

6 ग्रामसभाओं की बैठकों में, उपस्थित लोगों के लम्बे-चौड़े भाषणों के स्थान पर नागरिकों को पंचायत कार्यों के बारे में प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उपस्थित सरपंच और पंचों को यह प्रयत्न करना चाहिए कि वे प्रश्नकर्ता की जिज्ञासा को संतुष्ट करें।

7. ग्रामसभा की बैठक में जो भी सुझाव और विचार प्रस्तुत किये जायें उनका लिखित अभिलेख तैयार किया जाना चाहिए तथा ग्रामपंचायत की अगली बैठक में उसे विचारार्थ रखा जावे। ग्रामसभा में उठाये गये मुद्दों पर ग्राम पंचायत ने जो भी कार्यवाही की उससे ग्रामसभा को अगली बैठक में अवगत कराया जाना चाहिए।

8 पंचायत समिति के पदाधिकारियों को तथा ग्रामसेवक आदि को ग्रामीण क्षेत्र में अपने दौरे का कार्यक्रम ग्रामसभा की बैठकों की तिथि के अनुसार निर्धारित करना चाहिए ताकि ग्रामसभा की बैठकों में वे उपस्थित रह सकें।

9 पंचायत क्षेत्र के स्कूल अध्यापकों के लिए भी ग्रामसभा की बैठकों में भाग लेना अनिवार्य किया जाना चाहिए।

10 तहसीलदार और नायब तहसीलदार को भी यथासम्भव ग्रामसभा की बैठकों में उपस्थित रहना चाहिए। यदि सम्भव हो तो क्षेत्रीय उपखंड अधिकारी को भी, इन बैठकों में उपस्थित रहना चाहिए। ग्रामसभा की बैठकों में, प्रसार अधिकारी द्वारा किये गये कार्यों का मूल्यांकन और विचार-विमर्श करना चाहिए।

11. ग्रामसभा की बैठको मे भाग लेने वाले लोगो मे जब तक पूर्ण रुचि जागृत न हो जाये तब तक ऐसी बैठको के आयोजन के समय सिनेमा, कठपुतली का प्रदर्शन, समूहगान जैसे आकर्षक मनोरजक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाने चाहिए। इस प्रकार के कार्यक्रमो के आयोजन का बैठक की तिथि के एक सप्ताह से पूर्व सम्पूर्ण पचायत क्षेत्र मे सक्रिय प्रचार किया जाना चाहिए। ग्रामसभा की बैठक को ठीक समय पर आयोजित करने का दायित्व ग्रामसेवक को व्यक्तिगत रूप से दिया जाना चाहिए।

12 ग्रामसभा के कोई विशिष्ट कार्यकारी दायित्व नही है किन्तु ग्रामसभा को वस्तुत वैसी ही भूमिका निभानी है जैसी कि केन्द्रीय सरकार की सरचना मे ससद निभाती है। पचायत क्षेत्र की योजना, ग्रामीण क्षेत्र की विभिन्न पाठशालाओ के कार्य, चरागाह, गाम के तालाब, कूप, पचायत बजट इत्यादि ग्रामवासियो की सामान्य रुचि के समस्त विषयो पर ग्रामसभा की बैठकों मे विचार किया जाना चाहिए।

ग्रामसभा की बैठकें आयोजित करने की सार्थकता इस तथ्य मे निहित है कि यह नागरिको को ग्रामीण विकास की व्यापक प्रक्रिया के प्रति, कितनी सहभागी बन पाती है। ग्रामसभा की बैठको मे नागरिको की अच्छी उपस्थिति इस बात का प्रमाण मानी जा सकती है कि ग्राम के लोग अपने गाव के विकास के प्रति कितने सजग, समर्पित और सन्निष्ठ हैं। ग्रामसभा मे ग्रामीणो की उपस्थिति से इस बात का अनुमान भी लगाया जा सकता है कि पचायती राज की सरचना को गाव के विकास के लिए कितना सार्थक और उपयोगी माना है। महात्मा गाधी ने कहा था कि ग्राम स्वराज्य का मेरा विचार प्रत्येक ग्राम को एक ऐसी स्वतन्त्र इकाई बनाने से है जो अपने आप मे आत्मनिर्भर हो। ग्राम पचायत अपने नागरिको के लिए व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनो की सम्मिलित भूमिका का निष्पादन करे। महात्मा गाँधी के ग्राम स्वराज्य का यह सपना यद्यपि पूर्ण रूप से साकार नही किया जा सकता किन्तु ग्रामसभा को सक्रिय सार्थकता प्रदान कर, इस दिशा मे आगे प्रयाण अवश्य किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. महात्मा गांधी, ग्राम स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृष्ठ 15
2. जयप्रकाश नारायण, ए प्ली फार रिकन्स्ट्रक्शन ऑव इंडियन पालिटिक्स, काशी सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 1959, पृ 81–91
3. सादिक अली पंचायती राज अध्ययन दल की रिपोर्ट, पंचायत एवं विकास *विभाग, राजस्थान सरकार, 1964, पृ. 44*
4. उपरोक्त
5. उपरोक्त
6. द राजस्थान पंचायत एण्ड न्याय पंचायत (जनरल) रूल्स, गवर्नमेंट ऑफ राजस्थान, धारा, 65–69, 1961, पृ 23–24
7. एम एल गवदाल, राजस्थान पंचायत एवं न्याय पंचायत कोड 1973
8. उपरोक्त
9. सादिक अली प्रतिवेदन, पृ. 46–47
10. उपरोक्त
11. उपरोक्त
12. रविन्द्र शर्मा, के. डी. त्रिवेदी और गिरधर सिंह, प्रशासन गांवों की ओर एक अध्ययन, लोक प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (अप्रकाशित अध्ययन प्रतिवेदन)
13. सादिक अली प्रतिवेदन, पूर्वोक्त
14. गिरधारी लाल व्यास समिति प्रतिवेदन, सामुदायिक विकास और पंचायत विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर 1973

11

नगरीय संस्थाओं का कार्मिक प्रशासन

कार्मिक प्रशासन, प्रशासकीय व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण तथा जटिल आयाम है। किसी प्रशासकीय सगठन के सचालन मे जिन महत्वपूर्ण उपकरणो और घटको की आवश्यकता होती है, कार्मिक वर्ग उसमे सबसे आवश्यक साधन होता है। किसी भी राष्ट्र के नागरिको का कल्याण सरकार की कुशलता पर निर्भर करता है और यह कार्यकुशलता उसके कार्मिक वर्ग पर निर्भर करती है। इसलिए यह माना जाता है कि कार्मिक वर्ग के कुशल प्रशासन पर प्रबन्ध व्यवस्था की प्रभावशीलता निर्भर करती है। यही कारण है कि कार्मिक वर्ग का प्रशासन, अध्ययन एव मनन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र माना जाने लगा है।

आधुनिक युग मे यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाने लगा है कि यदि किसी प्रशासकीय सगठन का कार्यभार सक्षम और कुशल कर्मचारियो के हाथो मे नही है तो वह सगठन न तो अपने उद्देश्यो की पूर्ति कर सकता है और न ही जनता के सम्मान और विश्वास का पात्र बन सकता है। सफल, कुशल और सक्षम सेवा वर्ग जहा एक ओर प्रशासन की उत्कृष्टता के लिए आवश्यक है वही लोक कल्याण की अभिवृद्धि का भी आधार स्तम्भ है। 1950 के दशक के पश्चात यह तथ्य चिन्तन के स्तर पर स्थापित हो गया है कि प्रशासन मे मानवीय पहलू की उपेक्षा करना स्वय प्रशासकीय सगठन के लिए घातक हो सकता है। वस्तुत प्रशासन के नियता भी प्रशासकीय यत्र को सचालित करने वाले लोगो का ध्यान न रखें तो सम्पूर्ण प्रशासकीय ढाचा चरमरा जायेगा और प्रशासकीय व्यवस्था ग्रस्त व्यस्त हो जायेगी। वही प्रशासन सफल हो सकता है जो मानव स्वभाव और मानवीय आकाक्षाओ के अनुरूप हो। कार्मिक प्रशासन, किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था का ऐसा केन्द्र बिन्दु बन गया है जिसके कलेवर मे प्रशासन की विविध समस्याओ की छाया की अनुभूति की जा सकती है।

स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओ मे भी कार्मिक प्रशासन का वही महत्व है जो महत्व उसे राष्ट्रीय एव राज्य स्तरीय प्रशासन मे प्राप्त है। किसी भी सगठन की कार्यक्षमता अन्तत. उसके कर्मचारियो पर ही निर्भर करती है और स्वायत्त शासन की संस्थाए भी इसका अपवाद नहीं है। इन संस्थाओ की सफलता बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करती है कि उनके कर्मचारियो की कार्यकुशलता और कार्यक्षमता कितनी बढी चढी है, कर्मचारी वर्ग स्थानीय जनता को सेवाए देने के प्रति कितने तत्पर हैं और स्वायत्त शासन के माध्यम से लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का लक्ष्य पूरा करने के प्रति वे कितने सचेष्ट हैं। हरमन फाईनर का यह मत है कि सरकार के राजनीतिक पक्ष मे चाहे कितनी ही शक्ति हो, उसका राजनीतिक दर्शन कितना ही बुद्धिमता पूर्ण हो और नेतृत्व एव प्रमुख कितने ही ऊचे हो—वे सब अधिकारियो, विशिष्ट मामलो मे विशेषज्ञ सलाह प्रदान करने वाले विशेषज्ञो और उन स्थाई कर्मचारियो, जिन्हे विशेष रूप मे कार्य को करने के लिए नियुक्त किया जाता है, के बिना प्रभाव शून्य होगे।[1] इसी प्रकार ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने भी नगरीय संस्थाओ के कार्मिक प्रशासन के सम्बन्ध मे यह विचार व्यक्त किये है कि "प्रभावी स्थानीय सत्ता के आवश्यक उत्तरदायित्वो मे कर्मचारियो की निष्ठा, दक्षता, निष्पक्षता और कर्तव्यो के प्रति समर्पण आदि की गणना की जा सकती है। इन सब गुणो की पूर्ति उन कर्मचारियो के माध्यम से की जा सकती है जो योग्यता के आधार पर स्थाई रूप से, पद की सुरक्षा और पदोन्नति की आकर्षकसभावना दर्शाते हुए उचित और पर्याप्त वेतन शृंखला मे सगठित किये गये हैं।"[2]

नगरपालिकाओ का प्रशासन भी कार्यों के आधिक्य की समस्या से ग्रस्त हो गया है। प्रशासनिक कार्यों मे बढती जटिलता कारण नगरपालिका प्रशासन के सचालन हेतु व्यावसायिक और तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता पड़ने लग गयी है। नगरीय संस्थाओ से अब देशभर मे न केवल सफाई, रोशनी और जल वितरण जैसे प्राथमिक और अनिवार्य कार्यों के सम्पादन की ही अपेक्षा की जाती है अपितु उनसे अब गरीबी के उन्मूलन हेतु आयोजित विभिन्न कार्यक्रमो मे भी सक्रिय भूमिका निभाने की आशा की जाती है। यही नही नगरपालिकाओं के स्तर पर विभिन्न निर्माण कार्य होने लगे हैं, पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न कार्यक्रम भी इस स्तर पर सचालित किए जाने लगे हैं, और गरीबी की सीमा रेखा से नीचे रहने वाले लोगो को आवास इत्यादि बनाकर देने, शौचालयो का उत्तम किस्म से निर्माण तथा सफाई एव सुरक्षा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से

रखरखाव किया जाने लगा है। नगरीय सस्थाओ के दायित्वो मे आये इस परिवर्तन के कारण इन सस्थाओ मे अप्रशिक्षित और अदक्ष कर्मचारियो के स्थान पर कुशल और दक्ष तथा तकनीकी कर्मचारियो की आवश्यकता बढ गयी है। यह सुविदित है कि नागरिक सेवाओ का स्तर नियुक्त किये गये कर्मचारियो की योग्यता पर निर्भर करता है। वस्तुतः नगरीय सस्थाओ द्वारा सम्पादित नगरीय सेवाओ के कुशल सम्पादन मे जिन गुणो की आवश्यकता कार्मिक वर्ग मे वाछनीय होती है उनका उस वर्ग मे प्रायः अभाव दृष्टिगोचर होता है। इस स्थिति का कारण यह है कि सम्पूर्ण देश मे नगरीय प्रशासन मे सुसगठित तथा प्रभावी कार्मिक व्यवस्था का अभाव है। राजस्थान भी इस स्थिति का अपवाद नही है। इसी सन्दर्भ मे, इस अध्याय मे नगरीय सस्थाओ मे कार्मिक प्रशासन की समस्याओ मे उनके वर्गीकरण, भर्ती, पदोन्नति प्रशिक्षण एव पदोन्नति व्यवस्था तथा वेतन और अन्य सेवा शर्तों पर विचार किया जा रहा है।

सविधान के अन्तर्गत स्थानीय शासन राज्य सूची का विषय है।[3] इसी कारण भारत वर्ष मे सभी राज्यो मे नगरीय स्थानीय शासन की सस्थाओ मे कर्मचारी वर्ग के सन्दर्भ मे भिन्न भिन्न प्रणालिया प्रवर्तित हैं। यद्यपि स्वतन्त्रता के तुरन्त पश्चात के काल मे 1948 और 1954 मे स्थानीय सस्थाओ के प्रथम और द्वितीय सम्मेलन मे प्रस्ताव पारित करते हुए यह माग की गयी थी कि राज्य के स्तर पर स्थानीय शासन की कार्मिक व्यवस्था को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए स्थानीय निकायो का राज्य स्तरीय सेवा संवर्ग बनाया जाना चाहिए। इस प्रस्ताव का स्थानीय शासन की केन्द्रीय परिषद ने भी 1956, 59, और 60 मे समर्थन किया था।[4] इसी तरह 1963 मे राज्यो के नगरीय नियोजन मन्त्रियो के चतुर्थ सम्मेलन में भी इस दिशा में आवश्यक अभिशसा की गयी। इस सम्मेलन में प्रस्ताव पारित करते हुए माग की गयी कि नगरीय सेवाओ की कुशलता और स्तर में वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि राज्यो के स्तर पर नगरीय प्रशासन के लिए राज्य स्तरीय प्रशासकीय, स्वास्थ्य इजीनियरिंग और नगरीय नियोजन से सबन्धित सेवाओ का विकास किया जाना चाहिए ताकि अधिक कुशल और श्रेष्ठतर नगरीय प्रशासन उपलब्ध कराया जा सके।[5]

इन अभिशसाओ के पश्चात भारतवर्ष में प्राय सभी राज्यो की सरकारो ने नगरीय सेवाओ के कार्मिक प्रशासन को व्यवस्थित आधार प्रदान करने की दृष्टि से इस सम्बन्ध में अनेक नियमो और विनियमो की उद्घोषणा की। इन उद्घोषणाओ में नगरीय सेवाओ में नियोजित किये जाने वाले कर्मचारियो

की योग्यताओं, उनके चयन, नियुक्ति, पदोन्नति और अनुशासनात्मक कार्यवाही इत्यादि आयामों को विनियमित करने हेतु आवश्यक नियमों की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी। किन्तु जब राज्य सरकारों ने यह अनुभव किया कि नगरपालिकाएं, उनके द्वारा घोषित सेवा नियमों की अनुपालना के प्रति लापरवाही और अवज्ञा का दृष्टिकोण प्रदर्शित करती हैं तो प्राय अधिकांश राज्यों ने नगरीय सेवाओं के भिन्न प्रतिमानों को अपनाना आरम्भ कर दिया। तमिलनाडु भारत का पहला राज्य था जिसने राज्य स्तरीय नगरीय सेवा का निर्माण किया। इसके उदाहरण को अन्य पड़ोसी राज्यों केरल, आन्ध्रप्रदेश आदि ने भी अपने यहाँ अपनाया। विभिन्न राज्यों ने नगरीय सेवाओं के जो भिन्न भिन्न प्रतिमान अपनाये हैं उनमें एक लक्षण यह परिलक्षित होता है कि जहा नगरीय सेवा के लिए एकीकृत स्थानीय सेवाओं की व्यवस्था का चयन किया गया है उसके अन्तर्गत नगरपालिका कमिश्नर्स को प्रमुख रूप से स्थान दिया गया है।

कहीं कहीं स्वास्थ्य अधिकारी, राजस्व अधिकारी, इंजीनियर्स को भी इस सेवा से नियोजित किया गया है किन्तु कुछ अन्य राज्यों में तकनीकी सेवा के इन पदाधिकारियों को राज्य की समन्वित सेवा में लिया जाता है और आवश्यकतानुसार उन्हें राज्यों की नगरपालिकाओं में प्रतिनियुक्ति पर भेजा जाता रहा है। नगर पालिकाओं में प्रतियुक्ति की अवधि में उनके वेतन का भुगतान और सेवा शर्तों का निर्धारण सम्बन्धित नगरपालिका के जिम्मे होता है यद्यपि उसका आधार वही सेवा शर्तें होती हैं जो उस पर समन्वित सेवा में रहते हुए प्रभावी होती हैं। आन्ध्रप्रदेश में नगरपालिकाओं के कमिश्नर्स के लिए राज्य स्तरीय नगरपालिका सेवा बनायी गयी है। इस सवर्ग के अधिकारियों की नियुक्ति राज्य की नगर पालिकाओं या नगर निगमों में ही की जा सकती है। इसके विपरीत स्वास्थ्य और इंजीनियरिंग सेवा के अधिकारी राज्य की समन्वित सेवा में से ही लिए जाते हैं और नगरपालिकाओं में उनकी प्रतिनियुक्ति निश्चित अवधि के लिए कर दी जाती है। उत्तरप्रदेश और कर्नाटक में नगरपालिकाओं के लिए स्वास्थ्य और इंजीनियरिंग सेवा का पृथक से निर्माण किया गया है इसके विपरीत उड़ीसा में नगर पालिकाओं में जो अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं वे राज्य की प्रशासकीय सेवा, इंजीनियरिंग सेवा, जन स्वास्थ्य सेवा से लिए जाते हैं तथा जब वे नगर पालिकाओं में नियुक्त होते हैं तो उनका व्यय नगरपालिकाओं पर ही भारित होता है। विगत कुछ वर्षों में यद्यपि राज्यों के स्तर पर नगर पालिकाओं के लिए एकीकृत नगरीय सेवा के निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ी है फिर भी महाराष्ट्र, गुजरात और पश्चिमी बंगाल में वर्षों से अनुभूत पृथक कार्मिक प्रणाली

को ग्रभी तक नही छोडा है। कतिपय राज्यो ने अपने यहा नगरपालिकाओ के लिए नगर पालिका सेवा का राज्य सवर्ग बनाने की विधिवत घोषणा कर दी है तथापि उन्होने अभी तक व्यवहार में उसे क्रियान्वित नही किया है। यही कारण है कि भारतवर्ष के विभिन्न राज्यो मे नगरीय निकायो मे जो कार्मिक प्रणाली अपनायी हुई है उसे सुव्यवस्थित नगरीय कार्मिक प्रणाली नही कहा जा सकता। वर्तमान मे नगर निकायो के कार्मिक प्रशासन के संबंध मे जो विभिन्न पद्धतिया या प्रणालिया विभिन्न राज्यो मे अपनायी हुई हैं उन्हे प्रमुख रूप से तीन वर्गों मे बाटा जा सकता है :

1 पृथक कार्मिक प्रणाली

इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक नगरीय इकाई अपने कर्मचारियो की नियुक्ति करने और उनकी सेवा शर्तों को विनियमित करने के लिए पूर्णत. अधिकृत और स्वतन्त्र होती है। इन कर्मचारियो की नियुक्ति चू कि एक विशिष्ट नगर पालिका या नगरीय इकाई मे होती है इसलिए किसी अन्य नगरीय इकाई मे उन्हे स्थानान्तरित नही किया जा सकता। नगरीय निकायो द्वारा प्रायः निम्न स्तरीय पदो के लिए यह प्रणाली अपनायी जाती है।

2 एकीकृत कार्मिक प्रणाली

इस पद्धति के अन्तर्गत नगरीय निकायो के कतिपय पदो या सभी प्रकार के कार्मिक पदो के लिए सम्पूर्ण राज्य के लिए एक सेवा होती है जिसका प्रशासनिक विनियमन और नियन्त्रण सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। इस प्रणाली मे राज्य स्तर पर नगरीय निकाय के विभिन्न सेवा संवर्गों के लिए कर्मचारियो की भर्ती की जाती है और उन्हे राज्यों के कार्यशील नगरीय निकायो मे कही भी नियुक्त और स्थानान्तरित किया जा सकता है। ये कर्मचारी केवल नगरीय प्रशासन के लिए ही नियोजित किये जाते हैं और नगरीय प्रशासन की इकाईयो में ही पूरे राज्यो मे कहीं भी स्थानान्तरित हो सकते हैं।

3. समन्वित कार्मिक प्रणाली

इस पद्धति के अन्तर्गत नगरीय निकायों के कर्मचारियो के लिए कोई विशेष प्रणाली नही अपनायी जाती बल्कि राज्य सरकार के विभिन्न प्रशासकीय विभागो और स्थानीय निकायो मे नियुक्त किये जाने वाले कर्मचारी एक ही सवर्ग

से लिए जाते हैं। समूचे राज्य की प्रशासकीय व्यवस्था में से कर्मचारियों को स्थानीय निकायों में भेजा जाता है और उन्हें स्थानीय निकायों से राज्य प्रशासन के किसी अन्य विभाग में नियुक्त और स्थानान्तरित किया जा सकता है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि राज्य सरकार का कर्मचारी वर्ग और स्थानीय निकाय का कर्मचारी वर्ग एक ही सेवा के अंग होते हैं और उनका स्थानान्तरण स्थानीय निकायों में ही नहीं अपितु राज्य सरकार के विभिन्न प्रशासकीय विभागों में कहीं भी किया जा सकता है।

तीनों प्रणालियों का विश्लेषण

उपरोक्त विवरण से यह विदित होता है कि देश भर में नगरीय स्थानीय शासन की इकाईयों के कर्मचारी वर्ग की व्यवस्था के लिए इन तीनों प्रणालियों में से किसी एक प्रणाली को अपनाया हुआ है। अनुभव यह भी दर्शाता है कि किसी भी राज्य ने अपने यहां इन संस्थाओं में कर्मचारियों की व्यवस्था के लिए ऐसा भी नहीं किया है कि किसी एक प्रणाली को अपना लिया है और अन्य प्रणालियों की उपेक्षा कर दी है। वस्तुतः यह कार्य चूंकि सम्बन्धित राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र का है इसीलिए विशाल संघीय व्यवस्था वाले देश में विभिन्न राज्यों में इस सम्बन्ध में 'एक प्रयोग' जैसी स्थिति दिखाई देती है। जिस राज्य ने जैसा चाहा इन संस्थाओं के विभिन्न कर्मचारी वर्गों के लिए भिन्न कार्मिक प्रणालियों को अपना लिया। यही नहीं कालान्तर में ऐसा भी हुआ कि यदि स्थानीय इकाई के संचालनकर्ता राजनीतिक दृष्टि से अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए तो उन्होंने राज्य सरकार पर इस बात का दबाव डाला कि वे प्रचलित कार्मिक प्रणाली में परिवर्तन करें। दृष्टान्त तो यहां तक मिलते हैं कि यदि राज्य सरकार ने उनके अनुरोध को उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप महत्व नहीं दिया तो ऐसे प्रभावशाली स्थानीय राजनीतिज्ञों ने राज्य सरकार द्वारा इस विषय में जारी स्थाई निर्देशों और कार्मिक प्रणाली के स्थिर मानदण्डों की अवज्ञा या अवहेलना भी प्रारम्भ कर दी। इस परिप्रेक्ष्य में विभिन्न राज्यों की व्यावहारिक स्थिति का उदाहरण सहित विवरण दिया जाना यहां अभीष्ट नहीं जान पड़ता किन्तु स्थानीय शासन में कर्मचारी वर्ग के सम्बन्ध में मोटे तौर पर इस स्थिति का अनुभव न्यूनाधिक सभी राज्यों में दृष्टिगोचर होता है।

जहां तक इन तीनों प्रणालियों की तुलना का प्रश्न है। इन तीनों ही के अपने गुण दोष हैं। पृथक कार्मिक प्रणाली में स्थानीय शासन की इकाई को अपने कर्मचारी स्वयं भर्ती करने का अधिकार होता है और ये कर्मचारी उनको

किसी एक इकाई द्वारा भर्ती किये गये हैं इसीलिए दूसरी इकाईयो मे उनका स्थानान्तरण नही किया जा सकता। स्थानीय इकाईयो के अपने कर्मचारी भर्ती करने के अधिकार को उनकी "स्वशासन" की भावना और "स्वायत्तता" की अवधारणा के अनुरूप माना जाता है। विदेशो मे यही प्रणाली बहुत लोकप्रिय है। इगलैण्ड मे और अमेरिका के बहुत से राज्यों मे प्रत्येक स्थानीय इकाई अपने कर्मचारी वर्ग का प्रबन्ध अपने स्वय के द्वारा विनिर्मित नियमो के अन्तर्गत करती है। किन्तु अमेरिका मे इस प्रणाली के अपनाये जाने के कारण यह अनुभव किया गया है कि स्थानीय शासन मे कर्मचारी वर्ग मे लूट-खसोट की प्रवृत्ति को बल मिला है। भारत वर्ष मे भी अधिकाश राज्यो मे निम्न स्तर के कर्मचारी वर्ग के सम्बन्ध मे नगरीय सस्थाओ मे इस प्रणाली को अपनाया गया है किन्तु समीक्षको ने इस अनुभव को सतोषप्रद नही माना है। देश की परिस्थितिया भी इस दृष्टि से उपयुक्त नही मानी गयी है क्योकि स्थानीय स्तर पर जो राजनीतिज्ञ चुने जाते हैं यदि उन्हे पृथक कार्मिक प्रणाली के अन्तर्गत अपने कर्मचारी स्वय भर्ती करने का अधिकार दिया जाता है तो नगरीय शासन के समस्त पदो को वे अपने कृपापात्रो और राजनीतिक समर्थको से भर देते हैं। इस स्थिति के परिणाम स्वरूप स्थानीय शासन की कुशलता गम्भीर रूप से प्रभावित और यहा तक कि क्षतिग्रस्त होती हैं। वैसे भी नगरीय शासन की अधिकाश इकाईया अपने आकार और स्वरूप मे इतनी छोटी और साधनहीन या अल्प साधन युक्त होती है कि वे कतिपय कार्मिको के अतिरिक्त तकनीकी रूप से कुशल और व्यक्तियो को अपने यहा नियुक्त करने मे प्राय. समर्थ नही होती। इन सब कारणो से यह अनुभव किया गया और ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने भी अपने प्रतिवेदन मे यह सुझाया है कि स्थानीय इकाइयो मे कर्मचारी वर्ग को चयनित करने की किसी सक्षम व्यवस्था का विकास किया जाना चाहिए। समिति का आग्रह रहा है कि किसी भी ऐसी व्यवस्था को अपनाना स्थानीय इकाईयो के हित मे होगा जिसमे योग्य और सक्षम तथा कुशल कर्मचारियो को स्थानीय इकाईयो के पदो के लिए आकृष्ट किया जा सके।

इसके विपरीत एकीकृत कार्मिक प्रणाली मे भरती किये जाने वाले कर्मचारी केवल उन पदो हेतु लिए जाते हैं जो पद अनन्य रूप से नगरीय स्थानीय शासन की इकाईयो के लिए होते हैं। इस व्यवस्था मे राज्य सरकार का स्वायत्त शासन विभाग यह प्रबन्ध करता है कि राज्यभर की नगरीय स्थानीय इकाईयो की कार्मिक आवश्यकताओ का आकलन करते हुए उनके समस्त पदो का निर्धारित तरीके मे विकेन्द्रीकरण कर लिया जाये और इस प्रकार वर्गीकृत पदो के

लिए राज्य स्तर पर भर्ती किये गये ऐसे कार्मिक राज्य सरकार या स्वायत्त शासन निदेशालय के द्वारा सम्पूर्ण राज्य की नगरीय इकाईयो मे वर्गीकृत पदो पर कही भी नियुक्त किये जा सकते हैं और नगरीय इकाईयो मे उनका स्थानान्तरण भी किया जा सकता है। स्पष्टतः यह अधिकार राज्य सरकार मे निहित रहा है कि वे उपयुक्त पदो के लिए योग्य कर्मचारियो का किसी निरपेक्ष विधि से चयन करायें और उन्हे नगरीय इकाइयो में नियुक्ति दें तथा आवश्यक होने पर उनका स्थानान्तरण भी किया जाये। भारत वर्ष, श्रीलका, तजानिया, कीनिया आदि ऐसे उदाहरण हैं जो इस प्रकार की श्रेणी मे माने जाते हैं।

इस तरह की प्रणाली की जो सीमाए बतायी जाती है उनमे प्रमुख आलोचना यह है कि यह प्रणाली स्थानीय इकाईयो की स्वायत्तता की अवधारणा से सगत नही है और इसको अपनाये जाने से स्थानीय शासन की इकाइयो की स्वायत्तता निर्णायक सीमा तक राज्य सरकार के नियन्त्रण मे हो जाती है। यह तर्क भी दिया जाता है कि राज्य स्तर पर समस्त नगरीय सस्थाओ के लिए जब कर्मचारियो के पदो का वर्गीकरण और भर्ती की जाती है तो उनके वेतन और अन्य सेवा शर्तों का भी प्राय ऐसा निश्चय कर दिया जाता है जहा शासन कर पाना कभी कभी स्थानीय शासन की इकाईयो की क्षमता से बाहर होता है। इस प्रणाली मे यह गुण अवश्य है कि जो भी कर्मचारी इसके माध्यम से भर्ती किये जाते है वे अनन्य रूप से नगरीय सेवा के पदो के लिए भर्ती होते हैं और उनकी भर्ती का एक मात्र आधार उनकी योग्यता, क्षमता और उस क्षेत्र मे उनकी निपुणता होती है। राज्य भर मे विभिन्न नगरीय इकाइयो मे कार्य करने और स्थानान्तरित होने से ये कर्मचारी प्राय ऐसा अनुभव अर्जित कर लेते हैं जिसके आधार पर वे राज्य मे नगरीय इकाइयो की कुशलता वृद्धि मे अपना महत्वपूर्ण योगदान कर सकने मे सक्षम हो जाते हैं। किन्तु इस प्रणाली मे यह कमी भी है कि ऐसे कर्मचारी किसी एक सस्था के प्रति अपनी निष्ठा विकसित नहीं कर पाते और जब किसी एक इकाई मे कार्य करते समय वे उसके कार्य को पूरी तरह समझ चुके होते हैं और अपनी ओर से तात्विक योगदान करने की स्थिति मे होते हैं तो ऐसे समय उनके किसी अन्य इकाई मे स्थानान्तरण के आदेश हो जाते है। इस कारण वे कर्मचारी किसी इकाई की समस्याओ का आकलन करने के पश्चात भी उसके निराकरण मे अपना योगदान करने वचित हो जाते हैं। इस प्रकार नियोजित कर्मचारियो को कभी कभी यह शिकायत भी रहती है कि कभी तो उन्हे उच्च श्रेणी की नगर परिषदो या पालिकाओ मे नियुक्त कर दिया जाता है और कभी उन्हें निम्न श्रेणी की नगर पालिकाओं भेज दिया जाता है।

यद्यपि ऐसा निर्णय करते समय राज्य सरकार के मानस में उनकी विशेषज्ञता का छोटी इकाइयों के हित में उपयोग करने की इच्छा ही अन्तर्निहित होती है किन्तु इस स्थिति को कर्मचारी समझ नही पाते हैं और उनका मनोबल प्रायः टूटता हुआ सा दिखाई देता है। भारत वर्ष में राजस्थान, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश इत्यादि अनेक ऐसे महत्वपूर्ण राज्य हैं जिन्होंने इस व्यवस्था को अपने यहा अपनाया है किन्तु अनुभव यह दर्शाता है कि ये राज्य भी अपने यहा इस व्यवस्था को आदर्श मानदण्डो के अनुरूप जारी रख पाने में सफल नही हो पा रहे हैं। आगामी पृष्ठो में राजस्थान के सन्दर्भ में इस प्रणाली का और विस्तृत विवरण दिया जा रहा है।

जहा तक समन्वित कार्मिक प्रणाली का सम्बन्ध है इस व्यवस्था में जो कर्मचारी नियोजित होते हैं वे देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था के लिए नियुक्त किये जाते हैं और उन्ही में से समकक्ष पदो पर अधिकारियो/कर्मचारियो को स्थानीय इकाईयो में प्रतिनियुक्ति पर भेजा जाता है। फ्रास और भारत वर्ष में यही प्रणाली पायी जाती है। भारत में नगरीय स्थानीय शासन में उच्च पदो पर प्रायः न केवल नगरपालिकाओं/परिषदो में अपितु नगर निगमो में भी जो अधिकारी, कमिश्नर, प्रशासक इत्यादि भेजे जाते हैं वे राज्य की प्रशासकीय सेवा में से या भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो में से भेजे जाते हैं। यही नही इस, प्रक्रिया में राज्य में लोक सेवा आयोग, और फ्रास में नेशनल स्कूल ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन और अन्य प्रशासकीय विभागो की मदद ली जाती है। राज्य की प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ पदाधिकारी न केवल राज्य के प्रशासन तंत्र में अपितु शैक्षणिक इकाइयो में भी उसके कार्यों का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किये जाते हैं। भारत वर्ष में विभिन्न राज्यो में काम करने वाले भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी और सभागीय आयुक्त या जिला कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर के पदो पर कार्य करते हैं वे नगरीय स्थानीय शासन की इकाईयो का पर्यवेक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण करने के लिए अधिकृत होते हैं। इसी तरह स्थानीय स्वायत्त शासन का निदेशालय भी भारतीय प्रशासनिक सेवा या राज्य की प्रशासनिक सेवा के अधिकारी द्वारा निर्देशित होता है। वहा कार्य करने वाले उच्च स्तरीय अधिकारी भी राज्य की नौकरशाही के अविभाज्य अंग होते हैं और समय समय पर अन्य सरकारी विभागो में उनका स्थानान्तरण किया जाता रहता है। इस प्रकार की पद्धति जहां-जहा अपनायी जाती है उसमे स्थानीय इकाई के निम्न पदो पर भर्ती करने का अधिकार नगरीय इकाई के अध्यक्ष या नगर आयुक्त या किसी स्थाई समिति को दिया जाता है।

भारत वर्ष और फ्रास मे यह प्रणाली जहा-जहा अपनायी जाती है उसमे तीन प्रकार के कार्मिक लक्षण दिखाई देते हैं । प्रथमत , भारत जैसे देश मे भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी, जिनका कि पदस्थापन केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय इकाइयो मे कही भी हो सकता है । फ्रास मे प्रीफेक्ट भी ऐसे ही प्राधिकारी है जो केन्द्र सरकार और स्थानीय इकाई दोनों की सेवा मे नियुक्त किये जा सकते हैं । दूसरे, उच्च स्तरीय और मध्यवर्ती ऐसे प्राधिकारी जो किसी स्थानीय इकाई मे नियुक्त किये जाते हैं और जिनका स्थानान्तरण दूसरी स्थानीय इकाईयो मे भी किया जा सकता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हे अपने पैतृक विभाग मे भी भेजा जा सकता है । ऐसे प्राधिकारी प्राय राज्य सवर्ग से स्थानीय इकाईयो मे प्रतिनियुक्ति पर होते हैं और उनकी सेवाओ का आवश्यकतानुसार उपयोग करते हुए स्थानान्तरण सभव होता है । तीसरे, ऐसे निम्न स्तरीय पदाधिकारी जो प्राय स्थानान्तरण से मुक्त होते हैं ये कर्मचारी स्थानीय शासन के प्राधिकारियो द्वारा स्थानीय स्तर पर नियुक्त किये जाते हैं और उनका उस इकाई से दूसरी इकाई मे स्थानान्तरण सभव नही होता । भारत वर्ष मे स्थानीय इकाईयो मे आतरिक अकेक्षण के कार्य का निष्पादन करने वाले जो कर्मचारी होते है वे प्राय भारत के नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक के अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियो मे से प्रतिनियुक्ति या अनुबन्ध पर लिये जाते हैं ।

भारत मे अपनायी गई नगरीय कार्मिक व्यवस्था के बारे मे गुण तो यह बताया जाता है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा और राज्य की प्रशासनिक सेवा के उन दक्ष अधिकारियो की सेवा का उपयोग करने का अवसर स्थानीय इकाईयों को भी मिल जाता है और उनकी प्रशिक्षित दक्षता से स्थानीय इकाईया अपनी सेवाओ मे सुधार करने मे सफल रहती हैं । प्रशासनिक सेवाओ मे से लिए जाने वाले ये अधिकारी चू कि व्यापक रूप से प्रशिक्षित किये जाते है इसलिए ऐसे प्रशिक्षित अधिकारियो की सेवा इस प्रणाली के माध्यम से नगरीय इकाईयो को उपलब्ध रहती हैं जो अपने आप मे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है किन्तु इस प्रणाली के अपनाये जाने से स्थानीय इकाईयो का नौकरशाहीकरण हो जाता है और स्थानीय शासन के माध्यम से लोकतान्त्रिक भावना का जो विस्तार निम्नतम स्तर तक किये जाने की आकाक्षा स्थानीय स्वशासन की अवधारणा मे की जाती है वह फलीभूत नही हो पाती । इस प्रणाली के अपनाये जाने से, विद्वानो का भी मानना है कि, स्थानीय शासन की इकाईयो में लोकतन्त्र को गहरा आघात लगा है । यह मत भी व्यक्त किया गया है कि इस प्रणाली के कारण स्थानीय शासन

की इकाइयां प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों की प्रशिक्षण स्थली मात्र बन कर रह जाती है। प्रशासनिक सेवा के अधिकारी जब अपना प्रशिक्षण पूरा कर सेवा में नियुक्त किये जाते हैं तो आरम्भिक वर्षों में उन्हें इन सेवाओं में नियुक्त किया जाता है और जब वे यत्किंचित अनुभव और दक्षता प्राप्त कर लेते हैं तो उन्हें राज्य या केन्द्रीय प्रशासन में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। इस कारण स्थानीय शासन की इकाइयों को सदैव नये अधिकारी मिलते हैं और वे अधिकारी जब स्थितियों को समझकर कुछ करने की क्षमता अर्जित करते हैं तब सरकार उन्हें अपने नियमित प्रशासन तन्त्र में स्थानान्तरित कर लेती है। इसी न्यूनता के कारण इस प्रणाली को स्थानीय शासन की कुशलता और क्षमता वृद्धि के हित में नहीं माना जाता है।

भारत वर्ष में विभिन्न राज्यों में जो कार्मिक प्रणाली स्थानीय शासन में अपनायी गयी है उनमें प्रायः इन सब प्रणालियों का मिलाजुला सा रूप दिखाई देता है। देश के नगर निगमों में प्रारम्भ से ही समन्वित सेवा प्रणाली को अपनाया गया है। इनमें नगर आयुक्त की नियुक्ति अखिल भारतीय सेवा या राज्य की प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों में से की जाती रही है। राजस्थान सहित कुछ अन्य राज्यों में बड़ी नगर परिषदों में लम्बे समय तक निर्वाचन न हो पाने के कारण प्रशासक के पद पर जो व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं वे भारतीय प्रशासनिक सेवा या राज्य प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी होते हैं। इसी प्रकार छोटी नगर पालिकाओं के आयुक्त आदि के पद पर जो नियुक्तियां की जाती हैं वे राज्य की नगर पालिका सेवा, जिसके अधिकारियों का चयन राज्य के लोक सेवा आयोग के द्वारा किया जाता है, में से की जाती रही है। इसी तरह नगर-पालिकाओं में कार्य करने वाले निम्नतम श्रेणी के जो कर्मचारी होते हैं उनमें से अधिकांश को प्रायः देशभर में पृथक कार्मिक प्रणाली के अनुसार नियोजित किया जाता रहा है। इस प्रकार देश भर में नगरीय संस्थाओं में जो कार्मिक प्रणाली अपनायी जाती है उसका कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं उभर सका है।

प्रश्न यह नहीं है कि नगर निकायों को उपरोक्त वर्णित कार्मिक प्रणालियों में से किस कार्मिक प्रणाली को अपनाना चाहिए। इसके विपरीत मूल प्रश्न यह है कि वह कौन सी कार्मिक प्रणाली है जो कर्मचारी वर्ग की दृष्टि से उन गुणों या आदर्शों की पूर्ति करती जो किसी कुशल और सक्षम कार्मिक व्यवस्था में अपेक्षित होते हैं। यदि कोई देश अपने यहां लोकतन्त्र के गुणों को आम आदमी तक पहुंचाना चाहता है तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस देश को अपनी स्थानीय शासन की प्रणाली को लोकतान्त्रिक स्वरूप देना होगा। लोकतान्त्रिक

स्वरूप को सुदृढ करने के लिए यह अपरिहार्य है कि स्थानीय शासन की इकाईयो की प्रशासकीय व्यवस्था कुशल और सक्षम बने । इसीलिए यह विचारणीय है कि स्थानीय शासन की इकाईयो मे अपनायी जाने वाली कार्मिक प्रणाली मे कौन से गुण होने चाहिए जिससे उसकी परिगणना कुशल और योग्य कार्मिक प्रणाली मे की जा सकती है । विद्वानो ने कुशल और योग्य कार्मिक प्रणाली के निम्नांकित गुण बताये हैं :[6]

1. स्थानीय शासन के पद, वेतन एव पदोन्नति की सभावना की दृष्टि से उतने ही आकर्षक होने चाहिए जितने कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकार के पद होते हैं।
2. भर्ती का एक मात्र आधार योग्यता को बनाया जाना चाहिए । इसके साथ-साथ प्रत्याशी के चारित्रिक गुणो, विशेष रूप से ईमानदारी को भी पर्याप्त महत्व दिया जाना चाहिए ।
3. सेवा मे योग्यता तथा वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति प्राप्त होने की प्रत्याशा होनी चाहिए ।
4. कर्मचारियो को इस बात के लिए भी आश्वस्त किया जाना चाहिए कि उन्हें राजनीतिक तथा अन्य प्रकार के दबावो के कारण सताया नही जायेगा ।
5. कर्मचारी वर्ग स्थानीय शासन की इकाईयो मे परस्पर स्थानान्तरित हो क्योकि ऐसा होने मे उन्हे विविध प्रकार का अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलता है । इससे एक लाभ यह भी होगा कि यदि अधिकारियो/कर्मचारियो तथा निर्वाचित पदाधिकारियो मे किन्ही कारणो से समन्वय और सहयोग नही बन पा रहा है तो स्थानातरण के माध्यम से कर्मचारियो का स्थान बदला जाना समव हो ताकि इन दोनो वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धो को कटु होने से बचाया जा सके । यद्यपि इस प्रक्रिया मे यह सुनिश्चित किया जाना भी जरूरी है कि कर्मचारियो का स्थानान्तरण केवल राजनीतिक आधार पर नही किया जायगा और स्थानान्तरण की आवृति भी विवेकपूर्ण तरीके से सीमित रखी जायगी ।
6. अधिकारियो/कर्मचारियो को उनके सेवाकाल की अवधि मे प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्थाए की जाये जिससे कि वे नागरिक सेवाओ का प्रभावी सम्पादन करने के लिए अपनी क्षमताओ मे यथोचित वृद्धि कर सकें ।

7. नागरिक अधिकारियो को यथासम्भव उस इकाई के प्रति निष्ठावान होना चाहिए जिसकी सेवा मे वे नियुक्त किये गये हैं। उन्हे चाहिए कि वे नगरीय प्रशासन के निर्वाचित पदाधिकारियो को परामर्श देते समय पक्षपात या अन्य किसी प्रकार के दबाव से मुक्त रहकर कार्य करें। उन्हे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निर्वाचित पदाधिकारियो के द्वारा विनिर्मित नीतियो और लिए गये निर्णयो को निष्ठापूर्वक कार्यान्वित करें।

8. स्थानीय शासन के निर्वाचित पदाधिकारियो और कार्मिको अर्थात् सरकारी और गैरसरकारी पदाधिकारियो मे सौहार्दपूर्ण सम्बन्धो की स्थापना के लिए संस्थागत रूप से औपचारिक और अनौपचारिक प्रयत्नो को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

9. अधिकारियो और कर्मचारियो को सदैव जन आकाक्षाओ और उस समुदाय की इच्छाओ के प्रति संवेदनशील होना चाहिए जिसकी सेवा करने के लिए वे नियुक्त किये गये हैं।

राजस्थान की नगरीय संस्थाओ में कार्मिक प्रशासन

राजस्थान नगरपालिका अधिनियम मे राज्य सरकार को अधिकृत किया गया है कि इस अधिनियम को कार्यान्वित के निमित्त वह नियम बना सकेगी।[7] अधिनियम द्वारा प्रदत्त इस शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने राजस्थान सेवा नियम 1963 निर्मित और घोषित किये हैं।[8] इन नियमो मे राजस्थान की नगरीय सस्थाओ मे उनके निर्माण से पूर्व मे कार्य कर रहे कर्मचारियो के समामेलन के पश्चात बचे रिक्त पदो की भर्ती करने के तीन तरीके बताये गये हैं.[9]

1. प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा,
2. पदोन्नति द्वारा, और
3. स्थानान्तरण द्वारा।

राजस्थान सरकार द्वारा जो उक्त नियम भर्ती को परिचालित करने केलिए विनियमित किये गये हैं उनमे यह कहा गया है कि चतुर्थ श्रेणी की नगरपालिकाओ के अधिशाषी अधिकारी के पद पर नियुक्ति शत प्रतिशत रूप से प्रत्यक्ष भर्ती के द्वारा होगी और तृतीय श्रेणी की नगरपालिका के अधीशाषी अधिकारी के पद पर शतप्रतिशत भर्ती पदोन्नति द्वारा होगी, जिसमे पाच साल के अनुभव प्राप्त

चतुर्थ श्रेणी के नगरपालिकाओं के अधिशाषी अधिकारियो को 60 प्रतिशत, राज्य स्तर के 20 प्रतिशत कर निर्धारको तथा कार्यालय अधीक्षको में से 10-10 प्रतिशत पदोन्नति की जायेगी। नियमो में इनकी योग्यताएं भी निर्धारित की गयी है। इन्ही नियमो मे आगे कहा गया है कि द्वितीय श्रेणी की नगरपालिकाओं के अधिशासी अधिकारी या नगर परिषद के सचिव के पद पर शतप्रतिशत भर्ती तृतीय श्रेणी के अधिकारियो में से पदोन्नति द्वारा होगी। ऐसी पदोन्नति के लिए 5 वर्ष का अनुभव अनिवार्य माना गया है। इसी प्रकार प्रथम श्रेणी की नगर परिषद के प्रशासनिक अधिकारी या नगर आयुक्त के पद पर नियुक्ति हेतु द्वितीय श्रेणी की नगर पालिका के अधीशाषी अधिकारियो को ही शतप्रतिशत पदोन्नति का अधिकार दिया जायेगा इस हेतु भी 5 वर्ष का अनुभव आवश्यक माना गया है।[10] इसी प्रकार तकनीकी अधिकारियो से प्रथम श्रेणी के राजस्व अधिकारी के पद पर नियुक्ति द्वितीय श्रेणी के राजस्व अधिकारियो मे से शतप्रतिशत पदोन्नति द्वारा की जायेगी। किन्तु द्वितीय श्रेणी के राजस्व अधिकारी शतप्रतिशत प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा चुने जायेंगे। नियमो मे उनकी योग्यता भी निर्धारित की गयी है।[11]

तकनीकी श्रेणी के अधिकारियो मे कनिष्ठ अभियन्ता के पद पर शतप्रतिशत भर्ती प्रत्यक्ष रूप से की जाती है और सहायक अभियन्ता के पद पर 50 प्रतिशत भर्ती प्रत्यक्ष रूप से तथा 50 प्रतिशत पदोन्नति के द्वारा करने का प्रावधान किया गया है। इससे उच्च पद अधिशाषी अभियन्ता के लिए शतप्रतिशत सहायक अभियन्ताओं मे से पदोन्नति की जाती है। इस हेतु न्यूनतम 5 वर्ष का अनुभव नियमो मे वांछित माना गया है। स्वास्थ्य अधिकारी और मेडिकल ऑफिसर के पद पर शतप्रतिशत नियुक्ति प्रत्यक्ष भर्ती के माध्यम से की जाती है। प्रत्यक्ष भर्ती के समस्त पदो केलिए नियमो मे योग्यता का निर्धारण भी किया हुआ है। लेखाधिकारी और सहायक लेखाधिकारी के पद पर नियुक्ति सहायक लेखाधिकारियो तथा लेखाकारो मे से शत प्रतिशत पदोन्नति द्वारा की जाती है। अग्निशमन अधिकारी के पद पर सहायक अग्नि शमन अधिकारियो मे से शत प्रतिशत पदोन्नति की जाती है। इसी तरह विधि अधिकारी के पद पर 50 प्रतिशत पर प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा और शेष 50 प्रतिशत पद पैरोकार ग्रेड प्रथम मे से पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं।[12]

नियमो मे प्रावधान किया गया है कि नगरपालिकाओं मे अधिकारियो तथा कर्मचारियो की भर्ती करते समय अनुसूचित जातियो तथा जन जातियो के लिए राज्य सरकार द्वारा घोषित आदेशो के अनुसार आरक्षण रखा जायेगा।[13] समस्त राज्य की नगर पालिकाओं मे रिक्त पदो की गणना करने और उनका

निर्धारण करते हुए भर्ती के प्रत्येक तरीके से उन पदो हेतु रीति निर्धारित करने का अधिकार स्थानीय निकाय के निदेशक मे निहित किया गया है।[14] प्रत्यक्ष भर्ती के लिए आयु भी राज्य सरकार द्वारा समय समय पर निर्धारित आयु के अनुसार निर्धारित की जायेगी। नियमो मे विभिन्न प्रकार के आयु सम्बन्धी छूट के प्रावधान भी किये गये हैं।[15] इसी प्रकार नियमो मे प्रत्याशियो की शैक्षणिक योग्यताओ, हिन्दी अथवा राजस्थानी भाषाओ के ज्ञान और अच्छे चरित्र तथा शारीरिक स्वास्थ्य की अपेक्षाएं भी की गई हैं।[16]

राजस्थान नगर पालिका सेवा नियम 1963 के अन्तर्गत जिन पदो का उपरोक्त विश्लेषण मे भर्ती सम्बन्धी विवरण दिया गया है उनके सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि इन समस्त पदों पर प्रत्यक्ष भर्ती करने का अधिकार, नियमो के अनुसार, राजस्थान लोक सेवा आयोग को दिया गया है।[17] नियमो मे आयोग द्वारा आवेदन पत्र आमन्त्रित करने, आवेदन पत्र की फीस, आवेदन पत्रो की छटनी तथा अपनी निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार सुयोग्य पाये जाने वाले प्रत्याशियो के नामो की सूची तैयार करना और जितने पदो के लिए आयोग को भर्ती करने का आग्रह किया गया था उसकी 50 प्रतिशत सख्या मे आरक्षित सूची तैयार करने का प्रावधान भी किया गया है।[18] आयोग योग्यता क्रम मे बनायी गयी यह सूची नियुक्ति अधिकारी को भिजवा देता है और इस सूची के आधार पर नियुक्ति अधिकारी चयनित प्रत्याशियो को नियुक्ति दे देता है।

राजस्थान नगरपालिका सेवा नियमो मे पदोन्नति के माध्यम से दी जाने वाली नियुक्तिया अथवा की जाने वाली भर्ती के लिए भी आवश्यक प्रावधान किया गया है। पदोन्नति हेतु निम्नतर पद पर अर्जित अनुभव आदि का विवरण भी नियमो मे दिया गया है। इस हेतु जो विभागीय पदोन्नति समिति निर्णय करती है उसका गठन भी इन नियमो मे दिया गया है जो इस प्रकार है :

1 समिति में राज्य सरकार के स्वायत्त शासन विभाग का सचिव अध्यक्ष होगा,

2. कार्मिक विभाग का प्रतिनिधि, जो उप सचिव के नीचे का स्तर का न हो, समिति का सदस्य होगा, तथा

3. स्थानीय निकाय का निदेशक इस समिति का सदस्य सचिव होगा।

यह समिति पदोन्नति के लिए पात्र अधिकारियो की वरिष्ठता और उनकी योग्यता का परीक्षण कर नियमानुसार रिक्त पदो पर नियुक्ति और पदोन्नति हेतु अभिशंषा करती है।[19]

इन्ही नियमो मे नियुक्तिकर्ता अधिकारी के बारे मे भी स्पष्ट निर्देश दिए गये हैं। नगरपालिका आयुक्त, राजस्व अधिकारी, स्वास्थ्य अधिकारी सभी नगर पालिकाओ के इजीनियर्स तथा द्वितीय श्रेणी नगर पालिकाओ के अधिशाषी अधिकारियो की नियुक्ति राज्य सरकार के द्वारा की जायेगी जब तक कि इस अधिकार को राज्य सरकार ने किसी को प्रत्यायोजित न कर दिया हो।[20] नियमों मे यह भी कहा गया है कि इन पदो के अतिरिक्त इन सेवा नियमो के अन्तर्गत की जाने वाली नियुक्तिया निदेशक, स्थानीय निकाय द्वारा की जायेगी।[21]

नियमो मे रिक्त पदो पर, आयोग द्वारा चयनित प्रत्याशी उपलब्ध होने तक या आयोग द्वारा प्रस्तुत चयनित प्रत्याशियों की सूची के पूर्ण तरह खप जाने के पश्चात भी रिक्त रह गये पदो पर अस्थाई नियुक्ति करने का अधिकार विभागाध्यक्ष अर्थात निदेशक स्थानीय निकाय को दिया गया है।[22] किन्तु ऐसी नियुक्तिया एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए नही की जायेगी और इस अवधि मे उन पर लोक सेवा आयोग की स्वीकृति प्राप्त की जायेगी और यदि ऐसी स्वीकृति न मिले तो उन नियुक्तियो को समाप्त किया जायेगा। राजस्थान के स्थानीय निकाय निदेशालय के नियन्त्रणकर्ता अधिकारी निदेशक द्वारा ऐसी नियुक्तिया व्यवहार मे की जाती रही हैं और आज भी चतुर्थ श्रेणी नगरपालिका के अधिशाषी अधिकारी या राजस्व अधिकारियो के पद पर ऐसे 61 अधिकारी विगत 15 वर्षों से अस्थाई तौर पर कार्य कर रहे हैं। इन अधिकारियो की नियुक्ति का इस अवधि मे न तो राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा अनुमोदन किया गया है और न ही उनकी सेवा को समाप्त किया गया है।[23]

राजस्थान नगर पालिका सेवा नियमो मे इस प्रकार के अधिकारियो की वरिष्ठता सूची, परिवीक्षा अवधि स्थायीकरण इत्यादि के प्रावधान भी किये गये है।[24] इसी प्रकार इन अधिकारियों के वेतन, भविष्य निधि तथा पेन्शन इत्यादि का प्रावधान भी नियमों में किया गया है।[25]

उपरोक्त विवरण में राजस्थान नगर पालिका सेवा नियम 1963 में राजस्थान के नगर निकायो के लिए अधिकारियो के सेवा विषयक कार्मिक प्रावधानो का आवश्यक विवरण प्रस्तुत किया गया है। यहा यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान की नगरपालिका के अधीनस्थ और मन्त्रालयिक कर्मचारियो के लिए भी सेवा नियम राज्य सरकार द्वारा उपरोक्त नियमो के साथ साथ घोषित किये गये हैं।[26] इन नियमो में राजस्थान की नगर पालिकाओ में नियोजित किये जाने वाले अधीनस्थ और मन्त्रालयिक कर्मचारियों की भर्ती पदोन्नति, अस्थाई नियुक्ति, वेतन और अन्य सेवा विषयक प्रावधान किये गये हैं।

प्रत्येक नगर पालिका मे कर्मचारियो की सख्या का निर्धारण उस पालिका की परिषद द्वारा, राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से किया जायेगा।[27] राज्य के नगरीय निकायो मे नियोजित होने वाली इस अधीनस्थ एवं मंत्रालयिक सेवा मे रखे जाने वाले विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित पदो का औपचारिक प्रावधान भी इन्ही नियमो मे किया गया है।[28] इन प्रावधानो के अनुसार इस सेवा मे विविध प्रभागो मे निम्नांकित पद रखे गये हैं :

(अ) राजस्व से सम्बन्धित पद

1. कर निर्धारक
2. राजस्व निरीक्षक
3. सहायक राजस्व निरीक्षक
4. नाकेदार/मोहर्रिर
5. सहायक नाकेदार/नायब मोहर्रिर

(ब) स्वास्थ्य से सम्बन्धित पद

1. मुख्य सफाई निरीक्षक
2. सफाई निरीक्षक ग्रेड प्रथम
3 सफाई निरीक्षक ग्रेड द्वितीय
4. सहायक सफाई निरीक्षक
5. खाद्य निरीक्षक
6. होम्योपैथिक चिकित्सक
7. वैद्य प्रथम श्रेणी एवं द्वितीय श्रेणी
8. उप वैद्य
9. जन स्वास्थ्य प्रयोगशाला मे रसायनज्ञ
10. जन स्वास्थ्य प्रयोगशाला मे प्रयोगशाला सहायक
11. एक्सरे तकनीकी
11 कम्पाउण्डर
13. नर्स/मिड वाइफ
14. टीका लगाने वाला, और
15 दरोगा।

(स) विधिक पद

1 पैरोकार ग्रेड प्रथम
2. पैरोकार ग्रेड द्वितीय

(द) सार्वजनिक निर्माण विभाग से सम्बन्धित पद

1. सर्वेक्षक (ओवरसीयर) ग्रेड प्रथम एव द्वितीय
2. ड्राफ्ट्समैन
3. ड्राफ्ट्समैन कम सर्वेयर
4. मिस्त्री/सर्वेयर
5. गजधर
6. ट्रेसर
7. रोड रोलर ड्राइवर

(य) मोटरखाना से सम्बन्धित पद

1. मोटर घर अधीक्षक कम मुख्य यान्त्रिक
2. यान्त्रिक 3. मोटर वाहनो के चालक

(र) उद्यान एव पार्क से सम्बन्धित पद

1. उद्यान निरीक्षक 2 पम्प चालक

(ल) गलियों में रोशनी से सम्बन्धित पद

1 रोशनी निरीक्षक 2. सहायक रोशनी निरीक्षक

(व) अग्निशमन से सम्बन्धित पद

1. सहायक अग्निशमन निरीक्षक 2 अग्निशामक परिचालक

(श) जलदाय से सम्बन्धित पद

1. इजीनियर सहायक / जलदाय निरीक्षक
2. वरिष्ठ फिल्टर परिचारक एव कनिष्ठ फिल्टर परिचारक
3. यान्त्रिक / इलेक्ट्रीशियन / फोरमैन
4. पम्प चालक ग्रेड प्रथम एव द्वितीय 5 मिस्त्री / फिटर / लाइन मैन
6. मीटर रीडर कम बिल क्लर्क 7 हैल्पर ग्रेड प्रथम 8 मोटर इनपेक्टर

(ष) सार्वजनिक पुस्तकालय

1 पुस्तकालयाध्यक्ष

(स) मंत्रालयिक सेवा

1. कार्यालय अधीक्षक 2 मुख्य लिपिक
3 वरिष्ठ लिपिक 4 कनिष्ठ लिपिक
5. वरिष्ठ शीघ्र लिपिक 6 कनिष्ठ शीघ्र लिपिक
7. शीघ्रलिपिक कम टकक 8 लेखाकार ग्रेड प्रथम एव द्वितीय
9. आन्तरिक अकेक्षक 10 समयपालक
11. मोहर्रिर 12 जन्म मृत्यु लेखक

इन पदो के अलावा नगरपालिका के अधीन चलने वाली शैक्षणिक सस्थाम्रो एवं विद्युत गृहो मे कितने पद होगे यह भी समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक नगरपालिका के सम्बन्ध मे नियत किये जायेंगे। इसके साथ ही नियमो मे यह प्रावधान भी किया गया है कि राज्य सरकार उपरोक्त पदो के अलावा किसी भी सेवा के अन्तर्गत किसी भी नये पद का सृजन कर सकती है।[23]

नगर पालिका अधिनियम के प्रवर्तित होने की तिथि 17 अप्रैल 1959 तक नगर पालिका सेवा में जो कर्मचारी कार्य कर रहे थे उन्हें उनके सम्बन्धित पदों पर अस्थाई रूप से नियुक्त माना गया था और जो स्थाई रूप से कार्य नहीं कर रहे थे उन्हें परिवीक्षा अवधि पर माना गया तथा उनकी सेवाओं को नियमानुसार स्थाई किये जाने का प्रावधान किया गया।

भर्ती की विधि

इन नियमों के प्रवर्तन के पश्चात नगरीय निकायों में रिक्त होने वाले पदों पर भर्ती की विधि के सम्बन्ध में निम्नांकित प्रावधान किया गया है।[30]

1. सेवा के निम्नतम पद पर प्रत्यक्ष भर्ती,
2. उच्च पद पर अधीनस्थ पद से पदोन्नति,
3. अन्य नगर पालिकाओं में समान पद पर कार्य करने वाले व्यक्तियों के स्थानान्तरण द्वारा,
4. राज्य सरकार से प्रतिनियुक्ति द्वारा।

प्रत्यक्ष एवं पदोन्नति द्वारा भर्ती का अनुपात 50-50 प्रतिशत निश्चित किया गया है। राज्य सरकार के समय समय पर घोषित नियमों के अनुसार इस सेवा के विभिन्न पदों पर अनुसूचित जातियों, जन जातियों तथा भूतपूर्व सैनिकों के लिए पदों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है।[31]

रिक्तियों का निर्धारण

नियम यह प्रावधान करता है कि राज्य सरकार के निर्देशों एवं इन नियमों के अधीन रहते हुए प्रत्येक नगर पालिका/परिषद के अधिशाषी अधिकारी प्रत्येक वर्ष के प्रारम्भ में प्रत्येक श्रेणी और सेवा के रिक्त पदों का तथा उन पर की जाने वाली नियुक्तियों का आंकलन/निरीक्षण करें।[32] इसी प्रकार भर्ती किये जाने वाले प्रत्याशियों की राष्ट्रीयता, आयु, शैक्षणिक योग्यता, चरित्र, स्वास्थ्य इत्यादि के बारे में भी आवश्यक दिशा निर्देश नियमों में निर्धारित किये गये हैं।[33]

प्रत्यक्ष भर्ती की प्रक्रिया

राज्य की नगर पालिकाओं/परिषदों के अधीनस्थ और मन्त्रालयिक कर्मचारियों के रिक्त पदों के सन्दर्भ में प्रत्येक नगर परिषद के अधिशाषी अधिकारी को इस बात के लिए अधिकृत किया गया है कि वह प्रत्येक वर्ष के प्रारम्भ में अपने अधीनस्थ निकाय में प्रत्येक श्रेणी के रिक्त पदों का एक विवरण तैयार करें। इस विवरण में पद का नाम, पदों की संख्या और उसके लिए निर्धारित

योग्यताओं का उल्लेख करते हुए तथा यह लिखते हुए कि वह पद बजट मे स्वीकृत है या नही उस विवरण को निदेशक स्थानीय निकाय को प्रस्तुत करें।[34] राज्य की समस्त नगरीय संस्थाओं से प्राप्त ऐसी सूचना और विवरण को निदेशक सकलित करेगा और उस प्रपत्र को सेवा चयन आयोग को भर्ती की आवश्यक कार्यवाही करने के लिए भेजेगा।[35] सेवा चयन आयोग, निदेशक द्वारा प्राप्त रिक्तियो सम्बन्धी उस प्रपत्र के आधार पर भर्ती के लिए आवेदन पत्र उस प्रक्रिया मे आमन्त्रित करेगा जो प्रक्रिया वह अपनाना उचित समझे। वह प्राप्त आवेदन पत्रो की जाच करेगा और उनका साक्षात्कार/परीक्षा लेते हुए योग्य प्रत्याशियो की एक सूची प्रत्येक नगर परिषद मे नियुक्ति के लिए अलग-अलग तैयार करेगा। आयोग द्वारा तैयार की गयी यह सूची नियुक्ति के लिए प्रत्येक नगर परिषद/पालिका को भेज दी जायेगी। आयोग से प्राप्त इस सूची मे से नियुक्ति करने का अधिकार प्रत्येक नगर पालिका के अधिशापी अधिकारी को नियुक्ति अधिकारी के रूप मे दिया गया है। नियुक्ति अधिकारी इसी क्रम मे प्रत्याशियो को नियुक्ति पत्र जारी करेगा जिस क्रम मे उनका नाम आयोग द्वारा प्रेषित सूची मे ससूचित किया गया है।[36]

सेवा चयन आयोग

विनिश्चित नियमो मे सेवा चयन आयोग का उल्लेख तो मिलता है किन्तु सेवा चयन आयोग बनाये जाने के बारे मे न तो अधिनियम मे कोई प्रावधान मिलता है और न ही इन सेवा नियमो मे ऐसा कोई प्रावधान सकलित किया गया है। इस सम्बन्ध मे राजस्थान पचायत एव स्वायत्त शासन अधीनस्थ सेवा आयोग के गठन की अधिसूचना प्रथम बार 5 अप्रैल 1974 को राजस्थान सरकार द्वारा जारी की गयी थी।[37] इस अधिसूचना मे यह कहा गया है कि जन साधारण की जानकारी हेतु यह प्रकाशित किया जाता है कि राजस्थान पचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम, 1959 की धारा 86 (ग) के अधीन दिनाक 19 1 61 की अधिसूचना द्वारा स्थापित 'पचायत समिति एव जिला परिषद सेवा चयन आयोग" एव राजस्थान अधीनस्थ एव मत्रालयिक सेवा नियम, 1963 के नियम 3 के खण्ड (ज) के अन्तर्गत स्थापित आयोग अब से "राजस्थान पचायत एव स्वायत्त शासन अधीनस्थ सेवा आयोग" के नाम से जाना जायेगा। इसका अभिप्राय यह है कि राज्य की नगर परिषदो/पालिकाओ मे अधीनस्थ एव मत्रालयिक सेवा मे सीधी भर्ती के लिए जिस आयोग का उल्लेख किया गया है वह आयोग तथा जिला परिषद एव पचायत समितियो के लिए बनाया गया सेवा चयन आयोग दोनो एक ही संस्था है। पूर्व मे पचायत समिति

एव जिला परिषदो के लिए 1960 मे जो सेवा चयन आयोग बनाया गया था उसी आयोग को 1974 की उपरोक्त अधिसूचना द्वारा राज्य की नगर पालिकाओ मे कर्मचारियो को भर्ती करने हेतु चयनित करने का दायित्व भी दे दिया गया ।

आयोग की समाप्ति

राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद (सशोधन विधेयक) 1987 द्वारा राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम 1959 मे सशोधन करके धारा 84 की उपधारा 6 के स्थान पर नयी उपधारा प्रस्थापित की गयी है जिसके अनुसार राजस्थान पचायत एव स्वायत्त शासन अधीनस्थ सेवा आयोग का अस्तित्व अब नही रहा है ।[38]

नये आयोग का गठन

जैसा कि पूर्व पक्तियो मे स्पष्ट किया जा चुका है कि 1987 मे पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम मे किये गये एक सशोधन के माध्यम से स्वायत्त शासन सस्थाओ मे अधीनस्थ कार्मिको की भर्ती के लिए जिम्मेदार आयोग का समापन कर दिया गया है । इसके पश्चात राजस्थान नगरपालिका अधीनस्थ एव मत्रालियक सेवा नियम 1963 के नियम 3 के खण्ड (एच) मे प्रदत्त शक्तियो का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने उपर्युक्त नियमो के प्रयोजनार्थ निम्नलिखित अधिकारियो का एक आयोग गठित किया है .[39]

(क) निदेशक स्थानीय निकाय या उसका नामाकित अधिकारी—अध्यक्ष
(ख) सम्बन्धित नगर परिषद/मण्डल का अध्यक्ष/प्रशासक—सदस्य
(ग) सम्बन्धित उप निदेशक—सदस्य सचिव

आयोग के गठन के सम्बन्ध में जारी इस अधिसूचना में यह भी कहा गया है कि आयोग के समस्त निर्णय बहुमत से लिए जायेंगे । इस आयोग की बैठक मे यदि निदेशक या उसका नामाकित अधिकारी उपस्थित नही होता है तो आयोग का कोरम पूरा नही माना जायेगा । आयोग की बैठक जिला मुख्यालय या नगर परिषद/पालिका मण्डल के मुख्यालय पर आयोजित होगी तथा यह आयोग सम्बन्धित नगर परिषद/पालिका में अधीनस्थ एव मन्त्रालयिक सेवा में होने वाले रिक्त पदो के लिए भर्ती से सम्बन्धित कार्य को पूर्ण करेगा ।[40]

पदोन्नति के लिए पदोन्नति मण्डल का प्रावधान

राजस्थान नगर पालिका अधीनस्थ एव मन्त्रालयिक सेवा नियमो में

प्रत्येक जिले के लिए नगर पालिकाओं के कर्मचारियों हेतु एक पदोन्नति मण्डल का गठन निम्नानुसार किया है :[41]

1 जिले का जिलाधीश या उसके द्वारा नामित कोई अधिकारी जो अतिरिक्त जिलाधीश से नीचे के स्तर का न हो—अध्यक्ष
2 सम्बन्धित नगर निकाय का अध्यक्ष प्रशासक—सदस्य
3 सम्बन्धित क्षेत्रीय उप निदेशक—सदस्य सचिव

इन नियमों में यह भी स्पष्ट किया गया है कि जिलाधीश पदोन्नति मण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करेगा तथा उसके उपस्थित न होने पर पदोन्नति मण्डल का कोरम पूर्ण नहीं माना जायेगा। पदोन्नति मण्डल के सभी निर्णय बहुमत से लिए जायेंगे और उसकी बैठकें जिला मुख्यालय पर आयोजित होंगी।[4]

इसी प्रकार नियुक्ति अधिकारियों को किसी अस्थाई पद पर एक वर्ष की अवधि के लिए अस्थाई तौर पर नियुक्ति करने की शक्ति प्रदान की गयी है।[43] इन नियमों में आगे विस्तार से सेवा की वरिष्ठता परिवीक्षा अवधि, स्थायीकरण, वेतन, भविष्य निधि, पेंशन, स्थानान्तरण इत्यादि के आवश्यक नियमों का विवरण भी दिया गया है।[44]

राजस्थान नगर पालिका चतुर्थ श्रेणी सेवा

राज्य की नगरीय संस्थाओं में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की भर्ती और पदोन्नति तथा अन्य सेवा शर्तों के लिए भी राज्य सरकार ने नियम बनाये है।[45] इन नियमों के अन्तर्गत इस सेवा के जिन पदों को सम्मिलित किया गया है उनमें चपरासी, फर्राश, साइकिल सवार, चौकीदार वाटर मैन, कुली माली गाड़ी चालक, खलासी, बेलदार, क्लीनर, भिश्ती, पुस्तकालय परिचारक नाव चालक, पम्प ड्राइवर का सहायक, ऑफिस जमादार, सफाई जमादार, फिटर, टर्नर लुहार, पेन्टर, खाती, कारीगर वायर मैन, दफ्तरी, हैल्पर तथा अन्य अवर्गीकृत चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी प्रमुख हैं। 1971 में इनका वेतनमान प्रवर्तित करते समय इनके बारे में कुछ अन्य नियमों में तथा विनियमों की घोषणा भी की गयी है। इसके पश्चात 1973 में भी इन सेवा नियमों तथा वेतन प्रवर्तित करते समय नये नियम घोषित किये गये हैं। इन के समस्त कर्मचारियों के रिक्त पदों पर भर्ती करने का अधिकार सम्बन्धित नगर परिषद को, सरकार की पूर्व अनुमति से, दिया गया है। रिक्त पदों पर नगर परिषद/पालिका का अध्यक्ष या नगर पालिका आयुक्त सीधी भर्ती करने में सक्षम है।[46] इस सेवा में भी राज्य सरकार द्वारा समय समय पर घोषित आरक्षण नियमों को अनुसूचित जाति तथा जन जाति के लिए प्रभावी माना गया है। इसके अतिरिक्त नियमों में प्रत्याशियों

की आयु, चरित्र, शारीरिक योग्यता, सीधी भर्ती के लिए प्रक्रिया, वेतन, परिवीक्षा, स्थायीकरण, अवकाश, पेन्शन, ग्रेच्युटी और अनुशासन के नियमो की घोषणा की गयी है।[47] इस सेवा के कर्मचारियो का स्थानान्तरण एक नगर पालिका से दूसरी नगर पालिका मे किया जा सकता है, यदि स्थानीय निकाय निदेशक ऐसा करना राज्य की नगर पालिकाओ के हित मे आवश्यक समझे।[48]

प्रशिक्षण व्यवस्था

देश भर में स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाओ के कर्मचारियो के लिए प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था का अभाव दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि स्थानीय शासन की सस्थाए अकुशलता का प्रतीक बन गयी हैं। स्थानीय शासन मे निर्वाचित किये जाने वाले कर्मचारियो की शिक्षा तथा प्रशिक्षण के लिए कोई सुव्यवस्थित तन्त्र नही होने के कारण इन कर्मचारियो की कार्य क्षमता का पूर्ण विकास नही हो पाया है। वैसे भी स्थानीय शासन की सस्थाओ मे नियोजित किये जाने वाले सभी कर्मचारी चू कि विभिन्न राज्यो की सरकारो तथा विभिन्न नगरीय सस्थाओ के द्वारा नियोजित किये जाते है इसलिए उनकी प्रकृति, गुण और चरित्र मे पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है। स्थानीय शासन के कर्मचारियों के लिए जो अधिनियम राज्य की सरकारो के द्वारा पारित किया गया है तथा उन अधिनियमो के अन्तर्गत जो नियम निर्मित किये है उन सब मे अधिकारियों तथा कर्मचारियो की भर्ती, पदोन्नति, वेतन तथा अन्य सेवा शर्तों के बारे मे तो विशद् प्रावधान देखने को मिलते हैं किन्तु प्रशिक्षण के बारे मे उनमे कोई व्यवस्था की हुई नही पायी जाती है।

स्थानीय शासन लोकतन्त्र की आधारशिला माना जाता है। स्थानीय स्तर पर गठित की जाने वाली सस्थाओ मे जो कर्मचारी नियोजित किये जाते है उनके बारे मे यह माना जाता है कि उनमे विशेष मानसिक दक्षता के स्थान पर शारीरिक दक्षता और श्रम की आवश्यकता अधिक होती है। किन्तु यह धारणा इसलिए सही नही मानी जा सकती क्योंकि आज कल शासन के किसी भी निकाय के द्वारा नागरिको की सेवा के लिए जो कार्य सम्पादित किये जाते हैं उन्हें अधिक गुणवत्ता से सम्पन्न किया जा सकता है यदि उन्हे सम्पन्न करने के लिए उत्तरदायी अधिकारियों तथा कर्मचारियो को इस हेतु प्रशिक्षित किया जाये। किन्तु दुर्भाग्य से किसी भी राज्य की सरकार ने इस तथ्य को पूर्णतः आत्मसात नही किया है। यही कारण है कि भारत के किसी भी राज्य मे स्थानीय शासन के कर्मचारियो के प्रशिक्षण को कोई ऐसी आधारभूत सुदृढ व्यवस्था विकसित नही हो सकी है जिसे स्थानीय शासन के कर्मचारियों के प्रशिक्षण की आदर्श या मानक व्यवस्था माना जा सकता हो।

नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा 'डिप्लोमा इन लोकल सैल्फ गवर्नमेन्ट' नाम का पाठ्यक्रम सचालित किया जाता है जो नगरीय स्थानीय प्रशासन के भावी कार्मिको को शिक्षण और प्रशिक्षण प्रदान करता है। वैसे तो देश के अनेक विश्वविद्यालयो मे स्नातक एव स्नातकोत्तर स्तर पर लोक प्रशासन के पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं जिनमे स्थानीय स्वायत्त शासन से सम्बन्धित पाठ्य सामग्री भी उनका अनिवार्य अग होती है किन्तु इसे लोक प्रशासन और स्थानीय प्रशासन का शिक्षण तो माना जा सकता है पर प्रशिक्षण की कोटि मे समवत इसे सम्मिलित नही किया जा सकता।

बम्बई मे स्थापित अखिल भारतीय स्थानीय स्वायत्त शासन सस्थान (ऑल इण्डिया इन्सटीट्यूट ऑफ लोकल सैल्फ गवर्नमेंट) अधीनस्थ एव निम्न वर्गीय कर्मचारियो के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। इसी तरह भारतीय लोक प्रशासन सस्थान नई दिल्ली द्वारा भी स्थानीय सस्थाओ के अधिकारियो के लिए नियमित रूप मे कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते है जो देश भर मे स्थानीय सस्थाओ के अधिकारियो के बीच काफी लोकप्रिय रहे हैं। किन्तु अखिल भारतीय स्तर पर कार्यरत इन दोनो ही प्रशिक्षण सस्थाओंके द्वारा स्थानीय शासन के प्राधिकारियो या कर्मचारियो के लिए प्रशिक्षण की कोई व्यवस्थित योजना क्रियान्वित नही की गयी है जिसकी देश मे बहुत आवश्यकता है।

1963 मे इस विषय मे स्थापित नुरूद्दीन समिति ने यह सुझाव दिया था कि केन्द्रीय स्तर पर एक ऐसे सस्थान की स्थापना की जानी चाहिए जो स्थानीय संस्थाओ के कार्मिको को प्रशिक्षण की तत्काल व्यवस्था कर सके।[49] समिति ने यह सुझाव भी दिया था कि राज्यो के स्तर पर ऐसे भी प्रशिक्षण सस्थान स्थापित किये जायें। यदि कोई राज्य वित्तीय कठिनाईयो के कारण इस प्रकार के प्रशिक्षण सस्थान स्थापित न कर सके तो उस स्थिति मे दो या दो से अधिक पडोसी राज्य मिलकर ऐसे सस्थान की स्थापना का निर्णय कर सकते हैं।[50] समिति का सुझाव था कि इस प्रकार स्थापित सस्थानो के माध्यम से स्थानीय शासन के सरकारी गैर सरकारी दोनो प्रकार के प्राधिकारियो के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। विशेष तौर से केन्द्रीय सस्थान को निम्नलिखित प्रशिक्षण कार्य को प्राथमिकता से आयोजित करने का सुझाव भी दिया गया [51]

1. तकनीकी अधिकारियो के लिए विशेष अग्रिम पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना,
2. राज्य सस्थाओ के प्रशिक्षको के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना,

3. पुनश्चर्या पाठयक्रम (रिफ्रेशर कोर्स) की व्यवस्था करना,
4 राज्यो के सस्थानो द्वारा आयोजित किये जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमो मे समन्वय स्थापित करना,
5. एक केन्द्रीय पुस्तकालय की व्यवस्था करना,
6 सूचनाओ के एकत्रीकरण एव उनके प्रसारण की इकाई के रूप मे कार्य करना।

इसी प्रकार राज्यो मे स्थापित किये जाने वाले प्रशिक्षण संस्थानो के उत्तरदायित्वो तथा प्रमुख कार्यक्रमो के बारे मे भी प्रतिवेदन मे यह कहा गया कि ये सस्थाए राज्यो के लिए मध्यम एव निम्न श्रेणी के लिए उपयोगी प्रशिक्षण कार्यक्रमो का सचालन करेंगी तथा विशेष तौर से क्षेत्रीय समस्याओ के अनुसधान पर बल दिया जाना चाहिए।

ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति (1966) ने भी केन्द्रीय सरकार एव राज्य सरकारो से स्थानीय शासन के कर्मचारियो के प्रशिक्षण के सम्बन्ध मे कदम उठाने का आग्रह किया था। अपने प्रतिवेदन मे समिति ने, नुरुद्दीन समिति की अनुशसाओ से पूरी तरह सहमति व्यक्त की थी। समिति ने यह भी अकित किया कि भारतीय लोक प्रशासन सस्थान मे नगरीय शोध केन्द्र की स्थापना का जो निर्णय लिया गया है वह इस दिशा मे उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है किन्तु नगरीय प्रशासन के क्षेत्र मे प्रशिक्षण एव अनुसधान को और अधिक प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है और इस हेतु न केवल केन्द्रीय स्तर पर अपितु राज्यो के स्तर पर भी सस्थागत प्रयास किया जाना चाहिए। भारतीय लोक प्रशासन सस्थान मे स्थापित नगरीय प्रशासन के अध्ययन और अनुसधान के केन्द्र ने, केन्द्रीय स्तर पर नगरीय सेवाओ के अधिकारियो के प्रशिक्षण के महत्वपूर्ण पाठ्यक्रमो का आयोजन किया है। इस केन्द्र ने प्रशिक्षण पाठयक्रमो के अलावा राष्ट्रीय स्तर की सगोष्ठिया आयोजित करने के अतिरिक्त नगरीय प्रशासन के क्षेत्र की समस्याओ और अनुसधानो को प्रोत्साहन दिया है। इस केन्द्र के द्वारा एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन 'नगर लोक' के नाम से नियमित किया जा रहा है जिसमे देश भर के विद्वानो के लेख नगरीय समस्याओ के सम्बन्ध मे प्रकाशित किये जाते है।

ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने न केवल नगरीय प्रशासन के क्षेत्र मे कार्यरत सरकारी अधिकारियो के प्रशिक्षण पर ही बल दिया अपितु नगरीय इकाईयो मे निर्वाचित सदस्यो के प्रशिक्षण की व्यवस्था किये जाने का भी विचार

व्यक्त किया है । समिति का विचार था कि नगरीय निकायों में जनता द्वारा चुने जाने वाले पार्षद भी प्रशासन की जटिलताओं को समझें इस हेतु यह आवश्यक है कि उन्हें राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर ऐसे पाठ्क्रमों में आवश्यक प्रशिक्षण और अनुभव प्रदान किया जाये जो नगरीय समस्याओं के सन्दर्भ में विचार विमर्श को प्रोत्साहन देते हों । समिति ने यह विचार व्यक्त किया कि औद्योगीकरण के फलस्वरूप नवीनीकरण की जो प्रक्रिया बढ़ रही है उससे उत्पन्न होन वाली नगरीय समस्याओं के अनुसंधान को पर्याप्त महत्व दिया जाना चाहिए । समिति ने भारी मन से अपने प्रतिवेदन में यह भी अंकित किया कि न तो राज्य सरकारों के स्तर पर और न ही देश के विश्वविद्यालयों में नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं पर अनुसंधान की दशा में कोई उत्साह दिखाया गया है । इस दिशा में समिति की अभिशंसा थी कि देश में विश्वविद्यालयों को नगरीय प्रशासन की समस्याओं पर शोध-अनुसंधान करने के लिए वित्तीय अनुदान और सहायता की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

नगरीय प्रशासन के क्षेत्र में शोध और अनुसंधान के महत्व को रेखांकित करते हुए 1970 के दशक में केन्द्रीय स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन एवं नगरीय विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय स्तर पर एक "नगरीय प्रशासन प्रशिक्षण तथा शोध केन्द्र" की स्थापना की है । इस केन्द्र को अब 'नेशनल इंसटीट्यूट ऑफ अरबन अफेयर्स' के रूप में जाना जाता है, जो नई दिल्ली में कार्यरत है । यह केन्द्र नगरीय प्रशासन को स्फूर्ति तथा बल प्रदान करने के लिए नगरीकरण से उत्पन्न नगरीय प्रशासन की समस्याओं के प्रति जन साधारण में जागृति लाने के उद्देश्य से शोध एवं अनुसंधान को प्रोत्साहन देता है तथा नगरीय समस्याओं पर विभिन्न प्रकार के अनुसंधान स्वयं भी आयोजित करता है । इस केन्द्र ने नगरीय समस्याओं के सन्दर्भ में जो अनुसंधान किये हैं उनसे भारत के नगरीय विकास मंत्रालय को अपनी नीति निर्धारित करने में पर्याप्त सहायता मिली है । यह केन्द्र प्रमुख रूप से निम्नांकित कार्यों को सम्पन्न करता है :[52]

1. नगरीय विकास तथा नगरीय प्रशासन के प्रशिक्षण हेतु पाठ्यक्रमों का आयोजन,
2. नगरीय समस्याओं विशेष तौर पर नगरीय निकायों से सम्बद्ध समस्याओं पर गोष्ठियों और सम्मेलनों का आयोजन,
3. नगरीय शासन से सम्बद्ध समस्याओं पर शोध अनुसंधान,
4. नगरीय स्थानीय शासन तथा इसके प्रशासन के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार को परामर्श,

5 सूचना सकलन केन्द्र एव विनिमय केन्द्र के रूप मे कार्य,

6 नगरीय शासन तथा प्रशासन के अध्ययन, प्रशिक्षण तथा शोध मे सलग्न विश्वविद्यालयो तथा अन्य सस्थानो से सहयोग एव समन्वय।

इसके अतिरिक्त विभिन्न स्तरो पर समय समय पर यह सुझाव दिया जाता रहा है कि देश के उन विश्वविद्यालयो को, जहा राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन के शैक्षणिक पाठ्यक्रमो को संचालित किया जाता है, स्थानीय शासन हेतु प्रशिक्षण पीठो की स्थापना पर विचार किया जाना चाहिए। ऐसा किया जाने से न केवल इन शैक्षणिक सस्थानो मे उपलब्ध नगरीय प्रशासन के शिक्षको और विशेषज्ञो का ही श्रेष्ठतर उपयोग हो सकेगा अपितु पठन-पाठन के इन अनुभूत केन्द्रो पर नगरीय प्रशासन के क्षेत्र मे प्रशिक्षण की आवश्यकता को भी पूरा किया जा सकेगा। इस प्रकार की आवश्यकताओ को पूर्ण कर रहे वर्तमान विश्वविद्यालयों तथा शैक्षणिक सस्थानो को इस विषय मे आवश्यक पाठ्यक्रमो को विकसित करने मे रुचि प्रदर्शित करनी चाहिए। स्थानीय शासन के उद्देश्यो, सगठन तथा कार्य व्यवहार को अधिक परिस्कृत करने तथा इस सबध मे अनुभव की जाने वाली समस्याओ के निवारण मे इस प्रकार के प्रयत्न महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। विश्वविद्यालयो के स्तर पर सामान्य पाठ्यक्रमो के साथ साथ इस प्रकार के विषययुक्त और अल्पकालीन पाठ्यक्रमो की व्यवस्था की जा सकती है। इस प्रकार के पाठ्यक्रमो को प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा सचालित करने मे न केवल विश्वविद्यालयो मे उपलब्ध विशेषज्ञो का भी उपयोग किया जा सकेगा अपितु नगरीय प्रशासन के क्षेत्र मे जो सक्रिय और अनुभवी प्रशासक हैं उनकी सेवाओ का उपयोग भी सभव होगा। विश्वविद्यालयो के स्तर पर जहा लोक प्रशासन मे स्थानीय शासन को पाठ्यक्रम का अग बनाया गया है वहा नगरीय प्रशासन के क्षेत्र मे अनुभव की जाने वाली ज्वलन्त समस्याओ पर शोध को गति प्रदान किये जाने की आवश्यकता भी इस सन्दर्भ मे स्वय स्पष्ट है।

राजस्थान मे राज्य स्तर पर नगरपालिका सेवा के जिन अधिकारियो का चयन राज्य के लोक सेवा आयोग द्वारा किया जाता है उनके आधारभूत प्रशिक्षण की व्यवस्था जयपुर स्थित हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन सस्थान मे की जाती है। इस सम्बन्ध में जो पाठ्यक्रम प्रशिक्षण हेतु आयोजित किये जाते हैं वह अन्य राज्यस्तरीय सेवाओ तथा नगरपालिका सेवा के लिए समान ही होते है। इस प्रशिक्षण सस्थान मे नगरीय प्रशासन के क्षेत्र मे प्रशिक्षण के विशिष्ट पाठ्यक्रम का निरूपण एव सचालन करने के लिए नगरीय विकास का एक केन्द्र स्थापित किया गया है। यह केन्द्र नगरीय प्रशासन के क्षेत्र

मे शिक्षण और प्रशिक्षण को अधिक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए आवश्यक नियोजन का कार्य कर रहा है। राज्य सरकार के नगरीय विकास विभाग की सहायता से राज्य स्तरीय नगरपालिका सेवा के अधिकारियो को इस प्रशिक्षण केन्द्र मे प्रशिक्षित करने के कुछ पाठ्यक्रम आयोजित भी किये गये है। यद्यपि इस केन्द्र द्वारा जो कार्यक्रम आयोजित किये गये हैं उसका राज्य स्तर पर कोई व्यापक प्रभाव परिलक्षित नही हुआ है तथापि अपने आप मे यह शुरूआत बहुत अच्छी है जिसे राज्य स्तरीय अधिकारियो के प्रशिक्षण के अलावा अधीनस्थ एव निम्न वर्गीय कर्मचारियो के प्रशिक्षण हेतु भी विस्तार दिये जाने की आवश्यकता है।

जयपुर मे स्थित राजस्थान स्वायत्त शासन सस्था नामक एक स्वायत्त शासी सस्थान भी नगरीय प्रशासन के क्षेत्र मे कतिपय प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन करता है। यह सस्था एल. एस. जी डी, एम आई, तथा अमेसर इत्यादि के लिए कुछ ऐसे पाठ्यक्रम प्रशिक्षण हेतु सचालित करती है जिनको पूर्ण कर लेने पर प्रत्याशियो को उक्त क्षेत्रो मे डिप्लोमा प्रदान किया जाता है। राज॰ की नगरीय सेवाओ मे उपरोक्त योग्यताओ के आधार पर विभिन्न पदो पर भर्ती मे प्रत्याशियो को सहायता मिलती है। नगरीय सेवाओ के लिए जो पद सयोजित किए हुए हैं उनमे आवश्यक योग्यताओ मे इस प्रकार के डिप्लोमा आदि को प्राथमिकता दी गयी है। यहा यह उल्लेखनीय है कि यह सस्था जो उपरोक्त प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित करती है वे राज्य सरकार द्वारा न केवल मान्यता प्राप्त हैं बल्कि वित्तीय रूप से भी समर्थित है। राज्य सरकार ने इस सस्था का स्वरूप स्वायत्तशासी बना रखा है और राज्य की समस्त नगर पालिकाओ के अध्यक्षो के द्वारा इसकी सचालन समिति का चुनाव किया जाता है। यह सचालन समिति सस्था द्वारा आयोजित किये जाने वाले पाठ्यक्रमो का निरूपण करती है तथा उनके आयोजन को सभव बनाती है। राजस्थान का यह स्वायत्त शासन सस्थान नगरीय कार्मिको के सेवा पूर्व प्रशिक्षण की ही व्यवस्था करता है। यह सस्थान जो डिप्लोमा इत्यादि देता है उनके आधार पर प्रत्याशियो को नगरीय सेवाओ मे प्रवेश के लिए योग्यता के सदर्भ मे सहायता मिलती है। यह सस्थान अशकालीन आधार पर कतिपय ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित करता है जो सेवारत अधीनस्थ कर्मचारियो को दिये जाते है। आवश्यकता इस बात की है कि सस्थान मे ऐसे पाठ्यक्रमो का विस्तार किया जाय जो नगरीय सस्थाओ मे काम करने वाले कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने के लिए बनाये गये हो। सस्था के कार्यकलापो के सन्दर्भ मे राज्य सरकार का आवश्यक जाच पडताल और समीक्षा हेतु अध्ययन

आयोजित करना चाहिए और उसके निष्कर्षों के आधार पर इस चिन्तन को दिशा दी जानी चाहिए कि संस्था के कार्यकलापो को कैसे प्रशिक्षण के क्षेत्र मे सुदृढ बनाया जा सकता है। राजस्थान का यह संस्थान अखिल भारतीय स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थान बम्बई से सम्बद्ध है और अपने कार्यकलापो मे आवश्यक दिशा निर्देश वही से प्राप्त करता है। बम्बई के संस्थान की तरह यह संस्थान भी एक पञ्जीकृत संस्था है। इसके द्वारा जो परीक्षाए आयोजित की जाती हैं उनका आयोजन बम्बई स्थित संस्थान के निर्देशन मे किया जाता है और परीक्षा परिणाम भी उन्ही के द्वारा घोषित किया जाता है। किन्तु संस्था के कार्यकलापो के बारे मे जानकारी रखने वाले चिन्तको का यह विचार है कि यह संस्था जो प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और परीक्षाए आयोजित करती है वे अकादमिक दृष्टि मे उतने सुदृढ नही होते अतः इस न्यूनता का निराकरण यथा शीघ्र किये जाने की आवश्यकता है ताकि राज्य मे अधीनस्थ एव निम्न वर्गीय नगरीय कर्मचारियो के लिए प्रशिक्षण देने वाले इस एक मात्र संस्थान की गतिविधियो को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया जा सके।

वेतनमान

राजस्थान मे नगरीय संस्थाओ मे राजस्थान नगरपालिका सेवा, राजस्थान नगरपालिका अधीनस्थ एव मन्त्रालयिक सेवा तथा राजस्थान नगरपालिका चतुर्थ श्रेणी सेवा के कर्मचारी एव अधिकारी कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त नगरपालिका आयुक्त एव प्रशासको के पद पर नगर परिषदो मे भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारी भी, यथा आवश्यकता, नियुक्त किये जाते हैं।

जहा तक वेतनमान का प्रश्न है, नगरपालिकाओ मे नियुक्त एकीकृत सेवाओ अर्थात् भारतीय प्रशासनिक सेवा, राज्य प्रशासनिक सेवा और राज्य की लोक सेवा के अन्य पदो के अधिकारियो को वेतन उसी वेतन शृखला मे राज्य सरकार द्वारा विनिश्चित किया जाता है जिस शृखला मे वे नियुक्ति के समय वेतन प्राप्त कर रहे थे। उनके प्राप्त वेतन मे न तो कोई कमी की जा सकती है और न ही नगर परिषदो/पालिकाओ मे नियुक्ति के समय उन्हे कोई विशेष वेतन दिया जाता है। यद्यपि नगरपालिका/परिषद मे नियुक्ति के समय उनका वेतन उसी पालिका/परिषद के बजट पर भारित होता है जिसमे वे नियुक्त होते हैं। इसी प्रकार राजस्थान नगरपालिका सेवा के पदाधिकारियो की वेतन शृखला भी राज्य सरकार द्वारा समय समय पर किये जाने वाले वेतनमानो के पुनरीक्षण के

समय निश्चित की जाती है और इस सेवा के अधिकारी उसी वेतनमान में वेतन प्राप्त करते है जो वेतनमान राज्य सरकार द्वारा समय समय पर निश्चित किया जाता है। राजस्थान नगरपालिका अधीनस्थ एवं मंत्रालयिक सेवा के पदाधिकारियों के वेतनमान भी राज्य सरकार के द्वारा ही निश्चित किए जाते हैं। इसी प्रकार राजस्थान नगर पालिका चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के वेतनमान भी राज्य सरकार ही निश्चित करती है। राज्य सरकार द्वारा राज्य भर की नगर परिषदों/पालिकाओं में नियुक्त इन कर्मचारियों के वेतन मान का राज्य स्तर पर निर्धारण करने का लाभ यह होता है कि वेतनमान के सम्बन्ध में नगरपालिका/परिषद के कर्मचारियों में किसी प्रकार का वैविध्य होने का असंतोष नहीं पनपता। आम तौर पर होता यह है कि जब जब भी राज्य सरकार वेतनमान के पुनरीक्षण के लिए कोई समिति या आयोग नियुक्त करती है या जब केन्द्र सरकार द्वारा कर्मचारियों के वेतनमान पुनरीक्षित किये जाते है तब राज्य सरकार उन्हीं वेतनमानों के अनुरूप वेतन देने के लिए अपने यहां भी समिति का गठन करती है। यही समिति अपने विचार विमर्श और विश्लेषण की प्रक्रिया में यह देखती है कि स्थानीय निकायों के जो कर्मचारी राज्य सरकार की सेवा के पदो के समान पदो पर कार्य कर रहे हैं उन्हें उन्हीं पदो के समान वेतन निश्चित किया जाये। ऐसा कर दिये जाने से एक ओर सारे राज्य में स्थानीय निकायों के कर्मचारियों के वेतनमान में एकरूपता स्थापित हो जाती है वही दूसरी ओर कर्मचारियों में भी कोई असंतोष नहीं रहता। वेतनमान के यह नियम उन पदो पर भी लागू किये जाते हैं जिन पदो पर नगरपालिकाओं को अपने यहां नियुक्ति करने का स्वयं को अधिकार होता है क्योंकि जिन पदों पर वे नियुक्ति करती है उन पदो पर राज्य सरकार में क्या वेतनमान प्रस्तावित किया हुआ है उसी अनुरूप नगरपालिकाओं में नियुक्त किये गये कर्मचारियों को वेतन प्रदान करती है।

अनुशासनात्मक कार्यवाही

नगर परिषदों/पालिकाओं में नियुक्त कर्मचारियों एवं अधिकारियों पर तात्कालिक नियन्त्रण उनके उच्चाधिकारियों द्वारा किया जाता है। नगर परिषदों/पालिकाओं में जो अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं राज्य प्रशासनिक सेवा के नियुक्त किये जाते हैं उन पर नियन्त्रण राज्य सरकार का होता है और अपनी इस नियुक्ति के दौरान यदि वे किसी प्रकार की त्रुटि करते हैं तो उनके लिए उन पर अनुशासनात्मक कार्यवाही के वे ही नियम प्रवर्तित होते हैं जो राज्य सरकार में उन पर प्रवर्तित माने जाते हैं। इसी प्रकार राज्य की नगरीय

संस्थाओं के नगरपालिका सेवा के पदाधिकारियों के लिए भी राज्य सरकार मे समकक्ष पदों के पदाधिकारियों के लिए प्रवर्तित अनुशासनिक नियमों को प्रभावी माना जाता है। राजस्थान नगरपालिका अधीनस्थ एव मंत्रालयिक सेवा तथा चतुर्थ श्रेणी सेवा के कर्मचारियों के लिए भी राजस्थान सरकार द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही के 1958 मे घोषित सेवा नियमों को ही प्रभावी माना जाता है। राज्य मे नगरीय विकास विभाग एव स्थानीय निकाय निदेशक द्वारा अपने कर्मचारियों पर अनुशासनात्मक कार्यवाही के पृथक नियम बनाने की अपेक्षा राज्य सरकार द्वारा सुचिंतित रूप से निर्मित उन्ही अनुशासनिक नियमों को लागू किया गया है जो राज्य सरकार ने स्वीकार किये हुए हैं। एक दृष्टि से यह व्यवस्था अच्छी भी है क्योंकि समान पदों पर जो अनुशासनात्मक कार्यवाही के नियम राज्य सरकार मे लागू होते हैं उन्हे स्थानीय निकायों मे लागू करने से न केवल अनुशासनात्मक कार्यवाही के प्रभावी प्रावधानों मे एकरूपता दृष्टिगोचर होती है अपितु कर्मचारी भी किसी प्रकार के विविधकारी प्रावधानों के शिकार नही होते। यह सर्वविदित है कि नियुक्तिकर्ता अधिकारी ही अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए अधिकृत होता है। इस नियम के अनुसार जिन पदों पर नियुक्ति नगर परिषदों/पालिकाओं मे राज्य सरकार करती है उन पदों पर कार्य करने वाले प्राधिकारियों के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए वही सक्षम होती है। इसके विपरीत जिन पदों पर नियुक्ति का अधिकार निदेशक स्थानीय निकाय को होता है उनके लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही भी विभागाध्यक्ष के रूप मे वही करने मे सक्षम होता है और जो कर्मचारी नगर परिषदों/पालिकाओं के अधिशासी अधिकारियों/अध्यक्षों द्वारा नियुक्त किये जाते हैं उन पर सेवा नियमों के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की शक्ति भी उन्ही मे निहित होती है।

सेवानिवृत्ति लाभ

राजस्थान की नगर परिषदों/पालिकाओं के कर्मचारियों के सेवा निवृत्ति लाभों के सम्बन्ध मे 30 सितम्बर, 1987 तक भविष्य निधि की व्यवस्था थी। इस तिथि तक राज्य की नगरपालिकाओं मे नियुक्त कर्मचारियों के लिए पेन्शन की व्यवस्था नही थी किन्तु राजस्थान सरकार ने अपनी घोषणा द्वारा 1 अक्टूबर, 1987 से नगरपालिका कर्मचारियों के लिए पेन्शन योजना की स्वीकृति प्रदान की है। राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने इस हेतु राजस्थान नगरपालिका सेवा (पेन्शन) नियम घोषित किये हैं।[53] यह नियम राजस्थान नगरपालिका

सेवा (पेन्शन) नियम 1989 कहलायेंगे और एक अक्टूबर, 1987 से प्रभावशील माने गये हैं।[54] इन नियमो को एक अक्टूबर, 1987 से पूर्व सेवा निवृत्त हो चुके लोगो, विशेष कार्यों पर नियुक्त कर्मचारियो, दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियो ठेका प्रणाली पर कार्यरत कर्मचारियो और प्रतिनियुक्ति पर आये कर्मचारियो पर लागू नही माना गया हैं । इन नियमो को समस्त राजस्थान नगरपालिका मण्डल, परिषद, ज्ञापित क्षेत्र समितियो मे दिनाक 1 अक्टूबर, 1987 से कार्यरत अधिकारियो, कर्मचारियो एव इसके पश्चात सभी कार्यरत कर्मचारियों (उपरोक्त वर्णित को छोडकर) जिनके द्वारा पेन्शन लेने का विकल्प दिया गया है, के लिए पेन्शन हेतु प्रवर्तित होगे।[55] इस प्रकार अब राजस्थान राज्य की नगर परिषद/पालिकाओ मे नियुक्त कर्मचारी भी एक अक्टूबर, 1987 के पश्चात, राज्य सरकार के कर्मचारियो की भाति ही, उपरोक्त नियमो के अधीन पेन्शन के पात्र हो गये है । राजस्थान मे विगत कुछ वर्षों से स्वायत्तशासी निकायो के कर्मचारियों ने अपनी भविष्य निधि योजना के स्थान पर पेन्शन नियमो को अपनाने हेतु मानसिक रुझान स्पष्ट किया है । राजस्थान की नगरपालिकाओ मे प्रवर्तित य नये नियम इसी मानसिकता के प्रमाण है ।

कार्मिक प्रशासन की समीक्षा

स्थानीय निकायो के कर्मचारी वर्ग से सम्बन्धित कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र मे, कतिपय समस्याए अनुभव की गयी है । इन समस्या स्थलो का रेखाङ्कन और उनका समाधान स्थानीय निकायो की सफलता की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है :

1. स्थानीय निकायो मे कर्मचारियो की भर्ती के लिए किसी एक प्रणाली का अनुभव समूचे देश की स्थानीय सस्थाओं मे दृष्टिगोचर होता है । यह अनुभव किया गया है कि स्थानीय सस्थाओ ने अपने अधिकारियो एव कर्मचारियो की भर्ती एव नियुक्ति के सम्बन्ध मे प्राय तीनो ही प्रणालियो—समन्वित, एकीकृत एव पृथक प्रणाली—को अपनाया है । इसमे कोई सन्देह नही कि यथा आवश्यक्ता इन तीनो प्रणालियो का समन्वित उपयोग किया जा सकता है किन्तु यदि देशभर मे स्थानीय निकायो के कर्मचारियो की भर्ती हेतु सुचिंतित आधारो एव प्रणालियो का विकास किया जाये तो वह नगरीय सस्थाओ की कार्य कुशलता बढाने मे सहायक सिद्ध हो सकती है ।
2. यह सुझाव दिया जाता रहा है कि जिस प्रकार उच्च पदो के लिए नगरीय निकायो मे समन्वित एव एकीकृत प्रणाली को अपनाया जाता

है उसी प्रकार निम्न वर्गीय पदों के लिए भी पूरे राज्य के लिए एकीकृत प्रणाली का विकास किया जाना चाहिए। होता यह है कि निम्न वर्गीय पदों पर राजस्थान जैसे राज्य में, भर्ती करने का अनन्य अधिकार सम्बंधित नगरीय निकाय के अधिशासी अधिकारी या अध्यक्ष को मिल जाता है और ऐसी स्थिति में वे राजनीतिक दबाव के अन्तर्गत ऐसे लोगों को निकाय में भर्ती कर लेते हैं जो योग्यता के मानदण्डों पर तो खरे उतरते ही नहीं अपितु केवल राजनीतिक दबाव से वे सेवाओं में प्रविष्ट हो जाते हैं। ऐसे कर्मचारी सेवाओं की कार्य कुशलता एवं अनुशासन को भारी ठेस पहुंचाते हैं। यदि स्थानीय निकायों का स्वतन्त्र परिचालन लोकतन्त्र के हित में आवश्यक माना जाता है तो इस बिन्दु पर राजनीतिक तटस्थता के स्वस्थ दृष्टिकोण से विचार कर कोई उचित हल निकाला जाना चाहिए।

3. सभी स्तरों पर कार्मिकों के चयन में राजनीतिक हस्तक्षेप और दबाव को कम किये जाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए और चयन का आधार केवल योग्यता होनी चाहिए। एक निश्चित वेतनमान से अधिक वेतन पाने वाले पदों पर राज्य में लोक सेवा आयोग की व्यवस्था का चयन किया जा सकता है और यदि ऐसा सम्भव न हो तो स्थानीय निकायों के लिए पृथक से सेवा चयन आयोग नियुक्त किया जाना चाहिए। राजस्थान में सेवा चयन आयोग पूर्व में बनाया गया था किन्तु वह अधिक दिनों तक कार्यशील नहीं रह सका और अब जो सेवा चयन आयोग बनाया गया है उसमें स्थानीय निकाय के निदेशक, सम्बन्धित उप निदेशक और सम्बन्धित नगर परिषद/पालिका के अध्यक्ष/अधिशासी अधिकारी को सदस्य बनाया गया है। प्रथम तो इसे आयोग नहीं माना जा सकता और द्वितीयतः यह निष्पक्षता को भी सुनिश्चित नहीं करता है। इस सम्बन्ध में यह सुझाव दिया जा सकता है कि कार्मिकों के चयन के लिए ऐसा स्वतन्त्र अभिकरण बनाया जाये जो योग्यता के आधार पर स्थानीय निकायों में कर्मचारियों की भर्ती को सुनिश्चित कर सके।

4. कर्मचारियों के लिए पदोन्नति की भी ऐसी प्रणाली, विशेषज्ञों के पर्याप्त विचार विमर्श के पश्चात, विकसित की जानी चाहिए जिससे सभी कर्मचारियों को समयबद्ध पदोन्नति सुनिश्चित हो सके। यदि पदोन्नति दिया जाना सम्भव न हो तो कम से कम उच्चतर वेतन क्रम तो एक निश्चित अवधि के पश्चात सुनिश्चित किया ही जाना चाहिए। ऐसा

कर दिये जाने से जहां एक ओर कर्मचारियों का मनोबल बना रह सकेगा वहीं दूसरी ओर वे सरकार के प्रति भी सौहार्दपूर्ण भावना विकसित कर सकेंगे और सरकार भी उनसे उचित कर्तव्य पालन की अपेक्षा कर सकेगी।

5. कार्मिकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के भी प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। ऐसा अनुभव किया गया है कि स्थानीय निकायों में कर्मचारियों के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्थित प्रणाली विकसित नहीं की गयी है। यह सुविदित है कि कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढ़ाने में केवल प्रशिक्षण ही एक मात्र महत्वपूर्ण सहायक तत्व हो सकता है। प्रशिक्षण के कार्यक्रमों को सुनियोजित करने के लिए देश भर के राष्ट्रीय, राज्यीय और स्थानीय लोक प्रशासन संस्थानों, विश्वविद्यालयों तथा अनुभवी विभागीय अधिकारियों का सहयोग लिया जाना चाहिए।

6. इन संस्थाओं में कार्यशील कर्मचारियों के वेतनमान तथा कार्य की दशाओं में भी सुधार की बड़ी आवश्यकता है। इन संस्थाओं में नियुक्त किये जाने वाले कर्मचारियों के लिए प्रतिनियुक्ति पर भेजे जाने वाले अधिकारियों को ऐसा लगता है जैसे वे यहाँ जब भेजे जाते हैं तब सरकारी विभागों में सरकार द्वारा उनकी सेवाएं प्रायः अवांछित भी महसूस की जाती है। इस स्थिति और मनोदशा में परिवर्तन की आवश्यकता है। नागरिकों के प्रतिदिन के जीवन में स्थानीय संस्था ही सर्वाधिक प्रभाव डालती हैं। इन संस्थाओं की कार्यकुशलता नागरिकों के सुख और दुख का कारण बनती हैं। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि इन संस्थाओं में नियुक्त किये जाने वाले कर्मचारी एवं पदाधिकारी निर्विवाद रूप से कुशल, सक्षम और प्रतिभावान हों ताकि अपनी कुशलता से वे इन संस्थाओं की कार्यकुशलता में वृद्धि करें और लोकतन्त्र की जड़ों को मजबूत करने में अपना पूर्ण योगदान दें।

7. इन संस्थाओं के कर्मचारियों में अनुशासन की भी कमी पायी जाती है। प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक हस्तक्षेप इस कमी के उत्तरदायी कारकों में एक प्रमुख घटक माना जाता है। किसी भी संस्था में कार्य करने वाले कर्मचारियों को अपने पदाधिकारियों के प्रति सम्मान और अनुशासन दिखाना सेवा की एक अनिवार्य शर्त है। इस अनिवार्य शर्त में यदि राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण कोई कमी आती है तो इसे उत्तरदायी लोगों को अनुभव करना चाहिए और ऐसा वातावरण उत्पन्न करना

चाहिए जिसके द्वारा नगरीय सेवाओं की कुशलता और दक्षता नकारात्मक रूप से प्रभावित न हो सके ।

8 कर्मचारियों में व्याप्त अनुशासनहीनता के कारणों पर किये गये शोध के यह निष्कर्ष हैं कि इन सस्थाओं में कार्यरत अधिकारी जब अपने पद की शक्तियों का दुरुपयोग करने लगते हैं और अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को उचित सम्मान नहीं देते या उनकी छोटी छोटी कठिनाईयों को हल करने के प्रति न केवल उदासीनता अपितु एक सीमा तक उपेक्षा और पक्षपात भी दिखाते हैं तो ऐसे में अनेक ऐसे कर्मचारी जो पूर्ण निष्ठा और लगन से काम करना चाहते है उनके मनोबल पर विपरीत असर पड़ता है । यह निर्विवाद तथ्य है कि यदि हम कर्मचारियों को अनुशासित बनाय रखना चाहते हैं तो उन्हे अनुशासित रखने के लिए अधिकारियों को स्वय सयत व्यवहार का परिचय देना होगा ।

9. सेवा की असतोषजनक शर्तों, पदोन्नति के अवसरों के अभाव तथा निम्नस्तरीय वेतनमानों के फलस्वरूप इन सस्थाओं में काम करने वाले कर्मचारियों की मनोदशा अत्यन्त गिरी हुई रहती है । एक अध्ययन के दौरान यह पता चला कि 48 में से 46 कर्मचारियों का यह विचार था कि यदि उन्हे अवसर मिले तो वे दूसरी जगह चले जायें । कार्मिकों की इस मनोदशा का विश्लेषण करते हुए इस स्थिति में सुधार की महती आवश्यकता है ।

10 नगरीय प्रशासन में भी ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे सम्बन्धित कर्मचारियों का उत्तरदायित्व निश्चित किया जा सके ।[6] ऐसा कर दिए जाने से निष्ठावान कर्मचारी अपने उत्तरदायित्वों को ठीक से समझकर निष्पादित कर पायेंगे । प्रशासन भी एक बार कार्मिकों का उत्तरदायित्व निश्चित कर देने के पश्चात कर्मठ और आलसी कर्मचारियों में भेद कर सकेगा और यदि आवश्यकता हो तो उन्हे पुरस्कृत और दण्डित भी कर सकेगा ।

11. कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रति माह सर्वश्रेष्ठ कर्मचारियों को सार्वजनिक रूप से पुरस्कृत करने की योजना पर भी विचार किया जा सकता है । अनेक बार कर्मचारियों में आपसी प्रतिस्पर्धा और और प्रतियोगिता से भी उनकी कार्यक्षमता में विकास किया जा सकता है ।

12. स्थानीय निकायों के कर्मचारियो के जो सगठन या यूनियन बनी हुई हैं उन्हे चाहिए कि वे कुछ सकारात्मक कार्यवाहियाँ हाथ मे लें। आमतौर पर यह देखा गया है कि कार्मिक सघ कवल अपने वेतन एव सुविधाए इत्यादि बढाने के लिए हडताल आदि का सहारा लेते हैं और कार्मिक लक्ष्यो तथा सेवा मे सुधार के लिए कोई रुचि नही दिखाते। इस स्थिति मे परिवतन किय जाने की आवश्यकता है। कर्मचारियो को यह अनुभव करना चाहिए कि उनके वेतन और सेवा दशाओं मे सुधार तभी समव है जब वे नागरिक सेवाओं के स्तर को श्रेष्ठतर बनायें।

13 नगरीय सस्थाओ मे निर्वाचित पदाधिकारियों और सरकारी अधिकारियो मे जहा तक सभव हो एक दूसरे को सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को प्रोत्साहित करना चाहिए। लोकतन्त्र मे यह अपरिहार्य ही होता है कि निर्वाचित अधिकारियों और सरकारी अधिकारियो मे तनाव के अवसर आ जाते हैं किन्तु दोनो ही पक्षों को इस समझ से काम लेना चाहिए कि अन्ततोगत्वा उन्हे लोक सेवा के लिए यह दायित्व दिया गया है और लोक हित मे उन्हे आगे कदम उठाना चाहिए वे यदि इस एकमात्र प्रेरणा मे प्रेरित हों तो सभवत तनाव को कम किया जा सकता है।

14. इन सस्थाओ मे नियुक्त प्रशासनिक अधिकारियों को चाहिए कि कर्मचारियों स सम्बन्धित कोई निर्णय लेन के पूर्व यदि उनके मान्यता प्राप्त सघो मे विचार विमर्श कर लिया जाये तो यह न केवल नगरीय सस्थाओं के हित मे रहेगा अपितु सरकार के हित म भी होगा।

15 नगरीय सस्थाओ के कर्मचारियो का पेन्शन के स्थान पर जो भविष्य निधि आदि की योजना थी, कुछ राज्यो ने उसे बदलकर उन्ह भी सरकारी कर्मचारियो की भाति पेन्शन देना स्वीकार कर लिया है। राजस्थान उनमे से एक राज्य है। अन्य राज्यो को भी इन कर्मचारियों के हित मे ऐसे निर्णय लेने की पहल करनी चाहिए।

16. किसी भी सस्थान म नियुक्त प्रशासकीय नतृत्व की पहल करने की शक्ति और इच्छा उस सस्था की कार्यकुशलता के स्वरूप का निर्धारण करती है। इन सस्थाओ मे नियुक्त किये जाने वाले अधिकारी अपने अनुभव के आधार पर रेखांकित समस्याओ क समाधान के प्रति पहल करते हुए यदि नयी कार्य योजनाए घोषित करें तो ऐसा करने मे न

केवल उन्हे सरकार का सहयोग प्राप्त होगा अपितु नगर की जनता भी उनका स्वागत करेगी। उनकी इस पहल से नगरीय कर्मचारियों मे भी एक नयी प्रेरणा और शक्ति का सचार होगा। किन्तु यह मानव स्वभाव है कि कुछ नया कार्य हाथ मे लेने के प्रति उनमे सकोच रहता है। इस विधा का विकास करने के लिए राष्ट्रीय स्तर के प्रशिक्षण सस्थानो मे गहन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाने की आवश्यकता है। ऐसा कर दिये जाने से निश्चित ही इन सस्थाओ की कार्यकुशलता मे निर्णायक वृद्धि की जा सकती है।

17 इन सस्थाओ मे नियुक्त कर्मचारियो को स्थानीय लोकतन्त्र के हित मे यह सोचना चाहिए कि इन सस्थाओ की आमदनी मे कैसे सुधार और वृद्धि की जा सकती है। विश्व के इतिहास मे कोई देश स्थानीय सस्थाओ के बिना प्रगति नही कर पाया है। इस ऐतिहासिक अनुभव से कुछ सीख लेने की आवश्यकता है ताकि देश के लोकतन्त्र की इन पाठशालाओ को हम सुव्यवस्थित रूप प्रदान कर सकें।

सन्दर्भ

1 द्रष्टव्य हरमन फाइनर, इंगलिश लोकल गवर्न्मेंट, मैथ्यून एण्ड को. लि. लन्दन

2. रिपोर्ट आफ द रूरल अरबन रिलेशनशिप कमेटी, पार्ट 1, 1966 पृ. 73

3 सविधान की राज्य सूची मे पाचवी प्रविष्टि.

4. एम के भोगले, लोकल गवर्न्मेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन इन इडिया, परिमल प्रकाशन, औरगाबाद, 1977 पृ 261

5 रूरल अरबन रिलेशनशिप कमेटी रिपोर्ट, 1966, उद्धृत भोगले, पूर्वोक्त, पृ 261–62

6 एस. आर. माहेश्वरी, पूर्वोक्त पृ 250–51

7. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959, धारा 297

8 राजस्थान नगरपालिका सेवा नियम, 1963 के विस्तृत अध्ययन हेतु

द्रष्टव्य, एस. एल. गुप्ता, म्युनिसिपल लॉज इन राजस्थान, इंडिया पब्लि-
शिंग हाउस, जोधपुर, पृ. 1313–47.

9. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 304 (1)
10. एस एल. गुप्ता, पूर्वोक्त, पृ 1335–36
11. उपरोक्त,
12. उपरोक्त, पृ. 1340–41
13. राजस्थान नगरपालिका सेवा नियम, धारा 8, द्रष्टव्य एस एल. गुप्ता, पूर्वोक्त.
14. उपरोक्त, धारा 10
15. उपरोक्त, धारा 11
16. उपरोक्त, धारा 12, 13, 14
17. उपरोक्त, धारा 17
18 उपरोक्त, धारा 18, 19, 20, 21
18 उपरोक्त, धारा 25 विस्तृत अध्ययन हेतु द्रष्टव्य, एस. एल. गुप्ता, पूर्वोक्त पृ 1324–25
20 उपरोक्त, धारा 26 (1)
21 उपरोक्त, धारा 26 (2)
22. उपरोक्त, धारा 27
23 यह जानकारी लेखक को स्वय स्थानीय निकाय निदेशालय से प्राप्त हुई है।
24 राजस्थान नगरपालिका सेवा नियम, 1963 धारा, 28, 29, 30, 31
25. उपरोक्त, धारा 32, 35, 36
26 राजस्थान नगरपालिका (अधिनस्थ एव मत्रालयिक) सेवा नियम, 1963 विस्तृत अध्ययन हेतु द्रष्टव्य, एस.एल गुप्ता, पूर्वोक्त, पृ 1382–1417
27. उपरोक्त, धारा 5
28. उपरोक्त धारा 6
29. उपरोक्त, धारा 6 (2)
30. उपरोक्त, धारा 8
31. उपरोक्त, धारा 9
32 उपरोक्त, धारा 10

33 उपरोक्त, धारा 12, 13, 14, 15

34 उपरोक्त, धारा 17

35 उपरोक्त, धारा 18

36. उपरोक्त, धारा 19, 20, 21, 22

37 अधिसूचना स एफ. 8 (+) नि (ए–11)/69 दिनाक 5 अप्रेल 1974, यह अधिसूचना राजस्थान राजपत्र भाग 4 (ग) (1) विशेषाक दिनाक 5 अप्रेल 1974, पृ. स. 5 पर प्रकाशित हुई। इस सम्बन्ध मे राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमो के लिए द्रष्टव्य श्री कृष्ण दत्त शर्मा एव सुनीता दाधीच, राजस्थान पचायत एव जिला परिषद अधिनियम, खण्ड-2 ए वन एजेन्सीज, जयपुर, 1983 पृ 398–403.

38. यह प्रावधान राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद (सशोधन विधेयक) 1987 द्वारा समाप्त घोषित किया गया है।

39. आदेश सख्या राजस्थान सरकार स्वा. शा. वि. एफ 2/36(20)/581/238 दि 28.1 89

40. उपरोक्त

41 राजस्थान नगरपालिका (अधिनस्थ एव मत्रालयिक सेवा) नियम, 1963, धारा 23 (1)

42. उपरोक्त, धारा 23 (2)(3)(4)(5)

43. उपरोक्त, धारा 27

44. उपरोक्त, धारा 28, 29, 32, 35, 38

45. राजस्थान नगरपालिका (चतुर्थ श्रेणी सेवा) नियम, 1964

46. उपरोक्त, धारा 5

47. उपरोक्त, धारा 7,8,9,10,11,12,14,15.

48 उपरोक्त, धारा 20

49 रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी ऑन ट्रेनिंग ऑफ दी म्युनिसिपल एम्पलाइज, गवर्नमेट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ हैल्थ, 1963 पृ. 8

50 वी एम सिन्हा, भारत मे नगरीय सरकारें, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1986, पृ 116

51 उपरोक्त

52 एस आर माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ 265

53. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 1959 की धारा 297(बी) उपधारा 2 के अन्तर्गत प्रदत्त प्रधिकारो का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने पेन्शन नियम घोषित किये है।
54. रामजी लाल शर्मा एव सीताराम शर्मा, राजस्थान नगरपालिका पेन्शन नियम, विजय प्रकाशन, जयपुर, 1989, पृ 1
55 उपरोक्त, पृ. 3
56. वी. एम. सिन्हा, पूर्वोक्त, पृ. 121



12

पंचायती राज संस्थाओं का कार्मिक प्रशासन

जिस प्रकार नगरीय क्षेत्रो के निवासियो की स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति उन क्षेत्रो मे कार्यरत स्थानीय सस्थाओ और विशेषकर उन सस्थाओ में कार्यरत कर्मचारियो के द्वारा की जाती है उसी प्रकार भारत के ग्रामीण अचलो के निवासियो की स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति ग्रामीण स्थानीय प्रशासन अर्थात् पचायती राज की सस्थाओ मे नियोजित कर्मचारियो के द्वारा होती है। सविधान के प्रवर्तन के पश्चात राजस्थान ऐसा प्रथम राज्य था जिसने ग्रामीण स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र मे पचायती राज के महत्व को राष्ट्रीय स्तर पर रेखांकित किया और पूर्ण उत्साह से पचायती राज को अपनाया। इसके पश्चात भारत के दूसरे राज्यो ने भी पचायती राज को अगीकार किया और इस प्रक्रिया मे ऐसा अनुभव हुआ कि भारतीय सघ की राज्य सरकारो ने सविधान के निर्देशो की भावना के अनुरूप लोकतात्रिक विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन देना स्वीकार किया है और सामुदायिक विकास तथा इसी तरह के अन्य कार्यक्रमों के अन्तर्गत अनेक परियोजनाओ को क्रियान्वित करने का दायित्व पचायती राज सस्थाओ और उनमे कार्यरत कर्मचारियो को देना आरम्भ कर दिया है।

स्वायत्त शासन की सस्थाओ के कार्य सचालन मे सेवाओ का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान होता है। स्वायत्त शासन की सस्थाएं सामान्यतया नीतियो का निर्धारण और आवश्यकतानुसार निर्देशो का प्रसारण करती हैं किन्तु उनके कार्यान्वियन को सेवाओ पर छोड दिया जाता है। नीतियो एव कार्यों का सफल एवं प्रभावशील कार्यान्वियन सेवाओ की गुणवत्ता एव योग्यता पर निर्भर करता है। सेवाओ द्वारा कार्य सचालन से इन सस्थाओ को स्थायित्व प्राप्त होता है।[1]

वस्तुतः किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था मे निर्वाचित जन प्रतिनिधियो द्वारा उन लक्ष्यो का निर्धारण किया जाता है जिनके द्वारा समाज को धीरे धीरे आगे बढाना है। इस प्रक्रिया मे सेवाओ की भी समान महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि उन्ही के द्वारा इन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति एव कार्यान्वयन किया जाता है। प्रजातान्त्रिक सस्थाओ मे जन प्रतिनिधि एक निर्धारित अवधि के पश्चात बदल दिए जाते हैं किन्तु सेवाओ की स्थायी सरचना नीतियो के निष्पादन को निरन्तरता प्रदान करती है। लोकतन्त्र मे और विशेष तौर से लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया मे प्रसूत पचायती राज की सस्थाओ मे नीति निर्माता उन प्रतिनिधियो और उनके निष्पादन हेतु उत्तरदायी सेवाओ पर परस्पर सौहार्द मे कार्य करने की एक अतिरिक्त जिम्मेदारी होती है।[2]

सादिक अली समिति ने यह माना था कि पचायती राज की सस्थाओ की सेवाओ मे भर्ती, नियुक्ति और सेवाओ का अनुशासनिक नियत्रण बहुत महत्वपूर्ण है इसलिए उनका नियमन कतिपय स्वतन्त्र सिद्धान्तो द्वारा किया जाना चाहिए। समिति की राय मे ये सिद्धान्त निम्नलिखित है[3]

1. सेवाओ की नियुक्ति की पद्धति मे शीघ्रता, निष्पक्षता तथा सही चयन की सम्भावना निहित होनी चाहिए। विभिन्न पदो के लिए भर्ती करते समय उस कार्य की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखा जाना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि भर्ती के लिए जो व्यवस्था है उसके प्रति लोगों मे सामान्य विश्वास हो। समूचे राज्य मे सेवाओ की शर्तो तथा योग्यताओ के बारे मे भी एकरूपता सुनिश्चित की जानी चाहिए।

2. भर्ती, पदोन्नति तथा अनुशासनिक नियन्त्रण के लिए व्यवस्था करते समय जो सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य ध्यान मे रखा जाना चाहिए वह है सेवाओ को राजनीतिक व स्थानीय प्रभाव से कैसे विलग और सुरक्षित रखा जाये। सेवाए ऐसी स्थिति मे नही पडनी चाहिएँ जिसमे वे स्थानीय दलो अथवा प्रभावशाली व्यक्तियो के साथ अपना गठबन्धन करना बहुत आवश्यक तथा लाभप्रद मानने लग जायें। इस प्रकार की स्थिति से सेवाओ मे अकार्यकुशलता व्याप्त हो जाती है और उनका मनोबल गिरता है।

3. सेवाओ का अनुशासनिक नियत्रण त्वरित एव प्रभावशील होना चाहिए। नियन्त्रण की दिशा और प्रक्रिया मे किसी प्रकार की अस्पष्टता नही होनी चाहिए।

पचायती राज में सेवाओ की श्रेणियां/वर्गीकरण

पंचायती राज म सेवाओ की दो श्रेणिया हैं :

1. वे अधिकारी और कर्मचारी जो पचायती राज सस्थाओं मे राज्य सरकार की ओर से प्रतिनियुक्ति पर हैं, और
2. वे सेवाए जो पचायत समिति एव जिला परिषद सेवा मे श्रेणीबद्ध की गयी हैं।

सभी राज्यो मे पचायती राज सस्थाओ के वरिष्ठ कर्मचारी राज्य की लोक सेवा के सदस्य होते हैं और राज्य सरकार उन्हे इन सस्थाओ मे कार्य करने के लिए नियुक्त करती है। इस प्रकार नियुक्त किये गये लोक सेवक और पदाधिकारी ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की इन इकाईयो मे अपनी सेवा का कुछ काल बिताकर पुन राज्य सरकार के अन्य विभागो मे स्थानान्तरित कर दिये जाते हैं। उनके वापस बुला लिए जाने से पंचायती राज की इन सस्थाओ मे जो स्थान रिक्त होता है उन्हें राज्य के अन्य लोक सेवको मे से नियुक्ति द्वारा भर दिया जाता है। इस प्रकार प्रथम श्रेणी की सेवाओ की भर्ती, पदोन्नति एव नियन्त्रण राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र मे होता है। यद्यपि राज्य सरकार यह व्यवस्था करती है कि इन अधिकारियो का स्थानान्तरण करते समय उन सस्थाओ के राजनीतिक मुखियाओ से सम्मति ले ले जहा वे नियुक्त हैं। इस तरह इन अधिकारियो एव कर्मचारियो पर नियन्त्रण की अन्तिम शक्ति राज्य सरकार मे सन्निहित होती है। राज्य सरकार ही उन अधिकारियो को स्थानान्तरित, पदोन्नत अथवा पदावनत या दण्डित करने मे सक्षम होती है। ऐसे अधिकारी या कर्मचारी पचायती राज की जिस सस्था मे नियुक्त होते है वह सस्था उन पर केवल दैनिक नियन्त्रण ही रख पाती है।

प्राय: अधिकाश राज्यो मे पचायती राज सस्थाओ मे प्रथम और द्वितीय श्रेणी के अधिकारी राज्य सरकार की कार्मिक सेवा के सदस्य होते हैं और पचायती राज सस्थाओ मे प्रतिनियुक्त किये जाते हैं। राजस्थान एव कर्नाटक जैसे कुछ राज्यो मे तो तृतीय श्रेणी सेवा के कर्मचारी भी इन सस्थाओ म राज्य की सेवा से प्रतिनियुक्ति पर भेजे जाते हैं। दूसरी ओर आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान मे दूसरी श्रेणी की सेवाओ मे कार्मिकों का एक ऐसा वर्ग बनाया गया है जिनकी भर्ती, पदोन्नति, एव अनुशासनिक नियन्त्रण पचायती राज सस्थाओ के अपने अधिकार क्षेत्र मे है और जिला स्तर एव राज्य स्तर पर उनका नियन्त्रण क्रमश: "जिला प्रतिस्थापन समिति" तथा "राजस्थान पचायत

समिति एवं जिला परिषद सेवा आयोग" द्वारा होता है। राजस्थान मे पचायत समिति एवं जिला परिषद के लिए एक पृथक पचायती राज सेवा की स्थापना की है जो "राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद सेवा" कहलाती है।

गुजरात राज्य ने भी राज्य पचायत सेवा की रचना की है जो राज्य सेवा से भिन्न है और जिसे कुछ राजपत्रित और कुछ अराजपत्रित कर्मचारी सौंप दिये गये हैं। इस राज्य न अपने यहा पचायती सेवा मे एकरूपता लाने का दृष्टि से पचायत सेवा का पृथक वर्ग स्थापित किया है और यह कहा गया है कि यह सेवा राज्य की राजकीय सेवा से भिन्न होगी और इसका निर्धारण भी गुजरात पचायत अधिनियम 1959 के अन्तर्गत विनिर्मित नियमो के अनुसार होगा।[4] यद्यपि इस अधिनियम मे यह व्यवस्था भी की गयी है कि पचायत सेवा की तीन श्रेणिया जिला सवर्ग, तालुका सवर्ग और स्थानीय सवर्ग बनायी जायेगी तथा इन सवर्गो मे प्रारम्भिक पदो की सख्या या निर्धारण राज्य सरकार द्वारा किया जायेगा।[5] इसी सन्दर्भ मे आगे यह व्यवस्था भी घोषित की गई है कि जिला सवर्ग का कोई भी अधिकारी और कर्मचारी जिले के अन्तर्गत किसी तालुका मे भी पदोन्नत या स्थानान्तरित किया जा सकता है और इसी प्रकार तालुका सवर्ग का कोई अधिकारी या कर्मचारी उस तालुका क अन्तर्गत किसी ग्राम या नगर की इकाई मे भी नियुक्त, पदोन्नत या स्थानान्तरित किया जा सकता है।[6] इसी प्रकार राज्य सरकार को इस बात के लिए भी अधिकृत किया गया है कि जब भी वह आवश्यक समझे पचायती राज की सस्थाओ मे सेवा के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा या गुजरात राज्य की प्रथम और द्वितीय श्रेणी की सेवा के अधिकारियो को निर्दिष्ट कार्यों के सम्पादन के लिए नियुक्त कर सकती है। उनकी सेवा की अवधि, सेवा शर्तें और निर्दिष्ट कार्य उसी आदेश से स्पष्ट किये जायेंगे जिस आदेश के द्वारा उन्हे पचायती राज सेवा म नियुक्त किया जाता है।[7] इस प्रकार नियुक्त किय गय अधिकारियो का वेतन और भत्ते, जब तक वे पचायती राज की सस्थाओ मे नियुक्त है, उन सस्थाओ की निधि से ही देय होगे।[8] इसी तरह यह अधिनियम यह प्रावधान भी करता है यदि राज्य सरकार आवश्यक समझे तो राज्य की तृतीय श्रेणी की सेवा के कर्मचारियो को ऐसे विशेष आदेश द्वारा उसी आदेश म निर्दिष्ट कार्यों के सम्पादन के लिए पचायती राज की सस्थाओ मे भेज सकती है।[9] इसी प्रकार पचायती राज सस्थाओ को भी यह अधिकार दिया गया है कि वे चाहे तो राज्य सरकार को इस आशय का निवेदन कर सकती हैं कि उन्हे राज्य सरकार के किन्ही अधिकारियो की सेवा पचायती मे सेवा के लिए उधार लेनी है।[10]

गुजरात पचायत सेवा के उपरोक्त वर्णित पृथक सवर्ग हेतु कर्मचारियो की भर्ती करने के लिए अधिनियम एक त्रिसदस्यीय गुजरात पचायत सेवा चयन आयोग के गठन का प्रावधान करता है।[11] इस आयोग का एक सदस्य राज्य की लोक सेवा मे कार्यरत या सेवा निवृत सदस्य होगा। इस सेवा चयन आयोग के अध्यक्ष पद पर नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जायेगी।[12] सेवा चयन आयोग के तीसरे सदस्य के बारे मे अधिनियम मौन है। सेवा चयन आयोग के सदस्यों का वेतन और सेवा शर्तें राज्य सरकार अपने आदेश द्वारा निर्धारित करेगी। यह आयोग गुजरात राज्य की पचायत सेवा के लिए नियमानुसार भर्ती का कार्य करेगा। आयोग मे यह भी अपेक्षा की गयी है कि वह अधिनियम द्वारा निर्दिष्ट भूमिका का सम्पादन करेगा।[13]

राज्य स्तरीय इस सेवा चयन आयोग के अतिरिक्त अधिनियम मे गुजरात जिला पचायत सेवा चयन समिति का प्रावधान भी किया गया है जो जिला स्तर पर पंचायत सेवा के पदो, जिनमे जिले की प्राथमिक शिक्षा और इसी प्रकार के पद सम्मिलित हैं, की भर्ती का कार्य करेगी।[14] इस जिला स्तरीय सेवा चयन समिति मे भी गुजरात मे तीन सदस्यो का प्रावधान किया गया है

(अ) एक सदस्य गुजरात पचायत सेवा चयन आयोग का जिसे सेवा चयन आयोग का अध्यक्ष नामित करे,

(ब) जिले की जिला पचायत का अध्यक्ष,

(स) राज्य सेवा या पचायत सेवा का एक ऐसा अधिकारी जिसे राज्य सरकार नामित करे।[15]

जिला स्तरीय पचायत सेवा चयन समिति के अतिरिक्त जिला स्तर पर भी राज्य सरकार चाहे तो एक जिला प्राथमिक शिक्षा सेवा चयन समिति का गठन भी कर सकती है जो प्राथमिक शिक्षा के लिए शिक्षको की भर्ती का कार्य करेगी। इस समिति का गठन शक्तिया और कार्य सम्बन्धित आदेश मे निर्दिष्ट किया जायेगा।[16]

महाराष्ट्र मे मुख्य कार्यकारी अधिकारी, उप कार्यकारी अधिकारी, जिला कृषि अधिकारी, जिला पशुपालन अधिकारी, जिला समाज कल्याण अधिकारी, कार्यकारी अभियन्ता, शिक्षा निरीक्षक तथा जिला स्वास्थ्य अधिकारी सभी राज्य सेवा के सदस्य होते हैं। किन्तु उन्हें जिला परिषद के अधीन कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है। महाराष्ट्र मे तीन पृथक सवर्गों की रचना की गई है: जिला तकनीकी सेवा वर्ग (3), जिला सेवा वर्ग (3) तथा जिला सेवा

वर्ग (4)। ये सेवाएं प्रत्येक जिले के पृथक पृथक स्थापित की गयी हैं। एक आदेश द्वारा राज्य सरकार ने उन सब कर्मचारियों को भी जिला परिषद की सेवा के अन्तर्गत ले लिया है जो पहले के स्थानीय निकायों के अधीन काम करते थे और उन कार्यों को भी जिला परिषद के अन्तर्गत ले लिया गया है जो उन निकायों के द्वारा सम्पादित किये जाते थे।[17]

राजस्थान में कार्मिक वर्ग की स्थिति

राजस्थान में कार्मिकों को पंचायती राज की संस्थाओं के कार्यों के निष्पादन के लिए ही उत्तरदायी नहीं बनाया गया अपितु इन संस्थाओं में सदस्यता भी कतिपय अधिकारियों को प्रदान की गयी है। उदाहरण के लिए जिले के जिलाधीश को जिला विकास अधिकारी के रूप में जिला परिषद का पदेन सदस्य भी बनाया गया है। इसी तरह खण्ड विकास अधिकारी को पंचायत समिति का सचिव बनाया गया है यद्यपि उन्हें इन संस्थाओं में मताधिकार नहीं दिया गया है।

राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं में प्रथम श्रेणी की सेवाओं के वे अधिकारी और कर्मचारी जो प्रायः राज्य सरकार की ओर से प्रतिनियुक्ति पर होते हैं उनमें प्रमुख तौर पर ;

1. जिला परिषद के सचिव,
2. जिला परिषद के सहायक सचिव
3. पंचायत समिति के विकास अधिकारी,
4. पंचायत समितियों के प्रसार अधिकारी गण तथा कृषि प्रसार अधिकारी, पशुपालन प्रसार अधिकारी, शिक्षा प्रसार अधिकारी, सहकारिता प्रसार अधिकारी, उद्योग प्रसार अधिकारी एवं कनिष्ठ अभियन्ता इत्यादि तथा
5. पंचायत समितियों के लेखा लिपिक, होते हैं।

दूसरी ओर कनिष्ठ पदों के लिए जो पृथक सेवा राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद सेवा निर्मित की गयी है उसके लिए राज्य सरकार द्वारा कुछ नियम घोषित किये गये हैं।[18] इन नियमों के अनुसार इस सेवा में कर्मचारियों की संख्या उतनी होगी जो प्रत्येक पंचायत समिति के लिए अधिनियम की धारा 31 के अन्तर्गत और प्रत्येक जिला परिषद के लिए अधिनियम की धारा 60 के अन्तर्गत समय समय पर निश्चित की जाये।[19] इस सेवा हेतु पदों के जो वर्ग घोषित किये गये हैं वे इस प्रकार हैं :

1.	ग्राम सेवक	2.	ग्राम सेविकाएं
3	प्राथमिक पाठशाला अध्यापक	4	फील्ड मैन
5.	स्टाक मैन	6	स्टाक सहायक
7.	पशु चिकित्सा कम्पाउण्डर	8	कुक्कुट पालन प्रदर्शक
9.	भेड तथा ऊन पर्यवेक्षक	10.	ड्रेसर्स
11.	टीका लगाने वाले		
12.	(1) उच्च लिपिक (जिनमे लेखा लिपिक भी शामिल है) (2) लिपिक (जिनमे टाइपिस्ट भी शामिल हैं)		
13	ड्राइवर	14	प्रोजेक्टर चालक
15	मेट (उद्योग)	16	ग्रुप पचायत सचिव
17.	कार्यालय सहायक	18	कृषि अनुदेशक

राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद सेवा नियमो में यह स्पष्ट किया गया है कि इस सेवा के गठन के तत्काल पूर्व पचायत समिति या जिला परिषद की सेवा मे नियुक्त सारे व्यक्ति, इन नियमो के प्रावधानो के अधीन नवीन पदों पर नियुक्त समझे जावेंगे । यद्यपि उन्हे इस सेवा मे बने या न बने रहने का 90 दिन मे विकल्प देने का अवसर भी दिया गया था ।

भर्ती

उपरोक्त नियमो क प्रवर्तन के पश्चात रिक्त स्थानो पर भर्ती हेतु निम्न प्रावधान किये गये [20]

(क) प्रत्येक वर्ग के निम्नतम ग्रेड मे सीधी भर्ती करके,

(ख) उसी वर्ग मे निचले ग्रेड से ऊचे मे पदोन्नत करके,

(ग) किसी भी पचायत समिति, जिला परिषद या सरकार के अधीन समानुरूप पदों पर काम करने वाले व्यक्तियो का स्थानान्तरण करके ।

किसी भी सरकारी कर्मचारी के एक सेवा से दूसरी मे स्थानान्तरण के लिए नियमो मे यह प्रावधान किया गया कि इस हेतु उसकी पूर्व सहमति प्राप्त की जायेगी । इसी प्रकार वरिष्ठ लिपिक की श्रेणी मे रिक्त स्थानो को स्थानान्तरण या सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने की भी व्यवस्था की गयी, यदि ऐसे रिक्त स्थानो को भरने के लिए सेवा का कोई सदस्य पदोन्नति का पात्र नहीं पाया जाये । इन सेवाओ मे अनुसूचित जातियो तथा जन जातियो के लिए सरकारी आज्ञाओ और नियमो के अनुसार आरक्षण का प्रावधान भी किया गया है ।[21] इन नियमो के प्रावधानो और सरकार के निर्देशो के अधीन रहते हुए पंचायत समिति या जिला परिषद को इस बात के लिए अधिकृत किया गया कि वे वर्ष मे

दो बार अर्थात् पहली जनवरी और पहली जुलाई को आगामी 6 महीने की अवधि मे प्रत्येक वर्ग के लिए प्रत्याशित रिक्त स्थानो की सख्या और भर्ती किये जाने वाले व्यक्तियो की सख्या निश्चित करेगी और आयोग को ससूचित करेगी।[22] उम्मीदवारो की आयु शैक्षणिक योग्यताए, अनुभव, चरित्र, शारीरिक योग्यता इत्यादि के बारे मे भी नियमो मे आवश्यक प्रावधान किया गया है और सामान्य योग्यताओ जैसे राष्ट्रीयता और आयु के सम्बन्ध मे प्रचलित सरकारी नियमो को इन सेवाओ हेतु अगीकार किये जाने की घोषणा की गयी है।[23]

राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद सेवा म निष्पक्ष भर्ती के लिए राज्य स्तर पर एक सेवा चयन आयोग गठित किया गया था जिसे आरम्भ मे राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद अधिनियम के अधीन नवम्बर, 1959 मे स्थापित किया गया था।[24] यद्यपि इसकी स्थापना की अधिसूचना 1961 मे ही जारी हो पायी थी। इसके पश्चात इस आयोग के कार्यों मे विस्तार किया गया और पश्चातवर्ती वर्षों म इसके कार्यो मे पचायत समिति तथा जिला परिषदो मे कर्मचारियो की भर्ती के अतिरिक्त नगर पालिकाओ मे अधीनस्थ एव मन्त्रालयिक कर्मचारियो की भर्ती का कार्य भी जोड दिया गया।[25] आयोग के कार्यों मे इस विस्तार के कारण आयोग का नाम भी परिवर्तित कर दिया गया और इसे "राजस्थान पचायत एव स्वायत्त शासन अधीनस्थ सेवा आयोग" के नाम से अभिहित किया गया।[26] इस आयोग मे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त दो सदस्य होते रहे हैं जिनकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा तीन वर्ष की अवधि के लिए की जाती थी। इन दो सदस्यो मे से एक सदस्य को कम से कम दस वर्ष की केन्द्रीय या राज्य की सरकारी सेवा का अनुभव होना आवश्यक माना गया। ये सदस्य सरकार की सक्रिय सेवा में या उसमे सेवानिवृत हो सकता था। नियुक्ति के लिए उसकी न्यूनतम आयु 35 वर्ष और अधिकतम 60 वर्ष रखी गयी थी। यह प्रावधान भी किया गया था कि इस प्रकार नियुक्त किये जाने वाले सदस्य आयोग मे 3 वर्ष की सेवा पूरी करने या 60 वर्ष की आयु पूरी करने, जो भी पहले हो, पर आयोग से सेवानिवृत होगा। उसकी प्रतिनियुक्ति पर कोई रोक नही लगायी गयी थी। आयोग के तीसरे सदस्य के रूप मे सम्बन्धित जिले की जिला परिषद के जिला प्रमुख का प्रावधान किया गया था।

आयोग का प्रमुख कार्यालय जयपुर मे स्थित था। इसका राज्य स्तर पर गठन अवश्य किया गया था किन्तु व्यवहार मे चयन की सारी प्रक्रिया जिले के स्तर पर ही सचालित की जाती थी। प्रत्येक जिले मे रिक्त पदो का जिलेवार

विज्ञापन जिला परिषद के द्वारा ही जारी किया जाता था किन्तु प्रत्याशियो से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे अपने आवेदन पत्र जयपुर स्थित कार्यालय मे ही प्रस्तुत करेंगे। व्यावहारिक स्थिति यह रही कि आयोग का अध्यक्ष या एक सदस्य एव सबंधित जिले का जिला प्रमुख मिलकर पचायत समिति एव जिला परिषद सेवा हेतु रिक्त पदो पर भर्ती का कार्य करते थे। इस आयोग को अन्त-जिला स्थानान्तरण करने का अधिकार भी प्रदान किया गया था।

आयोग की कार्य प्रणाली और जिलो मे उसके द्वारा सम्पादित चयन प्रक्रिया के बारे मे विभिन्न समितियो ने विचार किया और यह पाया कि जिस उद्देश्य के लिए आयोग का गठन किया गया था वह पूरा नही हो पाया है।[27] गिरधारी लाल व्यास समिति ने तो अपने प्रतिवेदन मे यहा तक अकित किया कि जयपुर और राज्य के समस्त जिलो के हमारे दौरे की प्रक्रिया मे न केवल जन प्रतिनिधियो ने अपितु कार्मिक सघो ने भी इस सेवा चयन आयोग की समाप्ति के बारे में सुझाव दिए। इस प्रक्रिया मे शिकायतकर्ताओ ने यह बताया कि रिक्त पदो पर आवेदन पत्र मागना, उनके लिए साक्षात्कार आयोजित करना और अन्त मे उसका परिणाम घोषित करना इत्यादि चरणो के सम्पादन मे आयोग ने अत्यधिक समय व्यतीत किया और कार्मिक सघो के सचालको ने एक स्वर से यह आरोप लगाया कि सेवा चयन आयोग इस समूची प्रक्रिया मे पक्षपात और भ्रष्टाचार से नही बच सका है। व्यास समिति ने जन साधारण और कार्मिक सघो द्वारा प्रस्तुत इन विचारो पर यद्यपि गम्भीरता से ध्यान दिया और यह अनुभव किया कि सेवाओ मे चयन की प्रक्रिया न केवल निष्पक्ष होनी चाहिए अपितु चयन करने वाला तन्त्र त्वरित भी होना चाहिए तथा उसकी कार्यप्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे जन साधारण मे उसकी सत्यनिष्ठा और ईमानदारी के बारे मे एक विश्वास का भाव पैदा हो। किन्तु जयपुर और राज्य के अन्य जिलो मे हमारे दौरे के दौरान यह अनुभव हुआ कि आयोग की चयन प्रक्रिया अत्यत विलम्बकारी और व्ययसाध्य रही है। समिति ने यह भी अकित किया कि आयोग के अध्यक्ष ने अपने साक्षात्कार मे यह बताया कि जिला प्रमुखो के द्वारा चयन की निष्पक्षता को विपरीत दिशा मे प्रभावित किया जाता रहा है। इसलिए व्यास समिति ने राज्य की पचायती राज सेवा मे निष्पक्ष चयन के लिए इस आयोग की समाप्ति का सुझाव दिया था और यह भी सुझाया था कि इस आयोग के स्थान पर द्विस्तरीय तत्र स्थापित किया जाना चाहिए। पहला तन्त्र जिला स्तर पर स्थापित किया जाये जिसे तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के रिक्त पदो पर भर्ती का काम दिया जाये तथा दूसरा तन्त्र राज्य स्तर पर भर्ती का काम करे जो द्वितीय

श्रेणी के अधिकारियों के अधिकारियों के अधिकारियों के चयन का कार्य करे। द्वितीय श्रेणी के इन अधिकारियों में विस्तार अधिकारियों को सम्मिलित किया गया तथा तृतीय श्रेणी में ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता, प्राथमिक स्कूलों के अध्यापक, कनिष्ठ लिपिक एवं वरिष्ठ लिपिक तथा इस प्रकार के अन्य पदों और चतुर्थ श्रेणी में चपरासियों तथा उनके समकक्ष पदों को सम्मिलित किया गया।[28]

द्वितीय श्रेणी की सेवा में कार्य करने वाले समस्त विस्तार अधिकारी, विकास अधिकारी, जिला स्तरीय अधिकारी और इसी प्रकार के समान पदों पर कार्य करने वाले अधिकारियों के लिए समिति ने यह सुझाव दिया कि उन्हें राज्य स्तरीय राजस्थान पंचायत समिति और जिला परिषद सेवा का अंग माना जाये और संभव हो तो उनकी वर्तमान प्रतिनियुक्ति प्रथा के स्थान पर राज्य स्तर पर एक संवर्ग बनाकर उस संवर्ग में से संस्थाओं में नियुक्ति दी जाये। ऐसा करना इसलिए आवश्यक समझा गया क्योंकि वर्तमान में प्रतिनियुक्ति पर आये हुए विस्तार अधिकारी पंचायती राज संस्थाओं के प्रति निष्ठा का भाव विकसित नहीं कर पाये और अपने मूल विभाग के प्रति ही उनकी निष्ठा बनी रही। इस कारण पंचायती राज संस्थाओं को प्रदत्त कार्यक्रमों के निष्पादन में प्रभावशीलता की कमी अनुभव होती रही है। समिति ने यह भी अनुभव किया कि पंचायत समितियों में जो विस्तार अधिकारी नियुक्त होते हैं उन पर विकास अधिकारी, जन प्रतिनिधियों तथा अपने पैतृक विभाग के अधिकारियों के नियन्त्रण का त्रिकोण बन गया है। यह स्थिति पंचायती राज संस्थाओं के लिए अत्यन्त दुखदायी और घातक रही है। समिति का विचार था कि इस स्थिति में तात्विक परिवर्तन आने की सम्भावना है यदि विस्तार अधिकारियों के पदों पर नियुक्ति के लिए राज्य स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला परिषद सेवा में ही एक संवर्ग स्थापित कर लिया जाये।[29] राज्य स्तरीय इस संवर्ग में भर्ती के लिए राज्य स्तर पर एक पंचायती राज सेवा आयोग स्थापित करने का सुझाव दिया जिसके तीन सदस्यों में से कम से कम दो सदस्य सेवा का अनुभव रखने वाले होने चाहिए।

व्यास समिति ने तृतीय श्रेणी की सेवाओं में भर्ती के लिए जिला स्तर पर एक जिला चयन मण्डल स्थापित करने का सुझाव भी दिया जिसका गठन इस प्रकार सुझाया गया

1	मुख्य कार्यकारी अधिकारी	अध्यक्ष
2.	सम्बन्धित जिला स्तरीय अधिकारी	सदस्य
3.	उप मुख्य कार्यकारी अधिकारी	सदस्य सचिव

समिति ने यह सुझाव भी दिया कि पंचायत समिति को रिक्त पदों पर अस्थाई नियुक्तियां करने का वर्तमान अधिकार जारी रहे किन्तु ऐसी नियुक्तियां करने के पूर्व जिला चयन मण्डल से अनापत्ति प्रमाण पत्र प्राप्त कर लिया जाना चाहिये।[30] समिति ने यह सुझाव भी दिया कि कृषि क्षेत्र में बढ़ रही तकनीकी आवश्यकताओं को देखते हुए ग्राम सेवकों के पदों पर कृषि स्नातकों की ही नियुक्ति दी जानी चाहिये और इन पदों पर मेधावी लोगों को आकर्षित करने के लिए इसकी वेतन श्रृंखला में भी सुधार किया जाय। इसी प्रकार समिति ने यह सुझाव भी दिया कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार पंचायत समिति में विकास अधिकारी को और जिला परिषद में उप मुख्य कार्यकारी अधिकारी को होना चाहिए।

सेवा चयन आयोग का विलोपन और जिला स्थापना समितियों का गठन

राजस्थान राज्य में पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न आयामों की समीक्षार्थ नियुक्त सादिक अली और गिरधारी लाल व्यास समिति के प्रतिवेदनों में सेवा चयन आयोग के कार्यकरण के सम्बन्ध में व्यक्त विचारों पर लगभग एक दशक से भी अधिक के विचार विमर्श के पश्चात राजस्थान राज्य की सरकार द्वारा 1987 में सेवा चयन आयोग का विलोपन कर दिया गया। इस सम्बन्ध में राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद (संशोधन विधेयक) 1987 और राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम 1959 में संशोधन करके धारा 86 की उप धारा 6 के स्थान पर नयी उपधारा प्रस्थापित की गयी है। जिसके अनुसार राजस्थान पंचायत एवं स्वायत्त शासन अधीनस्थ सेवा चयन आयोग का अस्तित्व नहीं रहा है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि उक्त सेवा चयन आयोग राजस्थान की पंचायती राज संस्थाओं एवं स्वायत्त शासन (नगरीय) संस्थाओं दोनों के लिए ही चयन कार्य करता था। किन्तु पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम में उक्त संशोधन के माध्यम से इन दोनों ही प्रकार की संस्थाओं में चयन के कार्य के लिए नयी व्यवस्थाएं की गयी हैं।

राजस्थान सरकार ने विलोपित सेवा चयन आयोग के व्यवहारिक कार्यकरण को ध्यान में रखते हुये पंचायती राज की संस्थाओं में कर्मचारियों के चयन के कार्य हेतु जिला स्थापना समितियों का गठन कर दिया है। उपरोक्त वर्णित संस्थाओं के माध्यम से सेवा चयन आयोग के स्थान पर प्रत्येक जिले के लिये

जिला स्थापना समिति का गठन किया गया है। इस प्रकार की जिला स्थापना समिति का गठन निम्नानुसार प्रस्तावित किया गया है

1.	जिला प्रमुख	अध्यक्ष
2.	कलेक्टर	सदस्य
3.	अपर/उप जिला विकास अधिकारी	सदस्य
4.	वरिष्ठ उप जिला शिक्षा अधिकारी	शिक्षा विभाग की भर्ती के सबध मे सदस्य।

इस सम्बन्ध मे घोषित नियमो और घोषणाओ मे कहा गया है कि सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति किसी पचायत समिति या जिला परिषद द्वारा, राज्य सरकार के इस निमित्त बनाये गये नियमो के अधीन जिला स्थापना समिति द्वारा चयनित व्यक्तियो म से की जायेगी। जिला स्थापना समिति के जो दायित्व घोषित किये गये है वे है

1. जिले मे पचायत समिति और जिला परिषद की सवा मे विद्यमान विभिन्न ग्रेडो और प्रवर्गों के पदो के लिए चयन राज्य सरकार के इस निमित्त बनाये गये नियमो के अनुसार करेगी।
2. अस्थायी नियुक्ति का आदेश विनियमित करेगा और एसी नियुक्ति को 6 माह से आगे बढाने के लिये आवश्यक अनुशसा करगी।
3. पदोन्नति के लिए व्यक्तियो की सूचिया विहित नीतियो से तैयार करेगी।

इस प्रकार राजस्थान की पचायत समितियो एव जिला परिषदो मे भर्ती के लिये 1959 मे गठित सेवा चयन आयोग के स्थान पर 1987 के उक्त सशोधन से प्रत्येक जिले मे जिला स्थापना समितियो का गठन किया गया है। इस सस्था के माध्यम से सरकार ने यह व्यवहारिक निर्णय लिया है कि पचायती राज की उच्च स्तरीय दोनो सस्थाओ के लिए कार्मिको के चयन कार्य जिला स्तर पर ही सम्पादित किया जाना चाहिए। राज्य सरकार ने यह निर्णय विलोपित आयोग की उस कार्यप्रणाली को ध्यान मे रखकर किया है जिसमे ऐसे आयोग का प्रावधान राज्य स्तर पर होने के बावजूद चयन का वास्तविक कार्य जिलो मे ही सम्पन्न होना था। 1987 मे घोषित इन जिला स्थापना समितियो न प्राय अब सभी जिलो मे कार्य करना आरम्भ कर दिया है।

पदोन्नति तथा स्थानान्तरण और भर्ती की प्रक्रिया

अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित उपरोक्त वर्णित सेवा नियमो मे यह प्राव-

धान भी किया गया है कि उच्चतर पदो पर ऐसे लोगो को भी नियुक्त किया जा सकेगा जो पदोन्नति के प्रयोजन से इन सेवाओ मे वरिष्ठता एव योग्यता के मानदण्डो पर खरे उतरते है। इस प्रकार की पदोन्नति के लिए उम्मीदवार का चुनाव करने मे उनकी तकनीकी अर्हताए, उनका चातुर्य, काम करने की शक्ति तथा बुद्धि, उनकी ईमानदारी तथा सेवा के उनके पूर्व रेकार्ड का ध्यान रखा जायेगा।[31] जब कभी भी सेवा की विभिन्न श्रेणियो तथा वर्गो मे रिक्त स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जाने हैं तब जिला स्थापना समिति या जिला परिषदो से अनुशसाएं आमन्त्रित की जायेगी। जिन व्यक्तियो को पदोन्नति दी जानी है या जिन्हे अधिक्रमित किया जाना है उनकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट तथा उनके सेवा सम्बन्धी अन्य रिकार्ड पर विचार करने के पश्चात उन व्यक्तियो की उच्च श्रेणी मे पदोन्नति हेतु जिलेवार सूची प्रकाशित की जायेगी और यदि किन्ही व्यक्तियो को पदावनत किया गया है तो उसके कारण भी बताये जायेंगे। इस प्रकार की पदोन्नति हेतु पात्रता का क्षेत्र वरिष्ठता एव योग्यता या केवल योग्यता या दोनो के आधार पर भरे जाने वाले रिक्त स्थानो की सख्या का पाच गुना होगा।[32]

किसी पचायत समिति या जिला परिषद को इस प्रकार की माग प्राप्त होने पर कि सेवा मे किसी पद पर पदोन्नति से या अन्य पचायत समिति या जिला से स्थानान्तरण से नियुक्ति के लिए सेवा का कोई सदस्य उपलब्ध नही है और वह पद उसके समान राज्य सेवा मे पद धारण करने वाले व्यक्ति के स्थानान्तरण द्वारा भरा जाना है, तो सबधित जिला अधिकारी ऐसे सरकारी कर्मचारी की सहमति द्वारा और सम्बन्धित विभागाध्यक्ष की अनुमति के बाद जिला स्थापना समिति को ऐसे व्यक्ति के स्थानान्तरण के लिए सिफारिश भेजेगा। जिला स्थापना समिति ऐसे व्यक्ति को सम्बन्धित पचायत समिति या जिला परिषद को आवटित करेगी और उसके पश्चात वह व्यक्ति राजस्थान पचायत समिति (विकास अधिकारियो, प्रसार अधिकारियो और अन्य अधिकारियो की प्रतिनियुक्ति की शर्तें) नियम 1959 मे वर्णित शर्तों पर उस पद पर नियुक्त किया जायेगा।[33]

अस्थायी नियुक्तियां

यदि किसी रिक्त पद का भरा जाना अत्यावश्यक रूप से अपेक्षित हो और उस अवस्था मे जबकि आयोग द्वारा चयनित कोई व्यक्ति उपलब्ध न हो तो 6 महीने की अवधि के लिए नियोजक प्राधिकारी द्वारा अस्थायी नियुक्ति की जा सकती है। इस प्रकार के रिक्त पद के लिए यदि सीधी भर्ती की जानी है तो

निकटतम नियोजन कार्यालय से अपेक्षित योग्यता रखने वाले व्यक्तियो के रिक्तियो की सख्या से कम से कम पाच गुना व्यक्तियो के नाम मंगाने होगे और उस सूची मे से नियोजन अधिकारी उपयुक्त उम्मीदवार का चयन करेगा। किन्तु यदि इस प्रकार के रिक्त स्थान को पदोन्नति द्वारा भरे जाने का प्रस्ताव है तो निम्न श्रेणियो मे से सबसे वरिष्ठ कर्मचारी को ऐसे पद पर नियुक्ति दी जा सकेगी। इस प्रकार की गयी नियुक्तिया एक वर्ष की अवधि से अधिक आयोग की सहमति के बिना जारी नही रखी जा सकेंगी। इस नियम के अन्तर्गत की गयी अस्थायी नियुक्ति जैसे ही आयोग द्वारा चुना गया उम्मीदवार उपलब्ध हो, समाप्त हो जायेगी।[34]

राजस्थान की पचायत समितियो एव जिला परिषदो मे चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के लिए भी उनकी भर्ती, पदोन्नति और सेवा के अन्य आयामों के लिए आवश्यक नियम घोषित किये हुए हैं।[35] चतुर्थ श्रेणी सेवा के लिए की जाने वाली भर्ती, अनुसूचित जाति, जन जाति के लिए आरक्षण, आयु, स्थानान्तरण, वेतन, अवकाश, भत्ते, पेन्शन इत्यादि आवश्यक नियम इन सेवा नियमो मे घोषित किये गये हैं।

पदोन्नति की सभावनाओ से सेवाओ को यद्यपि प्रोत्साहन मिलता है। अच्छे और कुशल कार्य को प्रोत्साहन देने के लिए सेवाओ की पदोन्नति के सम्बन्ध मे एक निश्चित और पूर्व निर्धारित नीति आवश्यक है। सेवाओ के सदस्य अपनी भावी पदोन्नति की उन सभावनाओ, जो उन्हे मिल सकती है का अनुमान लगाने की स्थिति मे होने चाहिये। पदोन्नति देने के लिए निष्पक्ष व्यवस्था भी आवश्यक मानी जाती है। इस सम्बन्ध मे पचायती राज की विभिन्न स्तरों की सस्थाओ मे किसी सुव्यवस्थित और सुचिंतित नीति के अभाव को देखते हुए सादिक अली समिति ने यह अभिशसा की थी कि पदोन्नति नीति और उससे सम्बन्धित सिद्धात राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किये जाने चाहिये। यद्यपि इस निर्धारित नीति के अनुरूप कर्मचारियो के वास्तविक निर्णय जिला स्तर पर जिला परिषद के द्वारा किये जाने चाहिये समिति का यह भी मत था कि जिले की सामूहिक वरिष्ठता सूची तैयार की जाय और पदोन्नति वरिष्ठता सूची के आधार पर वरिष्ठता एव योग्यता के सिद्धातो के अनुसार की चाहिये।[36]

इस समिति ने ग्रामीण प्रशासन की इन सस्थाओ मे कार्य करने वाले ग्रामसेवकों प्रसार अधिकारियो, अध्यापको एव विकास अधिकारियो की पदोन्नति के सम्बन्ध मे अपने सुझाव प्रतिवेदन मे अंकित किये थे। समिति ने यह सुझाव

दिया था कि सहकारिता प्रसार अधिकारियो के कम से कम 25 प्रतिशत पद ग्रामसेवकों मे से पदोन्नति के द्वारा भरे जाने चाहिए तथा कृषि प्रसार अधिकारियो के सम्बन्ध मे भी ग्रामसेवकों की पदोन्नति का प्रतिशत इसी अनुरूप बढ़ाया जाना चाहिए। समिति ने यह भी अंकित किया था कि ग्रामसेवकों को कृषि प्रसार अधिकारी के रूप मे पदोन्नत किये जाने की स्थिति मे उन्हे कृषि कालेजो मे लगभग 6 माह का अल्पकालीन प्रशिक्षण दिया जा सकता है। शिक्षा प्रसार अधिकारी के पदो पर पदोन्नति अध्यापकों मे से की जानी चाहिए ताकि शिक्षा विभाग मे सबसे नीचे के स्तर के ये कर्मचारी भी पदोन्नति की सभावनाओ से प्रेरित होकर अपना उत्साह बनाये रख सकें। इस उपाय से अध्यापकों को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा।[37] प्रसार अधिकारियो को पदोन्नति के उपलब्ध अवसरों के बारे मे समिति ने सन्तोष व्यक्त किया था। समिति का यह सुझाव था कि जिले मे ग्राम सेवकों और प्रसार अधिकारियो के लिए प्रतियोगिताएं आयोजित की जानी चाहिए तथा राज्य भर मे प्रथम और द्वितीय घोषित होने वाले अभ्यर्थियो को एक अग्रिम वेतन वृद्धि देकर उनके उत्साह मे वृद्धि की जा सकती है। इसी प्रकार की प्रतियोगिताए ग्रामीण क्षेत्रों मे कार्य करने वाले अध्यापकों के लिए भी आयोजित की जा सकती हैं और जिले मे प्रथम आने वाले अध्यापकों और राज्य स्तर पर प्रथम आने वाले अध्यापकों को एक अग्रिम वेतन वृद्धि दी जानी चाहिए। समिति ने उन विकास अधिकारियों को, जो श्रेष्ठ कार्य करते हैं, जिला परिषद मे वरिष्ठ पदो पर नियुक्त किये जाने की अभिशसा की थी। प्रतियोगिता आयोजित करने का सुझाव इस स्तर के अधिकारियो के लिए भी दिया गया था।

पदोन्नति के सम्बन्ध मे गिरधारी लाल व्यास समिति ने भी सादिक अली समिति के समान ही सुझाव दिए हैं। इस समिति ने भी यह मत व्यक्त किया था कि मिडिल स्तर तक की शिक्षा जिला परिषद को दे दिए जाने के पश्चात अध्यापकों के पदो में स्वत. वृद्धि हो जायेगी। पचायती राज की सस्थाओं मे मन्त्रालयिक सेवा और लेखा सेवा के कर्मचारियो की पदोन्नति हेतु उच्चतर पदो के सृजन का सुझाव भी व्यास समिति ने दिया था। इस समिति ने सहकारिता प्रसार अधिकारियो, विभिन्न निरीक्षकों, कृषि सहायकों इत्यादि के पदो पर 50 प्रतिशत भर्ती ग्राम स्तरीय कार्यकर्ताओ मे से पदोन्नति द्वारा किये जाने की अभिशसा की थी। इसी प्रकार टीकाकरण कर्मचारियो, कम्पाउण्डर्स और कनिष्ठ लिपिकों की पदोन्नति के लिए उच्च पदो के अधिक सख्या मे सृजन का सुझाव दिया गया था। समिति ने यह अभिशसा भी की कि परिश्रमी और

निष्ठावान विकास अधिकारियों को जिला परिषदों में उप मुख्य कार्यकारी अधिकारी के पदों पर पदोन्नत किया जाना चाहिए ।[38]

राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद सेवाओं में अनुशासन बनाये रखने के लिए भी कुछ नियम बनाये गये हैं ।[39] पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों में कार्य करने वाले कर्मचारियों के अनुशासन हेतु निर्मित ये नियम राजस्थान असैनिक सेवा (वर्गीकरण, नियन्त्रण एवं अपील) नियमों के आधार पर ही बनाये गये हैं । इन नियमों में कर्मचारियों के निलम्बन, दण्ड के प्रकार, साधारण दण्ड की प्रक्रिया, संयुक्त जांच, विशेष मामलों की प्रक्रिया, अपीलों की विषय सामग्री, उसका प्रस्तुतिकरण, सम्प्रेषण तथा अपील को रोकना और उसकी क्रियान्विति इत्यादि की विस्तृत व्याख्या की गयी है । इसी प्रकार राजस्थान की पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों में कर्मचारियों के सेवा निवृत्ति लाभ के लिए भी राजस्थान पंचायत समिति तथा जिला परिषद (सवर्ग एवं पेन्शन भोगी आचरण) नियम निर्मित किये गये हैं ।[40] राज्य सरकार ने ये नियम राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम 1959 की धारा 79 की उपधारा 1 तथा अन्य सक्षमता प्रदान करने वाले प्रावधानों में प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए बनाये हैं ।

प्रशिक्षण

आधुनिक लोककल्याणकारी सरकारों के सभी स्तरों के समक्ष लोगों की अपेक्षाओं के अनुरूप खरा उतरने की गम्भीर चुनौती विद्यमान है । सभी के समक्ष उपस्थित इस चुनौती के कारण शासन और प्रशासन दोनों के लिए निरन्तर यह चिन्ता और चिन्तन का विषय है कि लोगों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं का प्रभावी और कुशल सम्पादन कैसे किया जाये । वस्तुत इस गम्भीर चुनौती का हल प्रशासन तन्त्र की क्षमता में, प्रशिक्षण के माध्यम से, वृद्धि द्वारा किया जा सकता है । इसीलिए प्रशासन के सभी स्तरों पर विशेष तौर से पंचायती राज की उन संस्थाओं, जो विकास कार्यक्रमों के निष्पादन में गम्भीर भूमिका निभाती हैं, के लिए प्रशिक्षण और भी महत्वपूर्ण बन जाता है । भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं नेहरू ने यह विचार व्यक्त किया था कि "सामुदायिक विकास कार्यक्रम", जिसका लक्ष्य सम्पूर्ण समाज की रचना को परिवर्तित करना और हमारे विचारों और कार्यों में परिवर्तन करना है. यदि कभी अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल होते हैं तो वह इसलिए नहीं कि इसके लिए धन की कमी है अपितु सम्भवतः इसलिए होगा कि हमारे पास प्रशिक्षित कार्मिकों की कमी है ।[41] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रणेता इस तथ्य से भली भांति

अवगत थे कि ग्रामीण विकास के कार्यक्रमो के लिए कर्मचारियो के प्रशिक्षण की अपरिहार्य आवश्यकता है।

स्थानीय संस्थाओ मे कार्य करने वाले कर्मचारियो एव निर्वाचित पदाधिकारियो के प्रशिक्षण के तीन कारण बताये गये हैं :

1 प्रथम तो यह कि इन संस्थाओ मे कार्य करने वाले कर्मचारी सरकार के अन्य स्तरो के कर्मचारियो की तुलना मे शक्ति, वेतन एव सेवा शर्तों की दृष्टि मे हितकर या प्रतिकूल परिस्थितियो में होते हैं। यही स्थिति इन संस्थाओ मे कार्य करने वाले निर्वाचित पदाधिकारियो के सन्दर्भ मे भी दिखाई देती है। इस कारण इन संस्थाओ मे कार्य करने वाले कर्मचारियो एव निर्वाचित पदाधिकारियो की गुणवत्ता मे सुधार के लिए प्रशिक्षण एक आवश्यक विधा है।

2. इन संस्थाओ मे कार्य करने वाले कर्मचारी एव पदाधिकारी प्राय. अपन प्रभावित नागरिको के दैनिक सम्पर्क मे आते हैं इस कारण सरकारी एव गैर सरकारी पदाधिकारियो को अपने पर्यावरण एव आवश्यकताओ के प्रति सचेष्ट होने के लिए प्रशिक्षण को आवश्यक माना जाता है।

3. इन संस्थाओ के निर्वाचित एव गैर निर्वाचित पदाधिकारी परिषद और उसकी समितियो मे एक टीम अथवा समूह के रूप में कार्य करते हैं इसलिए उनमे परस्पर एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध विकसित होना आवश्यक होता है। यह उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि इन दोनो प्रकार के पदाधिकारियो की पारस्परिक भूमिका को अधिक दीर्घजीवी और स्पष्ट मानदण्डो पर आधारित करने मे प्रशिक्षण की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

प्रशिक्षण के माध्यम से स्थानीय संस्थाओ मे कार्य करने वाले पदाधिकारियो की क्षमताओ की वृद्धि का यह उपाय आधुनिक युग मे अधिक उत्साह से अपनाया जा रहा है। आम तौर पर प्रशिक्षण की जो विधियां प्रचलित हैं उनमे से सेवा कालीन प्रशिक्षण की विधि को सबसे अधिक मितव्ययी, लाभकारी और प्रभावी माना जाता है। स्थानीय संस्थाओ के पास चूंकि साधनो का अभाव होता है इसलिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की विधा को अधिक मात्रा मे अपनाया जाता है।[43]

ग्रामीण स्थानीय शासन की इकाइयों में उपरोक्त प्रशिक्षण उतना ही महत्वपूर्ण कार्मिक आयाम है जितना कि योग्यता के आधार पर कर्मचारियों को सेवा में भर्ती करने का कार्य महत्वपूर्ण है। आज स्थानीय प्रशासन अनेक जटिल समस्याओं का सामना कर रहा है इसलिए उन समस्याओं के समुचित समाधान के लिए पूर्ण प्रशिक्षित और दक्ष कार्मिकों की आवश्यकता अधिक तेजी से अनुभव की जा रही है। इसी कारण कर्मचारी के सेवा प्रवेश पूर्व प्राप्त शिक्षण और ज्ञान को पर्याप्त नहीं माना जाता और इस बात की आवश्यकता गम्भीरता से अनुभव की जा रही है कि कर्मचारियों के सेवा में प्रवेश के बाद उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए स्वतन्त्र प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए ताकि ये प्रशिक्षण संस्थाएं स्थानीय संस्थाओं में काम करने वाले कर्मचारियों में नेतृत्व, आचरण और निर्णय क्षमता का विकास कर सकें तथा ये प्रशिक्षण संस्थाएं इन संस्थाओं के शोध-अनुसंधान और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के केन्द्र के लिए विकसित हो सकें। ऐसी प्रशिक्षण संस्थाओं को अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों का नियोजन निम्नांकित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर करना चाहिए [44]

1. कॉलेज और विश्वविद्यालयों के उन क्षेत्रों जहां स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में रुचि हो, को स्थानीय शासन की सेवाओं के प्रति आकृष्ट करना।
2. स्थानीय प्रकृति की प्रशासनिक समस्याओं के प्रति जनता में चेतना उत्पन्न करना और उन समस्याओं के समाधान के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों की योजना बनाना।
3. स्थानीय प्रशासन के संचालन में उन्नत प्रशासनिक तकनीक को अपनाने की प्रक्रिया को तीव्र करना।
4. स्थानीय स्तर पर व्यवस्थित आयोजना और प्रशासनीय गतिविधियों के मूल्यांकन के लिए उचित मानकों का विकास, तथा
5. प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विकास और उनका संचालन।

राजस्थान की पचायती राज संस्थाओं में प्रशिक्षण

राजस्थान में प्रारम्भ से ही सामुदायिक विकास कार्यक्रम और उसके पश्चात पचायती राज की संस्थाओं में समुचित प्रशिक्षण को पर्याप्त महत्व दिया गया है। राज्य सरकार ने यह भलीभांति अनुभव किया है कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रणाली में, जिसका उद्देश्य निर्वाचित प्रतिनिधियों को सत्ता का हस्तान्तरण करना है, उन प्रतिनिधियों के लिए उचित प्रशिक्षण अत्यन्त आव-

श्यक है। इसी के साथ सरकार ने इन संस्थाओं में संलग्न सेवाओं के लिए भी परिवर्तित परिवेश में प्रशिक्षण को आवश्यक समझा है।[44] 1959 में जब पंचायती राज की संरचना का शुभारम्भ राजस्थान में किया गया तब प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण सेवाओं का आयोजन किया गया था। यही नहीं ग्रामीण जनता तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों को पंचायती राज के उद्देश्यों के बारे में शिक्षित करने के लिए कदम उठाये गये और इसके अन्तर्गत प्रत्येक पंचायत क्षेत्र में प्रसार अधिकारी या एक सामाजिक कार्यकर्ता को गावों में भेजा गया जिसने पंचायती राज की योजना और व्यवस्था को समझाने के लिए गावों में सामान्य सभाओं का आयोजन किया। इसी प्रकार उदयपुर में मन्त्रियों, प्रमुखों, प्रधानों तथा सामुदायिक विकास व पंचायती राज से सम्बन्धित राज्य एवं केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों के शिविर भी आयोजित किये गये। इन संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों तथा ग्रामीण नेताओं के प्रशिक्षण के लिए भी विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की उपयोगिता के सन्दर्भ में भी विचार व्यक्त किये गये हैं और इसी क्रम में एक अच्छे प्रशिक्षण कार्यक्रम के निम्नांकित तत्वों को रेखांकित किया गया है :[45]

1. प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रशिक्षणार्थियों को अपने कर्त्तव्य पूर्णतः निभाने के लिए तैयार करना होना चाहिए। प्रशिक्षण का पर्याप्त सैद्धान्तिक आधार होने के साथ ही वह व्यावहारिक भी होना चाहिए।

2. प्रशिक्षण कार्यक्रम रूचिकर एवं सार्थक होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति प्रशिक्षण के लिए अच्छा वातावरण, पुस्तकालय, वाचनालय एवं मनोरंजन की सुविधाएं इत्यादि सुलभ कराके की जा सकती है। प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण कार्यक्रम की ओर स्वतः अपने आपको आकृष्ट अनुभव करें ऐसा वातावरण सृजित किया जाना चाहिए।

3. प्रशिक्षण कार्यक्रम से प्रशिक्षणार्थियों में पंचायती राज संस्थाओं एवं इनमें कार्य करने वालों के प्रति सही दृष्टिकोण के निर्माण में सहायता मिलनी चाहिए।

ग्राम सेवक एवं पदेन सचिव ग्राम पंचायत का प्रशिक्षण

राजस्थान में पहले ग्रामसेवक और पंचायत समिति के सचिव के पद पृथक थे किन्तु अब इन दोनों पदों को एक कर दिया गया है। राजस्थान में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत वर्ष में ग्राम सेवकों के लिए प्रशिक्षण की सार्थक आवश्यकता सबसे पहले अनुभव की गयी। यही कारण है कि पंचायती राज संस्थाओं

मे ग्रामसेवक के प्रशिक्षण के लिए सबसे पहले प्रशिक्षण सस्थाओ की स्थापना के कदम उठाये गये। ग्राम सेवक ऐसा कार्यकर्त्ता होता है जो ग्रामीण जनता के सर्वाधिक निकट सम्पर्क मे रहकर कार्य करता है। इसीलिए इनके प्रशिक्षण की गहन आवश्यकता अनुभव की गयी और प्रारम्भ मे उनका प्रशिक्षण जो केवल 6 माह के लिए होता था अब 2 वर्ष का कर दिया गया है।

सन् 1961 मे ग्राम सेवको को उच्च शिक्षा और उच्च प्रशिक्षण के लिए कृषि महाविद्यालयों और प्रशिक्षण केन्द्रो मे भेजने की व्यवस्था प्रारम्भ की गयी। कतिपय ग्रामसेवको को पशु चिकित्सा मे स्नातक डिग्री के अध्ययन के लिए भी भेजा गया। किन्तु कालान्तर मे ऐसी योजनाए जारी नही रह सकी और आर्थिक कठिनाइयो के कारण राज्य सरकार ने प्रशिक्षण के इस व्यापक कार्यक्रम को प्राय बन्द कर दिया। इस स्थिति का प्रमुख कारण यह भी था कि नयी कृषि विस्तार योजना के अन्तर्गत कृषि प्रसार का सम्पूर्ण कार्य कृषि विभाग ने अपने हाथ मे ले लिया और इस हेतु ग्राम विस्तार कार्यकर्ताओ की नियुक्तिया की गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्राम विस्तार कार्यकर्ताओं के नये पदो का सृजन किया गया और इन पदो पर तीन वर्ष से अधिक समय से कार्यरत ग्राम पचायत के सचिवो की छटनी (स्क्रीनिंग) करते हुए इस पद पर नियुक्त किया गया है। ग्रामसेवको को भी इन पदो पर समायोजित किया गया। ग्राम सेवक तो पहले से ही 2 वर्ष का सेवा पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त किये हुए थे। इसके अतिरिक्त नव नियुक्त ग्राम सेवक एव पटेल सचिव ग्राम पचायत को राज्य सरकार द्वारा एक समिति की अनुशसा के आधार पर 6–6 माह का प्रशिक्षण दिया गया है। यह प्रशिक्षण जोधपुर के पास मण्डोर प्रशिक्षण केन्द्र मे दिया गया है। राज्य सरकार ने इस प्रशिक्षण को 6 माह से बढ़ाकर एक वर्ष करने की योजनाए भी बनायी है।[17]

ग्रामसेविका, अध्यापक और महिला प्रशिक्षण

1970 के दशक मे राजस्थान मे कोटा और मण्डोर मे ग्रामसेवको के प्रशिक्षण के दो केन्द्र थे जिनमे से कोटा केन्द्र को 1975 मे बन्द कर देने के कारण केवल मण्डोर प्रशिक्षण केन्द्र ही चल रहा है। राजस्थान मे ग्रामसेवको के पद समाप्त कर दिये जाने के पश्चात प्राथमिक शालाओ की महिला अध्यापिकाओ को ही मण्डोर प्रशिक्षण केन्द्र मे प्रशिक्षण देने की व्यवस्था चल रही है। ग्राम स्तर पर जो महिला कार्यकर्ता और सेविकाए कार्यशील हैं उनके भी अल्प अवधि के प्रशिक्षण कार्यक्रम इस केन्द्र में आयोजित किये जाते हैं।

हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोकप्रशासन संस्थान, जयपुर/उदयपुर

यह सर्वविदित है कि राजस्थान मे हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन सस्थान जयपुर और इसकी उप शाखा उदयपुर राज्य स्तरीय लोक सेवको के प्रशिक्षण के क्षेत्र मे एक महत्वपूर्ण भूमिका का सम्पादन कर रही है। यह सस्थान 1982–83 के पश्चात से पचायती राज के क्षेत्र मे कर्मचारियो और जन प्रतिनिधियो को प्रशिक्षण करने के लिए अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रमो का सचालन कर रहा है। उदयपुर स्थित सामुदायिक विकास और पचायती राज सस्थान द्वारा जो कार्य सम्पादित किया जा रहा था उन कार्यों को अब हरिश्चन्द्र माथुर सस्थान को सौंप दिया गया है और सामुदायिक विकास सस्थान अब केवल ग्रामीण विकास अध्ययन केन्द्र के रूप मे कार्यशील है। जयपुर स्थित लोक प्रशासन सस्थान मे भी ग्रामीण विकास अध्ययन केन्द्र की स्थापना की गयी है तथा भारत सरकार से इस अध्ययन केन्द्र के सुदृढीकरण के लिए कुछ वर्षों से सहायता मिल रही है। अब ग्रामीण स्थानीय शासन की इन इकाइयो-पचायत समिति तथा जिला परिषद के जन प्रतिनिधियो तथा कर्मचारियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था लोक प्रशासन सस्थान द्वारा की जा रही है। ग्रामस्तरीय जन प्रतिनिधियो तथा राज्य कर्मियो के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व यद्यपि ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभागो को दिया गया है किन्तु व्यवहार मे इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु अब जयपुर स्थित इन्दिरा गाधी पचायती राज एव ग्रामीण विकास सस्थान नूतन भूमिका निष्पादित कर रहा है।

जब से राज्य सरकार ने अधिकाश पचायत समितियो मे विकास अधिकारियो के रूप मे राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारी नियुक्त करने का निर्णय लिया है तब से नव नियुक्त ऐसे विकास अधिकारियो को पचायती राज की सस्थाओ से सम्बन्धित 15 दिवसीय आगमन प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन हरिश्चन्द्र माथुर प्रशिक्षण सस्थान द्वारा जयपुर मे किया जाता है। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम मे पचायत समितियो मे नियुक्त किये जाने वाले राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो को राजस्थान से सम्बन्धित भौगोलिक और आर्थिक विकास से सम्बन्धित जानकारी के अलावा पचायती राज और ग्रामीण विकास के दायित्वो से अवगत कराया जाता है और उन्हे इस हेतु तैयार किया जाता है कि वे विकास के श्रेष्ठ सस्थान के रूप मे पचायत समितियो का प्रशासनिक नेतृत्व कर सकें।[48] इसके अतिरिक्त भारत सरकार एव राज्य सरकार की सहायता से यह सस्थान विभिन्न स्तरो के अधिकारियो तथा जन प्रतिनिधियो के

लिए अल्प अवधि के प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा सगोष्ठियो का समय-समय पर आयोजन करता रहता है।

इन्दिरा गाधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास सस्थान

राजस्थान मे पचायती राज के क्षेत्र मे अध्ययन-अध्यापन, प्रशिक्षण और अनुसन्धान के क्षेत्र मे पहल करने एव तत्सम्बन्धी कार्य करने के लिए 1984-85 मे इन्दिरा गाधी पचायती राज एव ग्रामीण विकास सस्थान की स्थापना की गयी है। राजस्थान मे राज्य स्तर पर ही नही बल्कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत मे पचायती राज की एक स्तरीय सस्था के रूप मे इस सस्थान ने अपना एक विशिष्ट स्थान इस अल्प अवधि मे बना लिया है। यह सस्थान पचायती राज की सस्थाओ मे सरकारी एव गैर सरकारी अधिकारी तथा जन प्रतिनिधियो के प्रशिक्षण के लिए कार्यक्रमो का आयोजन करने लगा है। पचायत समितियो के विकास अधिकारियो तथा प्रधानो जिला परिषदो के प्रमुखो, सरपचो एव विभागीय अधिकारियो, जिला परिषद के कार्यकारी अधिकारी तथा पचायत समितियो के पशुपालन, सहकारिता, कृषि एव पचायत शिक्षा तथा इसी प्रकार के अन्य प्रसार अधिकारियो और लेखाकार, कनिष्ठ लेखाकार, सहायक अभियन्ता एव अन्य किस्म के अधिकारियो तथा कर्मचारियो के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमो का नियोजन और निरूपण यह सस्थान करने लगा है। राज्य सरकार की यह अभिलाषा है कि यह सस्थान पचायती राज से सम्बन्धित विभिन्न अधिकारियो तथा कर्मचारियो एव स्थानीय जन प्रतिनिधियो के उचित समन्वय और ग्रामीण विकास के प्रति रूझान विकसित करने के लिए एक आदर्श सस्थान के रूप मे विकसित हो। इन्ही उद्देश्यो को ध्यान मे रखते हुए यह सस्था पचायती राज एव ग्रामीण विकास पर कभी तीन दिवसीय, कभी एक सप्ताह तथा कभी कभी एक पखवाडे के प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन करती रही है। यह सस्थान पचायती राज सस्थाओ मे नियुक्त होने वाले नवीन अधिकारियो या नवीन जन प्रतिनिधियो के लिए 15 दिवसीय आगमन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है तथा इसी प्रकार पूर्व मे जो अधिकारी तथा जन प्रतिनिधि आगम प्रशिक्षण कार्यक्रम से लाभान्वित हो चुके हैं उनके लिए 3 दिवसीय संगोष्ठियो और पुनश्चर्या प्रशिक्षण आयोजित करने का प्रयत्न करता है। यह सस्थान निरन्तर पचायती राज एव ग्रामीण विकास के क्षेत्र मे, अपने नाम के अनुरूप, अध्ययन-अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण के सवर्द्धन के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। इस सस्थान मे भारतीय प्रशासनिक सेवा, राजस्थान प्रशासनिक सेवा और राजस्थान लेखा सेवा आदि के विभिन्न अधिकारी प्रतिनियुक्ति पर भेजे गये हैं और सरकार यह चाहती है कि

एक उत्कृष्ट प्रशिक्षण और अनुसन्धान सस्थान के रूप मे यह अपनी ख्याति अर्जित करे।[49]

राजस्थान मे हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन सस्थान तथा इन्दिरा गाधी पचायती राज एव ग्रामीण विकास सस्थान दोनो ही इस बात का प्रयत्न कर रहे है कि पचायती राज की सस्थाओ मे जो नियन्त्रक अधिकारी नियुक्त हैं चाहे वे जिलाधीश, विकास अधिकारी, मुख्य कार्यकारी अधिकारी, प्रसार अधिकारी हो और चाहे विभिन्न स्तरो के जन प्रतिनिधि हो उन सब के मध्य परस्पर सौहार्द और समन्वय स्थापित किया जाय। सस्थान अपने द्वारा आयोजित सगोष्ठियो से पचायती राज सस्थाओ के स्वशासन और सरचना, पचायती राज के आर्थिक विकास के विभिन्न पक्षो, राजस्थान की भौगोलिक परिस्थितियो और पर्यावरणीय चुनौतियो तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमो और उनसे सम्बन्धित सम्यागत ढाचे और न्यूनतम आवश्यकताओ तथा राज्य सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिए चलाये जा रहे शैक्षिक, चिकित्सा सम्बन्धी और अन्य कार्यक्रमो की समस्याओ एव समाधान से सम्बन्धी चर्चा को प्रोत्साहन देता है। इस प्रकार की सगोष्ठियो मे समूह चर्चा पर विशेष बल दिया जाता है। गोष्ठियो मे सम्भागियो की सख्या जब अधिक होती है तो उसे विभिन्न छोटे छोटे कार्यकारी दलो मे विचार विमर्श के पश्चात जो सर्वश्रेष्ठ बिन्दु उभरकर सामने आता है उन पर पूरी गोष्ठी मे विचार विमर्श और बहस को प्रोत्साहन दिया जाता है। समीक्षकों की ऐसी मान्यता है कि अधिकारियो एव जन प्रतिनिधियो के लिए आयोजित यह सामूहिक प्रशिक्षण कार्यक्रम बहुत उपयोगी सिद्ध हुए है। उनका ऐसा मानना है कि इन सगोष्ठियो के माध्यम से अधिकारी और जन प्रतिनिधियो को न केवल एक दूसरे को समझने का अवसर मिलता है अपितु एकजुट होकर कार्य करने की प्रेरणा भी मिलती है।[50]

ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय संस्थान

पचायती राज मे कार्यरत कर्मचारियो और इन सस्थाओं मे चुने हुए *जन प्रतिनिधियो* को *प्रशिक्षण प्रदान* करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर भी एक प्रशिक्षण सस्थान की स्थापना 1958 मे मंसूरी मे की गयी थी। 1964 मे यह संस्थान मसूरी से हैदराबाद स्थानान्तरित कर दिया गया और उसके एक वर्ष पश्चात उसका एक रजिस्ट्रीकृत सस्थान के रूप मे पजीकरण कर लिया गया। यह सस्थान ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय सस्थान के नाम से जाना जाता है। इस सस्थान की स्थापना अग्रलिखित उद्देश्यो को आधार बनाकर की गयी थी।[51]

1. सरकारी कर्मचारियो एव गैर सरकारी कार्यकर्ताओ की सामुदायिक विकास और पचायती राज के सिद्धान्तो तथा उद्देश्यो के बारे मे प्रशिक्षण के लिए शीर्षस्थ सस्था के रूप में कार्य करने के लिए।
2. देश के विभिन्न भागो के प्रशिक्षण केन्द्रो का शैक्षणिक मार्गदर्शन और प्रशिक्षको का प्रशिक्षण।
3. सामुदायिक विकास कार्यक्रम और इसी प्रकार के अन्य कार्यक्रमो के माध्यम मे सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन को महत्व देते हुए समाज विज्ञान मे अध्ययन और अनुसधान को प्रोत्साहन।
4. सामुदायिक विकास और पचायती राज सम्बन्धी सूचना के लिए सूचना केन्द्र के रूप मे कार्य करना।

यह सस्थान इस क्षेत्र मे प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य सरकार को परामर्श देने का कार्य करता है। इसी क्रम मे यह सस्थान सरकारी और गैर सरकारी दोनो प्रकार के लोगो को राष्ट्रीय स्तर पर प्रशिक्षण का कार्य भी सम्पादित करता है। इस संस्थान द्वारा विनिर्मित पाठ्यक्रमो का मुख्य उद्देश्य न केवल सामुदायिक विकास और पचायती राज की विचारधारा को आगे बढाना है बल्कि इस क्षेत्र मे कार्यरत कर्मचारियो के अनुभवो का सवर्द्धन करते हुए उनके विचारो का आदान-प्रदान भी यह सभव बनाता है। सस्थान द्वारा जो प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं उनके माध्यम से पचायती राज मे कार्यरत कर्मचारियो और जन प्रतिनिधियो मे विकास के प्रति एक नूतन दृष्टि विकसित की जाती है।

प्रशिक्षण से सम्बद्ध समस्याए

पचायती राज की सस्थाओ मे कार्य करने वाले कर्मचारियो एव निर्वाचित जन प्रतिनिधियो के प्रशिक्षण के जो कार्यक्रम राजस्थान मे तृतीय पचवर्षीय योजना के काल मे प्रारम्भ किये गये थे वे आगे जारी नही रह सके और प्रशासनिक व्यय मे मितव्ययता के नाम पर उनमे से अधिकाश प्रशिक्षण केन्द्र पश्चात्वर्ती वर्षों मे बन्द कर दिए गये। गिरधारी लाल व्यास समिति ने भी अपने प्रतिवेदन मे सरकार के इस प्रकार के निर्णय की आलोचना की है। समिति ने इस बात पर भी विचार किया कि इस प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्रो का गैर सरकारी सस्थाओ द्वारा सचालन कितना उपयोगी हो सकता है। समिति विचार विमर्श के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुचा कि पचायती राज के क्षेत्र मे प्रशिक्षण देने का कार्य सरकारी अभिकरणो की तुलना मे गैर सरकारी अभिकरणों द्वारा अधिक

प्रभावी तरीके से नही किया जा सकता है। इस प्रकार की सस्थाओ पर विकास विभाग भी अपना प्रभावी नियन्त्रण नही रख पाता इसलिए व्यास समिति ने यह अभिशसा की थी कि ऐसे प्रशिक्षणकेन्द्रो को सरकारी क्षेत्र मे ही ले लिया जाना चाहिए।[52] राज्य सरकार ने इस अभिशसा की पालना की दिशा मे कोई कार्यवाही पश्चातवर्ती वर्षो मे नही की है और अब स्थिति यह है कि प्रशिक्षण का यह कार्य गैर सरकारी क्षेत्र मे लगभग बन्द हो गया है। यद्यपि इन्दिरा गाधी पचायती राज एव ग्रामीण विकास सस्थान की स्थापना के पश्चात् प्रशिक्षण के क्षेत्र मे सरकारी प्रयत्नो को एक निर्णायक गति मिली है।

प्रशिक्षण के क्षेत्र मे परिव्याप्त समस्याओ मे सबसे बडी समस्या सुयोग्य प्रशिक्षको के अभाव की है। प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता बडे-बडे भवनो के निर्माण और आधुनिक उपकरणो की उपलब्धि से ही सम्भव नही है अपितु प्रशिक्षण का स्तर और प्रभावशीलता उन प्रशिक्षको की योग्यता, दक्षता और ज्ञान पर निर्भर करती है जो प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। भारत भर मे यह समस्या सभी क्षेत्रो मे अनुभव की जाती है कि प्रशिक्षको को कैसे और कहाँ उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये। पचायती राज के क्षेत्र मे यह समस्या और भी जटिलता से अनुभव की गयी है। इस समस्या के समाधान के लिए हैदराबाद मे ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय सस्थान और नीलोखेरी मे प्रसार शिक्षा सस्थान मे विभिन्न राज्यो के प्रशिक्षण केन्द्रो के प्राचार्यों और अन्य सहयोगी प्रशिक्षको के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी है। 1965 से पूर्व दिल्ली मे भी पचायती राज पर प्रशिक्षण और शोध के लिए एक केन्द्रीय सस्थान था किन्तु उसके अवसायन के पश्चात् पचायती राज के प्रशिक्षण कार्यक्रम की गति अवरुद्ध हुई थी। राजस्थान मे प्रशिक्षको के प्रशिक्षण के लिए उदयपुर मे विशेष व्यवस्था की गयी है। राज्य सरकार राज्य के प्रशिक्षको को प्रशिक्षण हेतु नीलोखेरी मे प्रसार शिक्षा सस्थान मे भी भेजती है और उच्च प्रशिक्षण तथा अनुसधान के लिए हैदराबाद मे ग्रामीण विकास के राष्ट्रीय सस्थान मे भी विभिन्न पाठ्यक्रमो मे भेजा जाता है। यही नही, यदि विदेशो मे भी इस प्रकार के अल्पावधि प्रशिक्षण कार्यक्रमो का आयोजन होता है तो राज्य सरकार अपने प्रशिक्षको को यथासम्भव उनमे अनुभव प्राप्त करने के लिए भेजती है।

प्रशिक्षण कार्यक्रम के सुधार हेतु प्रस्ताव

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है पचायती राज की सस्थाओ से जुडे हुए कर्मचारियो और राजनीतिज्ञो के प्रशिक्षण के लिए पंचायती राज के प्रारम्भिक दिनो में राजस्थान मे सरकारी स्तर पर पर्याप्त ध्यान दिया गया था।

किन्तु इस सन्दर्भ मे पश्चातवर्ती वर्षों मे सरकारी निर्णय विषादपूर्ण रहे हैं, क्यो कि मितव्ययता के नाम पर राजस्थान सरकार ने इस क्षेत्र मे अनेक प्रशिक्षण केन्द्रो को बन्द कर दिया। मानव ससाधन के अधिकतम विकास और उपयोग को सुनिश्चित करने मे प्रशिक्षण की अप्रतिम भूमिका होती है। इस दृष्टि से पचायती राज के क्षेत्र मे राजस्थान मे प्रचलित वर्तमान प्रशिक्षण कार्यक्रम अत्यन्त न्यून हैं। स्थिति यह है कि जो प्रशिक्षण केन्द्र और प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहे हैं उनमे उपलब्ध सुविधा और साधनो का भी पूर्ण उपयोग नही हो रहा है। यह भी अनुभव किया गया है कि राज्य स्तर पर अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान जयपुर/उदयपुर व नवीनतम इन्दिरा गाधी पचायती राज एव ग्रामीण विकास संस्थान के प्रशिक्षण कार्यक्रमो मे भी समन्वय का कोई आधारभूत ढाचा विकसित नही किया जा सका है। प्रशिक्षण कार्यक्रम को अधिक उपयोगी बनाने के बारे मे विभिन्न समितियो और अध्ययन दलो द्वारा अनेक सुझाव दिए गये हैं। इन सुझावो के साराश को यहा अभिव्यक्ति दी जा रही है :

1 प्रशिक्षण कार्यक्रमो को अधिकतम प्रभावशील बनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण केन्द्रो पर प्रशिक्षण देने के लिए ऐसे प्रशिक्षको की नियुक्ति की जाये जिसे इस विधा मे व्यक्तिगत रुचि हो और वे प्रशिक्षण के प्रति पूर्ण लगन और सत्य निष्ठा से कार्य करें। यह सुझाव भी दिया गया है कि प्रशिक्षको के चयन मे अन्तिम निर्णय राज्य के विकास विभाग का ही होना चाहिए।

2 ऐसे प्रशिक्षण केन्द्रो मे जो प्रशिक्षक नियुक्त किये जायें इन्हे नि शुल्क आवासीय सुविधा और कठिन परिश्रम के लिए निर्धारित शुल्क तथा उच्च वेतन जैसे आकर्षक प्रस्ताव किये जाने चाहिए जिनके प्रति आकृष्ट होकर वे भी प्रशिक्षण सस्थानो मे अपनी योग्यतानुसार योगदान कर सकें।

3. प्रशिक्षण हेतु विनिश्चित पाठ्यक्रमो का प्रति पाच वर्ष पश्चात नवीनीकरण किया जाना चाहिए।

4 जन प्रतिनिधियो और पदाधिकारियो को प्रशिक्षण ऐसे समय दिया जाना चाहिए जब ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषि का कार्य अधिक नही होता है।

5 प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो को पर्याप्त रुचिकर बनाया जाना चाहिए। कार्यक्रम के दौरान मनोरजन एव राज्य के दर्शनीय व पर्यटक स्थलों के भ्रमण की व्यवस्था द्वारा इन कार्यक्रमो मे रुचि बढ़ायी जा सकती है।

6. प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पूर्णतः अकादमिक प्रकृति के और पुस्तको पर आधारित न होकर क्षेत्रीय समस्याओ पर आधारित होने चाहिए ।
7. राजस्थान मे, हिन्दी राज्य के लोगो द्वारा आसानी से समझी जाती है इसलिए प्रशिक्षण का माध्यम और अध्ययन सामग्री अधिकतम हिन्दी मे ही उपलब्ध करायी जानी चाहिए ।
8 प्रशिक्षण के माध्यम से ग्रामीणो के दृष्टिकोण परिवर्तन और ज्ञान वृद्धि दोनो उद्देश्यो पर सम्मिलित रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए ।
9. सभी स्तर के कर्मचारियो और जन प्रतिनिधियो के लिए आगमन प्रशिक्षण के अतिरिक्त समय-समय पर पुनश्चर्या पाठ्यक्रमो का आयोजन भी किया जाना चाहिए ।
10. प्रशिक्षण देने वाले प्रशिक्षको के उच्च स्तरीय प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की जानी अपेक्षित है ।
11 प्रशिक्षण सस्थानो के प्रशिक्षको और कर्मचारियो को अन्य प्रशिक्षण केन्द्रो के कर्मचारियो से विचारो का पारस्परिक सामयिक आदान प्रदान भी करना चाहिए ।
12 राज्य सरकार को चाहिए कि पचायती राज के क्षेत्र मे प्रशिक्षण की आवश्यकता को अनुभव करे और तद्नुरूप प्रशिक्षण के कार्यक्रमो को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध कराये । अब तक का अनुभव इस दिशा मे उत्साहवर्द्धक नही है । इस स्थिति मे परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता है ।

राजस्थान मे पचायती राज सस्थाओ के कर्मचारियो तथा जन प्रतिनिधियो के प्रशिक्षण कार्यक्रम को 1985 मे स्थापित इन्दिरा गाधी पचायती राज एव ग्रामीण विकास सस्थान से निर्णायक गति मिली है । राज्य सरकार का यह निर्णय पचायती राज के प्रशिक्षण के क्षेत्र मे यद्यपि उत्साह वर्द्धक स्थिति का सकेत करता है तथापि आवश्यकता इस सस्थान के और अधिक विकास करने की है ताकि यह सस्थान न केवल राजस्थान मे अपितु समस्त भारत मे पचायती राज के प्रशिक्षण के क्षेत्र मे अपना उत्कृष्ट स्थान और सम्मान बना सके ।

पचायती राज संस्थाओ के कर्मचारियो एव अधिकारियो पर अनुशासनात्मक कार्यवाही और सेवा निवृत्ति लाभ के सन्दर्भ मे वे ही नियम लागू होते हैं जो नियम राज्य सरकार के शासकीय कर्मचारियो के लिए उक्त सन्दर्भो मे प्रवर्तित हैं । इन नियमो का सकेत नगरीय सस्थाओ के कर्मचारियो की सेवा शर्तों से सम्बद्ध विगत अध्याय मे किया जा चुका है ।

सन्दर्भ

1. सादिक अली, पंचायती राज अध्ययन दल की रिपोर्ट, पचायत एव विकास विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर, 1964, पृ 174
2. गिरधारी लाल व्यास, हाई पावर कमेटी ऑन पंचायती राज रिपोर्ट, सामुदायिक विकास एव पचायत विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर, 1973, पृ. 56
3. सादिक अली प्रतिवेदन, पूर्वोक्त, पृ. 174
4. द गुजरात पंचायत एक्ट, 1961, विधि विभाग, गुजरात सरकार, अहमदाबाद, 1987 अध्याय 11 धारा 203
5. उपरोक्त, धारा 203 (2), 2 ए
6. उपरोक्त, धारा 203 (2), 2 बी. सी
7. उपरोक्त, धारा 207
8. उपरोक्त, धारा 207 (2)
9. उपरोक्त, धारा 207 (4)
10. उपरोक्त, धारा 208
11. उपरोक्त, धारा 210 (1)
12. उपरोक्त, धारा 210 (2) (3)
13. उपरोक्त, धारा 210 (4) (5) (6)
14. उपरोक्त, धारा 211
15. उपरोक्त, धारा 211 (2)
16. उपरोक्त, धारा 211 (3) ए बी
17. श्रीराम माहेश्वरी, भारत मे स्थानीय शासन लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1984, पृ. 117
18. इस हेतु निर्मित नियमो का राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद सेवा नियम 1959 के नाम म जाना जाता है। विस्तृत अध्ययन हुतु द्रष्टव्य, श्री कृष्णदत्त शर्मा एव सुनीता दाधीच, राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, ए वन एजेन्सीज, जयपुर, 1983, पृ. 285–320.
19. राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद सेवा नियम, धारा 3
20. उपरोक्त, धारा 6
21. उपरोक्त, धारा 7

22 उपरोक्त, धारा 8

23. उपरोक्त, धारा 9, 10, 11, 12, 13

24 यह आयोग राजस्थान प चायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम 1959 की धारा 3 (ग) के अधीन दिनाक 19–1–61 की अधिसूचना क्र. एफ. 23 (2) नि (ए–11)/60 द्वारा स्थापित किया गया था।

25. आयोग के दायित्वो मे यह विस्तार राजस्थान नगरपालिका अधीनस्थ एव मिनिस्ट्रियल सेवा नियम, 1963 के नियम 3 के खण्ड (ज) के अन्तर्गत किया गया था।

26. नाम परिवर्तन की यह अधिसूचना स. एफ. 8 (4) नि. (ए–11)/69 दिनाक 5 अप्रेल, 1974 राजस्थान राजपत्र भाग 4 (ग) (1) विशेषाक दिनाक 5 अप्रेल, 1974 के पृ. स 5 पर प्रकाशित हुई।

27 राजस्थान की सादिक अली समिति, 1964 एव पचायती राज पर उच्चाधिकार प्राप्त गिरधारी लाल व्यास समिति, 1973 दोनो ने आयोग की कार्यप्रणाली की आलोचना की है।

28. गिरधारी लाल व्यास समिति प्रतिवेदन, पूर्वोक्त, पृ. 56–70

29 उपरोक्त

30 उपरोक्त

31 राजस्थान प चायत समिति एव जिला परिषद सेवा नियम, 1959, धारा 20

32 उपरोक्त, धारा 21.

33. उपरोक्त, धारा 22 (क)

34. उपरोक्त, धारा 23 (1) (2) (3) (5) (6)

35. राजस्थान पचायत समिति तथा जिला परिषद (चतुर्थ श्रेणी सेवा) नियम, 1959, विस्तृत अध्ययन हेतु द्रष्टव्य श्री कृष्णदत्त शर्मा एव दाधीच, पूर्वोक्त, पृ. 314–19.

36. सादिक अली प्रतिवेदन, पूर्वोक्त, पृ. 182.

37. उपरोक्त

38. गिरधारी लाल व्यास समिति, पूर्वोक्त प्रतिवेदन, पृ. 78–80.

39. राजस्थान प चायत समिति एव जिला परिषद सेवाए (दण्ड एव अपील) नियम, 1961 विस्तृत अध्ययन हेतु द्रष्टव्य, शर्मा एव दाधीच, पूर्वोक्त, पृ 320–33

40 राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद (सेवक एव पेन्शन भोगी आचरण) नियम 1969, विस्तृत अध्ययन हेतु दृष्टव्य दत्त एव दाधीच, पूर्वोक्त, पृ 333–42.
41. कुरुक्षेत्र, जून, 1961, पृ. 2
42. एम. ए मुतालिब एव अकबर अली खान, पूर्वोक्त, पृ. 221
43 उपरोक्त
44. श्रीराम माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ. 262.
45. सादिक अली, पूर्वोक्त रिपोर्ट, पृ. 195.
46. उपरोक्त, पृ. 196
47. विस्तृत अध्ययन हेतु दृष्टव्य डॉ. रविन्द्र शर्मा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, प्रिन्टवैल पब्लिशर्स, जयपुर, 1985
48. यह सूचना लेखक ने स्वय पचायती राज एव विकास विभाग की प्रशिक्षण शाखा से दिनाक 14 अगस्त, 1990 को प्राप्त की है।
49 उपरोक्त
50. डॉ. रविन्द्र शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 165.
51. उपरोक्त, पृ. 166
52. गिरधारी लाल व्यास, पूर्वोक्त रिपोर्ट, पृ. 113–14.

13

पंचायती राज संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन

स्थानीय शासन की संस्थाओं की सफलता एक निर्णायक सीमा तक उनके पर्याप्त वित्तीय स्रोतों एवं सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। कोई भी संस्था या संगठन अपने मूलभूत दायित्वों का उचित सम्पादन तब तक नहीं कर सकता जब तक कि उन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए उसके पास पर्याप्त आर्थिक साधन न हों। लगभग सभी विद्वान इस तथ्य पर एकमत हैं कि 'वित्त प्रशासन का जीवन रक्त है और वित्त' प्रशासकीय यंत्र का ईंधन है जिसके अभाव में कोई भी प्रशासनिक क्रिया सम्पन्न नहीं की जा सकती। शासन के किसी भी कार्य के सम्पादन हेतु कुछ साधनों की आवश्यकता होती है उनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन वित्त है। प्राचीन भारत के महान राजनीतिक चिंतक और अर्थ विशेषज्ञ कौटिल्य ने यह माना है कि सभी उद्यम वित्त पर निर्भर हैं अतः कोषागार के प्रबन्ध के प्रति सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

समस्त विश्व में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की स्वीकारोक्ति के साथ ही लोक प्रशासन से जन साधारण की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं में भारी वृद्धि हुई है। इसी कारण भारत में भी स्थानीय निकायों के कार्यों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है। किन्तु यह भी सच है कि अधिकांश स्थानीय निकाय, चाहे वे पंचायती राज संस्थाएं हों या नगरीय संस्थाएं, अपने दायित्वों के निर्वहन में प्रायः असफलता और परिणामस्वरूप आलोचना के पात्र बनते हैं। इस स्थिति का मूल कारण इन संस्थाओं के अपर्याप्त वित्तीय साधन या आर्थिक अक्षमता ही होती है। गांवों और नगरों की बढ़ती जनसंख्या और तदनुसार सेवाओं की उभरती आवश्यकताएं, आवश्यक निधि के अभाव में पूरी नहीं हो पाती हैं।

स्थानीय शासन की सस्थाओ को वित्त के अभाव मे समस्याओ का सामना क्यो करना पडता है इसका मूल कारण स्थानीय शासन और उच्चतर शासन मे एक तात्विक अन्तर का होना है। हमारे सघीय ढाचे मे सघीय सरकार तथा राज्य स्तर पर कार्यरत सरकार को वित्तीय साधनो का आवटन सविधान ने किया है और इन दोनो ही शासकीय स्तरो को उनके वित्तीय प्रबन्ध, व्यय के स्रोत और करारोपण के स्पष्ट अधिकार दिये गये हैं। किन्तु स्थानीय शासन प्रभुत्व-हीन होता है अतः उसके सन्दर्भ मे यह स्थिति एकदम भिन्न है। शासन का यह तृतीय स्तर यद्यपि स्पष्ट तौर पर सविधान निर्माताओ ने भी इगित किया है जब उन्होने सविधान के विभिन्न भागो मे स्थानीय सस्थाओ के गठन अथवा पचायती राज सस्थाओ के विकास को राज्य द्वारा प्रोत्साहन की बात की है। किन्तु यह व्यवस्थाए करते हुए उन्होने शासन की इस तीसरी इकाई 'स्थानीय शासन' को वित्तीय प्रबन्ध, व्यय के स्रोत या करारोपण के स्पष्ट अधिकार प्रदान नही किये हैं। उन्होने तो सघीय सरकार और राज्य सरकारो के मध्य वित्तीय साधनो के बटवारे के यथोचित आधार सुझाने के लिए एक वित्त आयोग भी स्थापित कर दिया किन्तु ऐसा कोई आयोग स्थानीय सस्थाओ के लिए उन्होने नही सुझाया। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि दोनो प्रकार की स्थानीय सस्थाए पूर्णत: राज्य सरकार पर अवलम्बित हो गई। वित्तीय दृष्टि से भी और सगठन तथा कार्मिको की दृष्टि से भी। इस स्थिति मे इन सस्थाओ को करारोपण का जो भी अधिकार प्राप्त है वह सविधान से प्राप्त नही है। इन सस्थाओ की रचना करते समय सम्बन्धित अधिनियमो द्वारा जो कर लगाने सम्बन्धी अधिकार उन्हे दिये गये हैं वे राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त अधिकार है और अधिनियम उन अधिकारो पर यह सीमा भी आरोपित करता है कि वे सस्थाए अधिनियम मे प्रस्तावित करो को लगाने के पूर्व भी राज्य सरकार की स्वीकृति प्राप्त करेंगी। राज्य सरकार को इस बात की पूर्ण स्वतत्रता होती है कि उसने करो की जो सूची स्थानीय शासन को अन्तरित कर दी है उसमे वह इच्छानुसार परिवर्तन कर दे।

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए, जिसने नियोजित अर्थ व्यवस्था का मार्ग अपनाया है, यह अत्यन्त आवश्यक है कि जन साधारण की अत्यन्त निकट-वर्ती इन स्थानीय सस्थाओ का वित्तीय आधार शक्तिशाली और मजबूत बनाया जाए ताकि ये सस्थाए सही और व्यापक सन्दर्भ मे जनसाधारण के कल्याण के लिए कार्य कर पाने मे सक्षम हो सकें। आज-कल जन साधारण की आर्थिक दशा इतनी अस्त-व्यस्त और आमदनी इतनी न्यून है कि वह स्थानीय सस्थाओ द्वारा आरोपित करो को अदा करने मे अपने आपको सक्षम अनुभव नही करता।

कारण स्थानीय निकाय अनेक ऐसी सेवाओ को भी हाथ मे नही ले पाते जिनकी उपयोगिता जन साधारण के लिए अपरिहार्य होती है। यही नही अर्थाभाव के कारण उन सेवाओ मे भी निरन्तर अभाव की स्थिति बनी रहती है जिन्हे ये संस्थाए पूर्वत: सम्पादित कर रही हैं। वस्तुत भारत मे ग्रामीण एव नगरीय स्थानीय संस्थाए जिन महत्वपूर्ण सार्वजनिक सुविधाओ और कार्यों का सम्पादन करती हैं उनके सन्तोषजनक संचालन के लिए इन संस्थाओ का आर्थिक आधार मजबूत होना नितात आवश्यक है।

विभिन्न राज्यो मे पचायती राज संस्थाओ के वित्तीय प्रशासन की व्यवस्थाओ के अवलोकन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि वित्तीय प्रशासन के संचालन के लिए प्राय. ग्राम पचायत स्तर पर किसी पृथक तन्त्र की स्थापना नही की गई है। प्रारम्भ मे वित्त से सम्बन्धित कार्य सरपच द्वारा और बाद मे सचिव द्वारा तथा अब यह कार्य प.प सचिव द्वारा किये जाते हैं। पचायत समिति स्तर पर यह दायित्व विकास अधिकारी अपने कार्यालय स्टाफ की मदद से निभाता है। इसी तरह जिला परिषद मे उसका सचिव अपने अधीनस्थ लेखा कर्मचारियो की सहायता से वित्तीय प्रशासन का नियमन, संचालन और नियत्रण करता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि वित्त प्रशासन के लिए ग्राम पचायत स्तर पर कोई विशिष्ट संस्था या इकाई की स्थापना नही की गई है। ऐसा इसलिए भी है कि ग्राम पचायत स्वय इतने छोटे स्तर पर कार्य करती है कि इस हेतु पृथक प्रशासकीय तन्त्र या संगठन की स्थापना व्यवहारत: सम्भव भी नही है।

पचायती राज संस्थाओ के वित्तीय प्रशासन को दो भागो मे विभक्त कर समझा जा सकता है :

1. विभिन्न संस्थाओ की आय के स्रोत जिसमे उनके करारोपण की शक्तिया भी सम्मिलित है; तथा

2. विभिन्न संस्थाओ की बजट निर्माण एव लेखा प्रणाली।

वित्तीय प्रशासन को उक्त दो भागो मे विभक्तकर देखना इसलिए आवश्यक है ताकि इन विभिन्न संस्थाओ के अधीन आय के स्रोतो का पृथक-पृथक प्रस्तुतीकरण किया जा सके तथा इन संस्थाओ द्वारा अपने आमदनी के स्रोतो से जो प्राप्ति होनी है उसका वह बजट बनाकर व्यय और लेखाकन कैसे करती है इसको भी पृथक से और स्वतत्र रूप से समझा जा सके।

विभिन्न सस्थाओ की आय के स्रोत

संक्षेप मे पचायती राज सस्थाओ के तीनो स्तरो पर आय के स्रोतो का पृथक-पृथक प्रस्तुतीकरण इस प्रकार है :

ग्राम पंचायत स्तर पर आय के स्रोत

ग्राम पचायत के वित्तीय स्रोतो को मुख्यत दो भागो मे बाटा जा सकता है .

1 कर एव शुल्क से प्राप्त आय, एव

2. सरकारी अनुदान और ऋण ।

मादिक अली ने अपने प्रतिवेदन (1964) मे पचायतो के आर्थिक साधनो का विवरण देते हुए निम्नांकित स्रोत गिनाये हैं [1]

1. जनसख्या के आधार पर प्रति व्यक्ति सरकारी अनुदान,
2. आरोपित करो से आय,
3. पशुओ के बाडो से होने वाली आय,
4. प्रशासनिक मामलो मे जुर्माना,
5. सुलभ की गई सेवाओ के लिए शुल्क,
6. चरागाहो से आय,
7. भूमि के अस्थाई उपयोग के लिए शुल्क,
8. पचायतो को हस्तान्तरित तालाबो से सिचाई करने वालो से वसूलियाँ;
9. तालाबो मे मत्स्य पालन तथा उनको ठेके पर देना,
10. आबादी भूमि का विक्रय,
11. प्रत्येक पंचायत को सरकार ने 15 बीघा भूमि दी है उस भूमि का वह अपनी इच्छानुसार विकास कर सकती है. इससे आय
12. जिस पचायत मे सरपच और 80% सदस्यो का चुनाव सर्वसम्मति से होता है, उस पचायत को उसके कार्यकाल के लिए जनसख्या के आधार पर प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति विशेष अनुदान दिया जाता है ।

आय के स्रोतो की उपरोक्त सूची जो सादिक अली प्रतिवेदन मे दी गई है उसके अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि ऊपर जिन दो प्रमुख शीर्षको का सकेत हमने किया है ये सभी बिन्दु आय उन दो शीर्षको मे व्यापक रूप से समाहित माने जा सकते हैं ।

(1) कर एव शुल्क से भ्राय

सामान्यतः पचायत क्षेत्र के लिए ग्राम पचायत और पचायत समिति दोनो को ही कर लगाने का अधिकार दिया गया है। जिला परिषदो को कर लगाने का कोई अधिकार नही है।[3]

पचायत और पचायत समिति दोनो के स्तरो पर ही कर लगाने का अधिकार ऐच्छिक है। कोई भी कर अनिवार्य नही रखा गया है।[3]

ग्राम पचायत निम्नलिखित कर लगा सकती है

1. भवनों पर कर (गृह कर);

2. पशुओ या माल अथवा दोनो पर चुंगी;

3. कृषि कार्यों मे प्रयुक्त किये जाने वाले वाहनो के अतिरिक्त अन्य वाहनों पर कर;

4. यात्री कर;

5. पेयजल की व्यवस्था पर कर;

6. वाणिज्यिक फसलो पर कर;

7 निजी शौचालयो पर कर;

8 पचायत क्षेत्र मे पीने के पानी के प्रबन्ध के लिए कर;

9. सरकार की पूर्व स्वीकृति से पचायतें कोई अन्य कर भी लगा सकती हैं किन्तु राजस्थान की ग्राम पचायतें पचायत क्षेत्र के हर व्यावसायिक नागरिक पर पचायत क्षेत्र मे विकाम कर भी लगा सकने मे सक्षम है;

10 मवेशीखाने, चरागाह, भूमि के अस्थाई उपयोग, तालाबो मे मत्स्य पालन, ठेके से प्राप्त शुल्क अथवा अन्य जुर्मानो से प्राप्त आय भी पचायतो के राजस्व के सुपरिचित स्रोत माने जाते हैं।

उपरोक्त कर ऐसे हैं जिन्हें आरोपित करने का निर्णय ग्राम पचायत स्वय, चाहे तो, लेती है। इनके अतिरिक्त भी ग्राम पचायत क्षेत्र के लिए, खण्ड स्तर पर सृजित पचायत समिति को भी कुछ कर लगाने के अधिकार अधिनियम द्वारा दिये गये हैं। पचायत समिति इस प्रकार जो कर लगा सकती है वे हैं :

1. भूमि के उपयोग या कब्जे के लिए भूमि-धारी द्वारा देय या प्राप्त लगान पर अथवा भूमि के अनुमानित लगान पर पांच पैसा प्रति रुपये के हिसाब से कर;

2. व्यापार, पेशो, धन्धो और उद्योगो पर कर;

3. प्राथमिक शिक्षा उप कर, और
4. मेलो पर कर।

चूँकि पचायत और पचायत समितियों द्वारा कर लगाया जाना अनिवार्य नही है, अत यह अनुभव किया गया है कि ये सस्थाए सामान्यत करारोपण के सम्बन्ध मे उदासीन रही हैं। पचायतों एव पचायत समितियो की करारोपण के प्रति इस उदासीनता का कारण मुख्यत उनकी निर्वाचको से निकटता है। इन सस्थाओं के पदाधिकारी मतदाताओं की नाराजगी के भय से कर लगाने मे सकोच का अनुभव करते है। लोगो द्वारा स्थानीय सस्थाओं के करों का विरोध किये जाने का एक कारण यह भी कहा जा सकता है कि लगाये गये करो को सार्वजनिक लाभो से सम्बद्ध रखने का प्रयत्न नही किया गया है। यह स्पष्ट ही है कि कर का आरोपण एक अप्रिय कार्य है और सामान्यत करो के सम्बन्ध मे लोगो की प्रतिक्रिया भी अनुकूल नहीं होती है। फिर भी यदि लोगो को यह आभास होने लगे कि करो के अनुपात मे ही उन्हे सेवाओं के रूप म प्रत्यक्ष लाभ भी मिलेंगे तो निश्चय ही करो के विरोध की स्थिति मे पर्याप्त कमी आ जाएगी।[6]

राजस्थान मे ग्राम पचायतो ने उनके गठन के प्रारम्भिक वर्षों मे कुछ कर अवश्य लगाये थे किन्तु वे भी समस्त ग्राम पचायतो न नही अपितु 7391 पचायतों मे से कुल 1100 पचायतो ने ही कर लगाने म पहल की थी। ऐसे आरोपित करो मे गृह कर और वाहन कर मुख्य हैं। कुछ बडी पचायतो न चु गी भी लगाई थी। किन्तु ग्राम पचायतो द्वारा कर लगान की इस स्थिति मे 1964 के बाद एक निर्णायक गिरावट स्पष्ट तौर पर परिलक्षित हुई है। 1964 तक तो पचायतो ने कुछ कर लगाकर अपनी आमदनी का प्रारम्भिक प्रयत्न किया था किन्तु 1964 के पश्चात पचायती राज सस्थाओ के चुनाव नियमित समय पर आयोजित नही किये जा सके और इसका एक व्यापक प्रभाव यह हुआ कि ग्राम पचायतो के पदाधिकारियो ने पूरे राजस्थान भर मे अपनी जनता पर कर लगान की दिशा मे कोई रुचि नही ली। यही नही बल्कि प्रथम बार निर्वाचित ग्राम पंचायतों ने जो कर लगाये थे उनको भी अनवरत् आगे रखन मे व सफल नही हो सके।

राज्य की 352 पचायत समितियो मे से मार्च 1964 के अन्त तक केवल 80 पचायत समितियो ने किसी न किसी प्रकार के कर लगाये थे। इन करो मे जो आमदनी हुई है उसका विवरण सादिक अली प्रतिवेदन के परिशिष्ट मे दिया गया है। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन म यह अकित किया है। कि पचायत समितियो द्वारा जितने भी कर लगाये गये थे उनमे भू-राजस्व पर उपकर सर्वाधिक

लोकप्रिय रहा है। इसका कारण यह था कि राजस्थान के 26 जिलो मे से 10 जिलो मे जिला बोर्ड थे और सभी जिला बोर्डों ने पहले से ही भू-राजस्व उप कर लगा रखा था। इसलिए प्रायः सभी स्थानो पर यह कर आसानी से लगा दिया गया था। पचायत समितियो द्वारा लगाये गये नवीन करो मे सिर्फ धधो और मेलो पर कर तथा प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी उप कर हैं। कुछ पचायत समितियो ने मनोरजन कर भी आरोपित किया किन्तु इस दिशा मे जो कुछ प्रयत्न किया गया है, वह सुनियोजित एव नियमित नही पाया गया है।

कर लगाने के सम्बन्ध मे पंचायतो और पचायत समितियो को जिस दुविधा का सामना करना पड़ा है उसमे मुक्ति दिलाने के लिए सादिक अली समिति ने यह सुझाव दिया था कि कुछ करो का लगाया जाना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए या कर लगाने की शक्ति सुदूर स्तर पर दी जानी चाहिये। समिति ने अपने प्रतिवेदन मे यह कहा है कि समिति के दौरो के दौरान सरपंचो और प्रधानो ने यह स्पष्ट राय व्यक्त की थी कि कुछ करो को अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। उनकी राय मे ऐसा कर दिये जाने से पचायतो और पचायत समितियो कि समक्ष करारोपण के सम्बन्ध मे जो दुविधा है उसकी तो समाप्ति होगी ही साथ ही इन सस्थाओ की एक न्यूनतम आय भी निश्चित हो जायेगी। इसका एक और परिणाम यह भी होगा कि राज्य के सभी क्षेत्रो मे समान कर नीति का सूत्रपात हो सकेगा। करो के आरोपण मे असमानता की दिशा मे उन पचायतो या पचायत समितियो के विरुद्ध जन भावना जाग्रत हो जाती है जो कर लगाने की दिशा मे पहल करती है क्योकि आम तौर पर नागरिक यह तर्क भी देने लगते हैं कि जब पड़ौस के क्षेत्रो मे कोई कर नही है तो वह हमारे क्षेत्रो मे ही क्यो लगाया जा रहा है?[6]

सादिक अली समिति ने करारोपण के सम्बन्ध मे विचार करते समय यह मत व्यक्त किया कि स्थानीय प्रशासन एव विकास के सम्बन्ध मे चूँकि कुछ आवश्यक कार्य ग्राम पचायतो, पचायत समिति या जिला परिषदो को करने हैं, अत उनके पास भी अपने स्वय के साधन होने चाहिए ताकि वे अपने वित्तीय साधनो मे वृद्धि कर अधिकाधिक स्वतन्त्रता एव अपने विवेक के अनुसार निर्दिष्ट कर्त्तव्यो का पालन कर सकें।[7]

सादिक अली समिति ने अपने प्रतिवेदन मे यह व्यक्त किया है कि पचायत, पचायत समिति, और जिला परिषद् इन तीनो ही सस्थाओ के स्वय के आय के साधन भी होने चाहिए। इसी तथ्य को ध्यान मे रखकर समिति ने सिफारिश

की कि इन तीनों ही संस्थाओं को निर्धारित क्षेत्रों में कर लगाने का अधिकार दे दिया जाना चाहिए। समिति ने यह अंकित किया है कि जो कर सिर्फ स्थानीय महत्व का एवं सामान्य प्रकृति का हो, वह पंचायतों के पास रहना चाहिए इसके विपरीत जो कर व्यापक प्रभाव वाले हैं, जिनका निर्धारण करने के लिए अधिक प्रबन्ध किया जाना आवश्यक हो उन्हें अपेक्षाकृत ऊंची संस्था को दिया जाना चाहिए ताकि प्राप्त आय उस क्षेत्र में समान रूप से वितरित की जा सके। समिति ने पंचायत स्तर पर निम्नलिखित कर लगाये जाने की सिफारिश की थी[8]

(1) गृह कर

गृह कर स्थानीय महत्व का है और इसलिए यह पंचायतों द्वारा आरोपित किया जाना चाहिये। सादिक अली अध्ययन दल ने अपनी एक उप-समिति पंचायती राज की वित्त व्यवस्था के सम्बन्ध में गठित की थी जिसने सिफारिश की कि गृह कर लगाया जाना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। अपनी उप-समिति द्वारा प्रस्तुत इस संस्तुति से सादिक अली अध्ययन दल सहमत हुआ किन्तु फिर भी उन्होंने यह अनुभव किया कि आर्थिक परिस्थितियों एवं गृह निर्माण के स्तर में अत्यधिक भिन्नता के कारण इस कर को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। उन्होंने इसके मकान के पूंजीगत मूल्य पर आरोपण एवं उसकी न्यूनतम और अधिकतर दरें भी सुझायी थी। उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि पंचायत द्वारा एक बार गृह कर लगा दिये जाने के पश्चात् उसमें किसी प्रकार की छूट नहीं दी जानी चाहिए।

(2) चुंगी

सादिक अली समिति ने चुंगी के बारे में यह विचार व्यक्त किया है कि यह एक प्रतिगामी कर है अतः उन्होंने यह अभिशंसा की कि चुंकि कर लगाने की शक्ति केवल नगर पंचायतों को ही दी जानी चाहिए। ग्राम पंचायतों को चुंगी लगाने की शक्ति देना हम उचित नहीं समझते। वास्तव में बहुत सी ग्राम पंचायतों में तो चुंगी कर आमदनी के महत्वपूर्ण साधनों में हो भी नहीं सकता है। इसलिए समिति ने इसे पंचायतों के क्षेत्र से अलग रखने की अभिशंसा ही की थी।[9]

(3) मेलों और बाजारों पर कर

समिति ने पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषदों के बीच मेलों और बाजारों का वर्गीकरण कर दिये जाने की अभिशंसा की थी। इस वर्गीकरण के आधार पर ही इन संस्थाओं को कर लगाने का अधिकार दिया जाना चाहिए। पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में आने वाले मेलों और बाजारों पर लगाये गये करों

की आय पचायतो को दी जानी चाहिए, किन्तु जो मेले और बाजार वर्गीकरण मे पचायत समिति या जिला परिषदो के अन्तर्गत आये, उन पर लगाए गए कर की आय पचायत, पचायत समिति और जिला परिषद् इन तीनो ही सस्थाओ मे बाट दी जानी चाहिए। मेलो और बाजारो का वर्गीकरण करने की शक्ति राज्य सरकार मे निहित करने की अभिशसा समिति द्वारा की गई थी।

(4) यात्री कर

मेलो और बाजारो की भाति ही यात्रा केन्द्रो का वर्गीकरण विभिन्न सस्थाओ के मध्य किये जाने का सुझाव समिति ने अपने प्रतिवेदन मे अकित किया है। यात्रा कर से होने वाली आय के सम्बन्ध मे समिति ने उपरोक्त मेलो और बाजारो पर कर के सम्बन्ध मे जो प्रावधान सुझाया है वही लागू करने की सिफारिश भी की है।

(5) वाहन कर

वाहन कर अनिवार्य होना चाहिए और यह पचायत स्तर पर लगाना चाहिए। मोटर गाडियो को इस कर से छूट दी जानी चाहिए क्योंकि उन पर कर सम्बन्धी विशेष कानून लागू होते हैं। खेती के काम मे आने वाली बैलगाडियो को छोडकर अन्य किसी भी प्रकार के वाहनो को इस कर से छूट नही दी जानी चाहिए। समिति ने यह सुझाव दिया कि किराये पर चलने वाले वाहनो पर अन्य वाहनो की अपेक्षा अधिक कर लगाया जा सकता है। समिति ने इस कर की न्यूनतम और अधिकतम दरें भी अपने प्रतिवेदन मे सुझाई हैं।[10]

इस प्रकार उपरोक्त पाँच कर ग्राम पचायत स्तर पर आरोपित किये जाने का सुझाव सादिक अली समिति ने अपने प्रतिवेदन मे दिया था। समिति ने पचायत समिति एव जिला परिषदो के लिए भी इसी प्रकार के कुछ कर आरोपित करने का सुझाव दिया था जिनका उल्लेख यथास्थान किया जायेगा।

करो का बंटवारा

समिति ने अपने प्रतिवेदन मे यह अकित किया कि पंचायती राज सस्थाओ मे आपस मे करो के बटवारे की व्यवस्था कर दी जाए तो करो की वसूली के सम्बन्ध में और अधिक प्रयत्न किए जा सकते हैं। इस सम्बन्ध मे समिति ने सुझाव दिया कि :

1. जो कर पंचायत द्वारा लगाया जाय उसकी पूरी आमदनी पचायत को ही जानी चाहिए।

2. पचायत समिति द्वारा लगाये जाने वाले करो की आमदनी का बटवारा पचायत समिति और पचायत के बीच 75:25 के अनुपात मे होना चाहिए।

3. जिला परिषद द्वारा लगाये जाने वाले करो की आमदनी का बटवारा जिला परिषद, पचायत समिति और पचायत के मध्य 40 . 30 : 30 के अनुपात मे होना चाहिए।

जब करो का बटवारा ऊचे के स्तर की सस्था के द्वारा नीचे के स्तर की सस्थाओ के साथ किया जावे तो नीचे के स्तर की सस्थाओ मे आपस मे बंटवारा जनसख्या के आधार पर किया जाना चाहिए।

करो के अलावा ग्राम पचायतो को कुछ शुल्क वसूलने के अधिकार दिये हैं। पचायतें पीने के पानी की व्यवस्था करने या सार्वजनिक उपयोगिता के निर्माण कार्यों के लिए जो कर लगा सकती हैं सादिक अली प्रतिवेदन मे उन्हें शुल्क की परिभाषा मे सम्मिलित किया गया है। समिति ने पचायतो को निम्नलिखित शुल्क वसूलने का अधिकार देने की अभिशषा की है [11]

1. जल प्रदाय, जलोत्सारण, (ड्रेनेज), रास्तो की रोशनी तथा भू-सरक्षण आदि कार्यों के लिए शुल्क। यदि पचायत द्वारा ये सेवाए अपने क्षेत्र मे किसी भाग विशेष के लिए ही की गई है तो जिन लोगो को अथवा परिवारो को इन सुविधाओ से लाभ नही मिला है उन्हे स्वाभाविक रूप से इन शुल्को से छूट दी जानी चाहिए।

2 पचायत द्वारा बनाये गये बस-स्टेण्डो के उपयोग के लिए शुल्क।

3. कतिपय कार्यों को रजिस्टर करने और उनके लिए लाइसेंस देने के लिए शुल्क।

4 सार्वी भूमि और स्थानो के उपयोग के लिए शुल्क।

राज्य सरकार नियम बनाकर इन शुल्को की दरो को नियमित कर सकती है। लाइसेंस जारी करने और फीस वसूलने आदि के लिए भी राज्य सरकार को कोई सीधी और स्पष्ट प्रणाली निर्धारित करनी चाहिए।

करों के अतिरिक्त अन्य आय हेतु दिये गये सुझाव

सादिक अली समिति ने अपने प्रतिवेदन मे यह माना है कि साधन जुटाने के लिए करो का क्षेत्र अनिवार्यतः सीमित है। अत पचायती राज सस्थाओ केलिए करों के अतिरिक्त आय के अन्य साधनो का विकास किया जाना भी नितांत आवश्यक है। इस सन्दर्भ मे समिति द्वारा दिये गये सुझावों में आबादी भूमि की बिक्री, पशु बाड़ा अर्थात् दवाखाना, राज्य सरकार द्वारा दस एकड कृषि भूमि

से आय, पोखरो और तालाबो मे मत्स्य पालन, घोषित चारागाहो की भूमि मे आय, हड्डियो के ठेके और फलोद्यान एव शाकोद्यान की बाडियो मे आय आदि प्रमुख हैं। इनमे से कुछ स्रोत पचायतो को और कुछ अन्य पचायत समिति एव जिला परिषदो के लिए सुझाये गये। समिति ने यह सुझाव भी दिया कि इन सस्थाओ को अपने साधनो से दूकानें, बाजार, होटल, सिनेमाघर, ट्रैक्टर, ट्रक आदि लाभप्रद आस्तिया (ऐसेट) करने मे आवश्यक सहायता दी जानी चाहिए।

(2) सरकारी अनुदान तथा ऋण

कर तथा शुल्क से प्राप्त आय के अतिरिक्त ग्राम पचायतो को प्रति व्यक्ति के हिसाब से सरकार द्वारा अनुदान भी दिया जाता है। राजस्थान मे 1978 से पूर्व 25 पैसा प्रति व्यक्ति अनुदान पचायतो को दिया जाता था। जिन ग्राम पचायतो के सरपच और 80% पचो का चुनाव सर्वसम्मति से होता है उस पचायत को उसके पूरे कार्यकाल के लिए जनसख्या के आधार पर 25 पैसा प्रति व्यक्ति अतिरिक्त अनुदान भी दिया जाता है। महाराष्ट्र मे कुछ निश्चित शर्तों को पूरा करने पर पचायतो के क्षेत्र से वसूल भूमि कर की कुछ राशि उन्हे अनुदान के रूप मे वापस लौटाने की व्यवस्था की गई है।

राज्य सरकार द्वारा पचायती राज सस्थाओ को दिया जाने वाला यह अनुदान सबसे ज्यादा मात्रा मे पचायत समितियो को दिया जाता है। राजस्थान मे पचायत समिति ही कार्यकारी इकाई है इसलिए विकास के अनेक कार्यक्रम उनकी निधियो सहित इसे हस्तान्तरित कर दिये जाते हैं। ग्राम पचायत और जिला परिषद को यह अनुदान अपने सस्थागत व्यय के लिए न्यूनतम ही दिया जाता है। ग्राम पचायत के स्तर पर अर्थव्यवस्था इतनी सुदृढ नही होती कि उसे ऋण लेकर कार्यक्रम चलाने की अनुमति दी जा सके। इसीलिए राज्य मे इन्हे ऋण लेकर कार्यक्रम चलाने की कोई परम्परा विकसित नही हो सकी है। यद्यपि सादिक अली ने अपने प्रतिवेदन मे यह अनुशसा की थी कि राज्य सरकार को पचायती राज सस्थाओ के लिए छोटे उद्योग-धन्धो और कार्यों को हाथ मे लेने की न केवल अनुमति देनी चाहिए अपितु इस हेतु ऋणो की व्यवस्था भी की जा सकती है।

विभिन्न पचायतो की आय मे विभिन्न राज्यो मे यहा तक कि एक ही राज्य मे भी अन्तर पाया जाता है। किन्तु देश की सभी पचायतो मे एक बात सामान्य रूप से देखने को मिलती है, वह है साधनो की न्यूनतम। चूंकि भारत मे स्थानीय शासन की सबसे बडी दुर्बलता 'वित्त का अभाव' रही है अत समु-

चित धन निधि की व्यवस्था करके ही उनकी कुशलता और क्रियाशीलता को बढ़ाया जा सकता है। पचायतो के वित्तीय साधन अत्यधिक सीमित होने से सामान्यत वह अपने अनिवार्य कार्यों का सम्पादन भी न कर पाती हैं, वैकल्पिक कार्यों को सम्पन्न करन का तो प्रश्न ही नही उठना है। यही प्रमुख कारण है कि पचायतो मे गरिमा तथा शक्ति का अभाव देखने को मिलता है।

भारतवर्ष मे अब तक नियुक्त प्राय सभी आयोगो तथा समीक्षाकारी समितियो न यह अनुभव किया कि पचायतो के आर्थिक आय स्रोत, उनसे अपेक्षित कार्यों की तुलना मे अत्यन्त न्यून हैं अत यह आवश्यक है कि उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ बनाने हेतु किसी ठोस अर्थनीति का विकास किया जाय। पचायतों को कर एव अतिरिक्त आय स्त्रोतों के विकास करन की दिशा मे उत्साहित किया जाना नितात आवश्यक है।[12]

पचायत समिति की आय के स्त्रोत

भारत मे, अधिकतर राज्यों मे, 'पचायत समिति' ग्रामीण स्थानीय शासन मे पचायती राज व्यवस्था की धुरी है। महाराष्ट्र तथा गुजरात को छोड अन्य सभी राज्यों मे यह मुख्य कार्यकारी निकाय है जिसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। इसके उत्तरदायित्व के क्षेत्र मे कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन, स्वास्थ्य, ग्रामीण सफाई, सचार व्यवस्था, सामाजिक शिक्षा, सहकारिता, एव कुटीर उद्योग आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त पचायत समिति खण्ड स्तर पर राज्य सरकार की अभिकर्ता के रूप म भी कार्य करती है और इस रूप मे उसे वे सब कार्य करने पडते हैं जिन्हे राज्य सरकार समय-समय पर विशिष्ट रूप मे उन्हे सौंपती है। पचायत समिति ही अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित पचायतो के कार्यों का पर्यवेक्षण और नियन्त्रण भी करती है। यही पचायतों को आवश्यक तकनीकी और वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराती है। इन सब कारणो से सामुदायिक योजना पर अध्ययन दल, राष्ट्रीय विस्तार सेवा तथा पचायती राज वित्तीय अध्ययन दल ने अपने प्रतिवेदनो मे यह अभिशसा की थी कि सभी प्रमुख वित्तीय स्त्रोत पचायत समितियों को स्थानान्तरित कर दिये जाने चाहिए। अधिकाश राज्यो न इनकी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया जिनके अनुसार पचायत समितियो के वित्तीय स्त्रोतों को निम्नाकित भागो मे रखा जा सकता है।

(1) कर एव अन्य आय स्त्रोत

उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र एव गुजरात को छोड कर सभी राज्यो के विधान,

पचायत समिति को कतिपय कर लगाने का अधिकार देते है । उदाहरणार्थ राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, पचायत समिति को निम्न कर आरोपित कर सकने के लिए अधिकृत करता है :

(क) भूमि के उपयोग या कब्जे के लिए, भूमिहारी द्वारा देय या प्राप्त किराये पर अथवा भूमि के अनुमानित लगान पर पाच पैसा प्रति व्यक्ति के हिसाब से कर

(ख) व्यापार, पेशो, धन्धो और उद्योगो पर कर

(ग) प्राथमिक शिक्षा पर कर

(घ) मेलो पर कर

व्यवसाय कर, प्राथमिक शिक्षा उप कर तथा पचायत समिति के क्षेत्र मे मेलो पर कर आरोपित करने के लिए पचायत समिति को राज्य सरकार की अनुमति लेनी होती है । करारोपण की प्रणाली या उसे आरोपित करने का तरीका "राजस्थान पचायत समिति (करारोपण) नियम, 1960" मे विस्तार से दिया गया है और समस्त पचायत समितियो से अपेक्षा की जाती है कि वे कर लगाते समय इसमे निर्धारित प्रक्रिया से निर्दिष्ट होगी ।[13]

कर लगाने के लिए पचायत समिति मे उसकी स्थाई समिति प्रस्ताव पास करेगी परन्तु कर लगाने का प्रस्ताव पचायत समिति की साधारण बैठक मे ही पारित किया जायेगा । जिन करो को आरोपित करने की पूर्व अनुमति राज्य सरकार से लेना आवश्यक हो उनके सम्बन्ध मे पचायत समिति द्वारा इस आशय के पारित प्रस्ताव की प्रतिलिपि तथा उस पर प्राप्त आपत्तियो का विवरण और टिप्पणी तथा कर लगाने की अनुमति देन सम्बन्धी प्रार्थना-पत्र तैयार कर पचायत समिति निदेशक, ग्रामीण विकास एव पचायत विभाग को प्रस्तुत करेगी । राज्य सरकार के इस विभाग की अनुमति प्राप्त होने के बाद ही पचायत समिति कर लगाने मे सक्षम हो सकेगी ।[14]

(2) सामुदायिक विकास फण्ड

सामुदायिक विकास कार्यक्रम भी, अब विकास विभाग से पचायती राज की इस प्रमुख सस्था को दिया गया है । इन कार्यक्रमो को सम्पन्न करने की निधि पचायत समिति के अधिकार मे बजट द्वारा दे दी जाती है । विभिन्न मदो-सस्थापन, कृषि, पशुपालन, स्वास्थ्य सिंचाई, सामाजिक शिक्षा, सचार आदि पर व्यय की जाने वाली राशि का निर्धारण चूकि पूर्व मे बजट द्वारा ही कर दिया जाता

है अतः इस फड में ही एक दूसरे कार्य म राशि हस्तातरित कर पाने के अलावा अन्य कोई विशेष अधिकार समिति के पास नही बच जाते हैं।

सरकारी अनुदान

पचायत समितियो को अपने उन कार्यों के निष्पादन के लिए भी सहायता मिलती है जो कार्य पचायती राज की स्थापना के पूर्व सरकारी विभागो द्वारा किये जाते थे किन्तु अब पचायत समितिया अपन स्टाफ द्वारा उच्च स्तरीय अधिकारियो के निर्देशन मे सम्पन्न करती हैं।[15] राज्य सरकार पचायत समितियो को जो परियोजनायें क्रियान्वित करने के लिए देती हैं उनके निष्पादन हेतु धन राशि उपलब्ध कराई जाती है। राज्य मे जो भू-राजस्व वसूल किया जाता है उसका भी एक भाग, जो अलग अलग राज्यो मे अलग-अलग निर्धारित है, पचायत समितियों को उपलब्ध कराया जाता है। इसके अतिरिक्त पचायत समितिया जिला-परिषद् से अनुदान प्राप्त करती हैं तथा कभी-कभी जिला परिषद् व राज्य सरकार की स्वीकृति से ऋण भी लेती हैं। इस तरह प्राय पचायत समितिया राज्य सरकार से मिलने वाले अनुदान तथा ऋणो पर एक निर्णायक सीमा तक निर्भरता की स्थिति मे रहती हैं।

पचायत समिति की आय के उपरोक्त सभी साधनो को सम्मिलित करते हुए सादिक अली समिति ने अपने प्रतिवेदन मे पचायत समिति की आय के साधनो को एकीकृत रूप से इस प्रकार व्यक्त किया है[16]

1. करो और शुल्कों (फीस) से प्राप्त होने वाली आय,
2. सम्पत्तियो के विक्रय से आय,
3. हड्डी के ठेको से आय,
4. जनता से चदे और अशदान,
5. विभिन्न विकास विभाग द्वारा हस्तातरित दायित्वों के लिए दिया गया सरकारी अनुदान;
6. वार्षिक, सदर्थ अनुदान;
7. पचायत समिति के क्षेत्र की जनसख्या पर प्रति व्यक्ति 25 पैसे के हिसाब से भू-राजस्व का भाग;
8. हस्तातरित योजनाओ के लिए समान अनुपात मे दिया जाने वाला अनुदान; और
9. राज्य सरकार द्वारा दिये गये ऋण।

राज्य सरकार द्वारा पचायत समितियो को जो अनुदान दिया जाता है वह तो निर्धारित मानदडो के अनुसार सभी पचायत समितियो को उपलब्ध कराया ही जाता है किन्तु राज्य सरकार इन्हें कुछ मैचिंग ग्राण्ट भी उपलब्ध कराती है। इस अनुदान के अन्तर्गत राज्य सरकार पंचायत समितियो से एक निश्चित मात्रा मे स्वयं के साधन एकत्र करने की अपेक्षा करती है और ऐसा हो जाने की सूचना प्राप्त होने पर राज्य सरकार उतनी ही मात्रा मे अनुदान राजकोषों से पचायत समितियो को उपलब्ध कराती है। इस प्रकार का अनुदान प्राय निर्माण कार्यों अथवा पचायत समिति के क्षेत्र मे रहने वाले लोगो की सामाजिक सुविधाओ मे वृद्धि करने के लिए दिया जाता है।

हस्तांतरित योजनाओ और दायित्वो के लिए जो धन राशिया पचायत समितियो को दी जाती हैं वे सब उन्ही प्रयोजनो के लिए व्यय की जा सकती हैं जिनके लिए उन्हे जारी किया गया है। इस प्रकार इस सम्बन्ध मे पंचायत समितियो को बहुत ही कम स्वतत्रता दी गई है। यह भी कहा जा सकता है कि पचायत समितिया सिर्फ उन्ही धन राशियो को अपने विवेकानुसार खर्च करने के लिए स्वतन्त्र हैं, जिन्हे वे स्वय अपने साधनो से उगाहती हैं। पंचायत समितियो की अपने साधनो से होने वाली आय मे यद्यपि उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है तथापि उनमे बढती हुई सामाजिक सेवाओ की माग की तुलना मे अभी तक यह पर्याप्त नही मानी जा सकती है।

राज्य सरकार द्वारा मनोरजन कर, स्टाम्प ड्यूटी पर अधिभार (सर-चार्ज) और वाणिज्यक फसलो आदि पर कर लगाने का अधिकार पचायत समिति को दिया गया है। इसी तरह शिक्षा उप-कर, भू-राजस्व पर उप-कर लगाने की शक्ति भी पचायत समिति को दी गई है।

कर लगाने की समवर्ती शक्तियां

सादिक अली समिति ने अपने प्रतिवेदन मे यह व्यक्त किया है कि पंचायती राज सस्थाओ मे से पचायत समितियो और जिला परिषदो को कुछ कर लगाने के सम्बन्ध मे हमने जो समवर्ती शक्तिया देने की सिफारिशें की हैं उनके मूल मे हमारी मशा यह रही है कि कर लगाने वाली सत्ता दूर के स्तर वाली हो, परन्तु पंचायत समिति का उत्साह और पहल करने की क्षमता भी समाप्त न हो। मनोरजन कर और भू-राजस्व पर उप-कर, स्टाम्प ड्यूटी पर अधिभार, वाणिज्यिक फसलों पर कर, शिक्षा उप-कर तथा भू-राजस्व पर बढी हुई दर से उप-कर लगाने की शक्ति जिला परिषद और पचायत समिति दोनो मे ही निहित होगी।

समिति ने यह मत भी प्रकट किया कि जो कर पचायत समिति और जिला परिषद् दोनो के ही द्वारा लगाये जा सकते हैं उनके सम्बन्ध मे यह सुनिश्चित करना पडेगा कि दोनो ही सस्थायें उन करो को एक साथ न लगा दें। यदि किसी कर के जिला परिषद् द्वारा लगाये जाने का निर्णय लिया जाता है और वह कर किसी पचायत समिति द्वारा पहले ही आरोपित किया जा चुका है तो पचायत समिति द्वारा पूर्व आरोपित कर की दर ही प्रभावी रहेगी। यह स्पष्ट है कि कर लगाने की समवर्ती शक्ति का प्रावधान करते समय समिति के मन-मानस मे सिर्फ एक ही तथ्य प्रभावी रहा कि स्थानीय सस्थाओ के द्वारा चूकि अपने नागरिको पर कर लगाने मे सकोच किया जाता है अत इस स्थिति के प्रतिकार के लिए कर लगाने की शक्ति उन्होने उच्चतर सस्था को देना उचित समझा।

पचायत समिति निधि

राजस्थान मे प्रचलित अधिनियम के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि पचायत समिति द्वारा प्राप्त की गई समस्त धन राशिया पचायत समिति "निधि" मे जमा कराई जाएगी और निर्धारित रीति या नियमो के अनुसार निर्धारित प्रयोजनो के लिए उपयोग मे ली जा सकेगी।[17] यह निधि सरकारी कोषागार या उप-कोषागार मे रखी जाएगी इसे 'पी डी अकाउन्ट" के नाम से जाना जाएगा। इसमे से निधि ऐसे चैक द्वारा निकाली जाएगी जिन पर विकास अधिकारी या इस कार्य के लिए उसके द्वारा प्राधिकृत अधिकारी के हस्ताक्षर होगे। पाच हजार से अधिक रकम के चैक पर प्रधान के प्रति हस्ताक्षर आवश्यक होते है।[18] प्रतिदिन के खर्च के लिये विकास अधिकारी के पास स्थाई अग्रिम (इम्प्रेस्ट) राशि रहेगी, जिसकी सीमा जिला परिषद् द्वारा निश्चित की जाती है।

पचायत समिति का बजट

पचायत समिति का विकास अधिकारी प्रत्येक वर्ष वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने से पूर्व आगामी वित्तीय वर्ष के लिए पचायत समिति की वास्तविक प्राप्तियो तथा व्यय का पूरा लेखा तैयार कर पचायत समिति के समक्ष प्रस्तुत करता है।[19] इस प्रकार तैयार बजट अनुमानो मे पचायत समिति अन्य बातो के साथ साथ *अधिनियम या अन्य किसी विधि द्वारा पचायत समिति पर आरोपित* कर्त्तव्यो के पालनार्थ पर्याप्त और उपयुक्त प्रावधान करती है। यही नही पचायत समिति द्वारा लिये गये ऋण और ब्याज की मली दय किश्तो के यथा समय भुगतान के लिये भी इसमे प्रावधान किया जाता है।

बजट तैयार करने सम्बन्धी अधिनियम के निर्देशो को कार्यान्वित करने के लिए "राजस्थान पचायत समिति (वित्तीय सेवा तथा बजट नियम)" बनाये

गये है। पचायत समितियों से अपेक्षा की जाती है कि बजट बनाते समय वे पूरी तरह इन्ही नियमो से निर्दिष्ट हो।[20]

अधिनियम मे अपेक्षित है कि विकास अधिकारी द्वारा तैयार इस बजट को .

1. पचायत समिति द्वारा पारित किया जायेगा।

2. इसे जिला विकास अधिकारी को भेजा जायेगा जो, अपनी टिप्पणी सहित जिला परिषद् का प्रस्तुत करेगा।

3. जिला परिषद् उसे स्वीकार कर लौटा देगी या अपनी टिप्पणी सहित सशोधन हेतु पचायत समिति को वापस भेजेगी।

4. पचायत समिति उस टिप्पणी पर विचार कर जो उचित समझे वैसा बजट पुन. पारित कर सकेगी। इसके बाद उसे जिला परिषद् की स्वीकृति की आवश्यकता नही होगी।[21]

यदि जिला परिषद् द्वारा पचायत समिति का इस प्रकार स्वीकृति हेतु प्रस्तुत बजट समय पर नही लौटाया जाता है तो पचायत समिति प्रभारित मदो पर खर्च कर सकती है परन्तु अन्य मदो पर उसके पास निजी साधन होने पर ही व्यय किया जा सकेगा। नियमो मे यह व्यवस्था भी की गई है कि जहा व्यय की किसी मद पर समतुल्य (मैचिग) अनुदान मिलता हो, उन मदो पर ऐसी स्थिति मे वह कोई व्यय नही कर सकेगी। किसी वर्ष के बीच मे भी पंचायत समिति अपने बजट को परिवर्तित या सशोधित कर सकेगी या पूरक बजट बना सकेगी किन्तु इस सम्बन्ध मे उसे उपरोक्त पूरी कार्यवाही करनी पडेगी।

लेखा तथा अंकेक्षण

अधिनियम यह व्यवस्था करता है कि पचायत समिति आय-व्यय के लेखे निर्धारित प्रक्रिया मे रखेगी। प्रत्येक पचायत समिति मे आय तथा व्यय के लेखे प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए ऐसे तरीके से सधारित किये जायेंगे, जैसा कि *निर्धारित किया जाये।*[22]

पचायत समिति के वार्षिक लेखे का सक्षिप्त विवरण जिसमे प्राप्ति की प्रत्येक मद के अधीन उसकी आय, स्थापना पर व्यय, निर्माण कार्य और उन पर खर्च की गई राशि, अवशेष और इसी प्रकार की अन्य सूचना, विकास अधिकारी द्वारा विहित प्रपत्र मे रखी जावेगी और उसे पचायत समिति के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जायेगा। ऐसी स्वीकृति के पश्चात वार्षिक

लेखे का संक्षिप्त विवरण जिला विकास अधिकारी को भेजा जायेगा जो उसे अपनी टिप्पणी सहित राज्य सरकार और जिला परिषद को आगामी वित्तीय वर्ष के दूसरे महीने की 15 तारीख तक प्रस्तुत करेगा।[23] विकास अधिकारी, निर्धारित प्रपत्र में, पचायत समिति के आय और व्यय का एक त्रैमासिक विवरण भी जिला विकास अधिकारी को भेजता है, जो उसके द्वारा अपनी टिप्पणी सहित जिला परिषद को प्रेषित कर दिया जाता है।

पचायत समिति द्वारा रखे गये और सधारित समस्त लेखों का प्रत्येक वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पश्चात यथाशीघ्र राज्य के परीक्षक, स्थानीय निधि अकेक्षक द्वारा अकेक्षण किया जाएगा और उसके अकेक्षण के पश्चात भारत के महा-अकेक्षक भी ऐसे लेखो का परीक्षण-अकेक्षण (टेस्ट ऑडिट) कर सकते है।[24] अधिनियम यह प्रावधान भी करता है कि इस प्रकार के अकेक्षण प्रतिवेदन का निरीक्षण के पश्चात राज्य सरकार जो भी निर्देश जारी करना उचित समझे, पचायत समिति उनकी अनुपालना के लिए बाध्य होगी।[25] पचायत समिति इस प्रकार के अकेक्षण के व्यय के रूप मे राज्य सरकार द्वारा निर्धारित राशि का भुगतान पचायत समिति, निधि मे से करेगी।[26]

जिला परिषद की आय के साधन

विभिन्न राज्यो की जिला परिषदो की आर्थिक आमदनी मे, उसमे अपेक्षित कार्यों और भूमिका की दृष्टि मे अतर किया जाता है। तमिलनाडु, राजस्थान आन्ध्र और पजाब आदि राज्यो मे जिला परिषद मात्र सलाहकारी सस्था है जिसका अपना कोई कोष नही होता। इन राज्यो मे प्राय जिला परिषदो को कर लगाने सम्बन्धी अधिकार भी नही हैं अपने सस्थापन खर्चों के लिए इसे राज्य सरकार से अनुदान मिलता है-तथा पचायत समितियो द्वारा आरोपित भूमि कर का कुछ भाग भी इन्हे देय होता है। उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात ने जिला परिषदो को करारोपण की शक्तिया दे रखी हैं। महाराष्ट्र जिला परिषद एक प्रमुख और महत्वपूर्ण निकाय हैं जिसे जिले की सीमा मे व्यक्तियो के व्यवसाय पर कर लगाने, सार्वजनिक जल व्यवस्था, मनोरजन, तीर्थस्थान भूमि व भवन तथा वे अन्य कर, जिन्हे आरोपित करने की स्वीकृति विधान-मण्डल दे दे, लगाने का अधिकार प्राप्त है। चूंकि महाराष्ट्र व गुजरात म जिला परिषद को विभिन्न क्षेत्रो मे कार्यकारी शक्तिया प्रदान की गई हैं इसलिए वहा इस पचायती राज व्यवस्था मे सब से शक्तिशाली निकाय के रूप मे प्रतिस्थापित किया गया है। इन दो राज्यों को छोड कर अन्य राज्यों मे जिला परिषद एक पर्यवेक्षीय तथा समन्वयकारी निकाय है। जिला परिषदो की आय के मध्य अतर पाये जाने

का एक मात्र उत्तरदायी कारक यह है कि किस राज्य मे उसे क्या भूमिका प्रदान की गई है ? जिला परिषदो मे सब से सुदृढ स्थिति महाराष्ट्र राज्य की है जहा राज्य की सम्पूर्ण आय का एक तिहाई ये परिषदें ही खर्च करती हैं।[27]

महाराष्ट्र जहा जिला परिषद को कार्यकारी शक्तिया देकर एक शक्तिशाली निकाय के रूप मे स्थापित किया गया है, मे उसकी आय के निम्नांकित साधन प्रदान किये गये है [28]

1 वृत्ति, व्यवसाय, व्यापार अथवा नौकरी पर कर,
2 तीर्थ यात्रा पर कर
3 जल कर,
4 योजना अनुदान,
5 सरकार से ऋण,
6 हाट मे बिकने वाले माल अथवा पशुओ पर शुल्क,
7. सार्वजनिक मनोरंजन के साधनो पर कर,
8 भू राजस्व अनुदान,
9 सहकारी अनुदान,
10. संस्थापना-अनुदान,
11 समूह-अनुदान,
12 कसाइयो से प्राप्त लाइसेंस शुल्क,
13 परिषद की समिति से आय,
14 घाटा पूर्ति अनुदान,
15. प्रयोजनात्मक-अनुदान,
16. राज्य से प्राप्त अनुदान,

राजस्थान मे जिला परिषद की आय तथा व्यय

राजस्थान मे जिला परिषद के कोष मे निम्नांकित दो साधनो से आय होती है :

1 राज्य सरकार से प्राप्त धनराशि अर्थात अनुदान,
2 पचायत समितियो अथवा जनता से किसी भी रूप मे प्राप्त अशदान या दान।

जिला परिषद अपनी आय से जो व्यय करेगी उसमे प्रमुख रूप मे उसके अधिकारियो और कर्मचारियो के वेतन एव भत्ते तथा उसके सदस्यो के भत्ते सम्मिलित हैं। अधिनियम यह व्यवस्था करता है कि जिला परिषद के अधि-

कारियों तथा कर्मचारियों के वेतन एवं भत्तों तथा उसके सदस्यों के भत्तों का भुगतान जिला परिषद की निधि पर प्रथम प्रभार होगा और ऐसा प्रभार निर्दिष्ट रीति से प्रवर्तित किया जाएगा।[29]

जिला परिषद का सचिव जिसे मुख्य कार्य पालक अधिकारी के नाम से जाना जाता है, जिला परिषद का बजट तैयार करने के लिए उत्तरदायी होता है। इस प्रकार तैयार बजट स्वीकृति के लिए जिला परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और जिला परिषद इस बजट को पारित कर राज्य सरकार को स्वीकृति हेतु भिजवाती है। इस प्रकार प्राप्त बजट पर जिला परिषद इस दृष्टि से विचार करती है कि उसमें आय-व्यय के जो मद दिखाये गये हैं वे अधिनियम के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त हैं या नहीं। यदि राज्य सरकार को इस दृष्टि से उसमें कोई कमी दिखाई देती है तो अपनी टिप्पणियों सहित राज्य सरकार उस बजट को जिला परिषद को वापस लौटा सकती है। जिला परिषद इस प्रकार वापस प्राप्त बजट पर पुनर्विचार करती है और ऐसे रूपान्तरों के साथ उसे पारित करती है जैसा वह आवश्यक समझती हो।

यदि राज्य सरकार निर्दिष्ट समय के भीतर जिला परिषद को बजट लौटाने में असफल रहे तो जिला परिषद ऐसे मदों पर, जिन के लिए वह आबद्ध है, व्यय कर सकेगी। यदि वित्तीय वर्ष के दौरान जिला परिषद अपने बजट में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव करे तो निर्धारित रीति से अनुपूरक या संशोधित बजट बनाकर अनुमोदित, प्रस्तुत तथा रूपान्तरित किया जा सकेगा।[30]

जिला परिषद निधि

जिला परिषद को प्राप्त होने वाली समस्त धनराशि को जमा कराया जाएगा और एक निधि गठित की जाएगी, जो "जिला परिषद निधि" कहलाएगी, और वह अधिनियम में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों तथा ऐसे प्रयोजनों के लिए, जो कालान्तर में निश्चित किये जायें, प्रयोग में लायी जाएगी।[31] इस प्रावधान के साथ यह व्यवस्था भी की गई है कि जिला परिषद द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण धनराशि निकटतम सरकारी कोषागार में या उप-कोषागार में रखी जाएगी। जिला परिषद की निधि में से भुगतान हेतु दी गई समस्त आज्ञाओं या चैक पर सचिव, जिला परिषद के हस्ताक्षर होंगे किन्तु ऐसी सब आज्ञाएं या चैक जो 2000 रुपये से अधिक राशि के हों, जिला परिषद के प्रमुख द्वारा प्रति हस्ताक्षरित किये जायेंगे। अपने आवश्यक प्रशासनिक काम-काज को चलाने के लिए जिला परिषद की निर्धारित राशि सचिव के प्रशासनिक नियन्त्रण में भी रखी जा सकेगी।

जिला परिषद के लेखा तथा अंकेक्षण के बारे मे अधिनियम यह उपबंध करता है कि पंचायत समिति के लेखा तथा अंकेक्षण के सम्बन्ध मे जो प्रावधान किये गये हैं वे ही जिला परिषद के लेखो तथा अंकेक्षण के सम्बन्ध मे प्रभावी माने जायेंगे।[32]

पंचायत समिति और जिला परिषद के बजट एवं लेखा प्रणाली पर विचार व्यक्त करते हुए सादिक अली प्रतिवेदन मे यह कहा गया है कि पंचायत समिति और जिला परिषद के लिए बजट बनाने और हिसाब रखने की जो प्रणाली निर्धारित की गई है वह करीब-करीब समान ही है। फिर भी जिला परिषदो के लिए बजट बनाने या हिसाब रखने की कोई विस्तृत प्रणाली इसलिए नही है क्योंकि उनके पास न तो उपयोग के लिए विशेष धन ही है और न ही उनके विस्तृत कर्तव्य हैं। अतः बजट और लेखो के सम्बन्ध मे अधिनियम और नियमो के प्रावधान यथार्थ रूप मे केवल पंचायत समितियो पर ही प्रभावी होते हैं।

पंचायत समितियो और जिला परिषदो दोनो को ही एक निधि की स्थापना करनी होती है, यह निधि सरकारी कोषागार या उप-कोषागार मे रखी जाती है और दोनो के ही प्रशासनिक अधिकारियो को निर्धारित प्रपत्र मे संस्था की अनुमानित आय और व्यय का वार्षिक बजट तैयार करना होता है, उसे अनुमति हेतु उच्च संस्था को भेजना होता है और अनुमति प्राप्त होने पर ही उनका व्यय नियम सम्मत माना जाता है।

पंचायत समिति एवं जिला परिषद को अपने-अपने बजट बनाने के लिए एक बजट कलैंडर भी निर्धारित किया हुआ है जिसकी उन्हे पालना करनी होती है। उनकी अपनी स्वयं की आमदनी के उपयोग के लिए कोई विशिष्ट नियम नही बनाये गये हैं वस्तुत उनकी अपनी आमदनी का उपयोग उन योजनाओ के लिए किया जा सकता है, जिनकी सम्बन्धित विभाग की प्राविधिक अनुमति के पश्चात क्रियान्वित किया जाता है।

स्वयं की आय मे होने वाली प्राप्तिया भी पी डी. खाते मे जमा की जाती है। पंचायत समिति द्वारा आरोपित करो और ऋणो की किश्तो की वसूली राजस्व एजेन्सी द्वारा की जाती है। इस प्रकार वसूल की गई राशियो को तहसीलदार एक निर्धारित अवधि मे पी डी खाते मे जमा कराता है और इसकी सूचना पंचायत समिति को देता है। जो राशि सीधी पंचायत समिति द्वारा वसूल की जाती है वह भी तुरन्त ही पी डी खाते मे जमा कराई जानी आवश्यक है। राज्य सरकार द्वारा जो राशिया पंचायत समिति और जिला

परिषद के पी डी खाते में स्थानान्तरित की जाती है, उन्हें उसी वित्तीय वर्ष में खर्च करना आवश्यक नही है। ये संस्थाए इन राशियो को अपनी इच्छानुसार वित्तीय वर्ष के बिना प्रतिबंध के कभी भी खर्च कर सकती है।

पचायत समिति द्वारा अपने हिसाब किताब के रख-रखाव के क्रम में

1. रोकड बही, 2. प्राप्तियो और व्यय का वर्गीकृत सक्षेप, 3. सामान्य खाता बही, 4 माग वसूली रजिस्टर, 5. ऋण प्रत्याशोधन का रजिस्टर, 6. निर्माण कार्यों का रजिस्टर, 7 स्थाई अग्रिम (इम्प्रेस्ट) की रोकड बही, 8. विनियोजन रजिस्टर, 9 सहायतार्थ अनुदान का रजिस्टर और प्रत्याभूतियो का रजिस्टर आदि पुस्तकें व्यवस्थित रूप से रखी जाती हैं। इसी प्रकार जिला परिषद द्वारा भी रोकड बही व सामान्य खाता बही मे अपने आय व्यय का विवरण रखा जाता है।

समीक्षा

पचायती राज सस्थाओ की आय के साधनो की उक्त जानकारी से एक तथ्य यह प्रमाणित होता है कि इन सस्थाओ को अधिकतर सरकारी अनुदान पर निर्भर रहना पडता है। जहा तक इन सस्थाओ द्वारा करारोपण मे साधन एकत्र करने का सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में कोई उज्जवल आसार दिखाई नहीं देते हैं। अत. पचायती राज सस्थाओ के श्रेष्ठतर कार्यकरण एव सचालन के लिए यह आवश्यक है कि इनके वित्तीय स्त्रोतो, सरकारी अनुदानो तथा ऋण आदि के सम्बन्ध मे किसी ठोस नीति का विकास किया जाय। पचायती राज सस्थाओ के कार्य की समीक्षा के लिए निर्मित विभिन्न समितियो और आयोगो ने "पचायती राज वित्त निगम" की स्थापना की सिफारिश की है जो इन सस्थाओ को जिला परिषद की ओर से ऋण उपलब्ध कराने मे सक्षम हो सके।

पचायती राज सस्थाओ का कुशल कार्यकरण इस बात पर निर्भर करता है कि उनकी वित्तीय स्थिति कैसी है। किन्तु इन सस्थाओ की वित्तीय स्थिति इस बात पर अवलबित रहती है कि राज्य सरकार उन्हे आर्थिक अनुदान उपलब्ध कराने मे कितनी उदार और समय की पाबन्द है।

वस्तुत पचायती राज सस्थाओं की राजस्थान के विशेष सन्दर्भ मे वित्तीय व्यवस्था और हिसाब की वर्तमान दशा का तटस्थ आकलन और मूल्याकन यदि किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थिति सतोषप्रद नही है। ऐसा इसलिए कि इन सस्थाओ के विकास और इनके कार्य क्षेत्र मे वृद्धि के साथ-साथ

उनके प्रशासन तंत्र को सुदृढ बनाने, उसकी सरचना को स्पष्टता देने, उसके कार्य व्यवहार के नियमो को निर्धारित करने एव उनके अनुरूप समयबद्ध आचरण करने की दिशा मे राज्य सरकार के उत्तरदायी विभाग ने कोई सटीक कार्यवाही नही की है। पचायती राज की इन सस्थाओ को निरन्तर नये-नये दायित्व तो दिये जा रहे है किन्तु उन दायित्वो को निभाने के अनुरूप उनकी प्रशासनिक सस्थाओं कार्य विधियो, प्रक्रियाओ और सरचना मे आवश्यक परिवर्तन और सुधार यदि नही किया जा रहा है तो इस स्थिति मे इन सस्थाओ की असफलता को स्थानीय निकायो की असफलता न मानकर नीति नियोजको और उच्च स्तरीय निर्देशन की असफलता माना जाएगा। अब तक की स्थिति के बारे मे समालोचको की यही राय बनी है।

प्रथम तो पचायती राज की सस्थाए जिन करो को लगाने के लिए सक्षम बनाई गई है उन करो का वे विधिवत आरोपण ही नही करती और यदि उनमे से कुछ करो को वे लगाती भी है तो उनका पूरी तरह एकत्रण नही कर पाती और जो कुछ राशि वह एकत्र कर रही हैं उसका सही तरीके से वे व्यय नही कर पाती हैं। यह स्थिति इन सस्थाओ को एक विषैले चक्र मे उलझा रही है और सबसे दुर्भाग्यजनक तथ्य यह है कि सघीय सरकार और राज्य सरकार नित्य प्रति जनता के अत्यधिक निकट की इन सस्थाओ को अधिकाधिक अधिकार और दायित्व देने के प्रति तो अपनी निष्ठा व्यक्त करती रहती हैं किन्तु उन की कार्यक्षमता मे वृद्धि के अनुरूप उनके वित्तीय प्रशासन को कार्यक्षम बनाने के लिए उन्होने कोई ठोस कार्यवाही नही की है। यदि हमारे नीति निर्माता इस स्थिति का सही तरीके से आकलन नही करेंगे तो जनतन्त्र को सबसे नीचे के स्तर तक पहुचाने का उनका सकल्प ठीक से कार्यान्वित नही हो पायेगा।

इन सस्थाओ की लेखा प्रक्रिया सरल होनी चाहिए। यह ऐसी होनी चाहिए कि इन सस्थाओ के कर्मचारी इसे भली-भाति समझ सकें। इस स्थिति मे सुधार के लिए कुछ सुधारो पर विचार किया जा सकता है

1. लेखा प्रक्रिया को निर्धारित करने के लिए उलझनपूर्णप्रपत्रो को सरल और स्पष्ट बनाये जाने की अत्यधिक आवश्यकता है।

2. राज्य सरकार इन सस्थाओ को जो अनुदान और विशिष्ट प्रयोजनो के लिए जो धनराशि उपलब्ध कराती है वह उन्हे सही समय पर मिल जाय यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

3. अनुदान और ऋण के वितरण की प्रक्रिया भी सरल होनी चाहिए। यह अनुभव किया गया है कि अनुदान और ऋण राशियो के भुगतान की वर्तमान

प्रणाली विलम्बकारी है। इस प्रणाली मे सुधार के लिए उच्च स्तर पर विचार विमर्श कर निर्णय लिए जाने की आवश्यकता है।

4. इन स स्थाओ को राज्य सरकार द्वारा जो धनराशि आवटित की जाती है उनके आवटन का आधार भी सुनिश्चित और समान होना चाहिए ताकि कोई भी संस्था अपने लिए वित्तीय आवटन के बारे मे न केवल निश्चित रह सके अपितु किसी भी प्रकार के उच्च स्तरीय पक्षपात की बात उनके मन-मानस को विचलित भी न कर सकें। लेखा शीर्ष भी यथा सम्भव कम होने चाहिए ताकि हिसाब रखने के मामले मे कम से कम कठिनाइया उपस्थित हो।

5 पचायती राज स स्थाओ के लिए प्रशिक्षित लेखा कर्मचारियो की व्यवस्था किया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राज्य सरकार को यह बात भी देखनी चाहिए कि इन स स्थाओ मे स्वीकृत पद अधिक समय तक रिक्त न पडें रहें क्योकि रिक्त पडे इस प्रकार के पद इन स स्थाओं के काम-काज पर इतना भारी बोझ उत्पन्न कर देते हैं कि उनके निस्तारण के लिए ये स स्थाए कोई मार्ग नही ढूढ पाती और वर्षों तक ये स स्थाए राज्य सरकार की इस अनिर्णय की स्थिति से मुक्त होकर सक्रिय और जीवन्त नही बनपाती।

6 जो निधिया राज्य सरकार से इन स स्थाओं को हस्तातरित की जाती हैं उनमे से अधिकतर किन्ही विशिष्ट योजनाओ के लिए निर्धारित होती हैं अत ये स स्थाए ऋण और अनुदान की प्राप्त राशियो को अपनी सूझ-बूझ के अनुसार खर्च करने के लिए स्वतन्त्र नही होती हैं। इस स्थिति का परिणाम यह होता है कि ये स स्थाए स्थानीय आवश्यकताओ और परिस्थितियो के अनुसार अपने आपको राशि के पुनर्वियोजन करने मे अक्षम पाती हैं जिससे एक मद मे तो राशि पडी रह जाती है जबकि दूसरी मद मे धनाभाव के कारण काम रोक देने पडते हैं। *यह स्थिति इन स स्थाओ की स्वत प्रेरणा पर विराम लगाती है।* उपयुक्त प्रशासनिक शर्तों या मानदण्डो के निर्धारण द्वारा इस कठिनाई का हल निकाला जा सकता है।

7 राजस्थान मे पचायती राज स स्थाए अब तक प्राथमिक शिक्षा और गत वर्ष से उच्च प्राथमिक शिक्षा का स चालन कर रही हैं। शिक्षा के इस आधार-भूत ढाचे को सशक्त बनाने के लिए यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि इन सस्थाओ को पर्याप्त शिक्षा अनुदान मिले और समूचे राज्य मे सभी सस्थाओ को उनकी आवश्यकता के अनुसार राशि दी जाय।

8. पचायती राज की स स्थाओं को इस तरह विकसित किया जाय कि ये स स्थाए ग्रामीण क्षेत्रो मे व्याप्त बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी की स्थिति मे

मुक्ति दिलाने के लिए ग्रामीण युवकों को काम दिलाने हेतु छोटे छोटे उद्योग-धन्धे शुरू कर सकें। इस प्रकार के उद्योग-धन्धो के लिए राशि जुटाना इन संस्थाओ के सामर्थ्य की बात नही होगी अत इस हेतु कुछ ऐसा व्यावहारिक सिद्धान्त विकसित किया जाना चाहिए कि एक न्यूनतम राशि ये संस्थाए अपने स्तर पर एकत्र करें तो उसी अनुपात मे समरूप अनुदान के रूप मे एक बड़ी राशि राज्य सरकार भी उपलब्ध करा दे। इस तरह की व्यवस्था कर दिये जाने से न केवल इन संस्थाओ की वहन शक्ति ही विकसित होगी अपितु विभिन्न संस्थाओ के मध्य स्वस्थ प्रतियोगिता का वातावरण भी बन सकेगा। राज्य के विकास हेतु यह कदम उपयोगी सिद्ध होगा।

9. स्थानीय संस्थाओ को सार्वजनिक उपयोग के निर्माण कार्य, दूकानो, बाजार और सिनेमाघरो के निर्माण, कुए खोदने और चट्टानें तोड़ने की मशीनें रखने तथा आटे, तेल, चावल इत्यादि की छोटी-छोटी औद्योगिक इकाईया स्थापित करने की दिशा मे प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक मदद दिये जाने के उपाय सोचने चाहिए। इस प्रकार के उपाय किये जाने से इन संस्थाओ की कार्यमहत्ता ही नही बढ़ेगी अपितु कुछ वर्षों मे ये संस्थाएं आर्थिक रूप से इतनी सशक्त बन जाएँगी कि राज्य सरकार का अनुदान उनके लिए निर्भरता का विषय नही रहेगा बल्कि नागरिको के लिए अतिरिक्त सुविधाए जुटाने के लिए एक स्रोत बन जायेगा।

10. पचायती राज की स्थानीय संस्थाए विशेष तौर पर ग्राम पचायत लोकतन्त्र की आधारभूत इकाई है। इस इकाई से लोगो की सार्वजनिक अपेक्षा यह रहती है कि वह स्थानीय सफाई, रोशनी, पानी, सडक इत्यादि की मूलभूत सुविधाए उपलब्ध करायेगी। यदि सरकार इन संस्थाओ को वास्तव मे सफल और सक्षम बनाना चाहती है तो सर्वप्रथम उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि राज्य की समस्त पचायतें अर्थात प्रत्येक पचायत आर्थिक दृष्टि से इतनी सक्षम बने कि उपरोक्त मूलभूत सुविधाए वे अपने नागरिको को निरपवाद रूप से उपलब्ध कराने मे सफल हो। यदि सरकार यह सुनिश्चित कर दे तो न केवल इन संस्थाओ मे जनता की आस्था जागृत करने मे सफल होगी अपितु ऐसा कर के वह संविधान के नीति निर्देशक तत्वो द्वारा उस पर आरोपित अपने कर्त्तव्यो के सम्यक् निर्वाह मे भी सफल हो सकेगी।

जहा तक राजस्थान का सवाल है, 1978 के पश्चात राजस्थान मे पंचायती राज संस्थाओ को अधिक अधिकार देने के प्रति राज्य सरकार संकल्पबद्ध

दिखाई दी है।[1] 1978 मे प्रथम बार राज्य सरकार ने यह निश्चय किया कि ग्राम पचायतो को 25 पैसे प्रति व्यक्ति के स्थान पर ढाई रुपया प्रति व्यक्ति अनुदान दिया जायगा। दुर्भाग्य से तब से लेकर अब तक यह अनुदान सशोधित नही किया जा सका है। 1988 मे हुए पचायती राज सस्थाओ के चुनावो के पश्चात तो एक और रुझान राज्य सरकार का स्पष्ट हुआ है जिसके अन्तर्गत ऐसा लगता है कि वह जिला परिषद को भी मात्र दर्शक-इकाई के रूप मे नही रखना चाहती अपितु पर्यवेक्षण और परीक्षण के अधिकारो के अलावा कुछ परियोजनाओ के निष्पादन मे वह उसे सक्रिय भागीदार बनाना चाहती है। ग्रामीण क्षेत्र मे जल के वितरण, हैड पम्पो के रख-रखाव आयुर्वेदिक चिकित्सालयो की व्यवस्था करना, उच्च प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध इत्यादि ऐसे आयाम हैं जिनमे राज्य सरकार जिला परिषद को सक्रिय रूप मे जोड़ना चाहती है।

किन्तु उपरोक्त सभी निश्चय राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से भले ही स्वागत योग्य माने जायें किन्तु इस स कल्प को तब तक साकार नही किया जा सकता जब तक राज्य सरकार पचायती राज स स्थाओ को उपलब्ध करायी जाने वाली वित्तीय सहायता, अनुदान, ऋण और अन्य प्रकार के कदमो से सशक्त बनाने का व्यवस्थित निर्णय नही लेती है। अब तक की राज्य सरकार की इच्छा की मीमासा से यह स्पष्ट नही हुआ है कि वह इन स स्थाओ को वित्तीय दृष्टि से सक्षम बनाने के प्रति गम्भीर या चिन्तित है। उसकी घोषणाओं से ग्रामीण क्षेत्रो के निवासियो का प्रमत्र करने की इच्छा तो अभी तक व्यक्त हुई है किन्तु प्रशासनिक चिन्तको को यह बात अभी चिन्ता मे डाले हुए हैं कि पचायती राज स स्थाओं को सशक्त बनाने की राजनीतिक घोषणाओं को व्यावहारिक रूप देने के लिए जो प्रशासनिक और वित्तीय प्रबन्ध के निर्णय राज्य सरकार को ले लेने चाहिए थे वे अभी तक वह नही ले सकी है। इस स्थिति के समाधान का उपाय किए बिना पचायती राज स स्थाए जनसाधारण की आकाक्षाओ की कसौटी पर खरी नही उतर पायेंगी।

सन्दर्भ

1 सादिक अली, पूर्वोक्त रिपोर्ट, 1964, पचायत एव विकास विभाग, राजस्थान सरकार, पृष्ठ 138–139

2. उपरोक्त, पृष्ठ–139
3. उपरोक्त,
4. उपरोक्त,
5 उपरोक्त, पृष्ठ–140
6. उपरोक्त,
7. उपरोक्त, पृष्ठ–141
8 उपरोक्त,
9 उपरोक्त,
10. उपरोक्त, पृष्ठ–143
11. उपरोक्त, पृष्ठ–148
12 एस के. मोगले, पूर्वोक्त, पृष्ठ–121
13. विस्तृत अध्ययन हेतु द्रष्टव्य दत्त एव दाधीच, राजस्थान प. स'. एव जिला परिषद अधिनियम, एवन एजेंसीज, जयपुर, 1983 खण्ड द्वितीय पृष्ठ-100-248
14. दत्त एव दाधीच, पूर्वोक्त, पृष्ठ–106
15. एस. के. मोगले, पूर्वोक्त, पृष्ठ 163
16. सादिक अली प्रतिवेदन, पृष्ठ 137
17. अधिनियम की धारा 34 (1)
18 उपरोक्त, धारा 37 (2)
19. उपरोक्त, धारा 37
20 द्रष्टव्य, दत्त एव दाधीच, पूर्वोक्त, भाग 2, अध्याय 2 नियम 3 से 20 तक
21. अधिनियम की धारा 37 (4)
22. उपरोक्त, धारा 38 (1) (2)
23. उपरोक्त, धारा 38 (3)
24. उपरोक्त, धारा 38 (4) (5) एव परन्तुक
25. उपरोक्त, धारा 38 (6)
26. उपरोक्त, धारा 38 (7)
27. श्री राम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा, 1989, पृष्ठ 111

28. उपरोक्त,
29 अधिनियम, धारा 63
30. उपरोक्त, धारा 63 (5)
31. उपरोक्त, धारा 62 (1,
32 उपरोक्त, धारा 65



14

नगरीय स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन

प्राय ग्रामीण एव नगरीय दोनो क्षेत्र मे कार्यरत स्थानीय संस्थाओ की वित्तीय स्थिति इतनी कमजोर होती है कि ये संस्थायें पर्याप्त धन के अभाव मे नागरिको द्वारा अपेक्षित और कानून द्वारा प्रवर्तित अपने अनिवार्य दायित्वो का सम्पादन भी नही कर पाती हैं। इस स्थिति का एक ऐतिहासिक कारण है। वस्तुत: 1935 के भारत सरकार अधिनियम ने हमारे संविधान निर्माताओ के चिंतन को एक निर्णायक सीमा तक प्रभावित किया है। उक्त अधिनियम मे करो की किसी स्थानीय सूची का उल्लेख नही था, इस कारण जब 1937 मे यह अधिनियम प्रवर्तित हुआ तो स्थानीय संस्थाए करारोपण के विशिष्ट अधिकार से वंचित हो गई। हमारे संविधान के निर्माताओ ने भी स्थानीय शासन की संस्थाओ को न तो करारोपण की विशिष्ट शक्तियां प्रदान की और न ही राज्य और स्थानीय शासन के बीच आय के स्रोतो का वैसा विभाजन किया जैसा संघीय सरकार और राज्य सरकारो के मध्य किया गया है।

विश्व के विकसित राष्ट्रो मे यदि स्थानीय शासन की संस्थायें नागरिको की संतोषजनक सेवा करने मे सफल हो रही हैं तो इसका एकमात्र कारण उनका वित्तीय दृष्टि से सक्षम होना है। इसके विपरीत विकासशील या अर्द्ध विकसित देशो मे स्थानीय शासन की संस्थाओ के प्रभावशील न होने की जो स्थिति दिखाई देती है उसका एक मात्र कारण आर्थिक दृष्टि से उनका अक्षम होना है। अब तक जितने भी शासकीय प्रयोग या समितियां सरकार द्वारा नगरीय स्थानीय संस्थाओ की समीक्षा के लिए नियुक्त की गई हैं उनके प्रतिवेदनो मे स्थानीय शासन के सुधार के विषय पर उनकी वित्तीय व्यवस्था का आयाम एक प्रमुख विचारणीय विषय रहा है।[1] भारतवर्ष मे भी विभिन्न राज्य सरकारो के

अतिरिक्त संघीय सरकार ने भी स्थानीय संस्थाओं की समस्याओं और यहां तक कि स्थानीय वित्तीय प्रशासन की समीक्षा के लिए विभिन्न आयोग और समितियां नियुक्त की हैं।

स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय संरचना कई तत्वों पर निर्भर करती है जिनमें प्रमुख हैं स्थानीय शासन की राजनीतिक संरचना, स्थानीय इकाईयों का स्तर और आकार, उसके द्वारा प्रदत्त सेवाएं और कार्य तथा उन पर सरकार का नियन्त्रण। वस्तुतः स्थानीय संस्थाओं के वित्त की संरचना और उनके क्षेत्र को निर्धारित करने में इन समस्त तत्वों का सम्मिलित योगदान होता है।[2] यदि किसी स्थानीय संस्था की वित्तीय स्थिति कमजोर होती है और अपनी आय की तुलना में व्यय अधिक होता है तो इससे उनके कामकाज में केन्द्रीय या राज्य सरकार का हस्तक्षेप बढ़ता है जिसके परिणामस्वरूप उनकी स्थानीय स्वायत्ता संकुचित होती है।

इसी तरह स्थानीय इकाई का आकार भी उनकी वित्तीय संरचना की पर्याप्तता या अपर्याप्तता को विनिश्चित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। एक स्थानीय इकाई अपने आकार और उसमें निवास करने वाली जनता की दृष्टि से यदि विस्तृत और बड़ी इकाई है तो एक छोटी इकाई की तुलना में उसकी वित्तीय स्थिति अधिक सुदृढ़ होगी। छोटी इकाईयां सदैव आर्थिक सहायता के लिए मुखापेक्षी रहती है। समालोचकों की मान्यता यह भी है कि स्थानीय इकाईयों को आर्थिक संसाधन का आवंटन उन्हें प्रदत्त कार्यों के क्षेत्र और विस्तार को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता है। राज्य सरकार या उच्चतर शासन की इकाई निरन्तर उन संस्थाओं के कार्य निष्पादन पर दृष्टि रखती है और यदि उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि ये संस्थायें उपलब्ध संसाधनों की सीमा में अपने दायित्वों का निष्पादन कुशलता पूर्वक नहीं कर पा रही हैं तो या तो उनके संसाधन बढ़ाने का निर्णय लिया जाता है या फिर उनके वृहत्तर दायित्वों में से कुछ दायित्वों को कम कर दिया जाता है जिससे वे संस्थायें विनिर्दिष्ट कर्तव्यों का समुचित निर्वाह कर सकें। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण यह दिया जाता है कि जल वितरण का काम स्थानीय संस्थाओं का हुआ करता था किन्तु जल वितरण हेतु निर्माण कार्यों पर जो भारी खर्च आने लगा है उसे देखते हुये यह कार्य स्थानीय संस्थाओं की अपेक्षा सरकारें अपने स्तर पर करने लगी हैं। विगत कुछ वर्षों में यह तथ्य भी उभर कर सामने आया है कि लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के कारण स्थानीय संस्थाओं के कार्यभार में जो वृद्धि हुई है और राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों में उन्हें अधिक भागीदारी दी जाने लगी है

उसी के अनुरूप सरकारी सहायता और अनुदान में भी वृद्धि स्पष्टतः दृष्टिगोचर हुई है।[3]

स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय संरचना उनकी अपनी स्वयं की इच्छा पर निर्भर नहीं होती अपितु यह राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। इसे निर्धारित करते समय राज्य सरकार को स्थानीय संस्था द्वारा नागरिकों को दी जाने वाली सेवाओं एवं राष्ट्रीय सेवाओं में उनकी प्रासंगिकता के सन्दर्भ में निर्णय लेना होता है। वे संस्थायें जो कर आरोपित कर सकेंगी उनकी अनुमति भी राज्य सरकार देती है और इस प्रकार एकत्र संसाधन यदि उनके दायित्वों के सम्पादन के लिए न्यून पड़ते हैं तो उन्हें राज्य सरकार अपने कोष से अनुदान भी देगी। राज्य सरकार ही क्योंकि उनके दायित्वों के क्षेत्र का निर्धारण करती है *अतः उनकी वित्तीय संरचना का क्षेत्र भी एक प्रकार से उसी के द्वारा निर्धारित* होता है।

स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय व्यवस्था पर उच्च स्तरीय सरकार का यह नियन्त्रण एक विश्वव्यापी विशेषता है। इस तथ्य को विकसित और विकासशील सभी देशों में अनुभव किया जा सकता है यद्यपि स्वीडन और यूगोस्लाविया इसके विशिष्ट अपवाद हैं।[4]

किसी नगरीय स्थानीय शासन की इकाई के वित्तीय प्रशासन का एकीकृत रूप उसके बजट के अवलोकन से स्पष्ट तौर पर समझा जा सकता है। यह *बजट आय और व्यय दोनों का पूर्वानुमान होता है।* इसलिए *नगरीय शासन* की स्थानीय इकाईयों के वित्तीय प्रशासन के इस अध्याय को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त कर देखना उचित होगा :

1 आय के स्रोत,
2 बजट का निर्माण और उसमें व्यय की विभिन्न मदें, और
3 लेखा पालन तथा लेखा परीक्षण।

आय के स्रोत

जैसा कि पूर्व में व्यक्त किया जा चुका है कि भारत के संविधान द्वारा *करारोपण की शक्तियों का विभाजन केन्द्रीय सरकार एवं राज्यों के मध्य किया* गया है। उसमें ऐसे करों का उल्लेख नहीं है जो अनन्य रूप से स्थानीय शासन के लिए हों। स्थानीय शासन अपनी वित्त व्यवस्था का संचालन राज्य सरकार की सहायता से और उसके द्वारा विनिश्चित की गई परिसीमा में करेगा। इस प्रकार स्थानीय शासन को प्रभुत्वहीन कर के उसे सम्बन्धित राज्य सरकार का एक

निकाय या इकाई बना दिया गया है। राज्य सरकारें स्वयं राज्य सूची में वर्णित विषयों तक कर लगाने के लिए स्वतन्त्र होती हैं। इस तरह राज्य सरकार का वित्तीय क्षेत्र सीमित होने के कारण उसकी ये नगरीय सरकारें भी वित्तीय कमी से प्रभावित होती है। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के विकास की मुख्य समस्या शहरीकरण की रही है। शहरों के बढ़ते हुए आकार और उन पर निरन्तर होने जनसंख्या के दबाव ने स्थानीय संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों और उनकी महत्ता को पर्याप्त बढ़ा दिया है। इस कारण स्थानीय संस्थाओं को अपनी प्रतिष्ठा बचाने एवं आरोपित दायित्वों के कुशलता पूर्ण निर्वाह के लिए अधिकाधिक साधन जुटाने के लिए निरन्तर संघर्षरत देखा जा सकता है किन्तु उसे प्रदत्त साधनों की सीमा इस स्थिति से मुक्ति का कोई मार्ग सुझा नहीं पाती है।

नगरीय स्थानीय शासन की इकाईयों के आय के साधनों को निम्नांकित शीर्षों के अन्तर्गत देखा जा सकता है

1. करारोपण द्वारा आय या करो से आय,
2. करो से भिन्न साधनों द्वारा आय,
3. राज्य सरकार द्वारा आरोपित एवं एकत्रित करो में से हिस्सा,
4. राज्य सरकार द्वारा अनुदान,
5. उधार या ऋण।

स्थानीय शासन की आय का मुख्य स्रोत उनके द्वारा आरोपित कर होते है। आय का यह स्रोत स्थानीय शासन की राज्य सरकार पर निर्भरता को कम करता है अन्यथा वे अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व खो कर राज्य सरकार के एक विभाग मात्र बन सकते हैं। जिस संस्था के पास करारोपण की शक्तियां अधिक होती हैं वह संस्था राजनीतिक दृष्टि से उतनी ही स्वायत्तता का उपयोग करती है और इससे उसके आत्मसम्मान में भी वृद्धि होती है।[5] भारतवर्ष में नगरीय संस्थाओं द्वारा आरोपित किए जाने वाले करो में भी कोई एकरूपता या समानता दिखाई नहीं देती है। यह इसलिए कि प्रथम तो नगरीय स्थानीय शासन की इकाईयां राज्य सरकारों के नियन्त्रण में होती हैं, अतः सभी राज्य सरकारें इस सम्बन्ध में पृथक निर्णय करती हैं और दूसरे इसलिए कि नगरों में पाई जाने वाली ये संस्थायें भी एक जैसी नहीं होती। कहीं नगर निगम होता है तो कहीं नगर-परिषद् और कहीं-कहीं पर अन्य प्रकार की संस्थायें। इस प्रकार भिन्न राज्यों में भिन्न भिन्न प्रकार की इन नगरीय इकाईयों द्वारा आरोपित करो में स्वाभाविक रूप से असमानता पाई जाती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् समय-समय पर यह माग की जाती रही है कि नगरीय सस्थाओं के लिए वित्त की व्यवस्था स विधान द्वारा ही कर दी जानी चाहिए। जिस प्रकार स विधान द्वारा आय के स साधनो का केन्द्र एव राज्यो के बीच वितरण कर दिया गया है, उसी प्रकार स्थानीय सस्थाओ के लिए भी स विधान मे समुचित सशोधन के माध्यम से यह व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अभाव मे स्थानीय स स्थाए आज पूर्ण रूप से राज्य सरकारो पर निर्भर हैं। इस स्थिति को समाप्त करने की दिशा मे 1951 मे स्थानीय वित्त जाच समिति (लोकल फाइनेंस एनक्वारी कमेटी), 1953–54 मे करारोपण जाच आयोग (टैक्सेशन एन्क्वायरी कमीशन), मिनिस्टर्स कमेटि्यॉन ऑगमेन्टेशन ऑफ फाइनेंसेज ऑफ अरबन लोकल बॉडीज तथा ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति (रूरल अरबन रिलेशनशिप कमेटी) 1966, ने भी अपनी सिफारिशें सरकार को प्रस्तुत की थी। इनमे से 1951 मे नियुक्त स्थानीय वित्तजाच समिति ने यह सिफारिश की थी कि निम्नलिखित कर स्थानीय स स्थाओ के उपयोग के लिए सुरक्षित किये जाने चाहियें

1 वायु, जल, एवं रेल मार्ग द्वारा लाये गये यात्रियो एव माल पर सीमात कर,
2 भूमि एव भवन कर,
3. खनिज अधिकारो पर कर,
4. स्थानीय स स्था के सीमा-क्षेत्र मे उपभोग, उपयोग या बिक्री के लिए लाये गये माल पर कर,
5. विद्युत के उपभोग एव बिक्री पर कर,
6. समाचार-पत्रो मे प्रकाशित विज्ञापनो को छोडकर अन्य विज्ञापनो पर कर,
7 सडक एव आन्तरिक जल-मार्ग से लाये गये माल एव यात्रियो पर कर,
8 वाहन कर,
9. पशुओ एव नावो पर कर,
10. मार्ग कर,
11. व्यवसाय, व्यापार, आजीविका तथा नौकरी पर कर,
12 प्रति व्यक्ति कर,
13. मनोरजन कर।

इसी प्रकार इस समिति के प्रतिवेदन के दो वर्ष बाद सन् 1953–54 मे करारोपण जाच आयोग ने भी इस समस्या पर विचार किया और निम्नांकित दस कर स्रोतो को स्थानीय सस्थाओ के लिए सुरक्षित रखने का सुझाव दिया

1. भूमि एव भवन कर,
2. चुंगी,
3. कमीशन चलित वाहनो के अतिरिक्त अन्य वाहनो पर वाहन कर,
4. पशुओ एव नौका पर कर,
5. व्यवसाय, व्यापार, आजीविका तथा नौकरी पर कर,
6. समाचार-पत्रो मे प्रकाशित विज्ञापनो को छोडकर अन्य विज्ञापनो पर कर,
7. थियेटर कर,
8. सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर कर,
9. सडक एव आन्तरिक जल मार्ग द्वारा लाये गये यात्रियो एव माल पर कर,
10. मार्ग कर।

इस आयोग ने यह अभिशसा भी की कि यदि राज्य सरकार इन करो के अतिरिक्त कोई और कर के स्रोत स्थानीय सस्थाओ को देना चाहे तो वे दे सकती है। इस आयोग ने स्थानीय सस्थाओ के उपयोग के लिये आय के साधनो को सुरक्षित करने के लिए स वैधानिक स शोधन के परामर्श से तो असहमति प्रकट की, पर उन्होने राज्य सरकारो से यह अनुशसा की कि उपरोक्त करो से प्राप्त धनराशि स्थानीय स स्थाओ के उपयोग के लिए सुरक्षित रखने की परम्परा बन दी जानी चाहिये।[6]

उपरोक्त वर्णित स्थानीय वित्त जाच समिति तथा करारोपण जाच आयोग की अभिशसाओ पर तुलनात्मक दृष्टि से यदि विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनो ही स्थानीय सस्थाओ के उपयोग के लिए अधिक धनराशि उपलब्ध कराने के पक्ष मे हैं। इन दोनो का ही मन्तव्य यह रहा है कि यदि स विधान निर्माताओ ने स्थानीय स स्थाओ को आय के साधनो का आवटन नहीं किया है तो स्वस्थ परम्पराओ का सृजन करते हुए राज्य सरकारों को चाहिए कि इन स स्थाओ के लिए आय के कुछ साधन सुरक्षित कर दें ताकि इन स स्थाओ का भविष्य सुरक्षित हो सके।

इन संस्थाओ के द्वारा जो कर लगाये जाते हैं उन्हे भी दो भागो मे वर्गीकृत किया जा सकता है

1. अप्रत्यक्ष कर, और 2. प्रत्यक्ष कर

अप्रत्यक्ष कर

इस श्रेणी मे चु गी, सीमात कर, मार्ग कर आदि आते हैं। ये कर यद्यपि कर दाताओ द्वारा देय हैं पर इनका भार पूर्ण अथवा आंशिक रूप से करदाता, उपभोक्ताओ से वसूल कर लेते हैं। उदाहरणार्थ माल पर चु गी लगायी जाती है, किन्तु व्यापारी अपने माल पर मूल्य बढाकर चु गी की राशि उपभोक्ताओ से वसूल कर लेते हैं। इसी प्रकार मार्ग कर की राशि यद्यपि यात्री परिवहन देते हैं किन्तु टिकिट की दर बढा कर वे इस राशि को यात्रियो से ही वसूल करते हैं। इस तरह ये ऐसे कर हैं जो उपभोक्ताओ को प्रत्यक्षत नही अपितु अप्रत्यक्ष तरीके से वहन करने होते हैं। इसीलिए इन्हे अप्रत्यक्ष कर कहा जाता है।

अप्रत्यक्ष करो मे चु गी तथा सीमात कर अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं। ये दोनो ही कर वैकल्पिक है अर्थात् नगर-परिषद या नगरपालिका इन दोनो मे से एक कर का आरोपण करती है। इनमे भी चु गी बहुत ही पुराने समय से लगाये जाने वाला कर है जिसका विवरण विस्तार से दिया जाना अपेक्षित है।

चुंगी

शब्दकोष मे चु गी का अर्थ है, नगर मे लायी गयी बिक्री की वस्तुओ पर कर सविधान मे इसका उल्लेख-किसी स्थानीय क्षेत्र मे उपयोग अथवा बिक्री के लिए लाये गये माल पर कर के रूप मे किया गया है।[7] चुंगी कर इतना प्राचीन काल से आरोपित किया जा रहा है कि यह नगर शासन या नगरपालिका का पर्याय बन गया है। जहा चुंगी वसूल की जा रही है वहा नगरपालिका का अनुमान किया जा सकता है और जहा नगरपालिका है वहा चुंगी अवश्य लगायी जाती है यह बात स्वाभाविक रूप से समझी जा सकती है। नगरपालिका का ही दूसरा नाम चुंगी है।

चुंगी स्थानीय निकायो की आय का एक प्रमुख साधन है। वह देश के सभी स्थानीय निकायो के सम्पूर्ण कर राजस्व का एक चौथाई के लगभग है और अनेक राज्यो मे तो वह उनकी आय का प्रमुख भाग है। देश की नगरपालिकाओ मे जो कर वसूल किया जाता है उसके प्रत्येक 100 रुपये मे से एक अनुमान के अनुसार राजस्थान मे 82 रुपये, पंजाब मे 80 रुपये, गुजरात मे 77 रुपये, और मध्यप्रदेश मे 70 रुपये चुंगी से प्राप्त होते हैं। यद्यपि देश के अनेक राज्यो-

जिनमे आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरल, असम, बिहार, पश्चिमी बंगाल-इत्यादि मे यह कर वसूल ही नही किया जाता है।[8]

प्रत्येक राज्य मे तथा एक ही राज्य मे विभिन्न श्रेणी की नगरपालिकाओं, नगर परिषदों तथा नगर निगमों में चुंगी की दरें अलग-अलग होती हैं। इसे वसूल करने का आधार माल का तोल या मूल्य होता है। कहीं तो वह वजन के आधार पर, और कहीं मूल्य के आधार पर, तो कहीं नगों अर्थात् गिनती के आधार पर इस आरोपित किया जाता है। गरीब वर्गों के लिए उपयोगी सामान जैसे पशुओं का खाना, हरी घास, हरी सब्जियां, खद्दर आदि पर साधारणतया चुंगी नहीं लगायी जाती है। उच्च वर्गों के उपयोग मे आने वाले सामान, बिजली के उपकरणों तथा लकडी के फर्नीचर इत्यादि पर चुंगी की दरें प्राय अधिक लगायी जाती हैं।

चुंगी काफी पुराना कर है किन्तु ब्रिटिश काल से ही इसके विषय में, पक्ष और विपक्ष मे बहस होती रही है। आम तौर पर इस कर को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। किन्तु दूसरी ओर इसका कोई सुविधाजनक विकल्प भी दिखाई नहीं दिया है। इसकी इस अविकल्पनीय स्थिति के कारण, इसके कुछ गुण बताये जाते हैं।

चुंगी के गुण

1 चुंगी आयप्रद कर है। स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं को इसमें काफी लाभ होता है। कई राज्यों मे तो इन संस्थाओं की आय का यही प्रमुख स्रोत है।

2. चुंगी के बकाया रहने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। दिन प्रतिदिन के व्यय के लिए इन संस्थाओं के पास धनराशि एकत्रित होती रहती है।

3 चुंगी मे लचीलापन है। जैसे जैसे शहर का विकास होता है, बाजार विकसित होता है वैसे-वैसे चुंगी से आय भी बढ़ती जाती है।

4 चुंगी बहुत दिनों से प्रचलित करों मे से एक है। अत जनता को इसे चुकाने की आदत हो गई है। कहावत भी है, पुराना कर, कर नहीं रह जाता है।

चुंगी के इन गुणों के अनुपात मे इसकी आलोचना अधिक की गई है। इसकी आलोचना का प्रमुख कारण यह है कि इसम आम आदमी के उपयोग की चीजों पर असर पड़ने से गरीब आदमी पर इसका भार पड़ता है। यह उद्योग और व्यापार पर भी प्रतिकूल असर डालती है। सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने इसे

"सार्वभौम करारोपण की बर्बर प्रणाली का अवशेष" कहा है।[9] सर जोसिया स्टाम्प ने चेतावनी दी थी कि मैं अपने सैद्धान्तिक चिंतन तथा अनुभव दोनो के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुचा हूँ कि वह देश कभी प्रगतिशील नही हो सकता जो चुगी पर, जिसमे लगभग हर अवगुण विद्यमान है, किसी सीमा तक निर्भर करता है।[10]

चुगी के दोष

चुगी, जो नगर निकायो की आय का एक मुख्य स्रोत है, मे निम्नलिखित दोष बताये जाते है[11]

1. चुगी प्रतिगामी है। यद्यपि चुगी की दरो मे गरीब वर्गो को राहत देने का प्रयास किया जाता है पर इससे मना नहीं किया जा सकता कि यह प्रतिगामी कर है। इसका अधिकतर भार समाज के गरीब वर्गों पर ही पडता है।

2. करदाताओ को इसमे बडी असुविधा का सामना करना पडता है। चुगी चौकी पर घण्टो ट्रको तथा दूसरे वाहनो एव करदाताओ का खडा रहना तो सामान्य बात है।

3 इन सस्थाओ के अल्प-वेतनभोगी कर्मचारियो द्वारा चुगी वसूल की जाती है। ये प्राय करदाताओ से रिश्वत आदि लेकर उन्हे अपने सीमा-क्षेत्र मे माल ले आने की अनुमति दे देते हैं।

4. यदि किसी करदाता को चुगी की राशि वापस लेनी हो तो उसकी प्रक्रिया भी बडी लम्बी तथा असुविधाजनक है।

5. चुगी वसूल करने मे अत्यधिक व्यय हो जाता है। गुजरात राज्य की चुगी जाच समिति ने अनुमान लगाया कि चुंगी की वसूली का व्यय नगर निगमो मे समस्त आय का 4%, नगरपालिकाओ मे 11% तथा नगर पचायतो मे 18% है। जबकि राज्यो मे विक्रय कर की वसूली का खर्च मात्र 2% आता है।

6. चुगी से व्यापार को बाधा पहुचती है। माल अनेक शहरो से होता हुआ गन्तव्य स्थान पर पहुचता है। मार्ग मे प्रत्येक चुगी चौकी पर रुकने, माल की जाच करवाने चुंगी कर देने तथा सीमा क्षेत्र से बाहर निकलने मे समय नष्ट होता है तथा व्यापारियो को असुविधा का सामना करना पडता है।

7 कई बार व्यापारी रास्ता बदल कर, कर्मचारियो को रिश्वत देकर झूठे घोषणा पत्र आदि भर कर चुगी की चोरी कर लेते हैं। चुगी की चोरी की राशि का सही अनुमान लगाना कदापि सम्भव नही है।

8. चुंगी की वसूली के लिये ट्रकों, वाहनों तथा व्यापारियों एवं उनके एजेन्टों को घन्टों खड़ा रहना पड़ता है। इससे राष्ट्र के यातायात साधनों का पूर्ण उपयोग भी नहीं हो पाता है।

9. चुंगी से उत्पादन मूल्य बढ़ जाता है। यदि एक क्षेत्र में चुंगी लगाई गई है तथा दूसरे क्षेत्र में चुंगी नहीं लगाई गई है, तो चुंगी लगाई जाने वाले क्षेत्र में स्थित उद्योग की प्रतियोगिता शक्ति कम हो जाती है।

जब किसी कर की गम्भीर आलोचना की जाती है तो सामान्यतः उसके उन्मूलन की माग की जानी चाहिये। चुंगी के बारे में भी निरन्तर यह माग की जाती रहती है कि चुंगी एक आततायी कर है अतः इसे समाप्त किया जाना चाहिये। चुंगी नगरीय निकायों की आय का एक प्रमुख साधन है, अतः इस आय की पूर्ति करने वाले किसी अन्य स्रोत का पता जब तक नहीं लगा लिया जाता तब तक सभी राज्यों ने इसे समाप्त करना सम्भव नहीं माना है। इस सम्बन्ध में स्थानीय वित्त जांच समिति ने यह अभिशंसा की थी कि सीमा कर को केन्द्रीय सूची से हटा कर राज्य सूची में रख दिया जाना चाहिए जिससे कि राज्य सरकारें चुंगी का उन्मूलन कर उसके स्थान पर सीमा कर लगा सकें।

इसी प्रकार करारोपण जाच समिति को विचार-विमर्श के दौरान ऐसा प्रतीत हुआ कि चुंगी कभी समाप्त नहीं हो सकेगी, अतः इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में अंकित किया था "दुर्भाग्यवश चुंगी को पूर्णतः समाप्त करने की कल्पना किसी भी दृष्टि से व्यावहारिक नहीं जान पड़ती। हां, यदि परिस्थिति पर सुदूर भविष्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो उसका उन्मूलन करना उचित ठहराया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि यदि सभी स्थानीय निकाय आय के समुचित, वैकल्पिक साधनों का विकास नहीं कर लेते तो चुंगी हटाने का नगरपालिकाओं और नगर निगमों पर हानिकारक प्रभाव पड़ेगा। वस्तुतः आय अथवा निकट भविष्य में स्थानीय करारोपण के ऐसे वैकल्पिक साधनों की कल्पना करना असम्भव है जिनसे लगभग ग्यारह करोड़ रुपये की आय, जो चुंगी से मिलती है, उपलब्ध हो सके।[12]" करारोपण जाच समिति ने जब से अपना प्रतिवेदन दिया है तब से चुंगी से होने वाली आय दुगुनी हो गई है इसलिए चुंगी का उन्मूलन करने की सम्भावना भी निरन्तर धूमिल होती जा रही है।

सार रूप में, यह कहा जा सकता है कि चुंगी नामक इस कर को कितना ही बुरा और घृणित क्यों न माना जाय, किन्तु इसका उन्मूलन तब तक नहीं किया जा सकता तब तक कि ऐसे ही किसी वैकल्पिक कर की खोज न कर

ली जाए। ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने भी स्थानीय करारोपण के रूप मे चुगी की कटु आलोचना की थी। समिति ने अपनी अभिशंसा मे इसके पूर्णत उन्मूलन के पक्ष मे राय व्यक्त नही की थी तथापि उसका यह विचार था कि जो स्थानीय निकाय चुगी नही लगा रहा है उसे भविष्य मे इस कर को आरोपित करने की अनुमति नही दी जानी चाहिए और जहा तक सम्भव हो नागरिक लक्ष्यो की पूर्ति के लिए सम्पत्ति तथा अन्य प्रत्यक्ष करो से आय प्राप्त करने पर अधिक बल दिया जाना चाहिये। समिति का विचार था कि चुगी के उन्मूलन के सम्बन्ध मे अब तक जो कार्यवाही की गई है वह अत्यन्त अधूरे मन से की गई है। समस्या पर राष्ट्रीय साधनो के व्यापक सन्दर्भ मे विचार का प्रयत्न ही नही किया गया है। वस्तुत. चुगी के उन्मूलन से होने वाली राजस्व की हानि का प्रभाव केवल स्थानीय निकायो पर ही नही पडना चाहिये अपितु इस प्रभाव को झेलने मे केन्द्र और राज्य सरकारो को भी साझीदारी निभानी चाहिये। समिति का यह प्रबल मत था कि चुगी व्यापार तथा वाणिज्य के मुक्त प्रवाह मे एक बडी बाधा है और उससे वाणिज्यिक तथा औद्योगिक कार्यकलापो मे अवरोध उपस्थित होता है। राष्ट्र का हित इसी मे है कि चुगी तथा सीमा कर समाप्त कर दिये जाय और इनका कोई समुचित विकल्प नगर निकायो को अविलम्ब सुझाया जाये।[18]

प्रत्यक्ष कर

प्रत्यक्ष करो मे मुख्यतः सम्पत्ति कर, मनोरजन कर, वाहन कर, सेवा कर, व्यवसाय कर, यात्री कर, बाजार कर, कुत्तो पर कर आदि सम्मिलित किये जाते हैं। प्रत्यक्ष करो का भार सीधे करदाताओ द्वारा ही वहन किया जाता है।

प्रत्यक्ष करो मे सम्पत्ति कर अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है इसे भूमि एव भवन कर या गृह कर के रूप मे भी जाना जाता है। कुछ विद्वान इसे भवन कर या गृह कर कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं। कही-कही यह कर नही लगाया जाता है। राजस्व के मुख्य स्रोत के रूप में यह तमिलनाडु, बंगाल, बिहार तथा उडीसा मे अधिक लोकप्रिय रहा है। किन्तु भिन्न-भिन्न राज्यो मे इस कर के आरोपण मे काफी अन्तर किया जाता है।

यह कर सम्पत्ति के किराये के आधार पर या उसके पूंजीगत मूल्य के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इस कारण बहुधा यह शिकायत रहती है कि सम्पत्ति के मालिक नगरीय निकाय के दस्तावेजो मे अपनी सम्पत्ति का किराया कम अकित करवा देते हैं या स्वयं कर निर्धारक भी रिश्वत की उम्मीद मे मकान मालिक से साठ-गाठ कर इस कर का कम निर्धारण कर देते हैं। ऐसा

अनुमान किया जाता है कि सम्पत्ति कर पूर्ण किराए की राशि के 60% के आधार पर लगाया जाता है। इस कर के बारे में आम धारणा और नगरीय निकायों की वास्तविक स्थिति यह है कि वे इसे पूरी मात्रा में वसूल भी नहीं कर पाते हैं। इस तरह इस कर का आरोपण या एकत्रण दोनों ही दोष पूर्ण हैं। कर-रोपण जाँच समिति की राय में सम्पत्ति का मूल्य निर्धारित करने के लिए एक स्वतन्त्र अभिकरण होना चाहिए जिसके अधिकारी विशेष रूप से प्रशिक्षित हों और जिन के द्वारा कर निर्धारण के बाद उन्हीं को अपीलीय अधिकार न दिये जायें।[14] लगभग इसी प्रकार की अभिशंसा ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने भी की थी।

ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने इस कर के न्यायपूर्ण निर्धारण के लिए एक मूल्यांकन अभिकरण की स्थापना करने का समर्थन किया था। समिति की अभिशंसा थी[15]

1. स्थानीय निकाय के निदेशालय में एक मुख्य मूल्यांकन अधिकारी नियुक्त किया जाय। उसे चाहिये कि वार्षिक मूल्यों के निर्धारण के सिद्धान्त निश्चित करे और मूल्यांकन-अधिकारियों के कार्य का परिवीक्षण करे तथा उन पर नियन्त्रण रखे।

2 पाँच लाख अथवा अधिक जनसंख्या वाले नगरों में पूर्णकालिक मूल्यांकन-अधिकारी नियुक्त किये जाएँ। छोटे नगरों तथा कस्बों में समूहों के लिए काम के परिणाम के आधार पर मूल्यांकन अधिकारी नियुक्त किये जायें।

3. मूल्य-निर्धारण सूची मूल्यांकन-अधिकारी के द्वारा प्रकाशित की जानी चाहिये जिससे यदि कोई आपत्तियाँ हो तो प्रस्तुत की जा सकें। आपत्तियों का परीक्षण करके मूल्यांकन-अधिकारी को चाहिये कि सूची को अन्तिम रूप दे दे।

4 मूल्यांकन-अधिकारी द्वारा किये गये मूल्य-निर्धारण के विरुद्ध अपील मुख्य मूल्यांकन-अधिकारी के यहाँ की जानी चाहिए।

5 मुख्य मूल्यांकन-अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध अपील जिला न्यायाधीश के यहाँ की जानी चाहिए।

यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सरकारी भवन या भूमि सम्पत्ति कर से मुक्त होते हैं। संविधान के अनुच्छेद 285 (1) में लिखा है कि केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति उन सब करों से मुक्त है जो राज्य सरकार द्वारा अथवा राज्य के भीतर किसी प्राधिकरण द्वारा लगाए जाते हैं। यद्यपि संसद

इसके विपरीत किसी विधि का निर्माण कर सकती है पर चूंकी संसद ने अभी तक ऐसा कोई विधान पारित नहीं किया है इसलिए स्थानीय निकायो द्वारा आरोपित किये जाने वाले किसी भी कर से संविधान के उक्त प्रावधान के अनुसार केन्द्रीय सरकार. की इमारतें स्थानीय करो से मुक्त रहती है। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि दिल्ली मे केन्द्रीय सरकार, दिल्ली नगर निगम तथा नई दिल्ली नगरपालिका को सम्पत्ति कर अदा करती है।[16]

सम्पत्ति कर के दोष

सम्पत्ति कर के निम्नांकित दोष बताये जाते हैं :[17]

1 यद्यपि स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओ के अधिनियमो मे यह व्यवस्था है कि प्रत्येक पाचवें वर्ष कर निर्धारण सूची मे संशोधन किया जाना चाहिए, पर ये संस्थाए ऐसा नही करती। फलतः कर-निर्धारण सूची काफी पुरानी पड जाती है।

2. कर-निर्धारण वर्तमान नियमो के अनुसार सम्पत्ति के पूरे किराये पर नही हो पाता। कर निर्धारकों की अयोग्यता एवं स्थानीय राजनीतिज्ञो के दबाव आदि के फलस्वरूप करारोपण काफी कम हो पाता है। करारोपण आदेश के विरुद्ध अपीलें नगरपालिका के प्रधान अथवा उसकी समिति द्वारा सुनी जाती है। साधारणतः अपील मे कर की राशि घटा देने की प्रवृत्ति देखी गई है।

3. अनेक संस्थाओ मे गृह-कर का बहुत बडा भाग, बकाया के रूप मे एकत्रित देखा गया है। निर्वाचित नेतागण इन बकाया राशियो की वसूली के लिए जोर-जबरदस्ती के उपायो के विरोध करते हैं।

4. सम्पत्ति कर का आधार सम्पत्ति का किराया है। किराया नियंत्रण वाले क्षेत्रो मे यह राशि बहुत कम होती है। फलतः इन संस्थाओ की आय पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सम्पत्ति कर के सम्बन्ध में सुझाव

सम्पत्ति कर से नगरीय निकायो की आय बढाने तथा उनकी बकाया राशि कम करने आदि के सम्बन्ध मे कुछ सुझाव दिए जाते हैं जिनमे प्रमुख इस प्रकार हैं :[18]

1. स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओ मे सम्बन्धित अधिनियमो के अनुसार समय-समय पर कर निर्धारण तालिका मे संशोधन किया जाना चाहिए।

2. कर निर्धारक स्थानीय संस्थाओं के अधीन न होकर राज्य सरकार के अधीन रखे जाने चाहिए ताकि वे स्थानीय प्रभावों से मुक्त होकर कर निर्धारण का उत्तरदायित्व पूरा कर सकें। *साथ ही उन्हें प्रशिक्षित करने की व्यवस्था* भी की जानी चाहिए।

3. कर निर्धारण तथा इससे सम्बन्धित अपील आदि सुनने के लिए राज्य स्तर पर एक स्वतन्त्र इकाई की स्थापना की जानी चाहिए। इन संस्थाओं के निर्वाचित नेताओं को यह काम नहीं सौंपा जाना चाहिये।

4. *सम्पत्ति कर की बकाया राशि कम करने के लिए—*

(अ) उन व्यक्तियों को कुछ छूट दी जानी चाहिए जो समय पर कर अदा कर देते हैं। इससे लोगों को समय पर कर अदा करने में प्रोत्साहन मिलेगा तथा कर राशि की बकाया में भी कमी हो सकेगी।

(ब) बकाया राशि पर दण्डात्मक दर से ब्याज वसूल किया जाना चाहिये।

5. सम्पत्ति कर निर्धारण का आधार किराया न होकर सम्पत्ति का बाजार मूल्य होना चाहिये। इससे किराया नियन्त्रण वाले क्षेत्र की समस्या का समाधान हो सकेगा।

6. यदि आवश्यक हो तो इन संस्थाओं से सम्बन्धित अधिनियमों में सम्पत्ति कर भूमि-लगान की बकाया राशि की तरह वसूल करवाने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

नगर निकायों द्वारा जल, विद्युत, नाली, शौचालय आदि आवश्यक जन सुविधाएं उपलब्ध कराने के बदले में नगर सीमा के नागरिकों से सेवा कर वसूल किया जाता है। ये कर केवल धन संग्रह करने की प्रवृत्ति के द्योतक नहीं हैं अपितु इन सेवाओं पर आने वाले व्यय की व्यवस्था करने के शुल्क के रूप में ये लिए जाते हैं। यद्यपि इन करों के संग्रह से प्राप्त राशि से सेवाओं की व्यवस्था का सम्पूर्ण भार वहन नहीं हो पाता है।

2 करों से भिन्न साधनों द्वारा आय

भारत में स्थानीय निकायों को उनकी आमदनी का कुछ हिस्सा करों के अलावा अन्य मदों से भी होता है उदाहरण के लिये होटल, रेस्टोरेंट, डेयरी, वर्कशाप, फैक्ट्री आदि पर नगरीय निकाय द्वारा लाइसेंस शुल्क आरोपित कर दिया जाता है। इसके अलावा शहर में एकत्र खाद्य सामग्री के बेचन से प्राप्त

आय, नगरीय निकाय की भूमि के बेचने से प्राप्त आय और कहीं-कहीं नगरीय निकाय द्वारा बनाये गये वाणिज्यिक स्थलो के उपयोग से होने वाली आय, आवास गृहो या विश्राम गृहो के किराये की आय, बाजार की मुख्य दुकानो से बाहर या खुले मे सडक पर अस्थाई वस्तुए बेचने के लिए लगने वाली दुकानो से आय एव अनेक प्रकार की फीस जिनमे केरोसिन, ईधन, सब्जिया, लोहा और इसी प्रकार के अन्य वाणिज्य कार्यों के लिए दिये जाने वाले लाइसेंस से नगरीय निकायो को आमदनी होती है। इस मद मे फीस और जुर्माने से होने वाली आमदनी भी सम्मिलित की जाती है। उदाहरण के लिए शहर मे लगने वाले विज्ञापन पट्टो को बेचने से नगरीय निकाय को आमदनी होती है। विभिन्न प्रकार के लाइसेंस का नवीनीकरण न कराने या उसमे विलम्ब होने पर नगरीय निकायो द्वारा उन पर निश्चित दर से जुर्माना आरोपित कर दिया जाता है। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रो मे बूचडखानो को चलाने की अनुमति भी निश्चित फीस लेकर नगरी निकाय ही प्रदान करता है। कुछ बडे किस्म के नगर निकाय कतिपय उपयोगी वस्तुओ जैसे कुकिंग गैस, विद्युत, दूध वितरण और नगर बस सेवा इत्यादि का कार्य अपने हाथ मे ही ले सकते है और इस प्रकार इन सुविधाओ के संचालन से यदि कोई बचत होती है तो वह नगरीय निकाय के कोष मे आमदनी मानी जाती है। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि आमदनी के ये ऐसे स्त्रोत है जो करो से भिन्न हैं किन्तु ये इतने विविध प्रकार के हैं कि प्रत्येक मद मे कुछ न कुछ आमदनी नगर निकाय के कोष का एक भाग बनती है।

3 राज्य सरकार द्वारा एकत्र करों मे से हिस्सा

ऐसे कर जिन्हे राज्य सरकार आरोपित करती हैं और वही एकत्र करती है उनमे से कुछ भाग राज्य सरकार द्वारा स्थानीय शासन की नगरीय इकाइयो को दे दिया जाता है। ऐसे करो मे प्राय- मनोरंजन कर, वाहन कर और भू-राजस्व को सम्मलित किया जाता है। मोटर वाहन कर प्राय के अनुपात मे वितरण किया जाता है। उडीसा मे मोटर वाहन कर का 50% हिस्सा स्थानीय निकायो को प्राप्त होता है। वाहन कर मे प्राप्त राशि का बटवारा इस दार्शनिक मान्यता पर आधारित है कि चूंकि नगर सीमा मे वाहनो के चलने से सडको को क्षति होती है अत: इनकी मरम्मत हेतु इन निकायो को राज्य सरकार सहायता देती है। सभी राज्यो मे इसकी दर अलग-अलग है। ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने इस कर पर नगर निकायो का अधिकार स्वीकार करते हुए इस कर मे सरकार को प्राप्त राजस्व मे से 25% राशि नगर निकायो को लौटाने की अभिशंसा की थी।

इसी प्रकार राज्य सरकार द्वारा ड्रामा, सिनेमा, सर्कस, दौड़ प्रतियोगिता आदि के लिए जो कर सम्पूर्ण राज्य के लिए लगाया जाता है और उसी के द्वारा एकत्र किया जाता है उसमें से कुछ राशि स्थानीय निकायों को प्रदान की जाती है। इस मद में राज्य सरकार की आय निरन्तर बढ़ रही है इसलिए आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु एवं कर्नाटक राज्य में तकनीकी तौर पर इस कर को स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित कर दिया गया है लेकिन व्यवहार में ये राज्य 10 में साढ़े बारह प्रतिशत राशि नगर निकायों को देते हैं किन्तु अब स्थिति यह है कि महाराष्ट्र, कर्नाटक तमिलनाडु तथा दिल्ली इस कर की सम्पूर्ण राशि नगर निकायों को लौटा देते हैं। आन्ध्रप्रदेश में यह 90% लौटाया जाता है और शेष राशि राज्य सरकार द्वारा अपने पास इसलिये रख ली जाती है कि इस कर के एकत्रण में उसका भी प्रशासनिक व्यय हुआ है।

कतिपय बाह्यदेशों में मनोरंजन कर भी स्थानीय निकायों के मध्य प्रत्येक शहर से एकत्र किये गये कर के अनुपात में वितरित किया जाता है। इस प्रकार सभी स्थानीय निकायों को इन मदों में बढ़ी हुई राशि नगर की जनता द्वारा दिये गये कर के अनुपात में प्राप्त हो जाती है जबकि भारत में अभी तक पूरी तरह से ऐसी व्यवस्था नहीं हो पायी है और प्रायः इन निकायों को प्रतिवर्ष एक पूर्व निश्चित राशि ही प्राप्त हो पाती है। इस दिशा में यह सुझाव दिया जाता रहा है कि इस प्रकार के कर जिनका आरोपण और एकत्रण राज्य सरकार द्वारा होता है किन्तु जिनसे प्राप्त राशि का वितरण स्थानीय निकायों और राज्य सरकार के मध्य किया जाता है उसके बारे में एक ऐसी व्यावहारिक नीति विकसित की जानी चाहिए जैसी कि ऑस्ट्रेलिया जैसे विकसित राष्ट्र में कर ली गयी है। ऐसा कर दिये जाने से न केवल स्थानीय निकायों को नगर से एकत्र हुई राशि के अनुपात में ही वह वापस मिल सकेगी अपितु वे नागरिकों की सेवा करने में भी सक्षम और सफल हो सकेंगे।

4. राज्य सरकार द्वारा अनुदान

स्थानीय संस्थाओं के बढ़ते हुए व्यय और उसकी तुलना में उन्हें प्राप्त करारोपण की शक्तियों के न्यून होने के कारण स्थानीय संस्थाओं की राज्य सरकार पर वित्तीय निर्भरता बढ़ी है। एकात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों में केन्द्र सरकार एवं स्थानीय निकायों के पारस्परिक सम्बन्धों और संघात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों में राज्य सरकार एवं स्थानीय निकायों के सम्बन्धों को निरूपित और निर्धारित करने में स्थानीय निकायों को दिये जाने वाले इस सरकारी अनुदान का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।[19]

इसके अतिरिक्त यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को साकार करने की दिशा में स्थानीय संस्थाओं को राज्य द्वारा अधिकाधिक दायित्व दिये जा रहे हैं अतः इन संस्थाओं को सहायक अनुदान देना राज्य सरकार का नैतिक कर्त्तव्य बन जाता है। यह इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि चूंकि राज्य सरकार के पास सभी प्रमुख वित्तीय स्त्रोत केन्द्रित हैं अतः स्थानीय संस्थाओं को हर प्रकार से संरक्षण दिया जाना चाहिये।

राज्य सरकार द्वारा स्थानीय नगर शासन को अनुदान देने के मूल में मुख्य उद्देश्य स्थानीय निकायों के वित्तीय साधनों में बढ़ोत्तरी करना है जिससे कि वे अपने दायित्वों को सन्तोषप्रद ढंग से सम्पन्न कर सकें। हमारे देश में स्थानीय निकायों की यह एक मुख्य विशेषता रही है कि वे वित्तीय कमी से सदैव प्रभावित रहे हैं। इसके अतिरिक्त अनियन्त्रित शहरी विकास इस समस्या को और बढ़ा रहा है। उदाहरणार्थ औद्योगिक क्षेत्रों से यद्यपि स्थानीय निकायों को सम्पत्ति कर की प्राप्ति होती है परन्तु उद्योगों के निकट बसी कच्ची बस्तियां उस क्षेत्र की समस्याओं को बढ़ा कर उनका व्यय दुगुना कर देती हैं जिससे कि स्थानीय शासन घाटे का शिकार हो जाता है। राज्य सरकार के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह घाटे की पूर्ति हेतु स्थानीय शासन के लिए अनुदान की व्यवस्था करे।

इसके अतिरिक्त राज्य और स्थानीय शासन की आवश्यकताओं और स्त्रोतों में समतुल्यता नहीं होने से कठिनाइयां और बढ़ जाती हैं। कार्य कुशलता, प्रभावशीलता एवं लोकप्रिय नियन्त्रण के दृष्टिकोण से राज्य सरकार का यह दायित्व हो जाता है कि वह कर एकत्रण उचित माध्यम से करे। राज्य सरकार क्योंकि सार्वभौमिक है और स्थानीय शासन अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप राज्य सरकार की तुलना में अधिक साधन एकत्र नहीं करा पाता है। अनुदान एक प्रभावी यन्त्र है जो कि भौतिक क्षमता और भौतिक आवश्यकताओं के मध्य असन्तुलन को समाप्त करता है। अनुदान के अभाव में स्थानीय शासन अपने निवासियों को महत्वपूर्ण आवश्यक सेवाएं प्रदान करने में असमर्थ हो जाता है। इस प्रकार, अनुदान जहां एक ओर स्थानीय शासन के क्षेत्र को सीमित होने से रोकता है वहीं दूसरी ओर वह नागरिकों को आवश्यक सेवाएं कुशलता से प्रदान कर पाने में सक्षम बनता है।

राज्य सरकार द्वारा दिया जाने वाला अनुदान सदैव तदर्थ एवं उसके विवेकाधीन होता है तथा इस बात पर निर्भर करता है कि सरकारी कोष में धन

राशि है या नहीं ? स्थानीय निकायों को अनुदान की राशि निरन्तर और निश्चित रूप मिलती रहे और उसके दिये जाने की प्रक्रिया सरल हो ताकि एक मुश्त जो अनुदान इन संस्थाओं को मिलता है उसमें अकारण और अत्यधिक विलम्ब न हो इसके लिए कुछ राज्यों ने नियमावली संहितबद्ध करने का प्रयत्न किया है। केरल, गुजरात तथा मध्यप्रदेश राज्य ने इस दिशा में पहल की है किन्तु इस सम्बन्ध में मध्यप्रदेश ने जो संहिता निरूपित की है उसे सर्वाधिक व्यवस्थित माना जाता है।[20]

अनुदानों के प्रकार

राज्य सरकार द्वारा स्थानीय संस्थाओं को अनुदान दिया जाता है उसे भिन्न-भिन्न दृष्टियों से परिभाषित किया जाता है। भारतवर्ष में इस अनुदान को प्राय आवर्तक और अनावर्तक दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। आवर्तक अनुदान को पुन दो उप-वर्गों सामान्य या बिना शर्त के अनुदान और विशेष या सशर्त अनुदान में बांटा जाता है।

मोटे तौर पर भारतवर्ष में नगरीय संस्थाओं को दिया जाने वाला सामान्य उद्देश्यीय अनुदान उनके स्थायी और तदर्थ कर्मचारियों के वेतन और गतिविधियों के सम्पादन के निमित्त दिया जाता है। कतिपय अनिवार्य कार्यों जैसे जल वितरण इत्यादि के लिये पाइप लाइन बिछाने हेतु निर्माण कार्य पर आने वाले व्यय भी सरकार द्वारा इसी श्रेणी में दिये जाने वाले अनुदान से चलाये जाते हैं। इसके विपरीत जो विशिष्ट अनुदान दिये जाते हैं वे विशिष्ट प्रयोजनों के लिए जारी किये जाते हैं।

भारत सरकार के वित्त मंत्रालय द्वारा नियुक्त करारोपण जांच आयोग (टैक्सेशन एनक्वायरी कमीशन), 1953–54 ने इन संस्थाओं के लिए दो प्रकार के अनुदानों की अनुशंसा की थी

(1) सामान्य उद्देश्यीय सहायक अनुदान

इस प्रकार का अनुदान किसी विशेष सेवा या उद्देश्य के लिए न दिया जाकर संस्था के व्यापक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता के लिए दिया जाता है। इसके अन्तर्गत प्राप्त राशि का व्यय, ये संस्थाएं अपने सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कर सकती हैं।

(2) विशिष्ट सेवा सहायक अनुदान

इसमें अन्तर्गत प्राप्त धनराशि उन्हीं सेवाओं पर व्यय की जा सकती है

जिनके लिए यह उपलब्ध कराई गई है। जैसे जन-स्वास्थ्य की मद के अन्तर्गत स्वीकृत विशिष्ट धनराशि का व्यय जन-स्वास्थ्य सबंधी प्रयोजनो और शिक्षा के लिए प्राप्त अनुदान का व्यय शैक्षिक परियोजनाओ के निष्पादन के लिए ही किया जा सकता है।

इस आयोग की अनुशसाओ को आधार मानकर कतिपय राज्यो-मध्य-प्रदेश, गुजरात तथा केरल—ने सुनियोजित अनुदान नीति की व्यवस्था की है। इन राज्यो मे स्वायत्त शासन संस्थाओ को जनसख्या के आधार पर भिन्न-भिन्न वर्गों मे बाटा गया है तथा प्रत्येक वर्ग की सख्या के लिए प्रति व्यक्ति अनुदान की राशि निर्धारित की गयी है। यह माना गया है कि इस प्रकार का वर्गीकरण करने से अनुदान का आधार वस्तुनिष्ठ बन गया है जिसमे राजनीतिक दाव पेच की समावना क्षीण हो जाती है। इसके अन्तर्गत छोटी सस्थाओ को प्रति व्यक्ति अनुदान अधिक दिया जाता है क्योकि आर्थिक दृष्टि से वे अक्षम होती है जबकि बडी सस्थाओ को प्रति व्यक्ति अनुदान कम मिलता है। प्राय: सभी राज्यो मे यह प्रयत्न किया जाता है कि स्वायत्त शासन सस्थाए करो द्वारा अपनी आय बढाने की पूरी चेष्टा करें। विशिष्ट कार्यक्रमो के लिए जो विशिष्ट अनुदान दिये जाते है उनका चयन प्रत्येक राज्य की योजना की प्राथमिकता को आधार मानकर किया जाता है। इस प्रकार का अनुदान प्राय. तदर्थ आधार पर दिया जाता है।

सरकारी अनुदान की यह प्रणाली प्रत्येक देश मे अलग-अलग आधारो पर सचालित होती है और यहा तक कि एक देश मे भी उसके विभिन्न भागो मे विकास के स्तर द्वारा अनुदान का न्यून या अधिक होना विनिश्चित होता है। इसलिए यह माना जाता है कि यदि सरकार द्वारा दिये जाने वाले इस अनुदान के प्रभावशाली उपादान को बनाये रखना है तो अनुदान की नीति की समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए। इसी तरह यह अनुदान देते समय राज्य को यह भी ध्यान रखना होता है कि इसके माध्यम मे स्थानीय सस्थाए अपने प्रशासन और योजनाओ को सुदृढ आधार प्रदान कर सके। किन्तु साथ ही यह ध्यान भी रखा जाना चाहिए कि अनुदान की नीति इन सस्थाओ को राज्य सरकार पर एकदम निर्भर न बना दे। वस्तुत इन सस्थाओ को केवल इस तरह की स्वगामी सस्थाओ के रूप मे विकास हेतु प्रोत्साहित किया जाय कि वे स्थानीय विकास की वाहक सस्थाओ के रूप मे सुदृढता से विकसित हो सकें।[11]

अनुदान की इस नीति की समीक्षा करते समय समालोचको का यह मत भी अभिव्यक्त हुआ है कि स्थानीय सस्थाओ को जिन स्थानीय आवश्यकताओ

के आधार पर अनुदान स्वीकृत किया जाता है उसके लिए राज्य सरकार को सर्वप्रथम यह रेखांकित करना होता है कि स्थानीय आवश्यकताएं क्या है और कौन-कौन सी हैं ? किन्तु यह निर्णय करना वस्तुतः कठिन कार्य है कि स्थानीय या गैर स्थानीय आवश्यकताएं क्या हैं ? कतिपय सेवाओं के प्रभावी सम्पादन के लिए स्थानीय निकाय और सरकार का परस्पर सहयोग करना या परस्पर निर्भर रहना अनिवार्य होता है। इसलिए इस प्रकार की सेवाओं के सम्पादन में स्थानीय शासन की इकाई और राज्य सरकार के संयुक्त प्रयास की आवश्यकता होती है। सरकार द्वारा दिया जाने वाला यह अनुदान चाहे सामान्य श्रेणी का हो या विशिष्ट किन्तु यह सच है कि दोनों ही प्रकार का अनुदान देने के पश्चात भी राज्य सरकार को यह तो सुनिश्चित करना ही होता है कि जो अनुदान उन्हें दिया जा रहा है उसका वे सटीक उपयोग उन दायित्वों के निर्वाह के लिए ही कर रही हैं जिनके लिए वह अनुदान दिया गया है। यदि राज्य सरकार द्वारा दिया जाने वाला अनुदान बिना शर्त के दिया जाता है तो सम्बन्धित स्थानीय इकाई के लापरवाह होने की सम्भावनाएं हो सकती हैं इसलिए इस दिशा में यह सुझाव दिया जाता रहा है कि स्थानीय इकाईयों को दिया जाने वाला अनुदान विशिष्ट प्रयोजनों के लिए निर्धारित होना चाहिए ताकि अनुदान दात्री राज्य सरकार उनके सटीक उपयोग को नियन्त्रित भी कर सके।

सरकार द्वारा दिये जाने वाले अनुदान का राजनीति मन्तव्यों के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। यह उपयोग सकारात्मक भी हो सकता है और नकारात्मक भी। जब अनुदान देने वाली सरकार किसी क्षेत्र विशेष में विकास के असंतुलन को दूर करने के लिए अनुदान देती है और उसके माध्यम से यह आशा करती है कि वह क्षेत्र अन्य क्षेत्रों के समान ही विकसित हो तो यह प्रयास सकारात्मक माना जा सकता है। उदाहरण के लिए आन्ध्रप्रदेश के तेलंगाना आंदोलन के सन्दर्भ में केन्द्र सरकार ने तेलंगाना क्षेत्र के समुचित विकास के लिए अनुदान देकर यह प्रयत्न किया कि इस क्षेत्र का विकास राज्य के अन्य क्षेत्रों के समान ही हो। इस प्रकार तेलंगाना समस्या का एक राजनीतिक समाधान अनुदान की इस प्रणाली के माध्यम से सकारात्मक दिशा में किया जा सका था। किन्तु अनुदान का एक नकारात्मक और खतरनाक पक्ष भी है। जब राज्य सरकार किसी एक दल की हो और स्थानीय इकाई किसी अन्य दल के द्वारा शासित हो तो ऐसी स्थिति में आम तौर पर ऐसी शिकायतें उभरती हैं कि दूसरे दल द्वारा शासित स्थानीय इकाई का अनुदान इसलिये कम कर दिया गया या स्थगित कर दिया गया कि राज्य सरकार उस नगर या क्षेत्र में प्रभावी अन्य राजनीतिक दलों को

क्षति पहुचाया चाहती है। इस प्रकार की गतिविधि का हमारे संविधान ने भी कोई प्रतिकार नही सुझाया है किन्तु आशा की जा सकती है कि आने वाले वर्षो मे, इस दिशा मे जो सुधार प्रस्तावित हैं, उनसे, इस तरह के नकारात्मक पक्ष का कोई समाधान निकल सकेगा।

अमेरिका मे अनुदान के माध्यम से स्थानीय इकाईयो को अभिप्रेरित करने का कार्य भी किया गया है। वहा कुछ सरकारी अनुदान केवल उन संस्थाओ को उपलब्ध कराया जाता हैं जिन संस्थाओ ने अपने यहां कार्मिको की भर्ती मे योग्यता को एक प्रमुख आधार के रूप मे अपनाया हैं। इस तरह वहा पर अनुदान ने लूट खसोट की प्रणाली को समाप्त करने और कार्मिक जगत मे योग्यता पर आधारित भर्ती को प्रोत्साहित करने मे एक प्रेरणा तत्व या प्रभावी कारक का काम किया है।[22]

स्थानीय सस्थाओ के वित्तीय प्रशासन मे अनुदान के बढ़ते हुए महत्व को रेखांकित करते हुए, स्थानीय संस्थाओ के लिए बने विभिन्न आयोगो और समितियों ने भी इस पक्ष पर गहन विचार मथन किया है और इसे अधिक सुव्यवस्थित बनाने के लिए समुचित सुझाव भी दिये हैं। इंग्लैण्ड की कोले फील्ड समिति ने सरकार द्वारा दिये जाने वाले अनुदान को युक्तिसम्मत बनाने के लिए सुझाव किया है कि :

1. अनुदान की राशि की आगामी कई वर्षो के लिए मात्रा सुनिश्चित की जाय,
2. अनुदान के वितरण मे स्थिरता लाई जाय,
3. अनुदान के निर्धारण और बजट के लिए समयबद्ध प्रावधान किया जाय, और
4. एक मुश्त अनुदान सुनिश्चित किया जाय जो स्थानीय सस्था के व्यय पर नही अपितु स्थानीय सस्थाओ द्वारा दी जाने वाली सेवाओ के सामान्य मानदण्डो पर आधारित हो।

भारतवर्ष मे भी इस दिशा मे यह विचार व्यक्त किया जाता रहा है कि स्थानीय निकायो को अनुदान निरन्तर और निश्चित रूप से मिलता रहे इसके लिए केन्द्रीय वित्त आयोग की ही तरह राज्य मे भी एक वित्त आयोग का निर्माण किया जाय जो स्थानीय निकायो को दी जाने वाली अनुदान राशि का न्यायोचित निर्धारण करे। भारत में स्थानीय शासन, देश की शासन प्रणाली का एक अटूट अग है और उसे राष्ट्र के विकास मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना

होता है, इसलिए उसके वित्तीय साधनों को इस प्रकार सुनिश्चित किया जाना चाहिये जिससे ये संस्थाएं स्वायत्त शासन की स्वावलम्बी इकाई बन सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति उपरोक्त प्रस्तावित वित्त आयोग द्वारा हो सकती है।

ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति (1966) ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया है। समिति ने अभिशंसा की थी कि इस प्रकार के अभिकल्पित वित्त आयोग की नियुक्ति उचित है। प्रत्येक राज्य के राज्यपाल को एक नगरपालिका वित्त आयोग नामक निकाय की स्थापना कर देनी चाहिए। राज्यपाल द्वारा स्थापित यह आयोग इस बात की जांच करे कि स्थानीय निकायों को अपने अनिवार्य दायित्वों के सम्पादन के लिए कितने वित्तीय साधनों की आवश्यकता होगी। इसी तरह यह आयोग यह भी देखे कि राज्य की पंचवर्षीय योजनाओं के जिन-जिन कार्यक्रमों को स्थानीय निकायों द्वारा पूरा किया जा सकता है उन कार्यक्रमों को प्रस्तावित राशि सहित स्थानीय निकायों को दिये जाने का अधिकार इस आयोग में निहित कर दिया जाना चाहिए। समिति ने मत व्यक्त किया था कि ऐसा कर दिये जाने से जहां एक ओर स्थानीय निकाय आर्थिक दृष्टि से सक्षम बन सकते हैं वहीं उन्हें राज्य सरकार के अनियमित हस्तक्षेप से मुक्ति भी मिल सकेगी। राज्य सरकार को भी यह सुविधा हो जायेगी कि नगरपालिका वित्त आयोग द्वारा जो नवीन वित्तीय उत्तरदायित्व उत्पन्न कर दिये गये हैं, राज्य सरकार उन्हें आगामी वित्त आयोग के समक्ष प्रस्तुत किये जाने वाले प्रतिवेदन में सम्मिलित कर सकती है। यदि समूची योजना कार्यान्वित हो जाती है तो नगरपालिकाओं की वित्त व्यवस्था सम्पूर्ण राष्ट्र की वित्त व्यवस्था का एक आवश्यक अंग बन जायेगी।

राज्य सरकार द्वारा स्थानीय निकायों को दिये जाने वाले अनुदान की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि इससे इन निकायों की स्वायत्तता को ठेस पहुंचती है। वस्तुतः राज्य द्वारा दिया जाने वाला अनुदान स्थानीय निकायों के कुल व्यय का लगभग एक चौथाई से अधिक नहीं होने के बावजूद स्थानीय शासन पर राज्य का नियंत्रण अत्यधिक व्यापक और कठोर हो जाता है। अपने इस नियंत्रणकारी अधिकार का उपयोग राज्य सरकार पुलिस सार्जेन्ट जैसा व्यवहार करके करती है जिससे इन संस्थाओं का स्वाभाविक विकास नहीं हो पाता है। इस समस्या के समाधान हेतु यह सुझाव दिया जाता रहा है कि यदि स्थानीय संस्थाओं को वित्तीय दृष्टि से स्वावलम्बी और सक्षम बना दिया जाय तो वे अपने नागरिकों की आकांक्षाओं की पूर्ति अधिक सफलतापूर्वक कर सकती हैं।

5 उधार या ऋण

नगरीय संस्थाओं के उपर्युक्त विवरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि स्थानीय निकायों के राजस्व स्रोत नगर में विकास की गतिविधियों को संचालित करने के लिए पर्याप्त नहीं होते हैं इसलिए उधार या ऋण को भी स्थानीय आय के एक और साधन के रूप में परिगणना की जाती है। अमरीकी विद्वान आर. एम. जैक्सन ने भी यह अनुभव किया था कि "स्थानीय संस्थाओं को जो व्यापक कार्य हाथ में लेने होते हैं वे उनके वर्तमान राजस्व स्रोतों से पूरे नहीं किये जा सकते, अतः ऋण लेना आवश्यक हो जाता है।[23]" प्रायः सभी देशों में स्थानीय संस्थाओं द्वारा ऋण लेने या बॉंड जारी करने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा सामान्य अधिनियम पारित कर दिया जाता है जिसकी वैधानिक सीमा में रहते हुए स्थानीय निकायों को इस हेतु अपने-अपने व्यापक उपबन्ध करने होते है। प्रायः सभी संस्थायें अपने बढ़ते विकासात्मक दायित्वों को पूरा करने और जनता की स्थानीय आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने के लिए ऋण लेती हैं और नियमित सेवाओं का संचालन या तो वे अपने राजस्व स्रोतों से करती हैं या सरकारी अनुदान से।

अधिकतर विकसित देशों में स्थानीय संस्थाओं द्वारा जनता से सीधे ऋण लेने की व्यवस्था की गई है। अमेरिका के कुछ राज्यों में सार्वजनिक जनमत संग्रह के बाद ही ऐसा ऋण लिया जा सकता है। प्रायः इस प्रकार के सभी देशों में ऋणों की इस व्यवस्था को विनियमित करने की दृष्टि से सरकार की स्वीकृति या पर्यवेक्षण की व्यवस्था किसी न किसी रूप में विद्यमान दिखाई देती है, किन्तु यह नियन्त्रण केवल सतही और परोक्ष होता है। इसके विपरीत विकासशील देशों में स्थानीय संस्थाओं द्वारा उधार ग्रहण या ऋण की व्यवस्था पर सरकार का नियंत्रण अधिक सूक्ष्म पाया जाता है। इन देशों में प्रथम तो सरकार उधार ग्रहण की नीति से स्थानीय निकायों को बचाती हैं और यदि ऐसा करना संभव न हो तो उचित दरों पर ऋण उपलब्ध कराने में उनकी सहायता करती है। कुछ देशों में तो सरकार स्वयं प्रमुख ऋण दात्री इकाई बन जाती है। ऐसा करने से सरकार समूचे राष्ट्रीय हित की दृष्टि से, स्थानीय संस्थाओं द्वारा विकास की एक सामान्य नीति अपनाने पर अपना व्यापक नियन्त्रण स्थापित कर लेती है। इसके साथ ही यदि ऋण बाहर की संस्थाओं से लिया जा रहा है तो सरकार उसकी प्रत्याभूति भी प्रदान करती है।[24]

भारतवर्ष में स्थानीय निकायों द्वारा ऋण लेने की शक्ति का विनियमन केन्द्रीय सरकार द्वारा पारित स्थानीय प्राधिकरण ऋण अधिनियम 1914 द्वारा

होता है। कतिपय राज्य सरकारों ने भी इस विषय पर पृथक अधिनियम बना लिए हैं किन्तु वे सब केन्द्रीय अधिनियम के नमूने पर आधारित हैं। उपर्युक्त केन्द्रीय अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत स्थानीय निकायों को राज्य सरकार या अन्य किसी स्रोत से ऋण लेने की शक्ति निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए निर्दिष्ट की गई है

1 नगरपालिकाओं के निर्माण कार्यों,

2 भूमि के अधिग्रहण हेतु,

3 अभाव, अकाल या दुर्भिक्ष के समय सहायता-कार्यों के संचालन और उनके विनियमन हेतु,

4 किसी महामारी या संक्रामक रोग की रोकथाम के कार्यक्रमों हेतु,

5 स्थानीय शासन में सुधार, संकटकालीन कार्यों तथा पुराने ऋण के भुगतान हेतु।

इस प्रकार उपरोक्त प्रावधानों से यह परिलक्षित होता है कि यदि नगरीय निकाय अपने नियमित राजस्व से अपने दायित्वों को पूरा न कर सकें तो वे उनकी पूर्ति हेतु ऋण ले सकते हैं। सभी स्थानीय निकायों को ऋण लेने के लिए राज्य सरकार की अनुमति लेनी होती है। अधिनियम में यह प्रावधान किया गया है कि ऋणों की रकम पांच लाख रुपये से अधिक और उसे वापस अदायगी की अवधि 30 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि इन सीमाओं में राज्य स्तर पर कोई परिवर्तन करना आवश्यक जान पड़ता है तो इस हेतु केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति लेनी होगी। नगर निगम चूंकि नगरीय स्थानीय शासन के सर्वोच्च और वृहद शक्ति प्राप्त निकाय होते हैं अतः उन्हें उधार लेने के मामले में अधिक स्वतन्त्रता मिली होती है। वे अपनी अचल सम्पत्ति और करों की जमानत पर ऋण भी जारी कर सकते हैं। भारतवर्ष में स्थानीय निकायों द्वारा ऋण लेने के इस प्रावधान का अधिक उपयोग इसलिए नहीं किया जा सका है कि न तो केन्द्रीय सरकार और न ही राज्य सरकार स्थानीय निकायों को ऋण लेने के मामले में अधिक स्वतन्त्रता प्रदान कर सकी है। वस्तुतः उनके द्वारा ऋण लेने की शक्ति को सरकार द्वारा सन्देह की दृष्टि से ही देखा जाता है। जब भी स्वयं केन्द्र सरकार और अधिकांश राज्य सरकारें ऋण भार से इतनी दबी हैं कि वे शासन के तीसरे स्तर की इन संस्थाओं को ऋण लेने के मामले में कोई उदार दृष्टि प्रस्तुत नहीं कर पायी हैं। भारत के अतिरिक्त अन्य विकासशील देशों में भी स्थानीय संस्थाओं के ऋण लेने की शक्ति पर सरकारों द्वारा तरह-तरह के बंधन लगाये गये हैं।

आधुनिक युग मे सरकार की इस मनोवृत्ति, जिसके अन्तर्गत वे स्थानीय निकायो को ऋण लेने के प्रति निरुत्साहित करती रही है, को उचित नही माना जा रहा है। अब यह अनुभव किया जा रहा है कि ऐसी संस्थाओ का विकास होना चाहिए जो इन स्थानीय संस्थाओं को समय पर ऋण उपलब्ध करा सकें। इग्लैंड मे स्थानीय संस्थाए एक स्वतन्त्र सांविधानिक संस्था सार्वजनिक कार्य ऋण बोर्ड से तथा बैंको और भवन समितियो से ऋण प्राप्त करती हैं। बेल्जियम और डेनमार्क मे भी नगरीय इकाईयों को ऋण देने वाली संस्थाए विद्यमान हैं जबकि नीदरलैंड मे स्थानीय निकाय और वहा की सरकार मिलकर इस प्रकार की ऋण दात्री संस्थाओ की स्थापना करती है। अनेक योरोपीय देशो मे नगरीय इकाईयो को ऋण देने वाली विशेष बैंक स्थापित की गई हैं। जर्मनी मे समस्त स्थानीय निकायो ने अपना एक ऋण बैंक बनाया है जहा से वे ऋण प्राप्त करने मे सफल होती है।[25]

भारतवर्ष मे भी आन्ध्रप्रदेश मे सरकार एव स्थानीय निकायो ने मिलकर एक 'कॉमन गुड फन्ड' स्थापित किया है। इसी तरह केरल मे नगरीय वित्त विकास निगम बनाया गया है जहा से स्थानीय निकायो को ऋण प्राप्त होता है। जीवन बीमा निगम भी स्थानीय निकायो को अपनी शर्तों पर ऋण देने के लिए सदैव तत्पर रहता है। प्राय सभी विकासशील और विकसित देशो मे ऋण-पत्र जारी करने की दिशा मे भी दिनो दिन प्रगति हो रही है। विशेष तौर पर विकसित देश इस दिशा मे बहुत आगे हैं।

सरकार द्वारा, नगर निकायो के उधार ग्रहण या ऋण की शक्ति को विनियमित करने मे जो रुचि ली जाती है उससे जहा एक ओर स्थानीय निकायो की आर्थिक स्थिति को सुधारने मे मदद मिलती है वही समूचे देश की आर्थिक गतिविधियो को एक समान स्तर पर समन्वित, सुनियोजित और विनियमित करने मे भी वह सफल होती है। सरकार के इस हस्तक्षेप से विभिन्न स्थानीय निकायो के बीच विद्वेषपूर्ण प्रतियोगिता का वातावरण भी बनने से रुक जाता है।

स्थानी निकायो द्वारा जनहित के जो कार्य अब हाथ मे लिये जा रहे हैं उनकी प्रकृति, महत्व और प्राथमिकताओं को देखते हुए यह सुझाव दिया जाता रहा है कि स्थानीय निकायो को न केवल अपने स्वयं के राजस्व स्रोतो को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय अपितु उसी के अनुरूप उनके द्वारा ऋण लेने की शक्ति के प्रति भी उदारता का दृष्टिकोण अपनाया जाना अपेक्षित है। इस हेतु निम्नांकित सुझाव प्रमुख तौर पर दिये गये हैं :[26]

1. ऋण की स्वीकृति के लिए सरल प्रक्रिया निर्धारित की जाय जो आसानी से समझी जा सके,

2. ब्याज की दर न्यूनतम रखी जाय,

3 ऋण वापस अदा करने की अवधि प्रत्येक स्थानीय निकाय की परिस्थिति को ध्यान मे रखकर निर्धारित की जाय,

4 केन्द्र सरकार या सम्बन्धित राज्य सरकार को चाहिये कि वे स्थानीय निकायो को खुले बाजार मे ऋण लेने मे अपनी प्रत्याभूति प्रदान करें,

5. राज्य सरकार को चाहिए कि वह अपने स्तर पर स्थानीय निकायो की सहायता के लिए एक आवर्तक निधि स्थापित करें जिसमें से नगरीय निकायो को उनके व्यापक दायित्वो को पूरा करने के लिए ऋण उपलब्ध कराया जा सके।

पंजाब मे स्थानीय शासन (नगरीय) जांच समिति (1957) ने भी यह सुझाव दिया था कि स्थानीय निकायो को जल पूर्ति, जल निकास आदि विकास कार्यों के लिए राज्य सरकार द्वारा ऋण उपलब्ध कराये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिये। छोटे निकायो को भी अपनी परियोजनाओं के लिए पर्याप्त ऋण और अनुदान दिया जाना चाहिये।

पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति ने इस तथ्य का समर्थन किया है कि प्रत्येक राज्य मे नगरपालिकाओं की पूंजीगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक नगरपालिका वित्त निगम की स्थापना की जानी अपेक्षित है। इस समिति ने नगरीय निकायों को उनकी परिवहन व्यवस्था, दुग्धपूर्ति, बिजली, बाजार, होटल आदि उद्यमो की पूंजीगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण उपलब्ध कराने हेतु इस प्रकार के वित्त निगम की स्थापना का सुझाव दिया है। समिति का मत था कि प्रारम्भ मे ऐसे वित्त निगम की पूंजी दस करोड़ रुपये होनी चाहिए जिसमे भारत सरकार, रिजर्व बैंक, जीवन बीमा निगम, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं एवं जनता का अंशदान सम्मलित हो। इस वित्त निगम को यह अधिकार भी होना चाहिए कि वह केन्द्रीय सरकार की प्रत्याभूति में बाजार मे ऋण पत्र जारी कर सके। यह वित्त निगम नगरपालिकाओं को ही ऋण प्रदान करे। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिवेदन मे, ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति द्वारा प्रस्तावित इस नगरपालिका वित्त निगम के सुझाव का समर्थन किया गया है।[27] इस प्रतिवेदन में यह विचार व्यक्त किया गया है कि ऐसा ऋण अभिकरण न केवल स्थानीय निकायो

को उचित दर पर ऋण ही उपलब्ध करायेगा, बल्कि विशिष्ट योजनाओ के सन्दर्भ मे तकनीकी सलाह के साथ ही दीर्घकालीन आयोजना को भी प्रोत्साहन दे सके, ऐसा प्रयत्न किया जाएगा। इस प्रकार सस्थापित ऋण सस्था को आयोजना की दृष्टि से समस्त नगरीय स्थानीय सस्थाओ की ऋण आवश्यकताओ के विषय मे व्यापक अनुमान लगाना चाहिए ताकि विकास कार्यक्रमो का निरुपण करते समय इन बातो का ध्यान रखा जा सके।

इसमे कोई सन्देह नही कि जिस ऋणदात्री सस्था की अभिकल्पना की गई है यदि व्यवहार मे स्वस्थ मनोवैज्ञानिक आधार पर इस सपने को साकार किया जा सके तो नगरीय स्थानीय शासन के विकास के मार्ग मे नया अध्याय प्रारम्भ किया जा सकता है। स्थानीय शासन की इकाईया शासन के महत्वपूर्ण दायित्वो का निर्वाह कर रही है अत उन्हे राजस्व के क्षेत्र मे हर दृष्टि से सक्षम बनाना अत्यन्त आवश्यक है। भारत जैसे विकासशील देश मे स्थानीय शासन के अतुल दायित्वो को देखते हुए उदार शर्तों तथा पवित्र उद्देश्यो के लिए ऋण लेने की पर्याप्त सस्थागत व्यवस्था की जानी चाहिए। राज्य सरकारो को मिलकर इस दिशा मे सामूहिक चिन्तन को बढावा देना उपयोगी रहेगा।

भारतवर्ष मे केवल नगरीय सस्थाओ की ही नही अपितु ग्रामीण क्षेत्रो मे कार्य करने वाली स्थानीय संस्थाओ की वित्तीय स्थिति भी कमजोर है। विगत अध्याय मे इस स्थिति के लिए उत्तरदायी कारको की चर्चा करते हुए यह व्यक्त किया जा चुका है कि चूँकि स्थानीय संस्थाओ को सविधान ने आय के स्वतन्त्र स्रोतो का आवंटन नही किया है इसलिए ये संस्थायें अपनी वित्तीय स्थिति के लिए पूर्णतः सम्बन्धित सरकार पर अवलिम्बित रहती हैं। इन सस्थाओ की वित्तीय आवश्यकताओ का कोई देशव्यापी अध्ययन नही किया गया है इसलिए यह कहना सम्भव नही है कि इन संस्थाओ के पास अपने काम-काज को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए प्रति व्यक्ति कितनी वार्षिक आमदनी होनी चाहिये। पिछले दो दशको मे जिस गति से रुपये का अवमूल्यन हुआ है और इस कारण सामाजिक सेवाओ के सम्पादन पर प्रशासनिक व्यय में जिस तरह से वृद्धि हुई है उसका कोई सटीक मूल्याकन करना सम्भव नही है। यद्यपि नगरीय संस्थाओ की आय मे भी इस दौरान वृद्धि हुई है किन्तु बढते हुये मूल्यो और नूतन दायित्वो मे उत्पन्न हुई व्यय मदो के सम्मुख इनकी बढी हुई आय का कोई विशेष महत्व नही रह गया है। इस कारण ये संस्थाएं अपने नागरिको की व्यवस्थित और सन्तोषजनक सेवा करने मे सफल नहीं हो पा रही हैं।

भारतवर्ष के प्रायः समस्त राज्यों में इस बात के कोई प्रयत्न नहीं किये गये हैं कि स्थानीय संस्थाओं को जो कार्यभार सौंपा हुआ है उसका व्यवस्थित अध्ययन करते हुए उसकी तुलना में उसे आय के साधन भी प्रदान किये जाय। स्थानीय संस्थाओं को मुख्यतः अपने करों से जो राशि प्राप्त होती है उसके अतिरिक्त अनुदान पर भी निर्भर रहना पड़ता है। आय के इन दोनों ही स्रोतों की अपनी-अपनी सीमायें हैं। जहा तक करों से आय का सम्बन्ध है यह पूर्व में भी व्यक्त किया जा चुका है किन्तु पुनः दोहराना आवश्यक है कि प्रथम तो समस्त स्थानीय संस्थायें करारोपण के अपने अधिकार का अत्यन्त संकोचपूर्वक प्रयोग करती हैं अर्थात् स्थानीय संस्थायें अपने नागरिकों पर कर लगाने में हिचकिचाती हैं, वे कर लगाने का निर्णय खुले मन से नहीं कर पाती हैं। यदि कुछ संस्थायें अपने दायित्वों को प्रभावी तरीके से सम्पादित करने की दृष्टि से कर लगाने का निर्णय भी करती हैं तो कोई भी नया कर सम्बन्धित विधान के अन्तर्गत राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के बिना आरोपित नहीं किया जा सकता है। इस स्थिति में नया कर लगाने का निश्चय करने वाली नगरीय इकाई को अपने इस प्रस्ताव को स्वीकृति हेतु राज्य सरकार के पास भिजवाना होता है। राज्य सरकारों की स्थिति यह है कि स्थानीय संस्थाओं के द्वारा करों के प्रस्ताव को वे अत्यन्त उदासीनता से लेती हैं और महीनों तक उन पर अनिर्णय की स्थिति बनी रहती है। इस सम्बन्ध में यदि यह कहा जाय कि करों के आरोपण में न केवल स्थानीय संस्थायें ही संकोच करती हैं अपितु राज्य सरकार भी अपनी नियन्त्रणकारी शक्ति के द्वारा ऐसा वातावरण उत्पन्न करती हैं कि स्थानीय संस्थायें करों का कोई नया प्रस्ताव राज्य सरकार को भिजवाने के लिए अपने आपको प्रेरित अनुभव नहीं करती। यह स्थिति कल्पना नहीं, यथार्थ की अभिव्यक्ति है।

करों के आरोपण के सम्बन्ध में दूसरी विचित्र स्थिति नगरीय संस्थाओं के सन्दर्भ में यह आती है कि जो कुछ कर उपरोक्त स्थिति में आरोपित कर दिये जाते हैं उन करों की राशि का पूरा एकत्रण नहीं हो पाता है। इस स्थिति के लिए पूरी तरह नगरीय निकायों के प्रशासन तन्त्र को जिम्मेदार माना जा सकता है। प्रशासनिक चिन्तकों को यह बात आज तक समझ में नहीं आ सकी है कि कानून की दृष्टि से आरोपित करों का पूर्ण रूप से एकत्रण करने में नगरीय निकाय के अधिकार प्राप्त प्रशासनिक अधिकारी क्यों असफल रहते हैं ? यहा एक और अत्यन्त रोचक स्थिति यह है कि राज्य सरकार का स्वायत्त शासन विभाग और स्थानीय संस्थाओं का निदेशालय, जो कि इन संस्थाओं पर नियन्त्रण रखने के लिए उत्तरदायी है, भी नगरीय निकायों को इस असफलता के लिए

कोइ प्रभावी कार्यवाही नही कर पाते हैं। इस सन्दर्भ मे अब तक कोई सटीक अध्ययन तो उपलब्ध नही हो पाय हैं कि नगरीय सस्थायें आरोपित करो का कितना अश एकत्र कर पाती हैं और कितना नही कर पाती हैं किन्तु मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि नगरीय सस्थाये आरोपित करो की राशि का लगभग 40% भाग जनता से एकत्र नही कर पाती हैं। यह स्थिति नगरीय सस्थाओ की दयनीय वित्तीय स्थिति के कारण का स्पष्टीकरण मानी जा सकती है।

प्रो मुत्तालिब एव खान ने अपनी पुस्तक मे यह मत भी व्यक्त किया है कि ये सस्थाए स्थानीय करो की जितनी भी राशि एकत्र कर पाती है वे प्रायः उसे नागरिक आकाक्षाओ की पूर्ति की दिशा मे ठीक तरह से व्यय भी नही कर पाती हैं। इस टिप्पणी का आशय यह है कि नगरीय सस्थाओ का वित्तीय प्रशासन इतना कमजोर है कि न केवल वह आरोपित करो को पूर्णतः एकत्र नही कर पाता अपितु वह उनका व्यय भी नागरिक हित मे नही कर पाता है।

नगरीय सस्थाओ की इस कमजोर वित्तीय स्थिति के लिए स्वय नागरिको का दृष्टिकोण भी कम उत्तरदायी नही है। नागरिक यह तो चाहते रहते हैं कि नगरीय सस्थाओ द्वारा उन्हें अधिकाधिक सेवाए दी जाय किन्तु यदि नगरीय सस्थायें उसके बदले मे कोई कर आरोपित करना चाहती हैं तो नागरिको की प्रथम प्रतिक्रिया, उनका विरोध करने की रहती हैं। समस्त विकासशील देशो मे प्रजातन्त्र के शैशव मे होने के कारण इन समस्याओ का सामना करना पडता है किन्तु नागरिको को इस बात के लिए तो चिन्तन करना ही होगा कि यदि वे स्थानीय सस्थाओ से अधिक सेवाओ की अपेक्षा करते हैं तो उन्हे बढे हुए करो को देने के लिये भी अपने आप को मानसिक दृष्टि से तैयार करना होगा। नगरीय सस्थाओं को भी कर निर्धारण और वसूली मे होने वाली प्रशासनिक गडबडियो और अपने वित्तीय प्रशासन मे किसी भी प्रकार की अपर्याप्तता, अकार्मकुशलता, भ्रष्टाचार और पक्षपात को कठोरता से रोकना होगा। जब तक नगरीय सस्थायें अपनी सेवाओ की तुलना मे आय के स्रोतो का विकास स्वय नहीं करेंगी, राज्य सरकार भी उन्हें इस हेतु मदद नही करेंगी। ये सस्थायें अपने प्रशासन तन्त्र मे आवश्यक सुधार नही करेंगी तब तक न तो वे नागरिको की अपेक्षाओ की सटीक पूर्ति कर पायेंगी और न ही प्रजातन्त्र की पाठशालायें सिद्ध हो सकेंगी।

इन सस्थाओ की वित्तीय स्थिति मे सुधार के लिए निम्नलिखित सुझाव विचारणीय हो सकते हैं :

1. भारतवर्ष के संघात्मक ढांचे के विशेष सन्दर्भ मे, केन्द्रीय सरकार का यह दायित्व बन जाता है कि वह नगरीय संस्थाओं के सुदृढ़ कार्यकलाप को सुनिश्चित करने के लिए न केवल इन संस्थाओं को संविधान मे स्थान दे अपितु इन्हे संविधान मे ही आय के स्रोत भी उपलब्ध कराये। संविधान के स्तर पर ऐसा कर दिये जाने से सारे देश को स्थानीय संस्थाओं का ढांचा जहां एक बार संवैधानिक बन सकेगा वहीं उनके बढ़े हुए कार्यकलापों को निभाने के लिए उन्हें व्यापक आर्थिक संसाधन भी उपलब्ध हो जायेंगे।

2. समस्त राज्य सरकारों को अपने विधान मण्डल द्वारा बनाये हुए अधिनियमो की पालना सुनिश्चित करनी चाहिए। एक बार अधिनियम पारित कर देने के पश्चात, ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकारें पश्चात वर्ती काल मे उनके प्रावधानों का अवलोकन तक नहीं करती हैं। स्थानीय संस्थाओं की कमजोर वित्तीय स्थिति एक सीमा तक वर्तमान कानूनी परिप्रेक्ष्य मे ही हल की जा सकती है, यदि राज्य सरकार अपने राज्य मे प्रवर्तित कानूनो को सही तरीके से कार्यान्वित करने लगें। वर्तमान अधिनियमो मे जब यह प्रावधान किया गया है कि स्थानीय संस्थाएं कोई नया कर लगाकर अपनी आय बढ़ा सकती हैं तो फिर स्थानीय संस्थाओं द्वारा पर्याप्त नये करो के प्रस्ताव को राज्य सरकार लम्बे समय तक क्यों अनिर्णित रखती हैं। यदि राज्य सरकार स्थानीय संस्थाओं को सक्षम बनाना चाहती है, उन्हें प्रजातन्त्र की प्रभावी आधारभूत इकाइयों के रूप मे देखना चाहती है तो उनके साथ अनिर्णय का नहीं अपितु प्रशासनिक तत्परता और प्रोत्साहन का व्यवहार करना होगा। राज्य सरकार को चाहिए कि स्वायत्त शासन विभाग मे एक पृथक प्रशासकीय प्रकोष्ठ की स्थापना करें। यह प्रकोष्ठ इस बात के लिए उत्तरदायी हो कि वह राज्य मे कार्यरत समस्त नगरीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति का आकलन-मूल्यांकन करे, उनके द्वारा प्रस्तुत वित्तीय प्रस्तावो को तुरन्त स्वीकृति दे और उनकी समस्याओं का अविलम्ब समाधान करे।

3 राज्य सरकारो को चाहिए कि राज्य मे कार्यरत विभिन्न प्रकार की नगरीय इकाइयों की उनके दायित्वो के अनुरूप वार्षिक आय का एक अनुमान तैयार करे और यह सुनिश्चित करे कि उन्हें उनकी आवश्यकता के अनुरूप साधन किस प्रकार मिल सकते हैं। इस सन्दर्भ मे स्थानीय संस्थाओं द्वारा आरोपित करो से प्राप्त राशि और उसी के अनुरूप अनुदान का विनिश्चय भी किया जा सकता है।

4 सभी स्थानीय संस्थाओं को यह प्रयत्न भी करना होगा कि अपनी आय के स्रोतों का अधिकतम उपयोग करें। करारोपण तथा उनकी वसूली में वर्तमान

अकार्यकुशलता और शिथिलता की स्थिति जब तक दूर नही की जाएगी तब तक इनकी वित्तीय स्थिति मे सुधार लाना सम्भव नही लगता है।

5. राज्य मे कार्यरत सभी प्रमुख राजनीतिक दलो को यह सहमति विकसित करनी होगी कि नगरीय संस्थाओ द्वारा आय बढाने के प्रयासो का वे राजनीतिक कारणो से कोई विरोध नही करेंगे। यह कदम भी इन संस्थाओ की आय बढाने मे पर्याप्त सहायता कर सकता है।

6. समस्त नगरीय संस्थाओ को, विशेषकर उसके प्रबन्धको को अपनी संस्था की प्रशासकीय स्थिति मे इस दृष्टि से सुधार करना होगा कि आरोपित कर पूरी तरह वसूल किये जा सकें और जो राशि करो से वसूल होती है उसका नागरिको के व्यापक हित मे कल्याणकारी कार्यों पर व्यय किया जा सके।

7. इसी सन्दर्भ मे, राज्य सरकार और स्थानीय स्वायत्त शासन निदेशालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि नगरीय संस्थाओ पर नियन्त्रण और पर्यवेक्षण के अपने अधिकारो का सतर्क होकर इस तरह उपयोग करें कि उनका हस्तक्षेप नगरीय संस्थाओ की वर्तमान अकार्यकुशलता, शिथिलता और एक सीमा तक उत्पन्न हो गयी अकर्मण्यता को न केवल समाप्त करें अपितु स्थानीय संस्थाओ को नागरीय समस्याओ के समाधान मे सक्षम और कार्यकुशल प्रशासनिक इकाइयां बना सके। प्रशासनिक कार्यकुशलता और मितव्ययता के उद्देश्यो की प्राप्ति प्रभावी पर्यवेक्षण और समुचित और समुचित नियन्त्रण के बिना नही की जा सकती। पर्यवेक्षकीय अधिकारियो को इस तथ्य को भली-भांति समझानाहोगा।

8. स्थानीय संस्थाओ मे व्याप्त प्रशासकीय भ्रष्टाचार समाप्त किया जाना चाहिए।

9. स्थानीय संस्थाओ को करो की बकाया राशि वसूल करने को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए।

10. नगरीय क्षेत्र मे प्रशासकीय अपव्यय को रोकने की दिशा मे पहल की जानी चाहिए। अनेक बार राजनीतिज्ञो, मन्त्रियो आदि के स्वागत समारोहो पर निकाय की क्षमता और निर्धारित राशि से अधिक व्यय कर दिया जाता है, जो उचित नहीं है।

11. नगरपालिका मे उपलब्ध मानव शक्ति और कार्य निष्पादन के मध्य तादात्म्य स्थापित किया जाना चाहिए। यह स्थिति समाप्त की जानी चाहिए कि

कुछ कर्मचारी राजनीतिक प्रश्रय के कारण बिना काम के ही नियुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे तत्वों की उपस्थिति, अन्य कार्मिकों के कार्य व्यवहार और कुशलता को विपरीत रूप से प्रभावित करती है, जिसे ईमानदारी से नियंत्रित किए जाने की आवश्यकता है।

12 नगरपालिका, जो कर आरोपित करती है, उनकी उपादेयता के सन्दर्भ में जनता में जागरूकता का वातावरण बनाये जाने की भी आवश्यकता है। यदि जनता को यह विश्वास हो जाये कि जो कर आरोपित किये जा रहे हैं, उनसे प्राप्त राशि को उन्हीं के कल्याण और विकास के लिए व्यय किया जायेगा तो सम्भवतः जनता द्वारा करों के विरोध में कमी आ सकेगी।

13 करों की प्रशासकी व्यवस्था सरल बनायी जानी चाहिए। करों की वर्तमान प्रशासकीय व्यवस्था इतनी जटिल, दुरूह और उलझनपूर्ण है कि बहुत से पढ़े लिखे नागरिक भी उन्हें चुकाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। करदाता की परेशानी के ऐसे समस्त स्थलों को समाप्त करने की पहल की जानी आवश्यक है।

14. राज्य सरकार को चाहिए कि इन संस्थाओं के काम-काज के उन क्षेत्रों में कोई हस्तक्षेप न करें जिनमें निर्णय रूप से नगरीय इकाई को ही लेना है। यदि नगरीय इकाई के निर्वाचित पार्षद निर्णय निर्माण के स्तर पर यह अनुभव करेंगे कि उसमें निर्वाचित प्रतिनिधियों की कोई भूमिका नहीं है और निर्णय ऊपर से थोप दिये जाते हैं तो यह स्थिति न केवल अलोकतांत्रिक है अपितु नागरिकों को स्थानीय संस्थाओं में भागीदारी के लिए निरुत्साहित भी करती है। लोकतन्त्र के व्यापक हित में इस स्थिति को ठीक से आत्मसात किया जाना चाहिए।

15 ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति ने प्रत्येक राज्य में एक नगरपालिका वित्त आयोग की स्थापना का सुझाव दिया है। इस आयोग का मुख्य उद्देश्य नगरीय संस्थाओं को जलदाय, सफाई, स्वास्थ्य तथा अन्य अनिवार्य सेवाओं में उत्पन्न वित्तीय आवश्यकताओं का अध्ययन करना तथा उनकी पूर्ति के लिए साधन जुटाना है। राज्य में इस आयोग की नियुक्ति वित्त आयोग की नियुक्ति से पहले की जानी चाहिए ताकि इसके द्वारा अनुमानित वित्तीय आवश्यकताओं का आकलन कर सम्भावित राशि को राज्य सरकार के उस प्रतिवेदन में सम्मिलित किया जा सके जो वित्त आयोग को प्रस्तुत किया जाता है। इस सुझाव को कार्यान्वित करने से केन्द्र, राज्य और स्थानीय शासन की वित्तीय व्यवस्था को एकीकृत स्वरूप देने में निर्णायक सहायता मिलेगी।

16. राज्य स्तर पर स्वायत्त शासन सस्थाओ को उनकी पूजीगत आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु ऋण आदि उपलब्ध कराने के लिए भी उपरोक्त नगरपालिका वित्त आयोग सहायता कर सकता है। यह चिन्ता की बात है कि ऐसे आयोग की स्थापना का सुझाव अब से 25 वर्ष पहले दिया गया था किन्तु इसकी उपादेयता का परीक्षण भी नही किया गया है।

इन सुझावो के अतिरिक्त, स्थानीय सस्थाओ को सुदृढ और सशक्त बनाने के लिए जब पहल की जाएगी तो अपने आप एक ऐसा वातावरण बनेगा जिसमे जनता राज्य सरकार और केन्द्र सरकार यह अनुभव कर सकेगी कि इस दिशा मे अन्य क्या प्रभावी कदम उठाये जा सकते हैं। सुझावो की उपरोक्त सूची अब तक के अनुभव पर आधारित है किन्तु चिन्तको की यह मान्यता है कि यदि सच्चे मन से किसी काम को आरम्भ किया जाय तो उस हेतु आवश्यक वातावरण अपने आप बनने लगता है और फिर किसी प्रकार के बाह्य सुझाव की आवश्यकता ही नही रहती है।

नगरीय स्थानीय शासन के वित्तीय प्रशासन को पूरी तरह समझने के लिए सक्षेप मे उसके बजट और लेखा पालन तथा लेखा परीक्षण की जानकारी भी आवश्यक है।

नगरीय संस्थाओं का बजट

बजट वित्तीय प्रशासन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आयाम है। प्राय: सभी नगरीय सस्थाए अपना बजट तैयार करती है। ये सस्थाए राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्रो मे अपना बजट तैयार करती है और उसमे केन्द्र तथा राज्य सरकार की भाति ही गत वर्ष के वास्तविक आकडे, चालू वर्ष के अनुमानित आकडे, उपलब्ध वास्तविक आकडे एव आगामी वर्ष के अनुमानित आकडे प्रस्तुत किये जाते हैं। यह बजट वार्षिक होता है और समूची इकाई का एक ही बजट बनता है।

समस्त नगरीय सस्थाए अपना बजट तैयार कर राज्य सरकार के विचारार्थ प्रस्तुत करती हैं। राज्य सरकार के स्वायत्त शासन निदेशालय और उसके पश्चात स्वायत्त शासन विभाग द्वारा इस बजट की जाच की जाती है। राज्य सरकार अपनी इस जांच या बजट परीक्षा मे यह सुनिश्चित करती है कि बजट मे ऋणों की अदायगी की व्यवस्था की गई है या नही और बजट को उन सिद्धान्तो के अनुरूप और उसी तरह बनाया गया है जिस तरह राज्य सरकार ने प्रस्तावित किया हुआ है। जिन संस्थाओं पर ऋण का

भार कम होता है या यह भार नहीं होता है वे बजट निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता का उपयोग कर पाती हैं। किन्तु जो संस्थाएं ऋणग्रस्त हैं उन्हें राज्य सरकारों के अधिक कठोर नियंत्रण की प्रक्रिया से गुजरना होता है। नगर निगम को बजट निर्माण में अधिक आजादी होती है, उन्हें न तो बजट पर राज्य सरकार की स्वीकृति प्राप्त करनी होती है और न ही व्यय की राशियों के सम्बन्ध में राज्य सरकार के आदेशों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

विभिन्न राज्यों में नगरपालिकाओं पर बजट के सम्बन्ध में राज्य सरकार के नियन्त्रण का अन्तर पाया जाता है। राजस्थान में बजट में प्रावधान होने पर भी पांच हजार रुपये से अधिक की राशि व्यय करने के लिए राज्य सरकार की अनुमति आवश्यक होती है। असम, केरल, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा तथा राजस्थान में नगरपालिकाओं के बजट पर राज्य सरकार का अनुमोदन आवश्यक है जबकि महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल में यह प्रावधान किया गया है कि बजट के सम्बन्ध में राज्य सरकार की अनुमति की उन्हीं नगर-पालिकाओं को आवश्यकता है जो कि ऋणग्रस्त हों।

वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में राज्य सरकार द्वारा किये जाने वाले इस नियन्त्रण को चिन्तक अच्छा भी मानते हैं और दूसरी ओर उसकी आलोचना भी करते हैं। कुछ चिन्तकों का ऐसा मत है कि नगरीय संस्थाओं पर राज्य सरकार का वित्तीय नियंत्रण अधिक है जिसे उदार बनाया जाना चाहिए। उनका मत है कि वित्तीय नियंत्रण नगरपालिकाओं की स्वायत्तता का हनन होता है। वे ऐसा मत मानते हैं कि यदि स्थानीय शासन की संस्थाएं अपनी स्थिति को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बना लेती हैं तो वे अधिक स्वतन्त्रता और स्वायत्तता के वातावरण में जन समस्याओं के निराकरण के पक्ष में जुटी रह सकती हैं। राज्य द्वारा दी जाने वाली सहायता आमतौर से विभिन्न सीमाओं और बन्धनों के जाल से जकड़ी हुई होती है। न केवल उसके प्राप्त करने में बल्कि उसके व्यय के बाद भी नौकरशाही की अधिकारी मनोवृत्ति के कारण अनेक कठिनाइयों का शिकार ये संस्थाएं हो जाती हैं। इसका यह आशय कदापि नहीं कि ये संस्थाएं ना तिवान्त विश्वास और राज्य सरकार अविश्वास की प्रतीक है बल्कि राज्य सरकारों ने जब तक जब भी सहायता दी है तब सहायता के बाद उनका रूप परामर्शदाता या मित्र जैसा न रहकर मालिक मजदूर जैसा हो जाता है। अतः अधिक स्वायत्तता के उपभोग की पहली शर्त यह है कि ये संस्थाएं अधिकतम स्वावलम्बी बनें और राज्य की सहायता पर कम से कम निर्भर रहें।

किन्तु इस समस्या का दूसरा पक्ष भी है। इन संस्थाओ के वित्तीय प्रशासन में राज्य सरकार के हस्तक्षेप को दूसरे चिन्तक अनुचित नही मानते हैं। अपने इस मत के पक्ष मे उनके अनेक तर्क हैं :[28]

1 इन संस्थाओ की वित्तीय साख बनाये रखना और उन्हें वित्तीय दृष्टि से सुदृढ बनाना राज्य सरकार का दायित्व है।

2. इन संस्थाओ को जो ऋण राज्य सरकार से या अन्य इकाइयो से मिलता है उसके लिए राज्य सरकार द्वारा प्रत्याभूति प्रदान की जाती है। इस पृष्ठभूमि मे यह सुनिश्चित करना राज्य सरकार का परम पावन दायित्व है कि वे संस्थाए अपने बजट मे ऋणो को चुकाने हेतु आवश्यक प्रावधान कर रही हैं या नही।

3 प्रत्येक राज्य सरकार इन संस्थाओ को सामान्य और विशिष्ट व्यय अनुदान देती है। अनुदान देने से राज्य सरकार इस कर्तव्य मे आबद्ध हो जाती है कि वह यह देखे कि कर दाताओ के धन का इन संस्थाओ द्वारा सदुपयोग किया जा रहा है?

4 समूचे राज्य मे नगरीय संस्थाओ की कार्यकुशलता हेतु एक जैसे मानदड स्थापित करने और सेवाओ का एक न्यूनतम स्तर बनाये रखने के लिए राज्य सरकार के नियत्रण को उचित ठहराया जाता है। यदि ये संस्थाए आर्थिक दृष्टि से दिवालिया हो जाय तो राज्य सरकार मे एक विकट स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अत ऐसी स्थिति से बचने के लिए इन संस्थाओ पर राज्य सरकार का नियन्त्रण आवश्यक माना जाता है।

5 प्रोफेसर आर्गेल ने भी इन संस्थाओ पर राज्य सरकार के वित्तीय नियंत्रण को इस दृष्टि मे उचित ठहराया है कि ऐसे प्रतिबन्ध एक न्यूनतम सेवा स्तर की प्रत्याभूति देते हैं इसलिए यह जन साधारण के हित मे है।

लेखा पालन

प्रत्येक प्रशासनिक संस्थान अपने वित्तीय प्रशासन को सुव्यवस्थित स्वरूप देने की दृष्टि से उसका लेखा पालन करता है। लेखा पालन की प्रक्रिया के माध्यम से ही किसी सस्थान की वित्तीय स्थिति का सटीक आकलन किया जा सकता है और आसानी से यह पता लगाया जा सकता है कि उसके द्वारा आरोपित कर कितनी मात्रा मे वसूल किये जा रहे हैं और कितनी मात्रा मे बकाया रह गये हैं।

भारत में सभी राज्यों में लेखा व लन की प्राय एक सी पद्धति प्रचलित है। इसका कारण यह है कि हमारे यहां केन्द्रीय स्तर पर नियन्त्रक और महा-लेखा पाल कार्यालय लेखापालन और उसके परीक्षण की गतिविधि का संचालन करता है। प्रायः सभी राज्यों में जिस अधिनियम के अधीन स्थानीय संस्थाओं की संरचना की जाती है उसी अधिनियम में लेखापालन के सम्बन्धित प्रावधान भी सम्मिलित किये जाते हैं और स्थानीय इकाइयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे लेखापालन में सम्बन्धित अपने कर्तव्य का निर्वहन उन्हीं प्रावधानों के अनुरूप करें। राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 1959 में यह व्यवस्था की गई है कि कुछ अपवादों को छोड़ कर कोई भी ऐसा व्यय नहीं किया जाना चाहिए जिसके लिए बजट में प्रावधान न हो।[29] इन संस्थाओं के लेखापालन से सम्बन्धित नियमों में लेखा से सम्बन्धित विभिन्न अधिकारियों तथा लेखा अधिकारी लेखा-पाल एवं वित्तीय प्रशासन से सम्बन्धित अन्य अधिकारियों के अधिकारों व कर्तव्यों का विस्तृत विवेचन की गई है। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि पूरे राज्य में समस्त स्थानीय संस्थाओं के लेखापालन में एकरूपता स्थापित की जा सके। ऐसा कर दिये जाने से राज्य सरकार और उसकी पर्यवेक्षकीय इकाइयाँ राज्य में कार्यरत विभिन्न स्थानीय संस्थाओं का न केवल तुलनात्मक मूल्यांकन कर सकती हैं अपितु उन पर प्रभावी वित्तीय नियन्त्रण करने में भी सक्षम हो पाती हैं।

लेखापालन के अपने कर्तव्य के निष्पादन में ये संस्थाएं अपने द्वारा वसूल करों की राशि का ब्योरेवार विवरण रखती हैं। सभी संस्थाओं से यह आशा की जाती है कि वे अपनी सारी धनराशि सरकारी खजाने में जमा करायें। यद्यपि उन्हें राज्य सरकार की अनुमति से अन्य बैंकों में खाता खोलने की छूट भी दी जा सकती है।

लेखापालन का यह कर्तव्य वस्तुतः इस बात पर अवलम्बित है कि इन संस्थाओं द्वारा करों का एकत्रण किस सीमा तक किया जाता है। हमारे देश में कर एकत्रण की स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। कर्मचारियों में कार्य के प्रति निष्ठा ईमानदारी और समर्पण के अभाव पर्यवेक्षकीय अधिकारियों द्वारा अपने दायित्वों के निष्पादन में ढिलाई स्थानीय राजनीतिज्ञों के हस्तक्षेप और कर अदा नहीं करने वाले नागरिकों पर कोई कार्यवाही न होने के कारण करों की वसूली में बाधा पहुंचती है और बकाया करों की राशि बढ़ रही है। चूंकि सभी स्थानीय संस्थाएं इस दशा से गुजर रही हैं इसलिए लेखापालन की उनकी प्रक्रिया पर इस स्थिति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। स्थानीय संस्थाओं

को अपनी करो की वसूली की स्थिति मे सुधार के लिए उन करदाताओ को कुछ छूट देने पर विचार करना चाहिये जो अपने कर समय पर अदा करते हैं। इसी तरह जिन कर्मचारियों द्वारा करो की 90% राशि वसूल कर ली जाती है उन्हे पुरस्कृत किया जा सकता है और जो कर्मचारी करो की राशि 60% से कम वसूल कर पाते हैं उन्हें दण्डित भी किया जा सकता है। इस तरह के कुछ कदम उठाने से स्थानीय संस्थाओ की वित्तीय स्थिति तो सुदृढ होगी ही साथ ही स्थानीय संस्थाओ के लेखापालन की गतिविधि भी सुनियमित हो सकेगी।

लेखा परीक्षण

किसी भी प्रशासनिक संस्थान मे यह देखना, कि धन का व्यय उचित रूप से बजट मे निर्धारित उद्देश्यो के लिए ही किया गया है, राज्य सरकार के सम्बंधित आदेशो की पूर्णत: अनुपालना की गई है, धन का व्यय अधिकृत *अधिकारियों द्वारा ही किया गया है और बजट मे स्वीकृत धनराशि बिना स्वीकृति* के एक मद से दूसरे मे मद मे व्यय नही की गई है, लेखा परीक्षण के आवश्यक उद्देश्य माने जाते हैं।

स्थानीय संस्थाओ के लेखा परीक्षण का उत्तरदायित्व राज्य सरकारो पर होता है। इसी कारण राज्यो मे लेखा परीक्षण की प्रक्रिया मे कतिपय अन्तर पाये जा सकते हैं। सन् 1919 के पहले प्रान्तो के महालेखा परीक्षक इन संस्थाओ के लेखा परीक्षण के लिए उत्तरदायी थे किन्तु उसके पश्चात प्रान्तीय सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वे इन संस्थाओ के लेखा परीक्षण का प्रबन्ध अपनी सुविधा के अनुसार करें। इस अधिकार के कारण कुछ प्रान्तो में लेखा परीक्षण का यह दायित्व महालेखापाल के पास रहा और कुछ मे उससे हटा लिया गया।

स्वतन्त्रता के पश्चात प्राय सभी राज्यो मे स्थानीय शासन के लेखा परीक्षण का कार्य स्थानीय निधि लेखा परीक्षक द्वारा किया जाता है। सरकारी प्रशासनिक संगठनो के सम्बन्ध मे भारत के नियन्त्रक एव महालेखा परीक्षक द्वारा जो दायित्व सम्पादित किया जाता है वही दायित्व स्थानीय शासन के सम्बन्ध मे स्थानीय निधि लेखा परीक्षक द्वारा वहन किया जाता है। प्राय: हर राज्य में एक स्थानीय निधि लेखा परीक्षक है। वह राज्य सरकार का अधिकारी है और राज्य सरकार के वित्त विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण मे कार्य

करता है। स्थानीय निधि लेखा परीक्षक के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत राज्य की समस्त स्थानीय सस्थाए आती है।

राजस्थान राज्य मे, राजस्थान स्थानीय निधि अकेक्षण अधिनियम, 19 4 के अन्तर्गत स्थानीय निधि लेखा-परीक्षक, स्थानीय स्वायत्त शासन सस्थाओं का लेखा परीक्षण करता है। यह अधिकारी स्थानीय निधि लेखा परीक्षण विभाग का सर्वोच्च पदाधिकारी होता है और राज्य के वित्त सचिव की देखरेख और नियत्रण मे काम करता है। जयपुर मे इसके मुख्यालय के अतिरिक्त राज्य भर मे इसके पाच क्षेत्रीय कार्यालय भी हैं। इन क्षेत्रीय कार्यालयों के काम-काज का निर्देशन सहायक परीक्षक द्वारा किया जाता है जिसकी सहायता के लिए अकेक्षकों का पूरा दल नियुक्त होता है। लेखा परीक्षण का यह दायित्व लेखा परीक्षण निरीक्षक दलो द्वारा सम्पादित किया जाता है। ऐसे एक दल मे एक लेखा अधिकारी, तीन अकेक्षक तथा एक कनिष्ठ अकेक्षक होता है। यह दल समस्त स्थानीय सस्थाओं के स्थानीय लेखो का पूर्व वर्णित नियमो के अनुसार अकेक्षण करता है और अपने इस प्रतिवेदन के साथ लेखा और लेखा परीक्षण की प्रक्रिया मे सुधार के लिए आवश्यक सुझाव भी देता है। सभी स्थानीय निकायो को यह अग्रिम सूचना दे दी जाती है कि लेखा परीक्षण दल उनके यहा किन तिथियो मे आ रहा है। आवश्यक होन पर या किसी निकायमे विशेष गडबडी की शिकायत हो अथवा आशका होन पर विशेष लेखा परीक्षणदल भी भेजे जा सकते हैं।

लेखा परीक्षण का यह प्रतिवेदन दो भागो मे तैयार किया जाता है। इसके प्रथम भाग मे प्रशासकीय दृष्टि से की गई वित्तीय अनियमितताओं का वर्णन होता है, जिसे परीक्षण नोट कहते हैं और इसके दूसरे भाग मे ऐसी आपत्तियों का विवरण दिया जाता है जिन पर सस्थागत स्तर पर प्रशासकीय कार्यवाही अपेक्षित होती है। इस दूसरे भाग को आपत्ति विवरण कहा जाता है। यदि लेखापरीक्षण के दौरान किसी अधिकारी अथवा कर्मचारी की लापरवाही या दायित्व से सस्था को आर्थिक हानि होने का मामला सामने आये तो ऐसी स्थिति मे निधि लेखा परीक्षक को अधिकार है कि वह सम्बन्धित अधिकारी या कर्मचारी को क्षति-पूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराये।[30] पश्चिमी बगाल मे क्षति पूर्ति की व्यवस्था नही है। तमिलनाडू, बिहार तथा उडीसा मे, परीक्षक स्वय ही सम्बन्धित कर्मचारी को क्षति-पूर्ति का आदेश देनेमे सक्षम हैं। किन्तु इन सभी राज्यो मेसम्बन्धित कर्मचारियो और अधिकारियो को ऐसे आदेशो के विरुद्ध राज्य सरकार मे अपील करने का अधिकार है।

लेखापालन एवं लेखा परीक्षण दोनों ही गतिविधियों का संचालन स्थानीय निकायों में कुछ व्यवस्थित मानदण्डों के आधार पर नहीं हो रहा प्रतीत होता है। राज्यों में लेखा पालन में, व्यय की गई राशि की मूल रसीदों की नियमानुसार जांच पड़ताल में शिथिलता, पर्यवेक्षकीय अधिकारियों द्वारा कैशबुक की नियमित जांच के कार्य में ढिलाई और वसूल की गई राशि के समय पर खाते अथवा खजाने में जमा न होने और भंडार गृह के नियमित सत्यापन में अनियमितताओं की शिकायतें आम तौर पर पाई जाती हैं। इसी प्रकार लेखा परीक्षण के लिए उत्तरदायी प्राधिकारी राज्य के वित्त सचिव के प्रशासकीय नियंत्रण में काम करता है। जो प्राधिकारी राज्य सरकार के सीधे नियन्त्रण में कार्य करता हो वह राज्य सरकार द्वारा प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। राज्य के स्वायत्त शासन विभाग के अधिकारियों ने यदि स्थानीय संस्थाओं के संचालकों को अनियमित रूप से प्रभावित किया हो तो राज्य सरकार के नियंत्रण में ही काम करने वाला कोई प्राधिकारी उन अधिकारियों के विरुद्ध प्रभावी जांच कैसे कर सकता है? यदि स्थानीय संस्थाओं के काम-काज को पूर्णतः स्वस्थ और सक्षम बनाना लोकतन्त्र के हित में अभीष्ट है तो उनके लेखापालन एवं परीक्षण की गतिविधियों में आवश्यक सुधार किये जाने चाहिये। लेखा परीक्षकों द्वारा जिन प्राधिकारियों के कार्यों के सन्दर्भ में आपुत्तियां या अनियमितताओं का विवरण खोजा जाता है उनके विरुद्ध उत्तरदायित्व का विनिश्चय कर अनुशासनिक, कदम उठाये जाने की गंभीर स्थिति को टाला नहीं जाना चाहिए, क्योंकि यदि अनियमितता करने वाले कर्मचारी या प्राधिकारी उसके लिए दण्डित नहीं किये जाएंगे तो प्रशासन तन्त्र में अन्य लोगों का मनोबल बनाये नहीं रखा जा सकेगा। ऐसी स्थितियों में सुधार की पर्याप्त संभावनाएं विद्यमान हैं जिन पर प्रभावी कार्यवाही किये जाने की आवश्यकता उपरोक्त विवरण से स्वयं सिद्ध है।

सन्दर्भ

1. लोकल गवर्नमेंट रिफॉर्म, एनालिसिस ऑफ एक्सपीरियेंस इन सलेक्टेड कन्ट्रीज यूनाइटेड नेशन्स, न्यूयार्क, 1975, पैरा 168
2. एम.ए. मुतालिब एवं मोहम्मद अकबर अली खान, थ्योरी ऑफ लोकल गवर्नमेंट, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1983, पृ. 180

3 यूनाइटेड नेशन्स टेक्नीकल असिस्टेंस प्रोग्राम, डिमेन्ट्रेलाइजेशन फार नेशनल एण्ड लाकल डवलपमेट, न्यूयार्क, 1962, पृ 55
4. मुतालिब एव खान, पूर्वोक्त, पृ 182
5 रिपोर्ट ग्राफ कमेटी ग्रॉन बजटरी रिफार्म इन म्युनिसिपल एडमिनि-स्ट्रेशन, गवर्नमेट ग्रॉफ इण्डिया मिनिस्ट्री ग्रॉफ वर्क्स एण्ड हाउसिग, उद्धृत मुतालिब एवं खान, पृ. 184
6 बी एम सिन्हा भारत मे नगरीय सरकारें, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1986, पृ 130
7 राज्य सूची की प्रविष्टि सख्या 52
8. श्री राम माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ 274
9. रिपोर्ट ग्रॉफ द कमेटी ग्रॉफ मिनिस्टर्स ग्रॉन, ग्रॉगमेन्टेशन ग्रॉफ फाइ-नेन्सियल रिसोर्सेज ग्रॉफ ग्ररबन लोकल बॉडीज,
10 उपरोक्त,
11. बी. एम. सिन्हा, उपरोक्त, पृ. 132
12. उद्धृत, श्री राम महेश्वरी, पूर्वोक्त पृ 276
13 ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति प्रतिवेदन, पृ. 93
14 रिपोर्ट ऑफ द टेक्सेशन एन्क्वायरी कमेटी पृ 378
15 ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति, पृ 88-90
16 श्री राम माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ 274
17 बी. एम. सिन्हा पूर्वोक्त. पृ 135
18. उपरोक्त, पृ.136
19 सेन्ट्रल सर्विसेज टू लोकल ग्रॉथोरिटीज पार्ट–4, द इन्टरनशनल यूनियन ग्रॉफ लोकल ग्रॉथोरिटीज फॉर दि यूनाइटेड नशन्स, ■ हेग 1962, पृ 76
20 श्री राम माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ 280
21. के. उर्सुला हिक्स डवलमेन्ट फ्रॉम बिलो, लोकल गवर्नमेट एण्ड फायनेन्स इन डवलपिंग कन्ट्रीज ग्राव द कॉमनवैल्थ ग्राक्सफोर्ड, उद्धृत मुतालिब एव खॉन, पूर्वोक्त, पृ 194
22 मुतालिब एव खान, पूर्वोक्त पृ 194
23. ग्रार. एम. जैक्सन, द मशीनरी ग्रॉव लोकल गवर्नमेंट, मैकमिलन, न्यूयार्क 1965, पृ 182
24. मुतालिब एव खान, पूर्वोक्त, पृ. 196

25. उपरोक्त, पृ. 196–197
26 श्री राम महेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ. 283
27 यूनाइटेड नेशन्स, डिसेन्ट्रलाइजेशन फॉर नेशनल एण्डलोकल डवलपमेंट, न्यूयार्क, 1962
28. बी. एम. सिन्हा, पूर्वोक्त, पृ. 152–53
29. राजस्थान नगर पालिका अधिनियम 1959, धारा 276
30. पी. एल भार्गव, रिफार्म्स इन म्युनिसिपल एकाउंटिंग एंड ऑडिटिंग प्रोमिजस, नगर लोक. अप्रैल-जून, 1972, पृ. 34–41



15

नगरीय संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण

नगरीय स्वायत्त शासन की सस्थाए सार्वभौम शक्ति प्राप्त सस्थाए नही होती, वे देश की सरकार द्वारा सृजित सस्थाए होती हैं। इन सस्थाओ का निर्माण चू कि एकात्मक शासन व्यवस्था वाले देशो मे केन्द्रीय सरकार के द्वारा किया जाता है और सघात्मक शासन व्यवस्था वाले देशो मे प्राय प्रान्तो या राज्यो की सरकारो के द्वारा किया जाता है इसलिए उन पर नियन्त्रण भी उसी सरकार के द्वारा किया जाता है जिसके आदेश से उनकी सरचना की गई है। स्थानीय सस्थाओ और सरकार के सम्बन्ध के इस प्रश्न मे एक और प्रश्न भी अन्तर्निहित है और वह है स्थानीय सस्थाओ की स्वायत्तता का आयाम। स्थानीय सस्थाओ को स्वायत्त शासन की सस्थाए भी कहा जाता है जिन्हे राज्य द्वारा निर्देशित सीमा क्षेत्र मे कार्य करते हुए अपने नागरिको की सेवा करनी होती है। दूसरे शब्दों मे, यह व्यक्त किया जा सकता है कि इन सीमाओ को अपने सृजनकारी विधान द्वारा इंगित वैधानिक सस्थाओ मे स्वायत्त कार्यकरण की अपेक्षा की जाती है और उसी विधान मे इगित निर्देशो के अनुसार ये सस्थाए राज्य सरकार द्वारा नियन्त्रित होती है। किन्तु राज्य के इस नियन्त्रण से उनकी स्वायत्तता सदैव प्रभावित होती है इसलिए नियन्त्रण का यह प्रश्न एक प्रकार से इन सस्थाओ की स्वायत्तता के सवाल भी से जुडा हुआ है।

किसी देश की स्थानीय सस्थाओ पर उस देश की सरकार या प्रान्तीय सरकार का कितना नियन्त्रण होगा यह प्रश्न भी उन देशो के विकास के स्तर से जुडा हुआ है। स्थानीय सस्थाओ की सरचना, कार्य व्यवहार शक्तियो और उनके चरित्र को उस देश की सस्कृति, इतिहास, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति और राजनीति प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि विकसित देशो मे ये राष्ट्रीय सरकार की बराबर की सहभागी समझी जाती हैं जबकि दूसरी ओर विकासशील देशो

मे अभी यह प्रश्न ही निर्धारित नही हो सका है कि स्थानीय संस्थाओं की संरचना क्या हो और राष्ट्र के विकास मे राष्ट्रीय सरकार के साथ उनकी सहभागिता का स्तर क्या होना चाहिए।[1] सभी विकासशील देशो मे जब स्थानीय संस्थाओं की रचना की जाती है तो प्रारम्भ मे उन्हे स्थानीय शासन की स्वायत्तशासी इकाईयों के रूप मे ही अभिकल्पित किया जाता है किन्तु इन संस्थाओं पर व्यवहार मे जब सरकारें नियंत्रण करने लगती है तो उनकी स्वायत्तता की यह तस्वीर धीरे धीरे टूटने लगती हैं। प्रायः सभी विकासशील देशो मे स्थानीय संस्थाओं के साथ राज्य सरकारो के सम्बन्धो मे केवल यही व्यावहारिक स्थिति दिखाई देती है। इसमे भी विभिन्न विकासशील देशो मे जिनके यहा प्रजातांत्रिक परम्पराए मजबूत हैं स्थानीय संस्थाए विकास के काम मे बराबर की भागीदार समझी जाने लगी है जबकि उन देशो में जहा प्रजातांत्रिक परम्पराए उतनी सबल नही हैं स्थानीय संस्थाए भी अधिकतर सम्बन्धित सरकार पर निर्भर सी दिखाई देती है।

भारत के संविधान के अन्तर्गत स्थानीय स्वायत्त शासन की व्यवस्था का दायित्व राज्य सरकारो पर रखा गया है। संविधान के अन्तर्गत राज्यों को प्रदत्त विधायी शक्तियो मे यह अधिकार महत्वपूर्ण तरीके से राज्य सूची मे प्रारम्भ मे ही गिना दिया गया है।[2] अपने इसी दायित्व के अन्तर्गत सभी राज्य सरकारें विधान द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओ का निर्माण करती हैं। राज्य के जिस अधिनियम द्वारा स्थानीय शासन की सृष्टि की जाती है वही अधिनियम इन संस्थाओ की स्वायत्तता की सीमा रेखा निर्धारित कर देता है। यही अधिनियम राज्य सरकार द्वारा नियंत्रण की क्रिया-विधि को भी निश्चित करता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अन्य देशो की भांति भारत मे भी स्थानीय नगरीय स्वायत्त शासन की संस्थाए सार्वभौमिक शक्ति प्राप्त इकाइयां नही हैं। यह संस्थाए राज्यो की विधानसभाओ द्वारा बनाये गये कानूनो के अन्तर्गत करती हैं। कानून द्वारा ही इनका अधिकार क्षेत्र, संरचना और उत्तरदायित्वो का स्पष्ट निर्धारण कर दिया जाता है। भारत मे ही नहीं अपितु संसार के सभी देशो मे स्थानीय संस्थाओं पर सरकार का नियन्त्रण विभिन्न माध्यमो द्वारा किया जाता है। ऐसे नियंत्रण का उद्देश्य इन संस्थाओ को संरक्षण प्रदान करना और अनुशासित रखना होता है।

ब्रिटिश शासनकाल मे भारत में स्थानीय शासन का उद्देश्य यह था कि भारतवासियों की सन्तुष्टि के लिए स्थानीय शासन को बनाए रखा जाय किन्तु

व्यवहार मे उसे सीमित और नियन्त्रित रखा जाय। फलत स्थानीय शासन के मामलो मे व्यापक नियन्त्रण और हस्तक्षेप जारी रहा।

किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात इस स्थिति मे आधारभूत परिवर्तन हो गया। उत्तरदायी शासन प्रणाली की स्थापना के बाद यह अनुभव किया गया कि स्थानीय शासन को देश मे सृजनात्मक कार्य कलाप के केन्द्र के रूप मे विकसित होना चाहिए। केन्द्रीय तथा राज्य स्तरो पर हमारा लोकतन्त्र तब तक सफल नही हो सकता, जब तक कि स्थानीय स्तर पर सच्चे लोकतन्त्र का विकास नही हो। वस्तुत नागरिक जीवन मे राज्य की भूमिका दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जिसका स्पष्ट कारण यह है कि राज्य से जन साधारण की आकाक्षाए भी बढ़ती जा रही हैं। इसी कारण नागरिको की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और सास्कृतिक विकास की विविध योजनाओ को सरकारें अपने हाथ मे ले रही हैं। इन योजनाओ की सफलता के लिए यह आवश्यकता है कि इस दिशा के प्रयत्नो मे स्थानीय शासन का भी समुचित सहयोग लिया जाय यह तभी सम्भव हो सकता है जब राज्य सरकार उस पर विश्वास करें और उसे अपना साझीदार समझें।

नियन्त्रण का अर्थ

स्थानीय सस्थाओ पर नियन्त्रण का अभिप्राय यह है कि जिस सत्ता द्वारा स्थानीय निकाय का गठन किया गया है उसी निर्माणकारी सत्ता द्वारा उस सस्था पर निरीक्षण और नियन्त्रण का दायित्व रहता है। जैसे—भारत की केन्द्रीय सरकार, जिसके ससदीय अधिनियम द्वारा दिल्ली नगर निगम का गठन हुआ है, दिल्ली नगर निगम पर नियन्त्रण और पर्यवेक्षण के सम्पूर्ण अधिकार रखती है। इसी तरह राज्य सरकारो और उनके विधान मण्डलो द्वारा पारित अधिनियम से जिन स्थानीय सस्थाओ की सृष्टि होती है, उन पर नियन्त्रण रखने का अधिकार राज्य सरकारो को होता है जैसे राजस्थान की सभी नगरपालिकाओ, जिनका निर्माण राज्य विधानाग द्वारा हुआ है, पर नियन्त्रण का सम्पूर्ण अधिकार राज्य सरकार का है। इस प्रकार स्थानीय सस्थाओ पर सरकारी नियन्त्रण का अभिप्राय है, उस सत्ता का नियन्त्रण, जिसके द्वारा उस सस्था की रचना की गई है।

नियन्त्रण का औचित्य विभिन्न विचारधाराएं

स्थानीय सस्थाओ और सरकार का सम्बन्ध क्या होना चाहिए या स्थानीय संस्थाओ पर राज्य का कितना नियन्त्रण होना चाहिए अथवा उन पर नियन्त्रण होना ही नहीं चाहिए इन मुद्दो पर विद्वानो मे मतैक्य नही मिलता

है। इस सम्बन्ध मे जो विचार पाये जाते हैं उनमे एक विचारधारा लोकतांत्रिक चिन्तको की है तो दूसरी प्रशासनिक दृष्टि से सोचने वालो की और तीसरी विचारधारा इन दोनो का सयुक्त मिश्रण कही जा सकती है। दूसरे शब्दो मे, इन विचारधाराओ को क्रमशः स्थानीय सस्थाओ के प्रति अभिमुखी, सेवा के प्रति अभिमुखी और तीसरी विचारधारा को इन दोनो मे सतुलन स्थापित करने वाली कहा जाता है।[3] नियन्त्रण से सम्बन्धित उपरोक्त प्रथम विचारधारा के प्रणेता जनतन्त्रीय भावनाओ के समर्थक हैं। इनके विचार मे नगरीय सस्थाओ मे भी अनियन्त्रित जनतन्त्रीय परम्पराओ का विकास किया जाना चाहिए और इनमे राज्य का हस्तक्षेप अवाछनीय माना जाय। उनका मानना है कि इन सस्थाओ मे राज्य का हस्तक्षेप लोकतन्त्र को सीमित करता है। इस विचारधारा के समर्थक विद्वत जनो द्वारा निम्नाकित तर्क दिये जाते हैं :[4]

1 स्थानीय सस्थाओ की इकाइया अधिनियम द्वारा सृजित, आवश्यक ससाधनो और क्षमता से युक्त स्वायत्त शासन की ऐसी सस्थाए है जिन्हे अपने कार्यों और दायित्वो का स्वय निष्पादन करने की पूरी छूट मिलनी चाहिए,

2 ये इकाईया सरकार की नीति को क्रियान्वित करते समय और सरकारी अनुदान द्वारा प्राप्त राशि को व्यय करते समय केवल सरकारी विभागो की तरह काम नही करती,

3. सरकार का नियन्त्रण केवल उन महत्वपूर्ण बिन्दुओ तक सीमित रहना चाहिए जिनमे सरकारी नीति और वित्तीय प्रबन्ध के दायित्व निष्पादित किये जाने का मामला अन्तर्निहित हो।

दूसरी ओर, इन सस्थाओ की प्रशासनिक दक्षता के प्रति अभिमुखी विचारधारा इस बात पर बल देती है कि स्थानीय सस्थाए, उनकी सेवाओ को उनके कार्य के प्रति सचेष्ट बनाये रखने के लिए निरन्तर पर्यवेक्षित, निर्देशित, नियन्त्रित और कभी-कभी प्रताडित की जाती रहनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे स्थानीय स्वशासन मन्त्री सम्मेलन ने यह सस्तुति की थी कि इस सम्मेलन की राय है कि प्रशासन को अपने शाखाओ की भाति स्थानीय शासन के मामलो मे भी जनता को अपनी इच्छाओ को कार्यान्वित करने का पूरा-पूरा अवसर दिया जाय किन्तु सरकार के हाथ मे नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण की समुचित शक्तियां होनी चाहिए जिससे वह कुशल प्रशासन को सुनिश्चित कर सके, कुप्रशासन को रोक सके और आवश्यक सेवाओ की व्यवस्था को छिन्न भिन्न होने मे बचा सके।

इसी तरह करारोपण जाच आयोग ने भी इन सस्थाओ पर नियन्त्रण के औचित्य को स्वीकार किया था और यह माना था कि सरकार का नियन्त्रण केवल निषेधात्मक नही है बल्कि भावात्मक है अन्यथा उसका कर्त्तव्य है कि वह स्थानीय निकायो को सक्रिय रूप से प्रोत्साहन दे और उनका विकास करे। किन्तु, राज्य का नियन्त्रण इतना सूक्ष्म और व्यापक नही होना चाहिए कि स्थानीय निकायो की स्वायत्तता तथा स्वावलम्बन ही नष्ट हो जाय। राज्य के नियन्त्रण का लक्ष्य यह होना चाहिए कि स्थानीय स्वशासी सस्थाए प्रशासन के कुशल और प्रभावी उपकरणो के रूप मे विकसित हो सके और वे नीति निर्धारित करने तथा उसे क्रियान्वित करने मे सफल हो सकें।[6]

इस प्रकार स्थानीय सस्थाओ की प्रशासकीय कुशलता के निमित्त उन पर नियन्त्रण को आवश्यक मानने वाली यह विचारधारा निम्नाकित तर्क प्रस्तुत करती है

1. स्थानीय शासन की सस्थाए अनिवार्यत सरकार की प्रशासनिक इकाईया होती हैं जो कतिपय सेवाओ का सम्पादन करने के लिए गठित की जाती हैं,

2 इन सस्थाओ की पूर्णत जाच इस दृष्टि से की जाती है कि वे कितनी मितव्ययता और प्रभावी तरीके से उन सेवाओ का सम्पादन कर रही है जिनकी उनसे अपेक्षा की जाती है,

3. सरकार की स्थानीय शासन के प्रति नीतियो का विनिश्चय इस तरीके से किया जाता है कि उनके माध्यम से एक उत्तरदायी स्थानीय शासन के कार्यकरण को सुनिश्चित किया जा सके और इस हेतु उन पर पर्याप्त नियन्त्रण रखा जा सके।

4 इसलिए उपरोक्त कारणो से इन सस्थाओ पर सरकार वित्तीय नियत्रण और अन्य तरीको से व्यापक नियन्त्रण रख सकती है।

उपरोक्त इगित दोनो विचारधाराओ मे प्रथम विचारधारा ऐसी लोकतान्त्रिक भावना से प्रेरित प्रतीत होती है जिसका स्थानीय शासन की प्रशासनिक कुशलता के लक्ष्य पर कोई ध्यान नही है। इसी कारण दूसरी विचारधारा, जो स्थानीय प्रशासन के सेवा पक्ष पर जोर देती है, का मानना है कि स्थानीय सस्थाओ के द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओ की एकरूपता और प्रभावशीलता

को सुनिश्चित करने के लिए उन पर राज्य सरकार का पर्याप्त नियन्त्रण होना चाहिए और इस नियन्त्रण को किसी अनतान्त्रिक विचारधाराओं के द्वारा सीमित नही किया जा सकता।

ये दोनो ही विचारधाराए दो अतिवादी दृष्टिकोणो पर आधारित प्रतीत होती हैं। यह कहा जा सकता है कि उक्त दोनो ही विचार दो विपरीत स्तम्भ हैं। वस्तुत सार्थक और सही दृष्टिकोण इन दोनो विपरीत धाराओं का मध्यम मार्ग ही है। न तो स्थानीय सस्थाओं को किसी उदार लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण का अनुसरण करते हुए नियन्त्रण से एकदम मुक्त किया जा सकता है और न ही दक्षता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इन सस्थाओं को इतना अधिक नियंत्रित किया जाना चाहिए कि वे अपना स्वायत्त अस्तित्व भी न रख सकें। यद्यपि प्रशासनिक दक्षता और लोकतन्त्रीकरण के बीच स्वाभाविक विरोध नही है फिर भी लोकतन्त्र के लिए दक्षता को तिलाजलि नही दी जा सकती है।

स्थानीय सस्थाओं की व्यवस्था सम्पूर्ण विश्व में पायी जाती है किन्तु कही भी यह सस्थाएं नियन्त्रण से मुक्त पूर्णतः स्वायत्तशासी स्तर का उपयोग करती प्रतीत नही होती हैं।[6] आर० एम० जैक्सन ने भी यह माना है कि, "स्थानीय इकाइयां वास्तव में पूर्णतः स्वतन्त्र नही हो सकती क्योंकि ऐसा होने से वे स्वय राज्य बनाकर स्थानीय शासन की परिधि से मुक्त हो जायेंगी"।[7]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नागरिकों के व्यापक हितो को ध्यान मे रखते हुए स्थानीय शासन पर उचित नियन्त्रण की व्यवस्था अनिवार्य है और इसलिए नियन्त्रणकारी सत्ता और नियन्त्रित इकाइयों के बीच एक गहरा और निकट का सम्बन्ध पाया जाना स्वाभाविक है। वस्तुतः इन सस्थाओं के कार्यों का चूंकि देश व्यापी महत्व होता है इसलिए इन पर नियन्त्रण की व्यवस्था की गई है। कोई भी नगर निगम या नगरपालिका किसी कानून के द्वारा बनाई जाती है और इस प्रकार यह सरकार की कार्यपालिका शाखा से भिन्न अस्तित्व रखती हैं। प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के उद्देश्य से तथा इसके दैनन्दिन कार्यों में सरकार का कोई हस्तक्षेप न हो, इनके पृथक अस्तित्व का एक यह भी उद्देश्य है। किन्तु यदि इन सस्थाओं पर सरकारी नियन्त्रण अत्यधिक मात्रा मे होगा तो निश्चय ही इन सस्थाओं की रचना का मूलभूत उद्देश्य समाप्त हो जायेगा।[8]

प्रो ए. अवस्थी[9] ने इन सस्थाओं पर नियन्त्रण के निम्नलिखित कारण बताये हैं :—

1. चूंकि स्थानीय सस्थाएं राज्य की वैधानिक कृति होती हैं, अतः राज्य इन पर नियन्त्रण का स्वाभाविक अधिकार रखता है।

2. स्थानीय सस्थाओ के पास उतनी तकनीकी क्षमता, ज्ञान और अनुभव नही होता जितना राज्य सरकार के पास होता है। इन सस्थाओ का अनुभव निश्चित क्षेत्र तक सीमित होता है जबकि राज्य सरकार के पास अपनी सभी स्थानीय इकाइयों का अनुभव तथा स्थायी विशेषज्ञो का ज्ञान होता है जो इन सस्थाओ की दक्षता स्तर और सफलता को बढाने के लिए नियन्त्रण के माध्यम से उपलब्ध होता रहता है।

3 स्थानीय सस्थाए चूकि एक निश्चित, सीमित क्षेत्र का प्रशासन सम्भालती हैं अत: पूरे देश के विकास कार्यक्रमो की एकरूपता तथा राष्ट्र निर्माण की महत्वपूर्ण गतिविधियो मे सामजस्य समन्वय बिठाने के लिए राज्य सरकार की भूमिका अपरिहार्य हो जाती है।

4 राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता का ठीक ढग से उपयोग हो रहा है या नही, इस हेतु भी राज्य का नियन्त्रण आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य कारण हैं जिनसे इन सस्थाओ पर राज्य का नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है।

(1) सविधान द्वारा नगरपालिकाओ के कार्यों और अधिकारो के बारे मे कुछ नही कहा गया है। अतः इस स्पष्ट अधिकार विभाजन के अभाव मे यह आवश्यक हो जाता है कि दोनो (पालिका एव राज्य सरकार) के क्षेत्रो मे अतिराव को रोकने तथा विभिन्न गतिविधियो मे समन्वय बना रहे इसके लिए राज्य का हस्तक्षेप बना रहे।

(2) आजकल नगरीय सस्थाओ द्वारा सम्पादित की जाने वाली सेवाओ का स्तर निम्न होने के कारण सेवाओ की उचित कार्यक्षमता बनाये रखने के लिए भी सरकारी नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। यदि पडोसी सस्थाए किसी काम मे ढील दे रही हो तो उसका यह उदाहरण दूसरी सस्थाओ के अधिकारी आसानी से अपना लेते हैं ऐसी स्थिति मे पडोसी सस्था का निम्न स्तर ही उस सेवा का मापदण्ड बन जाता है। राज्य प्रशासन इस प्रकार के निकृष्ट उदाहरणो को फैलने से रोकता है और यह देखता है कि इन सस्थाओ के द्वारा अपनी शक्तियो का दुरुपयोग न हो तथा सेवाओं का न्यूनतम स्तर बना रहे।

(3) स्थानीय सस्थाओ के कार्यकरण मे कई बार स्थानीय निहित स्वार्थ भी शक्तिशाली बाधक तत्व बन जाते हैं। अत ऐसे स्वार्थों पर नियन्त्रण रखने के लिए कोई बाह्य शक्ति का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

(4) प्राय. स्थानीय सस्थाए चूकि नगर के लोगो के सीधे जान पहचान और सम्पर्क मे होती है, अतः उन पर कर लगाने मे वे हिचकिचाती हैं। करो के अभाव मे आर्थिक रूप से कमजोर सस्था क्या कर पायेगी ? अतः राज्य सरकारें कभी कभी तो यह शर्त भी रख देती हैं कि जितनी वित्तीय सहायता उन्हे सरकार से मिली है उतनी ही व्यवस्था वह अपने साधनो से भी करें ताकि पालिका या निगम की आर्थिक स्थिति का उचित स्तर रह सके।

(5) राज्य द्वारा नियन्त्रण के फलस्वरूप कई बार इन संस्थाओ की त्रुटिया प्रारम्भिक अवस्था मे ही ठीक कर दी जाती हैं। इन्हे राज्य द्वारा दी जाने वाली सहायता, अनुदान, ऋण आदि के कारण भी यह आवश्यक हो जाता है कि इनकी उचित आर्थिक स्थिति को बनाये रखने के लिए इनकी गतिविधियो पर नियन्त्रण रहे।

सरकार की इस नियंत्रणकारी भूमिका का अर्थ केवल निषेधात्मक नही है। वह इस बात तक सीमित नही है कि लेखा परीक्षण एव सामयिक जाच द्वारा स्थानीय निकायो को शक्ति का दुरुपयोग करने से रोका जाय, बल्कि उसकी भूमिका भावात्मक है अर्थात उसका कर्त्तव्य है कि वह स्थानीय निकायो को सक्रिय रूप से प्रोत्साहन दे और उनका विकास करे। किन्तु राजकीय नियन्त्रण इतना सूक्ष्म और व्यापक नही होना चाहिए कि उसमे स्थानीय निकायो की स्वायत्तता तथा स्वावलम्बन ही नष्ट हो जाये। राज्य के प्रयत्नो तथा राजकीय नियन्त्रण का लक्ष्य यह होना चाहिए कि स्थानीय स्वशासी सस्थाए प्रशासन के कुशल उपकरण के रूप मे विकसित हो सकें और वे नीति निर्धारित करने तथा उसे कार्यान्वित करने मे समर्थ बन सके।[10]

स्थानीय निकायो पर नियन्त्रण के सम्बन्ध मे विचार करते समय विचारको ने इसकी विशेषताएं बताई हैं :

1. नियन्त्रणकर्ता सत्ता को चाहिए कि वह देश मे स्थानीय शासन को लोकतान्त्रिक आधार पर विकसित होने मे सहायता करे,
2. नियन्त्रण की शक्ति उन लोगो मे निहित होनी चाहिए जिनका शासकीय पद सोपान मे काफी ऊचा स्थान हो, विशेषकर किसी स्थानीय इकाई को भग करने का निर्णय राजनीतिक स्तर पर ही होना चाहिए।
3. स्थानीय सस्थाओ के विरुद्ध दण्डात्मक कार्यवाही करने पर बल न दिया जाय बल्कि उनको शिक्षित करने, मार्ग दर्शन करने और उन्हें सुधारने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

स्थानीय सस्थाओ को राज्य के द्वारा नियन्त्रित किया जाना आवश्यक है। इस प्रक्रिया मे दो बातो का ध्यान रखा जाना चाहिए

1. प्रथम बात तो यह है कि ये नगरीय सस्थाए स्थानीय जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियो से युक्त जनतान्त्रिक सस्थाए होती हैं। अत ये जनतान्त्रिक प्रक्रिया मे कार्यपालिका की शक्ति प्रदर्शन का शिकार नही होनी चाहिए।
2. दूसरे, चूंकि ये सस्थाए स्वायत्त होती है, अत इनकी स्वायत्तता म नियन्त्रण के नाम पर अधिक हस्तक्षेप नही किया जाना चाहिए।

इन तथ्यो का यह आग्रह समक्ष मे आना चाहिए कि नगरीय सस्थाओ पर सरकारी नियन्त्रण रखते समय इन सस्थाओं और सरकार के बीच ऐसी पारस्परिक सूझबूझ विकसित हो जानी चाहिए कि राज्य सरकार इन सस्थाओं के लिए सामान्य नीतिया और व्यापक मानदण्ड निर्धारित कर दे जिनके अनुसार ये सस्थाए आवश्यक सेवाओ का सम्पादन ठीक ढग से करती रहे। आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप इन सस्थाओ के मन मे सरकार के प्रति असतोष पैदा करेगा जिससे सस्थाओं के निर्माण के मूल लक्ष्य को ही क्षति पहुचेगी।

यह बात भी ध्यान मे रखी जानी चाहिए कि नगरीय सस्थाओ पर सम्पूर्ण भारत मे यह नियन्त्रण एक जैसा नही हो सकता। नगर निगमों, नगरपालिकाओ तथा ऐसी ही अन्य सस्थाओ की अपनी अलग अलग महत्ता और पृथक पृथक आवश्यकताए होती हैं। दूसरी ओर, कुछ सस्थाए राजधानी (राज्यो की राजधानियो) मे होती हैं तो दिल्ली (भारत की राजधानी) की निगम की अपनी अलग प्रकृति महत्व और समस्या लिए हुए हैं। इन विभिन्न कारणो मे राज्य का इन सस्थाओं पर नियन्त्रण एकरूपता लिए हुए सभव नही हो सकता।[11]

नियन्त्रण के प्रकार

नगरीय सस्थाओ पर, सभी लोकतान्त्रिक राज्यो मे सरकार के तीनों निकायो व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका द्वारा नियन्त्रण किया जाता है। अत इन सस्थाओ पर राज्यकीय नियन्त्रण को निम्नाकित शीर्षकों के अन्तर्गत देखा जा सकता है -

1. विधायी नियन्त्रण,
2. प्रशासकीय नियन्त्रण, और
3. न्यायिक नियन्त्रण

इन तीनों प्रकार के नियन्त्रणों का, उसके क्रम में यत्किंचित परिवर्तन के साथ, वर्णन किया जा रहा है।

विधायी नियन्त्रण

उपरोक्त सभी प्रकार के नियन्त्रणों में व्यवस्थापिका द्वारा किया जाने वाला नियन्त्रण अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए है क्यों कि स्थानीय संस्थाएं विधायिका के अधिनियम द्वारा ही अस्तित्व में आती है। विधायिका के इसी अधिनियम द्वारा इन संस्थाओं के कार्य का न केवल आधार तैयार किया जाता है अपितु उनके स्वरूप और कार्यकरण का एक परिवेश भी प्रस्तुत किया जाता है। एक ऐसी संस्था जो, स्थानीय निकायों से सम्बन्धित कानून को बना सकती है, उसे संशोधित कर सकती है, और उसे रद्द कर सकती है, निश्चित ही स्थानीय संस्थाओं के सन्दर्भ में व्यापक नियन्त्रण का उपयोग करने की स्थिति होती है। ब्रिटेन की भांति, जिन देशों में संविधान स्थानीय इकाइयों की प्रकृति को निर्धारित नहीं करता है, उन देशों में तो स्थानीय निकायों की शक्ति के स्त्रोत के रूप में विधि निर्मात्री संस्था विधायिका ही सर्वोच्च स्थिति में होती है।

स्थानीय संस्थाओं पर राज्य के विधानांग का नियन्त्रण विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। वस्तुत, यह नियन्त्रण इस बात से भी निर्धारित होता है कि स्थानीय निकायों की संरचना और प्रकार कितने हैं। अमेरिका जैसे संघात्मक देश में प्रत्येक प्रांत के द्वारा वहां स्थानीय शासन के लिए पृथक अधिनियम बनाये हुए है। इसके विपरीत नीदरलैंड में अनेक प्रकार की नगरीय स्थानीय इकाइयों के प्रशासन को संगठित करने के लिए एक ही कानून बनाया हुआ है। भारतवर्ष में भी हमारे समस्त राज्यों में, इस सम्बन्ध में विभिन्न विधियों का बाहुल्य दिखाई देता है। इन अधिनियमों में अधिकतर राज्य के विधानांगों द्वारा बनाये हुए हैं साथ ही ग्रामीण और नगरीय स्थानीय इकाइयों के लिए ये नियम अलग अलग बने हुए है। यही नहीं, नगर निगम की संरचना के लिए भी पृथक कानून बनाये जाते है। जहां जहां छावनी बोर्ड का प्रश्न है उनके प्रशासनिक संचालन के लिए छावनी बोर्ड अधिनियम 1924 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार द्वारा अलग व्यवस्थापन किया हुआ है। स्थानीय शासन इकाइयों की रचना हेतु बनाये गये विधान के अतिरिक्त भी स्थानीय निकायों को शिक्षा, जन स्वास्थ्य नगरीय नियोजन और इसी प्रकार के अनेक कार्य प्रदान करने के लिए पृथक पृथक कानून बनाये गये है जिनको यथा आवश्यकता स्थानीय संस्थाओं ने भी अंगीकार किया हुआ है।

भारत में भी जैसा कि इस अध्याय में आरम्भ में व्यक्त किया जा चुका है, स्थानीय शासन और उनकी इकाइयां राज्य सरकार की सृष्टि होती है।

राज्य के विधानांग द्वारा पारित अधिनियम के आधार पर उसका निर्माण किया जाता है। राज्य विधान मण्डल स्थानीय निकायों के सम्बद्ध में आवश्यक विधान पारित करके, सविधियों का संशोधन करके तथा उनके कार्यों पर विवाद और विचार विमर्श करके उनको नियन्त्रित करता है। राज्य विधान मण्डल ही इन संस्थाओं को वैधानिक स्तर प्रदान करता है और इनके अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण करता है। विधान मण्डल द्वारा नगरीय कानूनों में परिवर्तन किया जा सकता है, उन्हें दी गई शक्तियां वापिस ले सकता है और समय-समय पर नये कर्तव्यों के निर्वाह के दायित्व सौंप सकता है। विधान सभा के सदस्य पालिका/निगम की विभिन्न गतिविधियों उनके चुनावों, अधिक्रमण प्रशासकों की नियुक्ति, वित्तीय स्थिति अनुदान तथा सामान्य प्रशासन एवं दैनिक प्रकृति की गतिविधियों, त्रुटियों आदि के लिए विधान सभा में सरकार से प्रश्न पूछकर विधायी नियन्त्रण को सार्थक बनाते रहते हैं।

नगरीय स्वायत्त शासन संस्थाएं एक निर्दिष्ट क्षेत्र में कुछ प्रशासकीय कार्य करती हैं। यद्यपि इन संस्थाओं को अपने क्षेत्र एवं अपनी कार्य सीमा में कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है, पर वास्तव में इन संस्थाओं को राज्य सरकार से प्रत्यायोजित शक्तियां ही प्राप्त होती हैं। अतः राज्य सरकार तथा विधान सभा का यह दायित्व होता है कि वह देखें कि इन संस्थाओं द्वारा प्रशासन के निर्धारित नियमों का पालन हो रहा है या नहीं।[12]

राज्यों की विधानसभाएं जो कानून इन संस्थाओं के लिए बनाती हैं, उनके अन्तर्गत राज्य सरकार उप-नियम तथा अन्य आदेश भी जारी कर सकती है। उदाहरणार्थ राजस्थान सरकार द्वारा बनाये गये नियम राजस्थान राजपत्र में प्रकाशित किये जाते हैं तथा प्रकाशित किये जाने की तिथि से एक महिने पश्चात उन्हें कानून के रूप में मान्यता प्राप्त हो जाती है।

साधारणतः राज्य सरकारों को निम्नलिखित विषयों में नियम बनाने तथा आदेश देने के अधिकार प्राप्त होते हैं।[13]

नगरपालिकाओं के सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी नियम, अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के निर्वाचन सम्बन्धी नियम, बैठकों की कार्यविधि सम्बन्धी नियम, राज्य सरकार के अधिकारियों द्वारा नगरपालिकाओं को परामर्श आदि देने, नगर-पालिकाओं के आय-व्यय के हिसाब, विकास की योजनाएं तथा अनुमान, पालिकाओं

द्वारा सम्पत्ति की खरीद बिक्री, करारोपण, वित्त तथा अनुदान, भविष्य निधि, इन संस्थाओं द्वारा उपनियम बनाने सम्बन्धी शक्ति पर नियन्त्रण के सम्बन्ध में अधिकारियों, कर्मचारियों की सेवा सम्बन्धी तथा नगरपालिकाओं के वर्गीकरण आदि से सम्बन्धित नियम।

राज्य सरकारें ही प्राय: इन विधायी शक्तियों का उपयोग करती हैं और अपने इन्हीं अधिकारों के अधीन ये आवश्यकतानुसार नयी पालिका या निगम बना सकती हैं, उनकी सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है, उन्हें भंग कर सकती हैं, वार्डों की संख्या व सीमा निर्धारण कर सकती है, पालिका के सदस्यों की संख्या निर्धारित करना तथा उनके निर्वाचन को नियन्त्रित करना भी राज्य सरकार का ही वैधानिक दायित्व है।

प्रो हार्ट के ये शब्द इन संस्थाओं पर विधायी व न्यायिक नियन्त्रण के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है "नियन्त्रण की दो विधियां–विधायी एवं न्यायिक–अब पुरानी पड़ गई है।[14]

यहाँ प्रो अवस्थी ने भी इस सम्बन्ध में यही लिखा है कि "विधायी और न्यायिक नियन्त्रण यदाकदा ही उपयोग में लिए जाते हैं। पहला (विधायी) तो तब जब कि किसी स्थानीय संस्था का सृजन कर उसे अधिकार दिये जाते हैं और दूसरा (न्यायिक) नियन्त्रण तब कार्यशील होता है जब ये संस्थाएं कोई अवैधानिक कार्य करती हैं। इन संस्थाओं पर हर कदम पर जो नियन्त्रण प्रभावी हुआ है वह है प्रशासकीय नियन्त्रण।[15]

उपरोक्त वर्णित विभिन्न विद्वानों एवं विचारकों के विचारों में यह मत स्पष्ट होता है कि स्थानीय निकायों पर राज्य द्वारा किये जा रहे विधायी नियन्त्रण का प्रभाव उतना नहीं रह गया है जितना वह औपचारिक रूप में होना चाहिए था। इस स्थिति के स्पष्टतः दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम तो यह कि आधुनिक लोकतन्त्रीय युग में विशेष तौर पर, संसदीय प्रणाली वाले देशों में सरकार का निर्माण और संचालन व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका में, एक ही राजनीतिक दल के बहुमत पर अवलम्बित हो गया है। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ है कि व्यवस्थापिका के उस राजनीतिक दल, जिसका कि व्यवस्थापिका में बहुमत है से प्रभावी किस्म के विधायक कार्यपालिका में स्थान पा जाते हैं और व्यवस्थापिका एक प्रकार से एक प्रभाव शून्य सदन बनकर रह जाता है। इस स्थिति को कुछ विचारकों ने इस प्रकार भी व्यक्त किया है कि इस तरह विनिर्मित व्यवस्थापिका एक प्रकार से परमुखापेक्षी सदन रह जाता है। अतः व्यवस्थापिका

को सभी संसदीय लोकतन्त्रों में यह स्वाभाविक नियति बन गई है कि वह कार्य-पालिका निकाय को नियन्त्रित नही कर पाती अपितु कार्यपालिका प्राय विभिन्न तरीके से उसे ही नियन्त्रित करती है। इसलिए व्यवस्थापिका नगरीय संस्थाओं पर भी कोई प्रभावी नियन्त्रण कर पाने मे सफल नही हो पाती।

व्यवस्थापिका के नियन्त्रण की शिथिलता का दूसरा सबसे बड़ा कारण यह प्रतीत होता है कि व्यवस्थापिका मे चुनकर जाने वाले सदस्य अपने दायित्वों का वैसा निर्वाह नही करते जैसा उनसे अपेक्षित है। सदस्यों की विधायी कार्यों एव अध्ययन तथा स्वाध्याय के प्रति घटती रुचि ने उन्हे कार्यपालिका निकाय और उसके द्वारा नियन्त्रित प्रशासनिक विभागो के कार्य कलाप पर नियन्त्रण मे शिथिलता ला दी है। होना तो यह चाहिए कि समस्त विधायको को अपने निर्वाचकों की सामान्य भावनाओ और समाचार पत्रो मे व्यक्त पीडा को विधायिका मे अपने मुखर व्यवहार द्वारा व्यक्त करना चाहिए। किन्तु ऐसा हो नही रहा है और इसका एक मात्र कारण यह है कि विधायक राजनीतिक कार्य-कलापो मे अधिक व्यस्त रहने लगे हैं तथा अपने विधायी दायित्वो के प्रति उतने सचेष्ट और समर्पित नही रहते हैं। इन दोनो ही स्थितियों का परिणाम यह हुआ है कि नगरीय संस्थाओं पर विधायी नियन्त्रण प्रभावी नही रह गया है। सम्भवत विधायी नियन्त्रण की यही सीमा कही जा सकती है।

न्यायिक नियंत्रण

नगरीय स्थानीय संस्थाओं पर नियन्त्रण का यह दूसरा प्रकार इसलिए महत्वपूर्ण है कि यदि स्थानीय संस्थाओ द्वारा किसी व्यक्ति के साथ कोई अनियमित और अन्याय-पूर्ण व्यवहार हो जा तो न्यायपालिका उसे उचित संरक्षण प्रदान कर सकती है। यद्यपि न्यायपालिका यह संरक्षण तभी प्रदान कर पाती है जब कोई प्रभावित व्यक्ति अपने साथ घटित अन्याय के विरुद्ध न्यायालय मे वाद प्रस्तुत करता है। वस्तुत न्यायापालिका यह देख सकती है कि नगरीय निकाय द्वारा सम्पन्न कार्य निर्धारित कार्य विधि के अनुसार हुआ है या नही या इस प्रक्रिया मे किसी व्यक्ति के अधिकारो का हनन तो नही हुआ है। यहा यह उल्लेखनीय है कि यह न्यायिक संरक्षण न केवल व्यक्ति को ही प्राप्त है अपितु स्वयं नगरीय संस्थाओं को भी न्यायपालिका का यह संरक्षण प्राप्त है जिसके अन्तर्गत ये संस्थाए यदि चाहे तो राज्य सरकार द्वारा उसकी शक्तियों के दुरुपयोग की स्थिति मे न्यायपालिका का संरक्षण और शरण प्राप्त कर सकती हैं।

सभी नगरीय संस्थाए केवल वे कार्य ही सम्पन्न कर सकती हैं जिनके लिए सम्बन्धित अधिनियम मे उन्हे स्पष्ट रूप से शक्ति प्रदान की गयी हो या इन

प्रदत्त शक्तियों में शक्तियां अन्तर्निहित हो अथवा निश्चित उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए ऐसी शक्तियां आवश्यक हों। न्यायपालिका इन संस्थाओं को इन के अनिवार्य कार्यों को सम्पन्न करने और अधिकारातीत कार्यों को न करने के लिए बाध्य कर सकती है। कानूनी दृष्टि से ये संस्थाएं व्यक्ति के समान इकाइयां मानी जाती हैं जिन पर या जिनके द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता है। समस्त नगरीय संस्थाओं से कार्य करते समय यह विधिक अपेक्षा की जाती है कि वे अपने दायित्वों का निष्पादन करते समय अपने आपको सम्बन्धित अधिनियम द्वारा स्थापित सीमाओं में रखेंगी। यदि ये संस्थाएं विधि द्वारा प्रवर्तित अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य करेंगी तो उनका वह कार्य गैर कानूनी होने के कारण अवैधानिक माना जायेगा। इसका अभिप्राय यह है कि नगरीय संस्थाओं द्वारा उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर किये गये किसी भी कार्य को यदि कोई व्यक्ति चुनौती दे दे तो न्यायपालिका उसे अवैधानिक घोषित करते हुए रद्द कर सकती है। न्यायपालिका की इसी शक्ति को न्यायिक नियन्त्रण की संज्ञा दी जाती है।

न्यायपालिका द्वारा किया जाने वाला यह न्यायिक नियन्त्रण भी कई तरह से रखा जा सकता है.

1. न्यायालय अधिनियम, नियमों, उप-नियमों की व्याख्या करते हैं और विधान सम्मत न पाए जाने पर उन्हें अवैध करार दे सकते हैं।
2. यदि ये संस्थाएं अपने निश्चित अधिकारों से अधिक शक्तियों का उपयोग करें तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है। यह हस्तक्षेप प्राय. निषेध आज्ञाओं के माध्यम से किया जाता है।
3. न्यायालय इन संस्थाओं के कार्यों के विरुद्ध प्रभावित व्यक्तियों की अपीलों की सुनवाई भी करता है और दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात समुचित आदेश पारित करता है।

न्यायिक नियन्त्रण की इस विधि या तकनीक के द्वारा न्यायपालिका नगरीय प्रशासन की इन इकाइयों को न केवल उनके अनिवार्य दायित्वों को सम्पादित करने के लिए सचेष्ट करती रहती है अपितु इन संस्थाओं को विधि द्वारा स्थापित सीमाओं में कार्य करने के लिए भी प्रेरित करती है। इसी प्रकार इन संस्थाओं के द्वारा लिए गये किसी भी प्रशासनिक निर्णय से यदि कोई नागरिक प्रभावित होता है तो उस नागरिक के साथ हुए अन्याय के लिए प्रस्तुत वाद की न्यायपालिका विधि सम्मत तरीके से परीक्षा करती है और प्रशासनिक कार्यों

द्वारा हुए अन्याय का प्रतिकार करने का आदेश देती है। यद्यपि न्यायपालिका इस तरह का कोई आदेश पारित करते समय अपनी ओर से कोई पहल नही करती और प्रभावित व्यक्ति द्वारा वाद प्रस्तुत किय जाने पर ही ऐसा आदेश देती है। न्यायालय इस वाद के लिए सक्षम है कि इन सस्थाओ पर राज्य सरकार द्वारा पारित आदेशो की वैधानिकता की वह जाच करे। राज्य सरकार नगरपालिकाओ को भग करने मे सक्षम है किन्तु किसी नगरपालिका को अधिक्रमित किये जाने का आदेश कितना न्याय सगत है इस बात की जाच न्यायपालिका कर सकती है बशर्ते कि राज्य सरकार के ऐसे किसी आदेश को सबंधित न्यायपालिका मे चुनौती दी गई है। इस प्रकार का एक नियन्त्रण राजस्थान मे तब उपस्थित हुआ था जब राजस्थान सरकार ने मार्च 1965 मे डीडवाना नगरपालिका के अध्यक्ष श्री श्रीनिवास मोट को पदच्युत कर दिया था और नगरपालिका का अधिक्रमण कर दिया था। ऐसा आदेश देते समय राज्य सरकार ने यह तर्क दिया था कि नगरपालिका प्रशासन मे व्याप्त पक्षपात एव भ्रष्टाचार के कारण यह किया जा रहा है। इस आदेश के विरुद्ध उक्त अध्यक्ष राजस्थान उच्च न्यायालय मे चले गये और उनकी अपील की सुनवाई के पश्चात फरवरी 1966 मे राजस्थान उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार के आदेश को पक्षपात पूर्ण ठहरा कर अवैध घोषित कर दिया और श्री श्रीनिवास मोट को वैध अध्यक्ष ठहराया।[16]

न्यायपालिका द्वारा जो हस्तक्षेप नगरीय सस्थाओ के काम काज मे किया जाता है वह भिन्न-भिन्न प्रकृति का हो सकता है। हस्तक्षेप की यह प्रकृति प्रस्तुत वाद की विषयवस्तु पर निर्भर करती है। कोई भी व्यक्ति नगरीय सस्थाओ द्वारा किये गये कार्य मे विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को अपनाये जाने के कारण न्यायिक हस्तक्षेप की प्रार्थना कर सकता है, या नगरीय सस्था द्वारा दिये गये आदेश की वैधानिकता को चुनौती दे सकता है अथवा उसके द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले अनिवार्य कार्य को न कर पाने की स्थिति मे उसे किये जाने के लिए परमादेश की प्रार्थना कर सकता है। इस तरह न्यायपालिका द्वारा किसी गलत कार्य को किये जाने की आशका मे उसके सभावित कार्य के लिए निषेध आज्ञाओ की प्रार्थना भी की जा सकती है। कोई नागरिक इस बात के लिए भी वाद प्रस्तुत कर सकता है कि नगरीय सस्थाओ के अधिकारी प्रवर्तित कानूनो की मन-मर्जी से एक पक्षीय व्याख्या कर रहे हैं। अत ऐसी स्थिति मे कानून की सही व्याख्या के लिए भी वाद प्रस्तुत हो सकता है। इस प्रकार न्याय-पालिका द्वारा नगरीय सस्थाओ के काम-काज मे हस्तक्षेप है उन पर नियन्त्रण

की प्रकृति प्रभावित व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले वाद की विषय वस्तु द्वारा निर्धारित होती है।

न्यायपालिका का यह नियन्त्रण भी विधायी नियंत्रण की भांति ही कुछ कम प्रभावी बन पड़ा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नगरीय संस्थाओं द्वारा किये गये गलत काम को यदि चुनौती दी जाय तो न्यायपालिका अपने दायित्वों को भली प्रकार निभाती रही है और अन्याय के प्रतिकार का एक सक्षम उपकरण भी सिद्ध हुई है। किन्तु न्यायिक नियन्त्रण की यह तकनीक अपने विलम्बकारी व्यवहार एवं खर्चीली तथा जटिल होने के कारण अनेक सीमाओं से ग्रस्त प्रतीत होती है। भारत जैसे विकासशील देश में न्यायपालिका का हस्तक्षेप आमन्त्रित करने के लिए लोगों में उत्सुकता की इसलिए कमी दिखाई देती है क्योंकि एक बार मामला न्यायपालिका में आ जाने के पश्चात वर्षों तक उसके सुलझने की आशा प्रायः समाप्त हो जाती है। एक के बाद एक, दूसरे न्यायालय में अपील का जो क्रम चलता है तो कई दशक बीत जाते हैं और प्रभावित व्यक्ति न्याय की उम्मीद में कभी-कभी दम भी तोड़ देते हैं। इस कारण न्यायपालिका का यह नियंत्रण नगरीय संस्थाओं पर नियन्त्रण की प्रभावी और सशक्त विधि नहीं बन सका है।

प्रशासनिक नियन्त्रण

नगरीय संस्थाओं पर नियन्त्रण के सन्दर्भ में उपरोक्त विवरण में विधायी और न्यायिक नियन्त्रण से सम्बन्धित जिन विधियों का विश्लेषण किया गया है वे इन संस्थाओं पर नियन्त्रण की प्राथमिक विधियां हैं। समीक्षकों की ऐसी मान्यता है कि ये दोनों ही विधियां मूलतः स्थानीय संस्थाओं की गतिविधियों और कार्यकलापों की समस्याओं पर नियन्त्रण के सम्बन्ध में प्रभावी उपकरण के रूप में अभिकल्पित नहीं की गयी हैं।[17] इसी कारण प्रशासनिक नियन्त्रण की यह विधि विशेष रूप से इन संस्थाओं पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित करने की दृष्टि से ही विकसित की गयी प्रतीत होती हैं। प्रशासनिक नियंत्रण की इस विधि की प्रभावशीलता के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि प्रशासनिक नियन्त्रण के माध्यम से इन संस्थाओं पर सरकार के नियन्त्रण की प्रक्रिया अनवरत चलती रही हैं। अभी भी स्थानीय संस्थायें कोई अनुचित या अवैधानिक निर्णय ले लेती हैं तो अपने प्रशासनिक नियन्त्रण के उपागम के माध्यम से राज्य सरकार इन संस्थाओं को तुरन्त नियन्त्रित करने की स्थिति में होती हैं।

प्रशासनिक नियन्त्रण को दूसरे शब्दों में कार्यपालिका द्वारा किया जाने वाला नियन्त्रण भी कहा जाता है। यह नियन्त्रण स्थानीय संस्थाओं पर निय-

त्रण की व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि इन संस्थाओं का प्रजातान्त्रिक ढंग से निर्वाचन होता है और ये संस्थाएं वेतन भोगी विशेषज्ञों की सेवाएं और विशिष्ट तकनीकी सलाह प्राप्त करती हैं फिर भी विद्वानों का यह मानना है कि इन्हें अपनी नागरिक सेवाओं की व्यवस्था के लिए स्वतन्त्र छोड़ देना बुद्धिमानी नहीं है।[18]

विगत कुछ दशकों में, जबसे लोक कल्याणकारी अवधारणा से प्रेरित होकर राज्य सरकार ने विकास की परियोजनाओं के निष्पादन में स्थानीय संस्थाओं का व्यापक स्तर पर सहयोग लेना आरम्भ किया है, तबसे स्थानीय संस्थाओं के कार्यकरण और उनकी गतिविधियों पर राज्य सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रशासनिक नियन्त्रण की आवश्यकता और भी अधिक तेजी से अनुभव की जाने लगी है। इस प्रकार की विकास योजनाएं जिनका कि निष्पादन स्थानीय निकायों के माध्यम से किया जाता है, उनमें पर्याप्त धनराशि व्यय की जाती है। इसलिए अब इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि स्थानीय संस्थाओं की गतिविधियों पर राज्य सरकार के प्रशासनिक विभाग के माध्यम से श्रेष्ठतर प्रशासनिक नियन्त्रण किया जाना चाहिए। वस्तुतः इन संस्थाओं में राज्य सरकार के नियन्त्रण के माध्यम से, प्रशासनिक कुशलता की वृद्धि की जा सकती है। राज्य सरकार इन संस्थाओं द्वारा सम्पादित की जाने वाली सेवाओं के न्यूनतम प्रशासनिक मानकों का निर्धारण कर सकती है। इसके पश्चात् वह यह सुनिश्चित कर सकती है कि प्रशासनिक कुशलता के हित में निर्धारित उन मानकों की पालना की जाये और ये संस्थाएं नागरिकों को जो सेवायें उपलब्ध कराती हैं उनका स्तर उस निर्धारित सीमा से नीचे न गिरने पाये। समीक्षकों की यह मान्यता है कि स्थानीय संस्थाओं के द्वारा सार्वजनिक स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा और सफाई इत्यादि ऐसी महत्वपूर्ण सेवाओं का सम्पादन किया जाता है जिनकी कुशलता अनिवार्य रूप से बनाये रखना देश के लोकतान्त्रिक और लोक कल्याणकारी स्वरूप में आवश्यक प्रतीत होता है। ये ऐसी सेवायें हैं जो नागरिकों और देश के भविष्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं किन्तु इन संस्थाओं का स्तर केवल इसलिए कमजोर नहीं होना चाहिए कि उनका संचालन सरकारी पद सोपान की सबसे निचली प्रशासनिक इकाई के द्वारा किया जा रहा है। राज्य और केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा तो इन संस्थाओं से यह रही है कि उनके द्वारा सम्पादित की जा रही सेवाओं में न केवल एकरूपता बनी रहे अपितु राज्य सरकार निरन्तर उनकी सेवाओं में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करती रही है। राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं को उनकी सेवाओं के कुशल संचालन के लिए जो आर्थिक अनुदान दिए जाते हैं उनके व्यय के औचित्य पर राज्य सरकार का नियन्त्रण बना रहे इस हेतु राज्य सरकार विभिन्न प्रशासनिक उपायों के

माध्यम से इन सस्थाओ की गतिविधियों को नियन्त्रित करती है। राज्य सरकार द्वारा इन सस्थाओ पर किये जाने वाले प्रशासनिक नियन्त्रण को आगामी पंक्तियो मे, उसके प्रारम्भ से अन्त तक की कार्यविधियो सहित व्यक्त किया जा रहा है।

भारतवर्ष मे प्राय सभी नगरपालिका कानूनो मे यह व्यवस्था होती है कि राज्य सरकार किसी भी स्थानीय क्षेत्र को नगरपालिका का पद प्रदान कर सकती है, नई पालिका और नियमो का निर्माण कर सकती है, उनकी सीमाओ मे परिवर्तन परिसीमन परिवर्द्धन कर सकती है और किसी भी ऐसे निकाय को भग कर सकती है। राज्य सरकार ही ऐसे निकायो की अधिकार सीमाओ का निर्धारण करती है। निगम, पालिका अथवा ऐसे ही नगरीय क्षेत्र को वार्डों मे विभक्त करती है, चुनावो की तिथिया घोषित करती है, पार्षदो की कुल सख्या, पदाधिकारियो की सख्याओ का अन्तिम निर्णय करती है। सरकार को यह भी अधिकार होता है कि यदि राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नियमो कानूनो उपकानूनो और निर्दिष्ट आज्ञाओ की पालना न कर पाने या अपनी शक्तियो का दुरुपयोग करने के कारण किसी भी निकाय के अध्यक्ष, सदस्य या पदाधिकारी को हटा या निलम्बित कर सकती है। यदि कोई निकाय अपनी व्यवस्था ठीक ढग से नागरिक सेवाओ को सुचारू रूप से पाने मे सफल नही रह पाती है तो राज्य सरकार उसे भग कर नये निर्वाचन की घोषणा कर सकती है या प्रशासक नियुक्त कर सकती है। हर पार्षद नगरपालिका की सम्पति की उस हानि अपव्यय अथवा अनुचित प्रयोग के लिए स्वय उत्तरदायी माना जाता है जिसमे उसका हाथ होता है और ऐसी स्थिति मे राज्य सरकार पार्षद को कर्तव्य अवहेलना के कारण हटा सकती है।

किसी भी निकाय द्वारा पारित प्रस्ताव या उपविधि को निरस्त या स्थगित करने का अधिकार भी राज्य सरकार प्रयोग मे लाती है। अर्थात् स्थानीय निकाय कोई भी नियम या उपविधि तभी बना सकता है जब उसे सरकार की स्वीकृति प्राप्त हो जाए। राज्य सरकार का यह अन्तिम अधिकार है कि ऐसे किसी प्रस्ताव, आदेश या कानून को स्वीकृति दे या न दे। प्रशासनिक नियंत्रण की यह भी एक महत्वपूर्ण दिशा है कि नगरीय कानून के अन्तर्गत इन निकायो को अपनी सभी भावी योजनायें, प्रस्ताव राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति के लिए भी पेश करने होते हैं तभी उन्हे विचारार्थ लिया जाता है और पारित करने के उपरान्त भी राज्य सरकार की स्वीकृति लेनी होती है।

स्थानीय निकायो पर राज्य सरकार का वित्तीय नियन्त्रण इतना विस्तृत है कि इन निकायो की कार्यक्षमता काफी हद तक इस नियन्त्रण की प्रकृति (कठोर

या सरल) पर निर्भर करती है। सभी नगरीय संस्थायें, राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार ही अपने करों का निर्धारण करती हैं। पालिकाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपना वार्षिक बजट सरकार के समक्ष विचारार्थ रखेंगी, राज्य सरकार उसमें आवश्यक परिवर्तन और काट-छांट कर सकती है। सभी राज्यों में राज्य सरकारें नगरपालिका द्वारा ऋण लेने की शर्त पर नियन्त्रण रखती हैं। सरकारें यह भी देखती हैं कि ऋणग्रस्त पालिकायें समय पर मूल एवं सूद की किश्तें अदा करती रहें। पालिकाओं को अपनी उन योजनाओं, जिनमें दस हजार से अधिक व्यय की संभावना हो, को राज्य सरकार की पूर्वानुमति हेतु प्रस्तुत करना होता है।

इन संस्थाओं को अनुदान राशि स्वीकृत करते समय राज्य सरकारें कई शर्तें लागू कर देती हैं जो अन्तत राज्य के नियन्त्रण का ही माध्यम प्रमाणित होती हैं। इन संस्थाओं के लेखा परीक्षण के लिए राज्य सरकारें स्थानीय निधि लेखा परीक्षकों की नियुक्ति करती है। इन संस्थाओं पर राज्य के नियन्त्रण का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपाय है।

यदि राज्य सरकार स्थानीय निकाय द्वारा पारित किसी कर अथवा करों को जन कल्याण की दृष्टि से आपत्तिजनक अथवा हानिकारक समझें तो वह उस कर अथवा करों की उगाही को स्थगित कर सकती है या वह किसी निकाय को किसी कर को लगाने का आदेश भी दे सकती है।

राज्य सरकार विभिन्न स्थानीय निकायों के आपसी विवादों का निपटारा भी करती है जो सभी पक्षों के लिए निर्णायक और बाध्यकारी होता है। राज्य सरकारें इन संस्थाओं से विभिन्न प्रकार के प्रतिवेदन, करों का विवरण, कार्मिक वर्ग का वार्षिक विवरण, वार्षिक प्रतिवेदन एवं अन्य महत्वपूर्ण जानकारियों के विवरण आदि प्राप्त करने के माध्यम से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष महत्वपूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण रखती है।

राज्य सरकार अपने अधिकारियों के द्वारा स्थानीय संस्थाओं की नगरीय गतिविधियों, सम्पत्ति और निर्माण कार्यों का निरीक्षण करने में सक्षम हैं। साधारणत जिलाधीश को निरीक्षण के व्यापक अधिकार मिले होते हैं।

नगरपालिका के कार्मिक वर्ग के सम्बन्ध में भी राज्य सरकार नियन्त्रण के अधिकार रखती है। पालिका अथवा निगम में उच्च पदाधिकारियों सचिव, कमिश्नर या अधिशासी अधिकारियों की नियुक्ति और सेवा शर्तें राज्य सरकार ही तय

करती है। कर्मचारियो की सख्या उनके वेतनमान, सेवा की शर्तें, भविष्य निधि आदि पर भी राज्य सरकार का नियन्त्रण रहता है।

उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त भी नगरीय स्थानीय निकायो पर नियन्त्रण के सम्बन्ध मे राज्य सरकार को निम्नाकित अधिकार प्राप्त हैं :

1. किसी नगरपालिका द्वारा अधिकृत अचल सम्पति मे प्रवेश करना तथा उसका निरीक्षण करना,
2. किसी पालिका के क्षेत्र मे उसके नियन्त्रण मे चल रहे कार्य का निरीक्षण करना,
3. पालिका अथवा उसकी समिति की कार्यवाही के किसी दस्तावेज का मागना तथा उसका निरीक्षण करना,
4. किसी नक्शे, विवरण, हिसाब अथवा रिपोर्ट का अवलोकन करना,
5 किसी निकाय के किसी काम के विरुद्ध आपत्ति हो तो उस निकाय को उस आपत्ति पर विचार करने का आदेश देना,
6. जनहित के प्रतिकूल कार्य को स्थगित करना,
7. आम जनता के स्वास्थ्य और सुरक्षा के हित मे किसी कार्य करने का आदेश देना,
8. नगर प्रशासन के किसी मामले की जाच करवाना,
9. सस्था द्वारा कर्तव्य पालना मे अवहेलना की जाच कर उसे पूरा करने की अवधि निश्चित करना,
10. पालिका के किसी निर्णय को निरस्त करना,
11. पालिका के निर्वाचित सदस्यो को हटाना,
12 किसी नगर निकाय को भग कर नये चुनाव करवाना अथवा किसी पालिका को अधिकार च्युत करना आदि।

यहा यह उल्लेखनीय है कि सभी नगरीय निकायो पर राज्य के नियत्रण की प्रकृति एकसी नही होती। कस्बा क्षेत्र समितियो पर नगरपालिकाओ की अपेक्षा कही अधिक कठोर नियन्त्रण रखा जाता है जबकि नगर निगमो के मामले मे यह नियन्त्रण प्राय अलग अधिनियम निर्धारित करते हैं। कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास के निगमो को राज्य सरकार पालिकाओ की भाति अधिकार च्युत या भग नही कर सकती। पर ऐसा प्रतिबन्ध अन्य निगमो के सम्बन्ध मे नहीं है। छावनी मण्डल पर राज्य सरकार का कोई नियन्त्रण नही रहता क्योकि

ये 1924 के केन्द्रीय केन्टोनमेन्ट बोर्ड अधिनियम से प्रशासित होते हैं। इसका प्रशासनिक नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार के रक्षा मन्त्रालय द्वारा होता है।

उपरोक्त विवरण मे नगरीय स्थानीय सस्थाओ पर राज्य सरकार के नियन्त्रण की उन तीनो विधियो का विवरण दिया गया है जिन्हे राज्य सरकार इन सस्थाओ पर नियन्त्रण हेतु अपनाती है। नगरीय सस्थाओ पर राज्य सरकार द्वारा व्यापक और गहन प्रशासनिक नियन्त्रण तथा इस सन्दर्भ मे उसके अनियन्त्रित अधिकारो के बावजूद जन साधारण मे इन सस्थाओ के बारे मे जो धारणा व्याप्त है वह यह है कि ये सस्थाए न तो कार्यकुशल हैं और न ही प्रभावशाली। साधारणतया लोगो मे यह विश्वास व्याप्त है कि इस दिशा मे राज्य सरकार द्वारा सकारात्मक प्रयोग किये जाने की विस्तृत सभावना दिखाई देती है। चिन्तको का यह भी मानना है कि राज्य सरकारें अपनी भूमिका का निर्वाह प्रभावशाली तरीके से तब ही कर सकती है जब पर्यवेक्षण और निर्देशन हेतु सुव्यवस्थित रूप मे प्रायोजित निश्चित प्रशासन तन्त्र विद्यमान हो।

नियन्त्रणकारी संस्था

स्थानीय सस्थाओ पर राजकीय नियन्त्रण की उपरोक्त विवरण मे अकित तीनो विधियो मे प्राय. यह स्पष्ट हो चुका है कि राज्य सरकार जब इन विधियो में से नियन्त्रण हेतु किसी एक विधि को अपनाती है तो उससे सम्बन्धित शीर्षस्थ निकाय उस नियन्त्रण विधि को अपनाने के लिए अधिकृत होते हैं। विधायी नियन्त्रण के सम्बन्ध मे भारतवर्ष में राज्यो की विधानसभायें और न्यायिक नियन्त्रण के सन्दर्भ मे अधीनस्थ न्यायपालिका से लेकर हमारी एकीकृत न्यायपालिका के सर्वोच्च शिखर पर उच्चतम न्यायालय भी न्यायिक नियन्त्रण करने वाली सस्थाओ के रूप मे कार्यशील होता है। इसी तरह इन सस्थाओ पर प्रशासनिक नियन्त्रण को कार्यान्वित करते समय राज्य की कार्यपालिका और उसके अधीनस्थ कार्यरत समूचा प्रशासन तन्त्र विशेष तौर से वे प्रशासनिक सस्थाए जो इस हेतु निर्मित की गयी है, सक्रिय हुई है।

भारत वर्ष मे नगर निगमो पर नियन्त्रण का अधिकार प्राय राज्य सरकार में अन्तर्निहित होता है और सभी राज्यो मे मध्यस्तरीय वे प्राधिकारी जो आम तौर पर अन्य नगरीय सस्थाओ को नियन्त्रित करते है, उनके नियन्त्रण से नगर निगम मुक्त होता है। इसी सन्दर्भ मे जिलाधीश और नगरीय शासन के निदेशालय का उल्लेख किया जा सकता है। जिलाधीश और स्थानीय शासन का निदेशालय नगर निगमो पर नियन्त्रण की उस विधायी शक्ति से प्राय. वचित

होता है जो अन्य नगर निकायो के सन्दर्भ मे उन्हे प्रदान की जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि नगर निगमो पर प्राय. राज्य सरकार के स्वायत्त शासन विभाग द्वारा प्रत्यक्ष नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। नगर निगमो मे इस स्थिति का अपवाद एक ही है। केवल दिल्ली नगर निगम एक ऐसा निगम है जिसका सृजन चू कि केन्द्रीय ससद के अधिनियम के द्वारा किया गया है इसलिए उस पर नियन्त्रण भी केन्द्र सरकार द्वारा ही किया जाता है।[19]

नगर निगम के अतिरिक्त अन्य सभी नगरीय सस्थाओ पर प्रशासनिक नियन्त्रण की विधि का सूत्रपात राज्य सरकार के स्वायत्त शासन विभाग से होता है। यह विभाग इन सस्थाओ के व्यवस्थित कार्य सचालन हेतु आवश्यक नीति बनाता है और राज्य भर मे उसके निष्पादन के लिए समय समय पर आवश्यक दिशा निर्देश जारी करता है। राज्य सरकार के इस विभाग की प्रभावहीनता के बारे मे यह कहा गया है कि इसके अन्तर्गत कोई भी व्यापक क्षेत्रीय इकाईया नही हैं जो समय पर इन सस्थाओ का निरीक्षण तथा मार्गदर्शन कर सके। यही नही विभिन्न राज्यो मे राज्य के मुख्यालय पर भी ऐसी किसी विशिष्ट सस्था का अभाव अनुभव किया जाता रहा है जो इन सस्थाओ की तक्नीकी विकास परि-योजनाओ में सलाह या निर्देश दे सके।

इसी सन्दर्भ मे ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति के प्रतिवेदन मे समस्या को उजागर करते हुए निम्न शब्द अंकित किये गये हैं।[20] "वर्तमान मे ऐसा सगठित क्षेत्रीय अभिकरण नही है जो स्थानीय निकायो को उनकी निरन्तर बढती हुई समस्याओ के सम्बन्ध मे मार्गदर्शन तथा सहायता प्रदान कर सके और न राज्य स्तर पर ही कोई सभी प्रकार की जानकारी से सुसज्जित और दक्ष तन्त्र है। ग्रामीण क्षेत्रो मे पंचायती राज सस्थाओ के मार्गदर्शन और नियन्त्रण के लिए उपयुक्त संगठन बनाने की दिशा मे निश्चय ही उपाय किये गये हैं। वहा विभागीय अधिकारी ग्रामीण स्थानीय शासन के विभिन्न स्तरो को सलाह और सहायता देने केलिए उनके साथ निरन्तर सम्बद्ध रहते हैं। किन्तु जहा तक नगरीय स्थानीय निकायो का सम्बन्ध है बहुत से राज्यो मे प्रशासनिक तथा विधायी मामलो को देखभाल के लिए केवल सचिवालय विभाग होता है। प्राय. नगरपालिका के मामले एक बडे विभाग के अग होते हैं अथवा उन्हे एक सामान्य सचिव के अधीन अन्य विभागो के साथ जोड दिया जाता है। केरल, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश तथा पजाब मे स्थानीय निकायो के निदेशक होते हैं, किन्तु उनके पास स्थानीय प्राधिकरणो को मार्गदर्शन तथा सहायता देने के लिए कोई

संगठन नहीं है। अधिक से अधिक वे राज्य के सचिवालय विभाग के ही पिछलग्गू हैं।"

ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति की उक्त टिप्पणी स्थानीय नगरीय संस्थाओं के मार्गदर्शन की वर्तमान यथार्थ स्थिति का चित्रण करती है। राजस्थान के सन्दर्भ में भी उक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट कहा गया है कि नगरीय संस्थाओं के निर्देशन के लिए यद्यपि राज्य के अधीन एक निदेशालय की स्थापना की गयी है तथापि यह निदेशालय इन संस्थाओं के निर्देशन तथा पर्यवेक्षण व नियन्त्रण की अपनी भूमिका का एक सक्षम क्षेत्रीय इकाई के रूप में निर्वाह नहीं कर पा रहा है। उसके कार्यकरण से ऐसा प्रतीत होता है कि वह नौकरशाही की कार्यपद्धति का शिकार हो गया है तथा जिस उद्देश्य से उसे निर्मित किया गया था उसकी प्राप्ति वह नहीं कर पा रहा है।

जहां तक इन संस्थाओं पर जिलाधीश एवं कतिपय राज्यों में मण्डल आयुक्त के नियन्त्रण का प्रश्न है इस सम्बन्ध में विद्यमान स्थिति यह है कि इन संस्थाओं के निरीक्षण के लिए इनके पास न तो समय है और न ही इच्छा। जिलाधीश जिले की कानून और व्यवस्था की स्थिति तथा विकास कार्यों के सचालन के भार से इतना दबा रहता है कि वह अपनी अन्य भूमिकाओं को सम्पादित करने के लिए कोई समय ही नहीं निकाल पाता। जो कुछ समय उसे मिलता है वह राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार के मन्त्रियों के दौरे के समय शिष्टाचार-भेंट इत्यादि में निकल जाता है। जिलाधीश की इस व्यस्तता का परिणाम यह होता है कि स्थानीय संस्थाओं पर पर्यवेक्षण अथवा उनके निर्देशन के अपने दायित्व को वह अपनी प्राथमिकता के कार्यों में स्थान नहीं दे पाता।

राज्य का स्वायत्त शासन विभाग स्थानीय संस्थाओं को केवल कानूनी, वित्तीय और प्रशासनिक मामलों पर ही सलाह और निर्देश दे पाता है। प्रथम तो भारत वर्ष के सभी राज्यों में स्थानीय शासन निदेशालयों की स्थापना ही नहीं की गयी है और जिन राज्यों में निदेशालयों की स्थापना की भी गयी है, जिनमें राजस्थान एक है, वहां निदेशालय नैत्यिक प्रकृति के कार्यों में इतना उलझा रहता है कि वह स्थानीय संस्थाओं का अपेक्षित मार्ग दर्शन नहीं कर पाता। राज्य सरकारों में स्वायत्त शासन विभाग के सचिव का पद कभी कभी रिक्त पड़ा रहता है या कुछ राज्यों में उसे एक विभाग के साथ साथ अन्य दूसरे प्रशासकीय विभाग का दायित्व भी दिया जाता है। यही स्थिति प्रायः निदेशालय के सदर्भ में भी पायी जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य स्वायत्त शासन को इतना महत्व प्रदान नहीं करते जितना उन्हें किया जाना चाहिए। इस स्थिति

की गंभीरता को ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति तथा पंजाब स्थानीय शासन (नगरीय) जांच समिति दोनों ने ही अनुभव किया था और यह सुझाव दिया था कि स्थानीय शासन को नियन्त्रित, पर्यवेक्षित, निर्देशित करने के लिए निदेशालय की स्थापना सभी राज्यों में की जानी चाहिए। इन दोनों समितियों द्वारा प्रस्तुत सुझावों को सम्मिलित रूप से इस प्रकार देखा जा सकता है।

1. नगरीय स्थानीय शासन के निकायों के कार्यालय का पर्यवेक्षण करने के लिए एक निदेशालय हो, जिसमें निदेशक के पद पर ऐसे अनुभवी व्यक्ति को नियुक्त किया जाय जो नगरीय प्रशासन का वरिष्ठ और अनुभवी सदस्य हो

2. इसी निदेशालय में एक विशिष्ट सभाग हो जो नगरीय सेवाओं के कुछ विशिष्ट पद की नियुक्ति, प्रतिनियुक्ति, पदोन्नति आदि के काम देखें।

3 नगरीय सम्पत्ति के अनुमानात्मक निर्धारण के मामलों की अन्तिम अपीलीय शाखा भी निदेशालय में हो जो मूल्यांकन (अनुमान) अधिकारियों पर नियन्त्रण रख सके।

4. एक योजना और वित्त प्रकोष्ठ निदेशालय में हो जो इन संस्थाओं की पंचवर्षीय योजना निर्माण में सहायता करें।

5 राज्य स्तर के लिए एक निरीक्षणालय हो, जिसमें हर जिले और सभाग के लिए निरीक्षकों की स्पष्ट शृंखला हो।

6 नैत्यिक प्रकृति के कार्यों में इन संस्थाओं को निर्देशन, सलाह आदि देने के लिए भी एक सभाग, निदेशक के सीधे नियन्त्रण में हो जो इन संस्थाओं के लिए नियमों, उपनियमों की व्याख्या और निर्धारण का काम भी देखे।

7 निदेशालय को ऐसी भूमिका का निर्वाह करना चाहिए कि स्थानीय निकायों को आर्थिक प्रशासनिक योजना सम्बन्धी या तकनीकी कठिनाइयों को हल करने की दिशा में उन्हें तुरन्त उचित और सतुष्टिकारक सहायता, सहयोग, निर्देश और प्रोत्साहन प्राप्त हो जाए।

8. निदेशक और निरीक्षकों को स्थानीय निकायों के मित्र तथा पथ प्रदर्शक का काम करना चाहिए। ऐसे निरीक्षकों का निकाय, जो स्थानीय निकायों के कार्य का पर्निरीक्षण करे और सरकार को उनकी विशेष आवश्यकताओं के संबंध में जानकारी देता रहे, राज्य तथा स्थानीय अधिकारियों के लिए जानकारी के साधन का काम करेगा।

राजस्थान में स्थानीय शासन का निदेशालय 1950 में ही स्थापित कर दिया गया था। इसके संगठन, कार्यों और प्रभावशीलता का परीक्षण इस पुस्तक के पृथक अध्याय में यथास्थान प्रस्तावित है।

नियंत्रण का प्रवर्तित परिवेश और स्वरूप

स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाएं चूंकि स्वायत्तशासी इकाइयां होती हैं इसलिए चिन्तकों की यह मान्यता है दिनों दिन बलवती होती जा रही है कि स्थानीय संस्थाओं को किस सीमा तक नियंत्रित किया जाना चाहिए और कभी कभी तो यह प्रश्न भी उभरने लगता है कि इन्हें नियंत्रित भी किया जाना चाहिए या नहीं। किन्तु विचार विमर्श और विश्लेषण के पश्चात इस सन्दर्भ में अंतिम मत यह उभरता है कि अनेक विधिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और सामाजिक बाध्यताएँ हैं जिनके कारण सरकार का यह उत्तरदायित्व बनता है कि वह इन संस्थाओं को नियंत्रित करे। विधिक दृष्टि से सरकार अपने ही द्वारा विनिर्मित अधिनियम के अंतर्गत बाध्य है कि इन संस्थाओं के व्यवस्थित कामकाज को सुनिश्चित करे। राजनीतिक दृष्टि से भी सरकार यह अनुभव करती है कि स्थानीय लोकतन्त्र में इन संस्थाओं की निरन्तरता बनायी रखी जा सके। दूसरी ओर, इन संस्थाओं के सीमित आकार, सीमित आय के साधनों तथा सीमित मात्रा में उपलब्ध तकनीकी ज्ञान के कारण इन समस्त क्षेत्रों में आवश्यक सहायता उपलब्ध कराना राज्य सरकार अपना लोकतान्त्रिक दायित्व समझती है। इसी तरह सरकार यह भी अनुभव करती है कि समाज के विगत प्रशासनिक इतिहास में जिन स्वतन्त्र परम्पराओं का सूत्रपात कर दिया गया है उन परम्पराओं को समाज, राज्य और राष्ट्र के हित में न केवल बनाये रखा जाना चाहिए अपितु उन्हें विकसित करने हेतु सरकार का सम्बल और समर्थन मिलना चाहिए। समग्र रूप से यह माना जा सकता है कि विभिन्न स्थानीय संस्थाओं की गुणवत्ता के एक न्यूनतम स्तर को बनाये रखने, उनके प्रशासन तन्त्र को व्यवस्थित रखने, राष्ट्रीय एवं स्थानीय विकास कार्यक्रमों में सामंजस्य रखने तथा स्थानीय संस्थाओं द्वारा किसी संभावित दुराचार से नागरिकों को बचाने के लिए इन संस्थाओं पर राजकीय नियंत्रण को प्रायः अपरिहार्य माना जाता है।

किन्तु, इस सन्दर्भ को दृष्टिगत रखते हुए स्थानीय संस्थाओं पर राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा जो नियंत्रण किया है उसमें अन्यान्य कारणों से केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति देखने को मिल रही है। जब से भारत वर्ष में पूरे देश के विकास के लिए केन्द्रीय नियोजन को अपनाया गया है तबसे विकास की विविध योजनाओं के लिए न केवल स्थानीय संस्थाएँ अपितु

राज्य सरकार भी केन्द्र सरकार पर अत्यधिक निर्भर हो गयी है। स्थानीय सस्थाए आर्थिक सहयोग और तकनीकी ज्ञान के लिए तो प्राय. उच्चतर सरकार पर सदैव ही निर्भर रही है। निर्भरता की यह स्थिति तकनीकी प्रगति के इस युग मे और अधिक बढती जा रही है। लोकतान्त्रिक चेतना के विस्तार और उसके परिणाम स्वरूप स्थानीय हित समूहो के दबाव को नियंत्रित करने के लिए राजकीय नियत्रण बढाने से नियन्त्रण की केन्द्रीय प्रवृति को और बल मिला है। स्थानीय सस्थाओ पर नियन्त्रण व्यवस्था का बढता हुआ केन्द्रीकरण कुल मिलाकर स्थानीय स्वायत्तता को सीमित करता है।

यह स्थिति लोकतन्त्र को भी सीमित और सकुचित करती है। समीक्षको की यह मान्यता है कि स्थानीय सस्थाओ पर किये जाने वाला राजकीय नियत्रण, जो कि सकारात्मक होना चाहिए था, वह नकारात्मक अधिक हो गया है। परिवर्तित समाज का लोकतान्त्रिक स्वरूप यह माग करता है कि उच्चतर सस्था द्वारा इन सस्थाओ के साथ मार्गदर्शक जैसा व्यवहार होना चाहिए। इस सन्दर्भ मे यह माना जाता है कि राज्य सरकार को इन सस्थाओ के प्रति मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक जैसा व्यवहार करना चाहिए।

वर्तमान नियंत्रण व्यवस्था का मूल्यांकन

भारत वर्ष मे स्थानीय निकायो पर नियंत्रण के अन्तर्गत राज्य सरकारो को उनके विघटन अधिग्रहण आदि दण्डात्मक कार्यवाहिया करने का जो अधिकार प्राप्त है, उसकी गम्भीर आलोचना हुई है। यह माना जाता है कि स्थानीय शासन राज्य सरकार का ही लघु रूप है। नगरपालिका अपने क्षेत्र का उतना ही प्रतिनिधित्व करती है जितना राज्य सरकार सम्पूर्ण राज्य का। राज्य सरकार की भांति ही स्थानीय निकाय का निर्वाचन भी जनता की स्वतत्र बुद्धि एव मतदान के आधार पर होता है। अत. इस बात की सवैधानिक व्यवस्था अभी तक न हो पाने का दुख राजनेताओ, अधिकारियो और नागरिको, सभी को है कि शासकीय अधिनियमो मे निर्धारित अवधि को पूर्ण करने के पहले स्थानीय निकायो का अवसान सकारण या अकारण कर दिया जाता रहा है। स्थानीय निकाय द्वारा त्रुटि किये जाने पर उसे अधिकार च्युत या भग कर देने का विकल्प ढूंढा जाना चाहिए, इस बात का आग्रह लोकतांत्रिक मानस के लोगो की ओर मे किया जाता रहा है।

स्थानीय निकाय तो बहुत छोटी सस्था होती है, जबकि विधान सभायें तथा ससद तक को अधिकारातीत विधान के कारण कई बार न्यायपालिका के कोप का शिकार होना पडा है। डॉ. श्रीराम माहेश्वरी के शब्दो में "निर्वाचित

थानीय शासन का स्थगन अथवा विघटन करना वस्तुत. लोकतन्त्र का ही गला टता है और जनता के निर्णय को केवल कार्यपालिका के आदेश से बलपूर्वक रद्द र देना घाव पर नमक छिडकना है।[21] उत्तर प्रदेश की आवास परिषद के ध्यक्ष श्री गिरजापति मुखर्जी ने लिखा था, "स्थानीय निकायो का अधिक्रमण ाज्य विधानाग की स्वीकृति बिना नही किया जाना चाहिए। राज्य स्तर पर ाधिकारी शासन किसी स्थानीय निकाय के अस्तित्व को समाप्त कर दे यह चीज लोकतात्रिक सिद्धात का दुर्भाग्यपूर्ण उल्लघन है। जो सस्था स्थानीय निकायो की ृष्टि करती है, उन्हे अधिकार देती है तर्कतः उसी राज्य विधानाग को यह नेर्णय करने का अधिकार होना चाहिए कि किन्ही स्थानीय निकाय को अधि-क्रमित किया जाय या नही।[22]

प्रो ए. अवस्थी भी यह मानते हैं कि स्थानीय निकायो के निर्णयो का राज्य सरकार द्वारा निलम्बन या इन निकायो की उदासीनता के कारण उन्हे अधिक्रमित या भग करने का निर्णय अन्तिम हथियार के रूप मे उसके पूर्ण औचित्य के बारे मे सतुष्टि होने पर ही, कभी कभी लिया जाना चाहिए। यदि इस अधिकार का दुरुपयोग किया गया तो इन केवल राज्य सरकार से जनता की आस्था उठेगी, बल्कि स्थानीय निकायो से भी लोगो की आस्था डगमगायेगी। किंतु भारतवर्ष मे राज्य सरकारो ने इस प्रत्यक्ष कार्यवाही का खुल कर उपयोग किया है। इसी कारण जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति को उसके पद से हटा देने एव उसके पुन निर्वाचित होने के नैसर्गिक अधिकार को कुछ समय तक स्थगित कर देने के राज्य सरकार के निर्णयो की न्यायाधीशो ने भी अपने निर्णयो एव समीक्षा मे आलोचना की है।[23] कई बार न्यायालयो ने राज्य सरकारो के ऐसे निर्णयो को असवैधानिक घोषित किया है जब राज्य सरकारो ने अप्रमाणित आरोप के आधार पर इन सस्थाओ को भग कर दिया था। भारतीय साविधिक आयोग के शब्दो मे जहा प्रोत्साहन तथा नियत्रण की शक्तियो की आवश्यकता थी वहा मत्रियो को कुल्हाडी पकडा दी गई है। वस्तुत किसी भी स्थानीय निकाय के दोषो को तुरन्त देख लेना चाहिए। और उनके निराकरण के लिए अविलम्ब प्रायस करना चाहिए। प्राय. यह होता है कि नौकरशाही स्थानीय शासन के मामलो मे कभी भी प्राथमिकतापूर्वक विचार नही करती और इसी उदासीनता के कारण राज्य सरकार का नियत्रण विस्तृत होकर आकस्मिक तथा अनियत्रित झपट्टे का रूप धारण कर लेता है और यह प्राय निषेधात्मक होता है। सलाह देने तथा मार्ग दर्शन के लिए कुछ चिन्तन तथा दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है इसके विपरीत स्थानीय शासन के विघटन तथा अधिक्रमण जैसी कार्यवाही बडा ही सरल काम है। स्थानीय निकायो को बार बार अधिक्रमित करना इस बात का द्योतक है

कि राज्य सरकार का रवैया सामान्यत उदासीनता एव दीर्घकालीन उपेक्षा का रहा है।[24]

इस आलोचना के अतिरिक्त भी राज्य के नियन्त्रण के बारे मे निम्न कारणो से यह आलोचना की जाती है कि नियत्रण के ये साधन वास्तविक न होकर केवल सैद्धातिक रह गये हैं।[25]

1. वर्तमान नियत्रण की व्यवस्था अग्रेजी शासन की देन है। नियत्रण के यह साधन भी गतिहीन कल्पना शून्य एवं नकारात्मक हैं। स्वतत्रता के बाद भी इस स्थिति मे कोई परिवर्तन नही हुआ है।

2. अनेक राज्यो मे बजट के प्रस्ताव, उपनियम, आदि के लिए राज्य सरकार की सहमति आवश्यक मानी है। एक निश्चित राशि से ऊपर व्यय प्रस्ताव पर बजट मे प्रावधान होने के बावजूद राज्य सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक है। इस प्रकार की कठोर नियत्रण व्यवस्था से स्थानीय निकायो द्वारा पहल करने की प्रवृति पर अकुश लगता है, काम मे देरी होती है और स्वस्थ नागरिक उत्तरदायित्व की भावना का हनन होता है।

3 राज्य सरकारो ने इन सस्थाओ को ऋण तथा सहायता देने के लिए इतनी शर्तें लाद रखी हैं कि ये सस्थाएं समय पर ऋण एव सहायता प्राप्त कर पाने मे प्राय: असफल रहती हैं।

4 स्थानीय निर्वाचित संस्थाओ पर नौकरशाही का नियत्रण रहता है। वस्तुत नौकरशाही नियमो की लक्ष्मण रेखा से बाहर निकल कर समस्याओ को समझने एवं उनका हल निकालने का कभी प्रयत्न नही करती। वैसे भी डा. श्रीराम माहेश्वरी के शब्दो मे, 'एक शुद्ध अधिकारी तत्रात्मक सगठन लोकतात्रिक स्थानीय निकायो का आवश्यक मार्गदर्शन एवं सलाह देने के योग्य नही होता। अधिकारी तन्त्र की अपने मे प्रेम होता है। वह कुछ दुर्गुणो का कभी परित्याग नही कर सकता। जैसे—कड़ाई, नियम निष्ठा, कार्यविधियो से अतिशय लगाव तथा नियमों एवं विनियमो का मोह। इन दुर्गुणो के अतिरिक्त भारतीय अधिकारी तन्त्र मे जनता से पृथक एव दूर रहने, अधिकार जताने एव रौब गाठने की प्रवृति विशेष रूप मे पाई जाती है। इसलिए नौकरशाही को स्थानीय शासन के मामलो मे शीर्षस्थ स्थान देना स्थानीय शासन

के उद्देश्य को ही समाप्त करना है। यह नितान्त आवश्यक है कि स्थानीय स्तर के जन मूलक लोकतान्त्रिक शासन को प्रत्यक्ष रूप से राज्य स्तरीय राजनीतिक कार्यपालिका के अधीन रखा जाय जिससे उसमे आत्म गौरव एवं आत्म सम्मान की भावना विकसित हो सके।[26]

5 स्थानीय शासन पर नियन्त्रण रखने के लिए क्षेत्रीय इकाई पर जिलाधीश की व्यवस्था भी उचित नहीं है। जिलाधीश पर विभिन्न उत्तरदायित्वो का इतना बोझ होता है कि वह अपने कार्यभार को समुचित रूप से संभाल नहीं सकता।

इन सभी कारणों से नियंत्रण की व्यवस्था सकारात्मक रूप नहीं ले पाई है। अत इस सम्बन्ध मे कुछ सुझावो पर विचार किया जा सकता है।

सुधार हेतु सुझाव

यदि हम व्यावहारिक दृष्टि से विचार करें और राज्य के नियन्त्रण को सार्थक बनाना चाहे तो नियन्त्रण की इस व्यवस्था को राज्य सरकार मे संस्थागत रूप देना होगा। राज्य सरकार के पास इन संस्थाओ के लक्ष्यो एवं उद्देश्यों के बारे मे पूर्ण स्पष्ट चिन्तन होना चाहिए। नगरीय संस्थाओ के प्रति यदि राज्य सरकार की व्यापक नीति है तब ही नियन्त्रण व्यवस्था सकारात्मक हो सकती है अन्यथा जैसी कि अभी परम्परा है, राज्य का नियन्त्रण अस्थायी उद्देश्यो के लिए किसी भी प्रकार एवं किसी भी सीमा तक जारी रह सकता है।[27]

नगरीय संस्थाओ के सामान्यत दो उद्देश्य होते हैं

1. लोकतन्त्र को सामान्य धरातल से विकसित होने मे मदद देना, तथा
1 नगरों मे रहने वाले नागरिको के लिए कतिपय नागरिक सेवाओं का सम्पादन करना।

यदि इन दोनों लक्षणो के बारे मे आम सहमति है तो यह कहा जा सकता है कि *राज्य के नियन्त्रण का उद्देश्य इन लक्ष्यो को प्राप्त करना ही तो है।* यदि राज्य सरकार इन संस्थाओ के लिए सेवाओ के न्यूनतम स्तर का निर्धारण कर दें तथा एक निश्चित समयबद्ध योजना इन संस्थाओं के कार्यकरण के लिए निश्चित कर दे तो इन पूर्व निश्चित लक्ष्यो को प्राप्त करने की दिशा मे ये संस्थायें कहा तक सफल रह पाई हैं, इस बात की जाच करने मे ही राज्य के नियन्त्रण को सकारात्मक दिशा मिल सकेगी।

प्रो. मोहित भट्टाचार्य का यह मत है कि कर निर्धारण से लेकर सभी नागरिक सेवाओ के सम्पादन के अधिकतम कीर्तिमान या लक्ष्य पहले से ही निश्चित कर देने चाहिए और नियत्रणकारी सस्था को चाहिए कि निश्चित कालावधि मे इन सस्थाओ का निश्चित कालान्तर से इस आशय से निरीक्षण किया जाता रहे कि वे अपने लक्ष्य को पाने मे कितनी दूर तक चल पाई हैं। इस व्यवस्था से एक लाभ यह होगा कि राज्य की सभी नगरपालिकायें परस्पर प्रतियोगिता के आधार पर लक्ष्यो को शीघ्रता से प्राप्त करने का प्रयास करेगी और राज्य सरकार को भी यह लाभ होगा कि वर्ष के अन्त मे लक्ष्यो की प्राप्ति मे सफलता या असफलता का तुलनात्मक मूल्याकन करके आगामी वर्ष के लिए विगत वर्ष के अनुभव के आलोक में लक्ष्य तय कर सकेगी।

इन सुझावो के अतिरिक्त नियन्त्रण व्यवस्था को अधिक सकारात्मक बनाने के लिए प्राय निम्न सुझाव दिये जाते हैं ·

1. इन सस्थाओ पर नियत्रण के क्षेत्र मे अधिक कल्पनाशील एव सृजनात्मक उपाय किये जाने चाहिए।

2. नियत्रण की व्यवस्था मे निकाय के विरुद्ध दण्डात्मक कार्यवाही करने के लिए जोर न दिया जाय। सरकार की भूमिका के सम्बन्ध मे धारणा बदलनी चाहिए, उसका काम नियत्रण का न होकर सलाह देना, मार्गदर्शन करना एव सहायता करना होना चाहिए।

3. इन सस्थाओ को सवैधानिक स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिए ताकि अकारण राज्य सरकारें इन सस्थाओ के स्वरूप को समाप्त करने का प्रयास न करें। राज्य सरकारो को भी चाहिए कि वे अपने अधिकार का राजनीतिक परिप्रेक्ष में दुरुपयोग न करें।

4. इन सस्थाओ को अनुदान राशि की बैसाखी के सहारे नही चलाया जाना चाहिए। लोकतात्रिक विकेन्द्रीकरण के साथ साथ आर्थिक विकेन्द्रीकरण करते हुए इन सस्थाओ को इतने अधिकार दिये जाने चाहिए कि अपनी आवश्यकता के अनुरूप साधन जुटा सकें।

5 इन्हें अपने बजट के निर्माण एव क्रियान्वयन मे पर्याप्त स्वतन्त्रता होनी चाहिए, इस क्षेत्र मे राज्य सरकार का हस्तक्षेप अनुचित है।

6. इन संस्थाओं के मार्गदर्शन के लिए एक आचरण संहिता का निर्माण किया जाना चाहिए जिसका उल्लंघन करने पर ही राज्य सरकार का हस्तक्षेप वांछनीय हो।

7. बढ़ती हुई लोकतांत्रिक आकांक्षाओं के अनुरूप इन संस्थाओं को अधिक अधिकार सम्पन्न बनाया जाना चाहिए।

8. प्रो. मोहित भट्टाचार्य के इस सुझाव को भी कार्यान्वित किया जाना चाहिए कि राज्य सरकार और इन संस्थाओं के बीच एक ऐसे प्रबन्ध सूचना तन्त्र का विकास किया जाना चाहिए जो इन संस्थाओं की वांछित सूचनायें राज्य सरकार को देता रहे ताकि सरकार समय पर इन संस्थाओं के कार्य में सहयोग कर सके।[28]

तत्वत इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि राज्य सरकार का नियंत्रण होना चाहिए या नहीं, बल्कि यह नियंत्रण कैसा, कितना और किस तरह का हो, बदलते जनतांत्रिक परिवेश में इसकी भूमिका अधिक सही रूप से स्वीकार की जानी चाहिए। इस आशय का आग्रह सभी क्षेत्रों से उठ रहा है।

विकासशील देशों के जीवन के लिए प्रजातन्त्र से अच्छी पद्धति नहीं हो सकती और प्रजातन्त्र स्थानीय शासन बिना अधूरा है क्योंकि सच्चे प्रजातन्त्र की नींव ये ही संस्थायें हैं। प्रश्न जब तक इन संस्थाओं की प्रशासनिक कार्यक्षमता।लोक कल्याणकारी भावना के अनुकूल नहीं बढ़ाई जायेगी तब तक प्रजातन्त्र की सफलता के समक्ष प्रश्न चिन्ह बने रहेंगे ? नियंत्रण की व्यवस्था अधिक सकारात्मक, लाभकारी, उद्देश्य मूलक और स्वस्थ लोकतांत्रिक बने इस दिशा में ईमानदारी से प्रयत्न किये जाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. सेन्ट्रल सर्विसेज टू लोकल ऑथोरिटीज, द इन्टरनेशनल यूनियन आफ लोकल आथोरिटीज द हेग, 1962 में विकसित और विकासशील देशों की स्थानीय संस्थाओं के बारे व्यक्त ये विचार आज भी प्रामाणिक प्रतीत होते हैं।

2. राज्य सूची की प्रविष्टि संख्या 5

3 एम. ए. मुतालिब एव खान, पूर्वोक्त पृ. 229
4. उपरोक्त, पृ 230
5 श्रीराम माहेश्वरी, पूर्वोक्त पृ. 287
6 एस भ्रार निगम, लोक्ल गवर्नमेंट, एस. चान्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1987, पृ 231
7. भ्रार. एम. जेकमन मशीनरी भ्राव, ब्रिटिश लोक्ल गवर्नमेंट,
8 मोहित भट्टाचार्य–म्युनिसिपल गवर्नमेंट प्राब्लम्स एण्ड प्रोस्पैक्टस
9 ए भ्रवस्थी–म्युनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, पृ. 32
10. करारोपण जाच भ्रायोग प्रतिवेदन, पृ. 374 से श्रीराम माहेश्वरी द्वारा उद्धृत ।
11 एस भ्रार निगम, पूर्वोक्त,
12 वी एम. सिन्हा भारत में नगरीय सरकारें, पृ. 227–230
13 वी एम. सिन्हा पूर्वोक्त,
14. सर विलियम हार्ट "इन्ट्रोडक्सन टू द ला भ्रॉफ लोकल गवर्नमेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन पृ.227 उद्धृत ए भ्रवस्थी–म्युनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया ।
15 प्रो. भ्रवस्थी पूर्वोक्त ।
16. यह प्रकरण डा. बी. एम. सिन्हा की पुस्तक 'भारत मे नगरीय सरकारें' मे पृ 278 पर द्रष्टव्य है ।
17 हार्ट, सर विलियम, इन्ट्रोडक्सन टू द लर भ्राफ लोकल गवर्नमेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, उद्धृत मुतालिब एव खान, पूर्वोक्त, पृ 249.
18 एल गोल्डिंग, उद्धृत एस के. भोगले, लोकल गवर्नमेंट एण्डमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया परिमल प्रकाशन भ्रौरगाबाद, 1977, पृ. 303.
19 दिल्ली नगर निगम की रचना केन्द्रीय ससद द्वारा पारित दिल्ली नगर निगम भ्रधिनियम, 1957 द्वारा की गई है ।
20. रिपोर्ट भ्राफ द रूरल–भ्ररबन रिलेशनशिप कमेटी उद्धृत श्रीराम महेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ. 383.
21. श्रीराम माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ. 291–92
22. उद्धृत, उपरोक्त.

23 ए. अवस्थी, म्युनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1972

24. रिपोर्ट आफ द इण्डियन स्टेट्यूटरी कमीशन, उद्धृत, श्रीराम माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ. 294

25 ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति प्रतिवेदन.

26 श्रीराम माहेश्वरी, पूर्वोक्त, पृ. 296

27 मोहित भट्टाचार्य, म्युनिसिपल गवर्नमेंट–प्राब्लम्स एण्ड प्रास्पेक्टस,

28. उपरोक्त । □

16

पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण

भारत मे ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की सस्थाए हमारे शासन की त्रिस्तरीय सरचना का निम्नतम और तीसरा सोपान है। विगत अध्याय मे यह बात विस्तार से व्यक्त की जा चुकी है कि स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाए सार्वभौम शक्ति प्राप्त संस्थाए नही होती और उनका सृजन देश की सरकार के द्वारा किया जाता है। भारत वर्ष मे ये सस्थाए राज्य सरकार के नियन्त्रण के अधीन होती हैं। इनका सृजन राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाये गये अधिनियम के अन्तर्गत होता है। भारत मे ही नही विश्व के सभी देशो मे स्थानीय स्वायत्त शासन की सस्थाओ के कार्यक्षेत्र, अधिकार और दायित्वो का निर्धारण विशेष अधिनियम के माध्यम से किया जाता है। ऐसा अधिनियम बनाते समय सरकार का यह निश्चित मत होता है कि किसी भी व्यवस्था मे नियन्त्रण और सन्तुलन की प्रणाली आवश्यक होती है। नियन्त्रण द्वारा सन्तुलन की यह व्यवस्था न केवल उस लोकतन्त्र के व्यापक हित मे होती है अपितु राज्य और उसके अन्तर्गत कार्यशील स्थानीय सस्थाओ के कुशल और प्रभावी कार्यकरण के लिए भी वह आवश्यक होती है। इसी सन्दर्भ मे पचायत राज अध्ययन दल, राजस्थान सरकार की रिपोर्ट, 1964 मे अंकित किया गया है कि स्वायत्त शासन सस्थाओ को सत्ता का स्थानान्तरण कर देने से लोगो के सर्वांगीण विकास एवं कल्याण के प्रति राज्य का दायित्व समाप्त नही हो जाता। यह तो राज्य का मूलभूत अधिकार और दायित्व है। राज्य सरकार को यह सुनिश्चित करना है कि ये इकाइया कुछ निश्चित स्वतन्त्र सिद्धान्तो के अनुसार कार्य करें। पचायत राज सस्थाएँ प्रशासन के अविच्छिन्न अंग के रूप मे विकसित होनी

चाहिए और राष्ट्रीय नीतियां तथा राज्य के सवैधानिक दायित्वो का इनके द्वारा पालन किया जाना चाहिए। सस्थाओ के नियन्त्रण एव पर्यवेक्षण की एक सुव्यवस्थित प्रणाली से ये सस्थाएँ स्वय लाभान्वित होती हैं।[1]

विगत अध्याय मे स्थानीय सस्थाओ पर राजकीय नियन्त्रण के सैद्धान्तिक पक्ष का, उसके उद्देश्यो का तथा उसके औचित्य के सम्बन्ध मे विभिन्न विचारधाराओ सहित विश्लेषण किया जा चुका है। इस सन्दर्भ मे यहा यह व्यक्त करना पर्याप्त है कि ग्रामीण स्थानीय सस्थाओ के नियन्त्रण के सन्दर्भ मे भी विगत अध्याय का यह विवरण समान रूप से उपयोगी है।

स्थानीय सस्थाओ के स्वायत्त शासी स्वरूप के पक्षधर लोगो का ऐसा मत है कि पचायती राज सस्थाओं या स्थानीय सस्थाओ पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण की राजकीय व्यवस्था इन सस्थाओ के मूल स्वरूप पर कुठाराघात करती है, इसलिए यह अनुचित है। उनका ऐसा मत है कि यदि स्थानीय शासन की सस्थाओ को नियन्त्रित किया जाता है तो उनका स्वायत्त स्वरूप नष्ट हो जायेगा और इसलिए उनके स्वायत्तशासी स्वरूप को बनाये रखने के लिए नियन्त्रण की किसी भी व्यवस्था का यह वर्ग विरोध करता है। किन्तु समीक्षको का एक दूसरा वर्ग इस मत से पूर्णत असहमत रहते हुए इसे अमान्य कर देता है। उनकी मान्यता है कि किसी भी प्रकार के निर्देशन, पर्यवेक्षण और नियन्त्रण से स्वशासन सीमित नही होता। वस्तुत स्थानीय स्वशासन की रचना चूँकि राज्य के किसी अधिनियम से की जाती है, इसलिए इन सस्थाओ पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण का अधिकार राज्य सरकार को स्वाभाविक रूप से होना चाहिए। इस वर्ग की यह मान्यता है कि यद्यपि ग्रामीण स्थानीय सस्थाए अर्थात् पचायती राज की सस्थाएँ जनता द्वारा निर्वाचित सस्थाएँ है किन्तु ये सस्थाएँ चूँकि नवीन होने के कारण अभी विकास की प्रक्रिया मे हैं और इस कारण शासन व प्रशासन की परम्परा स्थापित नही हुई है इसलिए यह परमावश्यक है कि इन सस्थाओ के कार्यकरण पर उच्चतर लोकतान्त्रिक व्यवस्था का पर्यवेक्षण और नियन्त्रण अनवरत रूप से बना रहे। इस वर्ग का यह मानना भी है कि चूँकि ये सस्थाएँ अधिकतर राजकीय अनुदान पर निर्भर करती हैं और स्वय जो कर लगाती हैं उनमे उन्हे कम आमदनी होती है ऐसी स्थिति मे इन सस्थाओ को अनुदान प्रदान करने वाले उच्चतर निकाय से आवश्यक रूप से नियन्त्रित होना पडेगा। कुल मिलाकर इन सस्थाओ के स्वतन्त्र प्रशासनिक अभिकरणो के रूप मे विकसित होने, राजनीतिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण का सशक्त माध्यम बनने, जनता मे राजनीतिक चेतना सृजित करने के उत्तम अभिकरण सिद्ध होने और राज्य सर-

कार द्वारा निर्धारित नीतियो तथा कार्यक्रमो को प्रभावी तरीके से कार्यान्वित करने के सटीक प्रशासनिक यन्त्र के रूप मे विकसित होने के लिए, इन सस्थाम्रो पर, ऐसी उच्चतर सस्था का नियन्त्रण आवश्यक है जो स्वयं भी लोकतान्त्रिक तरीके से निर्वाचित हो।

पचायती राज सस्थाम्रो पर राजकीय नियन्त्रण के ग्रौचित्य को यदि राजस्थान राज्य के सन्दर्भ मे देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि राजस्थान चूंकि एक ऐसा राज्य है जिसने अपने पंचायती राज की इकाईयो को बहुत सी सहायता ग्रौर शक्तिया हस्तान्तरित कर दी है, इसलिए राज्य सरकार पर यह दायित्व ग्रा जाता है कि वह उनके कार्यो पर पर्यवेक्षण ग्रौर नियन्त्रण करेगी। नियन्त्रण की यह आवश्यकता, दो चुनौतीपूर्ण परिस्थितियो के कारण ग्रौर भी ग्रधिक हो जाती है। प्रथम तो यह कि लोकतन्त्र की इन प्राथमिक इकाईयो को लोकतान्त्रिक दृष्टि से जो शक्तिया प्रदान कर दी गयी हैं उनको निभाने का दायित्व ऐसे प्रतिनिधियो को मिला है जो न केवल नये हैं ग्रपितु स्थानीय हित समूहो के एक ऐसे परिवेश मे काम करते हैं जहा उनके निर्णय लेने की शक्ति ग्रनेक सीमाग्रो से प्रतिबन्धित हुई रहती है। द्वितीयत इसलिए कि सस्थाग्रो को विकास की ग्रनेक योजनाग्रो के कार्यान्वयन की प्रक्रिया मे प्रत्यक्ष रूप मे सह-योजित किया गया है। राज्य के विभिन्न विकास विभागो द्वारा विकास के ग्रनेक कार्यक्रम सीधे पचायती राज सस्थाग्रो के माध्यम से कार्यान्वित कराये जाने लगे हैं। यही नही 1989 मे तो तत्कालीन कांग्रेस सरकार द्वारा सीधे केन्द्रीय स्तर से जवाहर रोजगार योजना इत्यादि के नाम से एक निश्चित राशि ग्राम पचायतो को भेजना ग्रारम्भ कर दी थी। इस तरह केन्द्र सरकार द्वारा इस रूप मे एक एक ऐसा कदम उठाया गया जिससे न केवल राज्य सरकारो की इन संस्थाग्रो पर नियन्त्रण की व्यवस्था भग हुई ग्रपितु ऐसा लगने लगा है कि पचायती राज सस्थाग्रो पर सीधे केन्द्रीय सरकार नियन्त्रण करने जा रही है। यद्यपि केन्द्र मे सत्ता परिवर्तन के कारण यह कदम जारी नही रह सका है तथापि इससे यह तथ्य तो उद्घटित हो गया कि विकास सम्बन्धी विविध परियोजनाग्रो के कार्यान्वयन मे उच्च स्तर पर यह चिंतन किया जाता है कि पचायती राज सस्थाग्रो को इनमे ग्रधिक से ग्रधिक ग्रौर प्रत्यक्ष रूप से भागीदार बनाया जाये। समग्रत यह कहा जा सकता है कि नूतन रूप से विकसित ग्रामीण क्षेत्र के नेतृत्व मे, विकास के जिन कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने का दायित्व दिया जाता है उन पर सरकार का उचित पर्यवेक्षण ग्रौर नियन्त्रण इसलिए ग्रावश्यक है कि न केवल कठिनाई की घडी मे उनका मार्गदर्शन किया जा सके ग्रपितु उनके स्तर

पर उत्पन्न होने वाली किसी प्रकार की स्वेच्छाचारिता को भी लोकतान्त्रिक तरीके से मर्यादित रखा जा सके।

भारत में, ग्रामीण स्थानीय संस्थायें, जो आमतौर पर पचायती राज संस्थाओं के नाम से जानी जाती हैं, राज्य सरकारों के द्वारा नियंत्रित की जाती है। राज्यों की विधानसभाओं ने अपने-अपने राज्यों में इन संस्थाओं के निर्माण के लिए पृथक-पृथक अधिनियम बनाये हैं। इन्हीं अधिनियमों के माध्यम से इन संस्थाओं पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण के प्रावधान किये जाते हैं। इस कारण सारे देश में इन संस्थाओं पर नियन्त्रण की व्यवस्था में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। किन्तु ऐसा होते हुए भी, सम्पूर्ण देश में इन संस्थाओं पर राजकीय नियन्त्रण के कुछ सामान्य लक्षण निम्नांकित चार तथ्यों के रूप में बनाये जाते हैं।[2]

1 नियन्त्रण का आधार

देश के समस्त राज्यों में पचायती राज संस्थाओं पर नियन्त्रण का आधार वह अधिनियम होता है जिसके माध्यम से इन संस्थाओं की रचना की जाती है। उदाहरणार्थ, राजस्थान में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की पचायती राज संस्थाओं का सृजन राजस्थान पचायत अधिनियम, 1953 तथा राजस्थान पचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम, 1959 के माध्यम से किया गया है अतः यही अधिनियम इन संस्थाओं पर नियंत्रण का आधार प्रस्तुत करते हैं। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य को नियन्त्रण की उन्हीं शक्तियों के अनुरूप कार्य करना होता है जो अधिनियम द्वारा उन्हें प्रदान की गयी हैं। इसके अतिरिक्त अधिनियम के अन्तर्गत जो नियम राज्य सरकार द्वारा बनाये जाते हैं वे भी राज्य सरकार को इन संस्थाओं पर नियन्त्रण का आधार प्रस्तुत करते हैं।

2. नियन्त्रण की प्रकृति और दायित्व

सम्बन्धित अधिनियमों के अनुसार इन संस्थाओं पर नियन्त्रण का यह दायित्व सरकार के विभिन्न कार्यकारी विभागों पर होता है। पचायती राज संस्थाओं का कार्य और कार्यक्षेत्र इतना सीमित होता है कि इन संस्थाओं के अन्तर्गत आन्तरिक नियन्त्रण की कोई व्यवस्था प्रायः विकसित नहीं हो पाई है। यही कारण है कि इन संस्थाओं के बाहर की संस्थायें ही इन पर नियन्त्रण के लिए सम्बन्धित अधिनियम और नियमों के अनुसार अधिकृत की जाती हैं या राज्य सरकार का पचायती राज विभाग, पचायती राज के निदेशक और जिलाधीश इन संस्थाओं पर नियन्त्रण की प्रकृति को निश्चित करते हैं। इसके अतिरिक्त पचायती राज

सस्थाम्रो को जिन विकास कार्यों के साथ सम्बद्ध किया जाता है, ऐसी विकास परियोजनाम्रो को प्रसारित करने वाले सरकारी विभाग भी उन पर कार्यक्रमो के पर्यवेक्षण की सीमा तक नियन्त्रण करते हैं। इस सन्दर्भ मे यह भी उल्लेखनीय है कि सबसे निम्न स्तरीय इकाई ग्राम पचायत पर पंचायत समिति म्रौर पंचायत समिति पर जिला परिषद पर्यवेक्षण का दायित्व निभाती है। यहां यह व्यक्त करना भी आवश्यक है कि इन सस्थाम्रो पर उपरोक्त बाह्य प्रशासनिक सस्थाम्रो म्रौर म्रधिकारियो के द्वारा जो नियन्त्रण किया जाता है उसकी प्रकृति सभी राज्यो मे उनके म्रधिनियमो द्वारा विनिश्चित मानदण्डो के म्रनुसार प्रायः भिन्न-भिन्न होती है।

नियन्त्रण के दायित्वो के सन्दर्भ मे व्यवस्थापिका म्रौर न्यायपालिका की भूमिका भी प्रासगिक बनती है। यद्यपि पंचायती राज सस्थाम्रो पर इन दोनो निकायो का नियन्त्रण सीमित प्रकृति का होता है। इसमे कोई सन्देह नही है कि विधान मण्डल पचायती राज सस्थाम्रो से सम्बन्धित विधान पारित कर उन्हे वैधानिक म्राधार प्रदान करते है,वही न्यायपालिका भी उस म्रधिनियम के प्रावधानो सहित देश मे प्रवर्तित म्रावश्यक वैधानिक प्रावधानो की एक वाछनीय सीमा तक पालना सुनिश्चित करती है। व्यवस्थापिका तो इन सस्थाम्रो पर म्रपने नियन्त्रण को तब म्रौर म्रधिक प्रभावी बना सकती है जब पचायती राज विभाग के कार्यकलापो पर बजट प्रस्तावो के दौरान म्रौर प्रश्नकाल इत्यादि के माध्यम से बहस का म्रवसर उसे प्राप्त होता है। नगर निगमो के सम्बन्ध मे तो कुछ राज्यो मे यहा तक प्रावधान किए हुए हैं कि इनके बजट तथा उनके वार्षिक प्रतिवेदन विधायिका के समक्ष जाच पडताल हेतु रखे जाते हैं म्रौर विधायिका प्रायः इस म्रवसर पर ऐसी स्थिति मे होती है कि वह इन सस्थाम्रो पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण कर सकती है। किन्तु जहा तक पचायती राज सस्थाम्रो का सम्बन्ध है उनके वार्षिक प्रतिवेदन इत्यादि यदि विधायिका के समक्ष रखे भी जाते हैं तो वह मात्र एक म्रौपचारिकता होती है। इस प्रकार, पचायती राज संस्थाम्रो पर इन दोनो संस्थाम्रो का नियन्त्रण सम्बन्धी दायित्व एक सीमित मात्रा मे ही सफल हुम्रा है।[3]

3. नियन्त्रण के स्तर

पचायती राज सस्थाम्रो पर देश के प्रायः सभी राज्यो मे जिन सस्थाम्रोके द्वारा नियत्रण किया जाता है वह लम्बवत् म्रौर समतल दोनो प्रकार का होता है। उदाहरणार्थ ग्राम पचायत पर पचायत समिति का तथा समिति पर जिला परि-

पद का तथा इन तीनो सस्थाओ पर राज्य सरकार का नियन्त्रण लम्बवत् नियन्त्रण की श्रेणी मे रखा जा सकता है । इसी प्रकार जिला स्तरीय इकाई जिला परिषद पर जिला प्रशासन के नियन्ता जिलाधीश का नियन्त्रण समतल नियन्त्रण की श्रेणी में आता है । इस तरह पचायती राज सस्थाओ पर विभिन्न इकाईयो के माध्यम से जो नियन्त्रण किया जाता है उसके तीन स्तर राज्य, क्षेत्रीय तथा स्थानीय हो सकते हैं । यद्यपि आमतौर पर यह नियन्त्रण जिला परिषद के माध्यम से क्षेत्रीय रूप मे और राज्य सरकार के माध्यम से राज्य स्तरीय अधिक होता है । स्थानीय स्तर के नियन्त्रण के रूप मे ग्रामसभा द्वारा ग्राम पचायत के कार्यकलापो पर किये जाने वाले नियन्त्रण को हम स्थानीय नियन्त्रण की परिधि मे सम्मिलित करते हैं ।

4. नियन्त्रण के प्रकार

जहा तक पचायती राज सस्थाओ पर नियन्त्रण के विविध प्रकारो का सम्बन्ध है यह मुख्य रूप से चार प्रकार का होता है [4]

(1) सस्थागत नियन्त्रण

(2) प्रशासनिक नियन्त्रण

(3) तकनीकी नियन्त्रण

(4) वित्तीय नियन्त्रण

ग्रामीण स्थानीय निकायो पर नियन्त्रण के इन चारो रूपो का, अध्ययन की दृष्टि से, व्यवस्थित और विस्तृत विवरण देना यहा प्रासगिक प्रतीत होता है ।

(1) संस्थागत नियन्त्रण

सस्थागत नियन्त्रण से अभिप्राय उस नियन्त्रण से है जो सरकार और उसके द्वारा अधिकृत सस्थाओ अथवा इकाईयो द्वारा किया जाता है । स्थानीय सस्थाओ के नाम, उनके क्षेत्र, सीमाओ, स्वायत्तता, क्षेत्राधिकार, सगठन और सरचना तथा उनके चुनाव इत्यादि के बारे मे प्रावधान आमतौर पर राज्य सरकार द्वारा किया जाता है और समय-समय पर इन समस्त स्थितियो मे उसी के द्वारा आवश्यक परिवर्तन भी किया जाता है । राज्य सरकार के, इन स स्थाओ के बारे मे, इसी अधिकार को स स्थागत नियन्त्रण कहा जाता है । यह सर्वविदित तथ्य है कि पचायती राज स स्थायें अपने आप अस्तित्व मे नही आती अपितु राज्य सरकार के निर्णय के अनुरूप राज्य की विधानसभा द्वारा इनके सगठनात्मक स्वरूप, क्षेत्राधिकार, कार्यक्षेत्र इत्यादि निश्चित किये जाते हैं । राज्य के विधान

मण्डल के अधिनियम और उसके अधीन विधि के माध्यम से जब इस प्रकार के प्रावधान किये जाते हैं तो इन प्रावधानो के परिवर्तन के पश्चात यह भी सुनिश्चित करने हैं कि आने वाले वर्षों मे उन प्रावधानो का उसी रूप मे निरन्तर कार्यान्वियन भी होता रहे। राज्य की व्यवस्थापिका को इन संस्थाओ के सन्दर्भ मे अपने ही द्वारा पारित पूर्व प्रावधानो मे किसी भी समय संशोधन करने का अधिकार रहता है।

राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओ पर जो संस्थागत नियन्त्रण किया जाता है वह आमतौर पर इन संस्थाओ के निम्न पक्षो के बारे मे होता है.[5]

(क) इन संस्थाओ का क्षेत्र और क्षेत्राधिकार,

(ख) शक्ति, संरचना और चुनाव का तरीका;

(ग) कार्यों की प्रकृति,

(घ) पचायती राज कर्मचारियो की संख्या, वेतन और सेवा शर्तें;

(च) अन्तर-संस्थागत विवादो और उनका समाधान;

(छ) पचायती राज संस्थाओ के अभिलेखो, कागजो और सम्पत्ति सम्बन्धी नियन्त्रण।

पचायती राज संस्थायें चूंकि हमारी प्रशासकीय संरचना की इकाईयां है, जो स्वत. विकसित नही होती अपितु जिनकी रचना के मूल मे राज्य के विधान मण्डल का कोई अधिनियम उत्तरदायी होता है। यही अधिनियम इनके भौगोलिक या सीमा सम्बन्धी क्षेत्राधिकार का निर्धारण करता है। अधिनियम मे यह व्यवस्था होती है कि इन संस्थाओ की सीमा मे कोई भी परिवर्तन राज्य सरकार या उसके द्वारा अधिकृत इकाई अपनी ओर से कर सकती है। भारत के प्राय. सभी राज्यो मे इसी तरह की स्थिति पायी जाती है। राजस्थान पचायत अधिनियम, 1953 और पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, 1959 राज्य सरकार को इस बात के लिए अधिकृत करते हैं कि वह इन संस्थाओ की संख्या घटा-बढा सकती है और जब चाहे इनकी भौगोलिक सीमा मे परिवर्तन का अपने स्तर पर एक पक्षीय निर्णय ले सकती है। इस सन्दर्भ मे राज्य सरकार का यह निर्णय द्रष्टव्य है जिसके अन्तर्गत उसने राज्यो मे जिलो संख्या 26 से बढ़ाकर 27 कर दी थी और उसी अनुरूप जिला परिषद की संख्या भी बढ़ गई। इसी प्रकार एक लम्बे समय से राज्य मे पचायत समितियो की संख्या 236 चली आ रही थी जिसको बढ़ाकर 237 कर दी गई है।

इसी प्रकार पचायती राज सस्थाओ के विभिन्न स्तरो पर गठित होने वाली इकाईयो की शक्तियो सगठन और चुनाव की विधियो का निर्धारण भी उसी अधिनियम के माध्यम से किया जाता है जिसके द्वारा इन सस्थाओ की रचना की जाती है। सभी अधिनियम यह प्रावधान करते हैं कि किस सस्था के कितने सदस्य जनता द्वारा चुने जायेंगे। उदाहरणार्थ राजस्थान पचायत अधिनियम, 1953 यह प्रावधान करता है कि ग्राम पचायत में चुने हुए सदस्य, सहवरित सदस्य, सह सदस्य, सरपच और उप सरपच होगे। प्रत्येक पचायत म पचो की सख्या गाव की जनसख्या के अनुसार 5 से 20 तक हो सकती है।[6] अधिनियम पचो की योग्यता, सहवरित किये जाने वाले व्यक्तियो की प्रकृति, सह-सदस्यो की प्रकृति तथा सरपच व उपसरपच के सम्बन्ध मे भी प्रावधानो का स्पष्टीकरण करता है।

इसी प्रकार पचायती राज की मध्यवर्ती सस्था पचायत समिति मे सदस्यो की प्रकृति, योग्यता, प्रधान और उप प्रधान के चुनाव और जिला परिषद के बारे मे भी इसी आशय के प्रावधान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, 1959 मे किया गया है। यह अधिनियम राज्य के विधान मण्डल द्वारा पारित किया हुआ है जिसमे स्पष्ट तौर पर उन समस्त प्रावधानो का व्यापक उल्लेख और यथान्वियन किया गया है जिनके अनुसार इन सस्थाओ की सरचना एव सदस्यो तथा पदाधिकारियो के चुनाव आयोजित किये जाने होते हैं। इन्ही अधिनियमो मे यह प्रावधान भी किया हुआ होता है कि सदस्यो का स्थान किन्ही कारणो से यदि रिक्त हो जाये तो वह कैसे पूरित किया जायेगा पदाधिकारियो के विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव और उनके एव स अधिक पद धारण न करने के सम्बन्ध मे भी आवश्यक विधियो का प्रावधान इन अधिनियमो के माध्यम से राज्य सरकार प्रस्तावित करती है। इन सस्थाओ के चुनाव की समीक्षा की विधिक प्रक्रिया भी अधिनियमो के माध्यम स जन साधारण क लिए सूचित की जाती है। इन सस्थाओ के पदाधिकारियो के अधिकार, कर्तव्य और शक्तिया भी इन्ही के माध्यम से स्पष्ट की जाती है। राज्य सरकार इन अधि-नियमो के माध्यम से जो विधिक प्रावधान प्रस्तुत करती है उनके अवलोकन मे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सस्थाओ के सम्बन्ध मे छोटी से छोटी बात का प्रावधान किया जाता है और यह प्रयत्न किया जाता है कि किसी भी विधिक अस्पष्टता के कारण राज्य सरकार के पास इन सस्थाओ के साथ कोई दुराचार करने का अधिकार नही रह जाये।

जहा तक पचायती राज म स्थाओ द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यो का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध मे यह अनुभव किया गया है कि पंचायती राज की

संस्थाओं के द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों का निर्धारण प्रायः सम्बन्धित अधिनियम के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। राज्य सरकार जिस अधिनियम के माध्यम से इन संस्थाओं की रचना करती है उसी में इन संस्थाओं के द्वारा सम्पादित किये जाने वाले अनिवार्य और ऐच्छिक कार्यों का विवरण दिया जाता है। इस तरह पंचायती राज संस्थाओं के पास यह विकल्प नहीं रहता कि वह यह निर्णय कर सकें कि उन्हें क्या कार्य करना है और क्या नहीं करना है। वस्तुतः पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर होती है कि वे अपने स्तर पर किन्हीं कार्यों को सम्पन्न करने का मानस प्रायः नहीं बना पाती। स्थिति तो यह है कि अपनी आर्थिक स्थिति के परिवेश में ये संस्थाएँ अनिवार्य दायित्वों का निष्पादन भी नहीं कर पाती हैं तब उनसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे संस्थाएँ अपने स्तर पर उन कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्यों को करने का निर्णय भी ले सकें जो कार्य उनसे अधिनियम में अपेक्षित होते हैं। वस्तुतः जो कार्य अधिनियम के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं को दिए जाते हैं उनके निर्धारण अथवा स्वीकृति में पंचायती राज संस्थाओं की कोई भूमिका नहीं होती। इन संस्थाओं की स्थिति तो यह होती है कि वह राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त कार्यों को स्वीकारने से इन्कार भी नहीं कर पाती हैं। जब से इन संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ है तब से ही राज्य सरकार इन संस्थाओं को कुछ ऐसी परियोजनाएँ भी स्थानान्तरित करने लगी है जिन्हें ग्रामीण विकास के प्रयोजन से या तो केन्द्र सरकार के द्वारा आयोजित किया जाता है या राज्य सरकार अपने स्तर पर उनका निर्माण करती है। ऐसी परियोजनाओं की संख्या और प्रकृति राज्य और केन्द्र में सरकारों के परिवर्तन से बदलती रहती है तथापि यह प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ी है और इसके बढ़ते रहने की सम्भावना भी दिखाई देती है। यद्यपि इस सन्दर्भ में यही रेखांकित किया गया है कि पंचायती राज की ये संस्थाएँ इस तरह की परियोजनाओं को अधिक से अधिक स्वीकार तो करना चाहती हैं किन्तु उन्होंने अपने कार्य व्यवहार से यह परिभाषित भी किया है कि वे उन परियोजनाओं से जुड़ी हुई शर्तों को नहीं स्वीकारना चाहती।[7]

पंचायती राज के कार्मिकों पर नियन्त्रण के सन्दर्भ में प्रायः सभी राज्यों के पंचायती राज अधिनियमों में आवश्यक प्रावधान सम्मिलित किये जाते हैं। इन प्रावधानों के माध्यम से इन संस्थाओं में कर्मचारियों की संख्या, स्तर और सेवा शर्तों का निर्धारण किया जाता है। इन संस्थाओं में दो प्रकार के कर्मचारी होते हैं। प्रथम कोटि के कर्मचारी तो वे जो इन संस्थाओं की स्थाई सेवा में

होते हैं और द्वितीय श्रेणी के वे जो राज्य सरकार या अन्य इकाईयो से निश्चित अवधि के लिए परावर्तन पर लिये जाते हैं। इस सन्दर्भ मे राज्य सरकार का सर्वाधिक नियन्त्रण तो इस बात मे परिलक्षित होता है कि पचायती राज सस्थाओ मे कितने कर्मचारी किस स्तर के होगे, इसकी स्वीकृति राज्य सरकार के द्वारा ही दी जाती है। जिन कर्मचारियो की नियुक्ति पचायती राज सस्थाओं द्वारा करने की छूट दी जाती है उनके बारे मे भी अधिनियमो मे प्राय यह प्रावधान किया जाता है कि उनकी नियुक्तिया तथा सेवा शर्तों का निर्धारण राज्य सरकार करेगी। जो कर्मचारी इन सस्थाओ मे प्रतिनियुक्ति पर लिए जाते है उनकी प्रतिनियुक्ति की शर्तें भी इन सस्थाओ से बिना विचार विमर्श किये राज्य सरकार के द्वारा ही निर्धारित की जाती है। जैसा कि पूर्व मे भी कार्यों के बारे मे यह मत व्यक्त किया जा चुका है कि ये सस्थाए आर्थिक दृष्टि से इतनी सक्षम नही होती कि अपने कर्मचारियो के बारे मे राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाने वाली शर्तों को मानने या न मानने के मध्य किसी एक विकल्प का चयन कर सके। सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों पर उपलब्ध कराये गये कर्मचारियो को स्वीकार करने के अतिरिक्त इन सस्थाओ के पास कोई अन्य विकल्प शेष नही रहता है। प्रतिनियुक्ति पर आ कर्मचारी इन सस्थाओ मे आते हैं उनकी सेवाओ के बारे मे भी पचायती राज सस्थाओ को प्राय सन्तोष नही होता है। प्रतिनियुक्ति पर आने वाले कर्मचारी न तो पचायती राज सस्थाओ के साथ कोई लगाव अनुभव कर पाते हैं और न ही ये सस्थाए उस कर्मचारी को अपना मान पाती हैं। ऐसी मानसिक स्थिति मे प्रतिनियुक्ति पर कार्य करने वाले ये कर्मचारी कभी कभी तो ऐसा भी मानते हैं कि प्रतिनियुक्ति की उनकी अवधि एक प्रकार से अनुशासनिक कार्यवाही की अवधि है और जैसे ही उन्हें कोई उपयुक्त अवसर मिलता है वे इन सस्थाओ को छोड जाते हैं। राजस्थान मे पचायत समिति, पचायत राज की प्राथमिक कार्यकारी इकाई है इस कारण प्रशासनिक स्तर पर विकास अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। 1959 मे, पचायत समिति की रचना के साथ ही इनमे विकास अधिकारी के पद पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो को नियुक्त करने की प्रणाली प्रारम्भ की गयी। किन्तु कालान्तर मे राजस्थान सरकार ने मितव्ययता के नाम पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो को पचायत समितियो से हटाकर, इन पदो पर अन्य कनिष्ठ सेवा के अधिकारियो को नियुक्त किया जाने लगा है। 1982 के पश्चात राजस्थान सरकार ने पुन: राजस्थान की महत्वपूर्ण लगभग 100 पचायत समितियों मे विकास अधिकारी के पद पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो को नियुक्ति देने का निश्चय किया है। इस उदाहरण के माध्यम से यह

समझा जा सकता है कि पचायती राज सस्थाओ मे, यहा तक कि उसके परम्परागत पदो पर नियुक्ति इत्यादि के बारे मे राज्य सरकारें प्राय. एक तरफा निर्णय लेती है चाहे राज्य सरकार के उस निर्णय से उन सस्थाओ की कार्यकुशलता ही प्रभावित क्यो न हुई हो ?

पचायती राज सस्थाओ के कर्मचारियो पर राज्य सरकार का यह नियन्त्रण इन सस्थाओ की कार्यकुशलता और गरिमा के विरुद्ध तो है ही अपितु इससे यह भी प्रमाणित होता है कि राज्य सरकार ने इन सस्थाओ के स्वतन्त्र विकास के लिए किसी तरह की सुव्यवस्थित कार्मिक नीतियो के विकास को कोई प्रोत्साहन नही दिया है। राजस्थान मे, आरम्भ के दिनो मे इन सस्थाओ मे कर्मचारियो की नियुक्ति के लिए पचायती राज सेवा चयन आयोग का निर्माण किया गया था और अनन्त न्यूनताओ के बावजूद यह चयन आयोग कुछ वर्षों तक अच्छा कार्य सम्पादित करता रहा। किन्तु राज्य सरकार के एक पक्षीय और चिन्तन रहित निर्णय का ही परिणाम है कि विगत लगभग एक दशक से यह चयन आयोग कार्यशील नही है और इस एक दशक मे राज्य सरकार ने इस न्यूनता की तरफ कभी कोई चिन्ता करने का प्रयत्न नही किया है। यह बात और भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि पचायती राज सस्थाओ मे से, न तो जिला परिषदो और न ही पचायत समितियो ने राज्य सरकार के इस मनमाने निर्णय का विरोध किया है। इससे यह स्थिति स्पष्ट है कि पचायती राज सस्थाओ मे कार्मिक वर्ग की उचित व्यवस्था के लिए न तो राज्य सरकार चिन्तित है और न ही पचायती राज की सस्थाओ को इस स्थिति की ओर कोई रुचि है। यहा यह व्यक्त करना भी आवश्यक है कि राज्य सरकार की इन सस्थाओ के कार्मिक प्रशासन के बारे मे प्रचलित नीति का ही परिणाम है कि इन सस्थाओ को नयी-नयी परियोजनाए कार्यान्वित करने के लिए दे दी जाती है किन्तु इन परियोजनाओ के कार्यान्वियन हेतु जितना कार्मिक वर्ग उन्हे उपलब्ध कराया जाना चाहिए उसका एक हिस्सा भी उपलब्ध नही कराया जाता। स्थिति यह है कि एक लोक कल्याणकारी सरकार, गरीबो के हित मे अपनायी जाने वाली और निर्मित की जाने वाली नीतियो तथा कार्यक्रमो को पचायती राज सस्थाओ के माध्यम से कार्यान्वित तो करना चाहती है किन्तु उनके प्रभावी निष्पादन को सुनिश्चित करने के लिए वह सकारात्मक दिशा मे सोचना भी नही चाहती।

इन सस्थाओ मे कर्मचारियो के सेवा सन्दर्भ मे पचायती राज सस्थाओ के पदाधिकारियो और अधिकारियो के द्वारा जो नीतिया अपनायी जाती है वे तो और भी भयकर प्रतीत होती हैं। वैसे तो इन सस्थाओ मे कार्यरत कर्मचारियो

के लिए, राज्य सरकार के समान स्तरीय पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए प्रवर्तित सेवानियमों को ही प्रभावी माना जाता है। किन्तु इन संस्थाओं में राजनीतिक आपाधापी और अधिकारियों के मनमानेपन की स्थिति यह है कि जब चाहे किसी कर्मचारी पर नाराज होकर उसे निलम्बित कर दिया जाता है और वर्षों तक उसे कोई आरोप पत्र नहीं दिया जाता। निर्वाचित पदाधिकारियों का इतना आतंक रहता है कि सम्बन्धित कर्मचारी वर्षों तक अन्याय के विरुद्ध कोई लड़ाई भी शुरू नहीं कर पाते हैं। इन संस्थाओं के कर्मचारियों को नियमानुसार जो लाभ देय होना चाहिए उन लाभों को भी ये संस्थाएं कर्मचारियों को समय पर उपलब्ध नहीं करा पाती। इस सन्दर्भ में सबसे विचित्र बात यह है कि इन संस्थाओं के कर्मचारियों की बीमारी इत्यादि पर व्यय की गई राशि का पुनर्भुगतान भी वर्षों तक लम्बित पड़ा रहता है। राज्य सरकार से जो अनुदान इत्यादि मिलता है वह वेतन एवं अन्य स्थापना व्यय के लिए स्वीकृत होता है। इस मध्य, बढ़ी हुई महंगाई के निमित्त भत्तों और इसी प्रकार के अन्य परिलाभों के लिए राशि का प्रबन्ध इन संस्थाओं को अपने स्थानीय कोष में करना होता है। इन संस्थाओं की आर्थिक स्थिति ऐसी होती है कि उनका स्वयं का आर्थिक कोष प्रायः निर्बल होने से कर्मचारियों के उचित हितों का अथवा उन्हें देय लाभों का समय पर निस्तारण नहीं हो पाता। इससे कर्मचारियों का न केवल मनोबल टूटता है अपितु सामान्य तौर पर इन संस्थाओं के प्रति वे एक नकारात्मक वातावरण भी समाज में उत्पन्न करते हैं।

संस्थागत नियन्त्रण के अपने दायित्व के अन्तर्गत राज्य सरकार प्रायः सभी राज्यों में पंचायती राज की विभिन्न संस्थाओं के मध्य उत्पन्न आन्तरिक मतभेदों और विवादों को सुलझाने का काम भी करती है। अधिकांश राज्यों के अधिनियमों में राज्य सरकार को इन संस्थाओं के आपसी विवादों के लिए अंतिम निर्णायक मध्यस्थ के रूप में अधिकृत किया गया है। इसके अतिरिक्त अधिनियम में यह व्यवस्था भी की गयी है कि पंचायती राज की प्रत्येक उच्च इकाई अपनी अधीनस्थ इकाई के कार्यों की समीक्षा और समन्वय कर सकती है। इस प्रक्रिया से ये इकाईयां अधीनस्थ संस्थाओं में व्याप्त विवादों का समाधान भी कर सकती हैं।

भारत के उन सभी राज्यों में, जिनमें पंचायती राज को अपनाया गया है, प्रायः अधिनियम यह प्रावधान करते हैं कि राज्य सरकार पंचायती राज की विभिन्न संस्थाओं के कागज पत्र, अभिलेख और सम्पत्तियों का स्वयं या अपने प्राधिकारियों के माध्यम से अवलोकन कर सकती है और आवश्यकता होने पर

अभिलेख अपने यहा मगवा सकती है। राज्य सरकार के पचायती राज विभाग और पचायत निदेशालय के उच्च पदाधिकारियो को यह अधिकार होता है कि पचायती राज की विभिन्न सस्थाओ के कुशल कार्यकरण को सुनिश्चित करने की दृष्टि से वे उन सस्थाओ के काम काज को निर्देशित कर सकते हैं, आवश्यकता पडने पर किसी प्रकार का निर्णय लेने अथवा न लेने का निर्देश दे सकते हैं और किसी भी प्रकार की पत्रावली अपने यहा मगवा सकते हैं। राज्य सरकार और निदेशालय के प्राधिकारी इन सस्थाओ का नियमित पर्यवेक्षण और निरीक्षण भी करते हैं। राज्य सरकार द्वारा इस हेतु कुछ निश्चित प्रपत्र जारी किये गये हैं जिनमे विभिन्न सूचनाओ की पूर्ति करते हुए ऐसा निरीक्षण प्रतिवदन प्राधिकृत अधिकारियो द्वारा राज्य सरकार को प्रस्तुत करना होता है। राज्य सरकार के वे विभाग जो ग्रामीण विकास से सम्बन्धित कार्य करते हैं, तथा वे विभाग, जो कुछ परियोजनाए कार्यान्वयन हेतु इन सस्थाओ को देते हैं, भी पचायती राज सस्थाओ से किसी भी प्रकार की सूचनायें मगवाने के लिए निर्देश भेज सकते है।

राज्य सरकार के विभिन्न विभागो के द्वारा विभिन्न प्रकार की सूचनायें मगवाने तथा पचायती राज और ग्रामीण विकास विभाग एव पचायत निदेशालय के द्वारा भी जो सूचनायें मगवाई जाती है उनमे भी प्राय ऐसा देखा गया है कि सूचनाओ का दोहराव होता है। राजस्थान मे यह स्थिति देखने मे आयी है कि अनेक बार जो सूचनायें एक विभाग मगवा चुका होता है वही सूचना दूसरे विभाग द्वारा मगवाई जाती है। राज्य सरकार के स्तर पर भी ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया गया है कि पचायती राज सस्थाओ के कामकाज को विनियमित करने की दृष्टि से जो सस्थागत नियन्त्रण किया जाता है उसमे एकरूपता, तारतम्य और समन्वय बना रहे। वैसे भी विभिन्न विभागो के हमारे प्राधिकारी पचायत समिति एव जिला परिषदो में प्रतिनियुक्ति पर आते हैं। जिससे प्राय इन सस्थाओ मे उनके निष्ठापूर्ण कार्य मे अवरोध पैदा होते रहते हैं।

पचायती राज की सस्थाओ पर जो सस्थागत नियन्त्रण राज्य सरकार द्वारा किया जाता है उसमे एक तथ्य यह भी परिलक्षित होता है कि इस नियत्रण की प्रकृति विकासात्मक होने की अपेक्षा नियामकीय अधिक रही है। इसलिए चिन्तको द्वारा यह सवाल उठाया जाता रहा है कि इन सस्थाओं पर जो सस्थागत नियन्त्रण अब तक किया जाता रहा है वह हमारे विकास के लिए समर्पित प्रजातान्त्रिक परिवेश मे कहा तक सगत हैं और यदि वह सगत नहीं है तो इस पर पुनर्विचार का आग्रह किया गया है।[8]

प्रशासनिक नियन्त्रण

पचायती राज संस्थाओं पर राज्य सरकार के प्रशासनिक नियन्त्रण मे संस्थाओं की "नीति" और "प्रशासन" दोनो पर नियन्त्रण सम्मिलित है।[9] इस प्रकार के नीतिगत और प्रशासन सम्बन्धी नियन्त्रण का उद्देश्य इन संस्थाओं को उस ढांचे मे कार्यशील रखना होता है जिन उद्देश्यो के लिए इन संस्थाओं की स्थापना की जाती है। यदि पचायती राज की संस्थायें राज्य सरकार द्वारा घोषित प्राथमिक लक्ष्यों और उद्देश्यो के विरुद्ध आचरण करती हैं तो राज्य सरकार उन संस्थाओं के विरुद्ध आवश्यक अनुशासनिक कार्यवाही कर सकती है। इस नियन्त्रण का उद्देश्य यह भी होता है कि इन संस्थाओं मे जो निर्वाचित पदाधिकारी हैं उनकी शक्तियों पर राज्य सरकार द्वारा एक लोकतान्त्रिक मर्यादा रखी जा सके। राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं पर निम्न उपागमो (विधियो) के माध्यम मे यह प्रशासनिक नियन्त्रण, कार्य रूप मे किया जाता है

(1) निरीक्षण एवं जाच

प्राय सभी राज्यो मे राज्य सरकारें पचायती राज संस्थाओं के काम काज पर नियन्त्रण रखने के लिए उनका सामान्य या आकस्मिक निरीक्षण करते हुए जाच कर सकती है। जाच का यह एक ऐसा तरीका है जिसके माध्यम मे इन संस्थाओं पर संस्थागत प्रशासनिक, तकनीकी और वित्तीय सभी प्रकृति का नियन्त्रण रखना सम्भव हो जाता है। यह सर्व विदित है कि प्रत्येक अधीनस्थ पचायत राज संस्था पर उसकी उच्च स्तरीय इकाई मे कार्यरत प्रशासनिक अधिकारियो के द्वारा निरीक्षण और जाच के माध्यम से नियन्त्रण रखा जा सकता है। इस प्रकार निरीक्षण करने वाले ये प्रशासनिक अधिकारी सभी दृष्टियों से यह जाच करते हैं कि अधीनस्थ इकाई उन उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा मे निरन्तर कार्य कर रही है या नही जिनको प्राप्त करने की अपेक्षा उससे की जाती है। वे अपने निरीक्षण के दौरान इस बात पर ध्यान रखते हैं कि पचायती राज संस्थाओं से सम्बन्धित विधान मण्डल द्वारा पारित अधिनियमो मे जिन अनिवार्य कार्यों को करने का निर्देश इन संस्थाओं को दिया होता है उन कार्यों को ये संस्थायें निष्ठा से कर रही हैं या नही कर रही हैं? ऐसे निरीक्षण के दौरान ये पदाधिकारी अधीनस्थ संस्था के अधिकारियो और कर्मचारियो द्वारा किये जा रहे कार्यों के विवरण, उनके द्वारा किये जा रहे दौरो के प्रतिवेदन, उनके द्वारा व्यय की जा रही लागत, उनके द्वारा दिये जा रहे आदेश और निर्देशो तथा उनके नियन्त्रण मे काम कर रहे कर्मचारियो

के प्रभाव प्रभियोगो इत्यादि का अवलोकन करते हैं और उनके सम्बन्ध मे जो भी आवश्यक हो वह निर्देश उन स स्थाओ को देते हैं। यह निरीक्षण आमतौर पर दो प्रकार का होता है, नियमित और आकस्मिक। नियमित निरीक्षण प्राय उन अधिकारियो के द्वारा किया जाता है जो इस हेतु अधिकृत होते है। ऐसा करते समय वे निर्धारित प्रक्रिया, प्रपत्रो और विधियो को ही माध्यम बनाते हैं किन्तु आकस्मिक निरीक्षण सम्बन्धित पदाधिकारी कभी भी, जब वे ऐसा करना आवश्यक समझें, कर सकते हैं। दोनो निरीक्षणो मे अन्तर यह है कि आकस्मिक निरीक्षण करते समय पदाधिकारियो का ध्यान इस तथ्य पर रहताहै कि सामान्य काम काज साधारणत. ठीक तरह से चल रहा है या नही किन्तु जब नियमित निरीक्षण किया जाता है तो निरीक्षण किये जाने वाली स स्थाओ के कामकाज की समस्त दृष्टिकोण मे व्यापक जाच की जाती है यह जाच सूक्ष्म तथा नियमो के अनुसार की जाती है तथा छोटी से छोटी बात और तथ्यो कोध्यान से देखा समझा जाता है। दोनो ही प्रकार के निरीक्षणो का प्रतिवेदन अधिकारियो के द्वारा स्थानीय स स्थाओ को भेजना होता है जिसमे यह अकित किया जाता है कि उनके निरीक्षण के दौरान उन स स्थाओ के कामकाज के बारे मे अधिकारियो ने क्या महसूस किया है और क्या कमिया पायी गयी हैं।

यद्यपि, नियन्त्रण करने वाले पदाधिकारियो के बारे मे सामान्य तौर पर यह अनुभव किया गया है कि वे उनके लिए निर्धारित स ख्या मे न्यूनतम निरीक्षणो को भी प्राय. नही कर पाते हैं। पचायती राज से सम्बन्धित नियमो मे यह प्रावधान किया हुआ होता है कि किस श्रेणी के अधिकारी को अपनी अधीनस्थ स स्थाओ पर एक वर्ष मे कितने नियमित और कितने आकस्मिक निरीक्षण करने चाहिए। व्यवहार मे यह प्राधिकारी इन सस्थाओ पर, निर्धारित निरीक्षण अपनी व्यस्तता के कारण पूरे नही कर पाते हैं। राजस्थान मे ग्राम पचायतो पर आम तौर पर खण्ड विकास अधिकारी द्वारा और यदाकदा जिला परिषद के पदाधिकारियो द्वारा भी निरीक्षण किया जा सकता है। इसी प्रकार पचायत समिति के सन्दर्भ मे जिला परिषद और राज्य सरकार के पदाधिकारी तथा जिला स्तरीय प्रशासन के सामान्य नियन्त्रणकर्ता जिलाधीश और उनके अधीन कार्यरत अतिरिक्त जिला विकास अधिकारी और उप जिला विकास अधिकारी भी अधिनियमो और नियमो के अन्तर्गत सभी प्रकार की पचायती राज सस्थाओ पर सामान्य और आकस्मिक नियन्त्रण करने के लिए सक्षम होते हैं। राजस्थान के पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम मे तो यह विशिष्ट व्यवस्था की हुई है कि जिला विकास अधिकारी के

रूप मे जिलाधीश पचायती राज स स्थाओ के विकास सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करेंगे।[10] पचायती राज के अपनाये जाने के प्रारम्भिक वर्षों मे राजस्थान मे जिला विकास अधिकारी और उपजिला विकास अधिकारियो ने अपने निरीक्षण और जाच के इस अधिकार का बहुत उत्साहपूर्वक निर्वाह करते हुए इन सस्थाओ के पदाधिकारियो मे भी कार्य कुशलता और उत्साह सचरित किया था।[11] किन्तु निरीक्षण के सन्दर्भ मे यह उत्साह आगामी वर्षो मे बना नहीं रह सका है। यदि पचायती राज सस्थाओं के कामकाज को नागरिकों के हित मे गतिशील बनाये रखना अभीष्ट है तो राज्य सरकार को इस ओर पर्याप्त ध्यान देना होगा कि अधिकारियों द्वारा अधीनस्थ सस्थाओ पर निरीक्षण और जाच को कैसे अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। चिन्तकों की यह मान्यता है कि प्रभावी निरीक्षण, विशेष तौर पर आकस्मिक निरीक्षण, के माध्यम से प्रशासनिक सस्थाओ की कार्यकुशलता मे निर्णायक सुधार लाया जा सकता है।

सामान्य निर्देशों का प्रसारण

विधान मण्डल द्वारा पारित पचायती राज से सबधित अधिनियम राज्य सरकार को इस बात के लिए अधिकृत करता है कि वह पचायती राज की सस्थाओं को उनके कामकाज की दिशाओं मे सुधार तथा उनके नियमसगत सचालन को सुनिश्चित करने हेतु समय समय पर दिशा निर्देश जारी कर सकती है। अपने इस अधिकार का उपयोग करते हुए राज्य सरकार के समस्त वे विभाग जो किसी न किसी रूप मे पचायती राज के कार्यों से संबधित होते हैं, पचायती राज की सस्थाओं को आवश्यक आदेश, निर्देश विभिन्न परिपत्रो के माध्यम से देते रहते हैं। पंचायती राज स स्थाओ के बारे मे विश्लेषकों का यह अनुभव रहा है कि राज्य सरकार द्वारा जारी किये जाने वाले इस प्रकार के निर्देशो के निष्पादन के प्रति अरुचि होते हुए भी इन सस्थाओ के पदाधिकारियो ने उन्हे किसी प्रकार की चुनौती देने का रुझान व्यक्त नही किया है।[12] राज्य सरकार के पचायती राज विभाग द्वारा इन स स्थाओ के प्रशासनिक कार्य स चालन हेतु विभिन्न परिपत्रो और प्रक्रियाओं का निर्धारण कर दिया जाता है। इन स स्थाओ से राज्य सरकार यह अपेक्षा करती है कि अपने प्रशासनिक कामकाज को स चालित करते समय वे उनका आवश्यक विवरण उन परिपत्रो मे रखें। इस प्रकार के परिपत्रोंके राज्य सरकार द्वारा प्रसारण का परिणाम यह होता है कि पचायती राज सस्थायें भी नौकरशाही की उसी प्रक्रिया का अनुसरण करने लगती हैं जो प्रक्रिया उच्चतर राजकीय प्रशासनिक स स्थाओ मे अपनायी जाती है। इसका एक नकारात्मक

परिणाम यह भी हुआ है कि इन स स्थाओ को अपनी जनता की अपेक्षाओ के अनुरूप अपने प्रशासनिक कामकाज को गति प्रदान करने मे कोई स्वायत्तता नही मिल सकी है और ये स स्थाये स्थानीय जनता की सेवा के कार्य मे नौकरशाही की जटिल व उलझनपूर्ण प्रक्रिया का शिकार हो गयी हैं।

कर्तव्यों के निर्वाह मे विफल रहने पर नियन्त्रण

पचायती राज स स्थाओ मे जिन अनिवार्य कार्यों को सम्पन्न कराने की अपेक्षा स बधित अधिनियमो मे की जाती है यदि ये स स्थायें उन अनिवार्य कार्यों को सम्पन्न नही कर सकें तो राज्य सरकार को अधिनियमो मे यह शक्ति दी गई है कि वह इन स स्थाओ को ऐसे अनिवार्य कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अवधि निश्चित कर सकती है। यदि अवधि निश्चित कियेजाने के पश्चात भी ये स स्थायें उस कार्य को नही कर पायी तो राज्य सरकार किसी उचित और सक्षम स स्था को वह कार्य करने का निर्देश दे सकती है और ऐसे कार्य को सम्पन्न करने पर जो व्यय हुआ है वह उन स स्थाओ को दिये जाने वाले अनुदान मे से काटा जा सकता है।

राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम मे भी पचायत समिति या जिला परिषद के इस प्रकार के 'व्यतिक्रम' की स्थिति मे कर्तव्यो की पालना कराने हेतु शक्ति राज्य सरकार मे निहित की गयी है।[13] यह अधिनियम प्रावधान करता है कि यदि कोई पचायत समिति या जिला परिषद, अधिनियम द्वारा आरोपित किसी कर्तव्य का पालन करने मे असफल रहती है तो राज्य सरकार लिखित आज्ञा द्वारा उस कर्तव्य के पालन के लिए एक अवधि नियत कर सकेगी तथा ऐसी आज्ञा तुरन्त स बधित पचायत समिति या जिला परिषद को सूचित की जावेगी।[14] इसी प्रकार यदि इस नियत अवधि के भीतर सबधित स स्था के द्वारा उक्त कर्तव्य का पालन नही किया जाता है तो राज्य सरकार किसी व्यक्ति या स स्था को उसका पालन करने केलिए नियुक्त कर सकेगी और निर्देश दे सकेगी कि ऐसे कर्तव्य के पालन मे हुआ व्यय उसके लिए नियुक्त व्यक्ति को उचित पारिश्रमिक सहित स बधित पचायत समिति या जिला परिषद द्वारा तुरन्त चुकाया जायेगा।[15] यदि इस प्रकार किये व्यय और पारिश्रमिक स बधित स स्था द्वारा नही चुकाया जाये तो राज्य सरकार ऐसे व्यक्ति को, जिसकी अभिरक्षा मे उन स स्थाओ की निधि की राशि शेष हो, उक्त व्यय और पारिश्रमिक या उनका ऐसा भाग, जिनका भुगतान उक्त शेष राशि मे सम्भव हो, चुकाने का निर्देश देते हुए आज्ञा जारी सकती है।[16]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान में पंचायत समिति एवं जिला परिषद के द्वारा जिन अनिवार्य कार्यों का सम्पादन नागरिकों के हित में किया जाना चाहिए यदि ये दोनों संस्थायें उन कार्यों को नहीं कर पायीं तो राज्य सरकार इस बात के लिए अधिकृत है कि उन कार्यों को निश्चित अवधि में करने के लिए इन संस्थाओं को निर्देश दे दे। यदि ये संस्थायें ऐसे निर्देशों के पश्चात् भी उस कार्य को सम्पन्न न कर सकें तो राज्य सरकार ऐसे कार्य किसी भी संस्था से करवा सकती है और उस पर हुआ व्यय उन संस्थाओं को देय अनुदान में से काट सकती है।

अविश्वास प्रस्तावों का कार्यान्वयन

पंचायती राज की विभिन्न संस्थाओं के गैरसरकारी पदाधिकारियों के विरुद्ध प्रस्तुत किये जाने वाले अविश्वास प्रस्तावों की प्रक्रिया प्रायः संबंधित अधिनियमों में स्पष्ट रूप से वर्णित की जाती है। इस प्रकार के अविश्वास प्रस्ताव जब नियमानुसार पारित हो जाते हैं तो उनके कार्यान्वयन का दायित्व प्रायः राज्य सरकार पर आ जाता है। अविश्वास प्रस्ताव के पारित होने की प्रक्रिया और उसके पारण के पूर्व भी पदाधिकारियों द्वारा अपने पद पर बने रहने के प्रयासों तथा पारित सूचना के पश्चात भी न्यायपालिका द्वारा हस्तक्षेप की योजना इत्यादि के कारण इस प्रकार की प्रक्रिया में पदाधिकारियों को हटाने की समस्या अपने आप में जटिल स्वरूप धारण कर लेती है। ऐसी समस्त परिस्थितियों में अनेक बार राज्य सरकार के समक्ष भी धर्म संकट उपस्थित हो जाता है क्योंकि एक ओर तो नियमानुसार अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाता है और दूसरी ओर प्रस्ताव के पारित होने की प्रक्रिया के पूर्व और पश्चात् न्यायालय द्वारा स्थगन जारी कर दिए जाते हैं।

राजस्थान में पंचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम, 1959 में यह प्रावधान किया गया है कि पंचायत समिति के प्रधान और उपप्रधान तथा जिला परिषद के प्रमुख और उप प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव का लिखित नोटिस निर्धारित प्रपत्र, में सदस्यों के कम से कम एक तिहाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित, संबंधित जिलाधीश को प्रस्तुत किया जायेगा। इसके पश्चात जिलाधीश उसकी सूचना संबंधित लोगों को देगा और उस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए निश्चित तरीके से पंचायत समिति और जिला परिषद की बैठक तीस दिन के भीतर आमन्त्रित करेगा। इस प्रकार की बैठक के लिए सदस्यों को 15 दिन की सूचना भी दी जायेगी। ऐसी बैठक की अध्यक्षता स्वयं जिलाधीश या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति अपर जिलाधीश करेगा। यह प्रस्ताव यदि कुल सदस्यों के दो

तिहाई सदस्यों के समर्थन से पारित हो जाता है तो पारित प्रस्ताव की सूचना कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर लगायी जायेगी तथा उसी दिन से सम्बन्धित पदाधिकारी अपना पद रिक्त कर देंगे। इस प्रकार अधिनियम मे उक्त दोनो संस्थाओ के पदाधिकारियो के विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव की जो प्रक्रिया दी हुई है उसमें प्रारम्भ से अन्त तक संबंधित जिले के जिलाधीश की सक्रिय भूमिका स्पष्ट होती है। जिलाधीश राज्य सरकार का पदाधिकारी है। राज्य सरकार के इस पदाधिकारी की इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका है। नियमो मे अविश्वास प्रस्ताव के सम्बन्ध मे वर्तमान शक्तियां और प्रावधान कुछ अस्पष्ट प्रतीत होते हैं क्योंकि अविश्वास प्रस्ताव की प्रक्रियाशुरू होने के साथ ही जो न्यायिक प्रक्रिया शुरू होती है उसमें राज्य सरकार और उसके प्रतिनिधि जिलाधीश भी अपने आपको अशक्त से अनुभव करते हैं। इसलिए इस सन्दर्भ मे यह सुझाव दिया जा सकता है कि इस हेतु प्रावधानो को अधिक स्पष्ट किया जाय और इस स्थिति के त्वरित समाधान की दिशा मे आवश्यक प्रावधान किये जाने चाहिए।

पदाधिकारियों और सदस्यों को पद मुक्त करना

पंचायती राज से संबंधित अधिनियमो में इन संस्थाओ के सदस्यो की योग्यताओ का भी उल्लेख किया जाता है। यदि सदस्य गण निर्वाचित होते समय या उसके पश्चात निर्धारित योग्यताओ मे से किसी अयोग्यता के शिकार हो जाते हैं तो राज्य सरकार और उसके अधिकृत पदाधिकारियो को अधिनियम यह शक्ति प्रदान करता है कि वे उनके विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही कर सकते है। राज्य सरकार द्वारा उसके पदाधिकारियो को प्राप्त इन संस्थाओ के सदस्यो एव पदाधिकारियों के सम्बन्ध मे यह शक्ति इस बात का संकेत करती है नियन्त्रण की यह विधा सम्पूर्ण संस्था के लिए न होकर केवल उसके सदस्यों के सन्दर्भ मे प्रयुक्त की जाती है। राजस्थान मे पंचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, किसी पंचायत समिति और जिला परिषद के लिए सदस्य बनाने से सम्बन्धित योग्यताओं का विवरण स्पष्ट करता है।[17]

इस प्रावधान का प्रमुख उद्देश्य यह है कि इनके माध्यम से ऐसे पदाधिकारियों और सदस्यो के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सके जो नियमानुसार कार्य करना अस्वीकार कर दें। यदि समुचित जाच के पश्चात यह निश्चित हो जाता है कि सम्बन्धित पदाधिकारियो एव सदस्यो ने अधिनियमो के प्रावधान और राज्य सरकार द्वारा प्रवर्तित नियमो का उल्लंघन किया है या किसी प्रकार का दुराचार, जिसमे नैतिक दुराचार भी सम्मिलित है, के दोषी पाये जाते हैं, या अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं या उन्होने निरन्तर कार्य करना बन्द कर दिया

है तो राज्य सरकार उन्हें पद मुक्त करने का निर्देश दे सकती है। अधिनियम के अन्तर्गत राजस्थान मे यह शक्ति राज्य के पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग मे निहित है जिसका प्रयोग यह सम्बन्धित जिलाधीश और उपजिला विकास अधिकारी के माध्यम से करता है। राजस्थान मे सदस्यो के सम्बन्ध मे भी कार्यवाहियो के जो व्यापक प्रावधान अधिनियम की धारा 15, 16, 17 मे पंचायत समिति के सन्दर्भ मे किये गये हैं वही प्रावधान यथोचित परिवर्तनों के साथ जिला परिषद के अन्य सदस्यो तथा अधिकारियो पर प्रभावी होते है।[18] इस सदर्भ मे अब तक जो निर्णय न्यायालय द्वारा दिए गये हैं उन निर्णयो मे सदस्यो की योग्यता मे निर्दिष्ट इस शर्त को स्पष्ट किया गया है कि सदस्यो को साधारणतया उस क्षेत्र मे रहने का अर्थ क्या लगाया जाता है। इसी प्रकार किसी सदस्य द्वारा दो पद धारण न करना, निर्वाह संबंधी अयोग्यता, 5 लगातार बैठको मे अनुपस्थित रहना, तथा जिला परिषद द्वारा अध्ययन केन्द्र पर प्रशिक्षण के लिए मनोनीत किये जाने पर न जाना इत्यादि कारणो से सदस्यो की अपात्रता का स्पष्टीकरण भी इन नियमो मे किया गया है।[19]

पंचायती राज संस्थाओं द्वारा पारित प्रस्तावो का स्थगन/निरस्तीकरण

राज्य सरकार का नियन्त्रण संबंधी यह महत्वपूर्ण अधिकार है कि वह पंचायती राज की संस्थाओं द्वारा पारित प्रस्तावों के कार्यान्वयन को जिलाविकास अधिकारी के माध्यम से या तो स्थगित कर सकती है या आवश्यकता होने पर उन्हें निरस्त भी करवा सकती है। यद्यपि इस आशय के अन्तिम आदेश राज्य सरकार द्वारा ही पारित किये जाते हैं किन्तु तत्काल कार्यवाही करने के लिए इस संबंध मे, संबंधित जिलाधीश को अधिकृत किया जाता है। राजस्थान मे, अधिनियम मे यह व्यवस्था की गयी है कि राज्य सरकार लिखित आज्ञा द्वारा, पंचायत समिति या उसकी किसी स्थाई समिति द्वारा, पारित किसी भी संकल्प अथवा आज्ञा को रद्द कर सकेगी, यदि उसकी राय मे ऐसा संकल्प विधिवत पारित नहीं किया गया है या उन शक्तियो के अतिरेक या दुरुपयोग की आशंका है जो अधिनियम द्वारा उस संस्था को प्रदान की गयी हैं। ऐसा संकल्प राज्य सरकार उस परिस्थिति मे भी निलम्बित कर सकती है यदि उसके निष्पादन से, मानव जीवन, स्वास्थ्य अथवा सुरक्षा का भय पैदा होने की सम्भावना हो या उससे शान्ति भंग हो जाने की आशंका हो।[20] राज्य सरकार ऐसी कार्यवाही करने से पूर्व, पंचायत समिति को, स्पष्टीकरण हेतु युक्तियुक्त अवसर देगी।[21] इसी प्रकार अधिनियम यह व्यवस्था भी करता है कि यदि, कलेक्टर की राय मे, किसी संकल्प को इस आधार पर, कि उसके निष्पादन से मानव जीवन, स्वास्थ्य या

सुरक्षा को खतरा उत्पन्न होने की सम्भावना है या शांति भग होने की आशंका है, निलम्बन करने हेतु तत्काल कार्यवाही करना आवश्यक है तो वह लिखित आज्ञा द्वारा उस सकल्प को निलम्बित कर सकेगा और राज्य सरकार को रिपोर्ट कर सकेगा, जिसका विनिश्चय उस पर अन्तिम होगा।[22] इसी प्रसग मे राज्य सरकार को यह अधिकार भी है कि कलेक्टर द्वारा सकल्प को निलम्बित करने के मामले का रिकार्ड वह अपने यहा मगवाकर जाच कर सकती है और उसके बारे मे स्वय के विश्लेषण के पश्चात जो उचित समझे वैसी आज्ञा दे सकती है। यदि उस आज्ञा से पचायत समिति पर कोई विपरीत प्रभाव पड़ता है तो उस पचायत समिति को स्पष्टीकरण का एक अवसर देने के पश्चात ही ऐसी आज्ञा दी जायेगी।[23]

पचायती राज सस्थाओ द्वारा जो सकल्प पारित किये जाते हैं उनके सबध मे यदि कोई कानूनी मतभेद हो तो उस पर अन्तिम निर्णय करने की शक्ति राज्य सरकार को दी गयी है। पचायत समितियो के प्रस्तावो के सन्दर्भ मे तो निरस्तीकरण की कार्यवाही, उनके नियम विरुद्ध होने पर, राज्य सरकार को प्रदान की गयी है किन्तु जिला परिषद के प्रस्तावो को निरस्त करने के सबध मे अब तक राजस्थान मे जिलाधीशों ने सरकार को सुझाव प्रेषित करने मे अनुशासन का ही परिचय दिया है। राज्य सरकार द्वारा इस सबध मे जो रुझान स्पष्ट किया है उससे यह प्रतीत होता है कि इन सस्थाओ द्वारा पारित सकल्पो के नियम विरुद्ध होने के परिवादो पर राज्य सरकार सतर्क होकर जाच करती है और बहुत ही आवश्यक होने पर इन प्रस्तावो को निलम्बित कर निरस्त करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करती है।

संस्थाओं को निलम्बित एव भग करना

पचायती राज सस्थाओ को उनके कार्य निष्पादन मे शिथिल या असफल रहने के कारण राज्य सरकार पचायती राज अधिनियम के अन्तर्गत भग कर सकती है। इस सबध मे राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम निम्नांकित परिस्थितियो मे इन सस्थाओ को अधिक्रमण या विघटन किये जाने के लिए राज्य सरकार को अधिकार प्रदान करता है

1. अपनी शक्तियो का प्रयोग करने मे या अपने कर्तव्यो का पालन करने मे असफल रहने पर, या
2. उसने इस अधिनियम या अन्य किसी प्रवर्तित कानून के द्वारा या उनके अधीन दी गयी शक्तियों मे से किसी का अधिक प्रयोग किया है या उनका दुरुपयोग किया है।

उपरोक्त दोनों परिस्थितियों में पचायत समिति या जिला परिषद की असफलता, अतिरेक या दुरुपयोग को दूर करने के लिए या उसे संतोषजनक स्पष्टीकरण करने के लिए राज्य सरकार उस पचायत समिति या जिला परिषद को निर्देश देती है और ऐसे निर्देश की पालना न किये जाने पर उस संस्था को अधिकतम एक वर्ष के लिए अधिक्रमित कर सकती है या निश्चित तिथि से उसे विघटित करने का आदेश दे सकती है। इस प्रकार इन संस्थाओं को अधिक्रमित या विघटित करने की, राज्य सरकार की शक्ति एक प्रकार से इन संस्थाओं पर नियन्त्रण की अन्तिम शक्ति है जिसका प्रयोग राज्य सरकार कर सकती है।

3. तकनीकी नियन्त्रण

पचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार का तकनीकी परिवर्तन लाना सरकार का एक प्रमुख उद्देश्य रहता है। भारत वर्ष चूंकि कृषि प्रधान देश है जिसकी कृषि की व्यवस्था सीधी पुरानी तकनीक पर आधारित रहती है। इसलिए भारत वर्ष की प्रगति की कोई भी कल्पना तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि उसकी कृषि की आधारभूत तकनीक में उत्पादन बढाने की दृष्टि से कोई तकनीकी परिवर्तन नहीं किया जावे। सर्वप्रथम भारत वर्ष में 1952 में जब सामुदायिक विकास कार्यक्रम को लागू किया गया था कि उस समय ही यह उद्देश्य निर्धारित कर लिया गया था कि ग्रामीण क्षेत्रों की कृषि व्यवस्था को अधिक उत्पादनकारी बनाने के लिए कृषि हेतु विकसित तकनीक को अपनाना होगा। इसके पश्चात जब देश के विभिन्न राज्यों में पचायती राज की संस्थाओं का विकास हुआ तो पचायत समितियों में अनेक ऐसे प्रसार अधिकारी नियुक्त किये गये जो किसी न किसी क्षेत्र में विशेषज्ञ थे। किन्तु इन विषय-विशेषज्ञों की सेवाएं एक सामान्यज्ञ प्रशासनिक खण्ड विकास अधिकारी के अधीन रखी गयी हैं। पचायत समितियों में उस प्रकार नियुक्त तकनीकी प्रसार अधिकारी दोहरी नियन्त्रण व्यवस्था के अन्तर्गत रखे गये। तकनीकी रूप से इन अधिकारियों पर उनके विशेषज्ञ उच्चाधिकारी का और प्रशासकीय दृष्टि से उनपर खण्ड विकास अधिकारी का नियन्त्रण स्थापित किया गया। पचायती राज संस्थाओं में जो भी तकनीकी विषय विशेषज्ञ नियुक्त किये जाते हैं वे मूलत राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में सेवारत कर्मचारी होते हैं और पचायती राज की संस्थाओं में उन्हे प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त किया जाता है। राज्य सरकार अपने संबंधित विभागीय उच्चाधिकारियों के माध्यम से इन अधिकारियों पर तकनीकी नियन्त्रण का प्रयोग करती है।

भारत वर्ष के प्रशासन तन्त्र में लोकसेवा की संरचना को इस प्रकार संगठित किया हुआ है कि सामान्यज्ञ अधिकारियों को अधिक श्रेष्ठता प्रदान की गयी है और तकनीकी अधिकारियों को उनकी तुलना में कम महत्व दिया गया है। यही कारण है कि प्राय सभी तकनीकी अधिकारियों को उन विभागों में नियुक्त उच्च पदासीन सामान्यज्ञ अधिकारियों के सामान्य पर्यवेक्षण और नियंत्रण में काम करना होता है। हमारे देश की सम्पूर्ण प्रशासनिक संरचना में यह तथ्य इस प्रकार अंगीकार किया हुआ है कि जब पंचायत समिति में तकनीकी प्रसार अधिकारियों को सामान्यज्ञ अधिकारी के नियन्त्रण में कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया तो इस प्रवृत्ति का विरोध इसलिए नहीं हुआ क्योंकि जिला प्रशासन तथा अन्य उच्च प्रशासकीय संरचाओं में सामान्यज्ञ अधिकारी, परम्परागत रूप से, नियंत्रणकारी स्थिति में कार्यशील थे।

तकनीकी पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के तरीके

पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना के पश्चात ऐसी अनेक तकनीकी योजनाओं के कार्यान्वयन का दायित्व उन्हें पूर्ण रूप से या आंशिक तौर पर दे दिया गया जिनके निष्पादन के लिए पूर्व में राज्य सरकार के विभिन्न तकनीकी विभाग उत्तरदायी होते थे। इस तरह, तकनीकी विभागों के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को हस्तान्तरित तकनीकी कार्यों पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण केलिए प्राय निम्नांकित विधियों का प्रयोग किया जा रहा है :[24]

(1) योजनाओं और कार्यक्रमों के लिए तकनीकी अनुमोदन प्रदान करना

पंचायती राज की विभिन्न स्तरों पर कार्यरत तकनीकी संस्थाएं जो कार्यक्रम और योजनाएं बनाती हैं प्राय. उन सभी को राज्य की प्रशासनिक और तकनीकी स्वीकृति के लिए भेजना होता है। सरकार और उसके तकनीकी विभाग इन संस्थाओं द्वारा प्रेषित ऐसे कार्यक्रमों को तकनीकी दृष्टि से परीक्षण करने के पश्चात उन्हें स्वीकृति या अस्वीकृति प्रदान करते हैं। राजस्थान में पंचायती राज की मध्यवर्ती इकाई 'पंचायत समिति', जो कि विकास कार्यक्रमों को क्रियान्विन करने की कार्यकारी संस्था है, कोई भी ऐसा तकनीकी कार्यक्रम जिसकी लागत तीन हजार से ऊपर हो अपने स्तर पर तब तक क्रियान्वित नहीं कर सकती जब तक कि उसे राज्य सरकार के तकनीकी विभाग की स्वीकृति इस हेतु प्राप्त न हो जाये। इस प्रावधान का व्यवहार में परिणाम यह होता है कि प्राय. सभी तकनीकी कार्यक्रम जो पंचायत समिति के द्वारा तैयार किये जाते हैं उनकी लागत चूंकि तीन हजार से प्राय ऊपर ही होती है इसलिए उनकी

स्वीकृति के लिए राज्य सरकार को प्रेषित करना ही होना है। इन सस्थाओ द्वारा राज्य सरकार को जो कार्यक्रम प्रेषित किये जाते है उनके बारे मे यह अनुभव किया गया है कि इन सस्थाओ के स्तर पर तकनीकी रूप से कुशल व्यक्तियों के अभाव के कारण अच्छे कार्यक्रम नही बन पाते है। ऐसी स्थिति मे प्राथमिक रूप से जो कार्यक्रम राज्य सरकार की स्वीकृति हेतु आते हैं उनमे कुछ न कुछ परिवर्तन करने के सुझाव राज्य सरकार के तकनीकी विभाग द्वारा इन सस्थाओ को दिए जाते हैं। इस प्रक्रिया मे पचायती राज की सस्थाओं द्वारा तैयार की गयी तकनीकी योजनाओ के अनुमोदन मे काफी समय लग जाता है। इस कारण यह सुझाव विद्वत् जनो द्वारा दिया जाता रहा है कि पचायती राज सस्थाओ के स्तर पर तकनीकी रूप मे कुशल और योग्य अधिकारियो की नियुक्ति की जाये जाये जो तकनीकी योजनाओ का प्रभावी निरूपण करने म सक्षम हो सकें ताकि पचायती राज के माध्यम म ग्रामीण विकास के तकनीकी कार्यक्रमो के निरूपण और कार्यान्वयन मे किसी प्रकार का कोई विलम्ब न होने पाये।

(2) निरीक्षण, दौरे और व्यक्तिगत भ्रमण

जिन तकनीकी कार्यक्रमो का अनुमोदन राज्य सरकार के तकनीकी विभागो द्वारा पचायती राज सस्थाओ के माध्यम स कार्यान्वयन हेतु किया जाता है उनके कार्यान्वयन की स्थिति पर नियन्त्रण रखने की दृष्टि से सम्बन्धित अधिकारियो को यह अधिकार दिया गया है कि वे समय समय पर पचायती राज सस्थाओ मे निरीक्षण हेतु दौरे करें। राज्य सरकार ने इस नियन्त्रण को सटीक और प्रभावी बनाने की दृष्टि से ऐसे प्रपत्रो का निर्धारण किया हुआ है जिनको निरीक्षणकर्ता अधिकारियो को निरीक्षण के पश्चात भरना होता है। इस प्रकार के प्रपत्र राज्य सरकार या विभागाध्यक्ष के स्तर पर तैयार किये जाते हैं जिसमे उन तकनीकी परियोजनाओ के व्यवहार मे कार्यान्वयन की क्षमताओ का निरीक्षण के माध्यम से पता लगाया जाता है। ऐसे निरीक्षण और दौरे करने का अधिकार राज्य सरकार के सचिव से लेकर उसके अधीन कार्यशील विभागाध्यक्ष और क्षेत्रीय या जिला या खण्ड स्तर के अधिकारियो इत्यादि सभी को मिला हुआ है। इन अधिकारियो को एक न्यूनतम सख्या मे ऐसे दौरे करने के निश्चित प्रावधान भी किए हुए है जिनमे अधिकारियो से यह आशा की जाती है कि वे न केवल औपचारिक दौरा करेंगे अपितु क्षेत्रीय कार्यालयो मे तथा पचायती राज की सस्थाओ मे रात्रि विश्राम भी करेंगे। राजस्थान एक ऐसा प्रान्त है जिसमे पचायती राज सस्थाओ मे क्रियान्वित की जा रही तकनीकी परियोजनाओ के मूल्याकन मे इस प्रकार के अधिकारियो ने पर्याप्त रुचि दिखाई है। किन्तु

यहा यह भी उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ के वर्षों मे जो उत्साह इस प्रकार के दौरे करने मे तकनीकी अधिकारियो द्वारा प्रदर्शित किया गया था वह पश्चातवर्ती काल मे नही रह सका और इस प्रकार के निरीक्षण, भ्रमण और दौरो की सख्या मे निराशाजनक परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

(3) कर्मचारियो की सामयिक बैठकें

पचायती राज सस्थाओ मे तकनीकी कार्यक्रमो के निरूपण अथवा कार्यान्वयन हेतु जिन अधिकारियो और कर्मचारियो को नियुक्त किया हुआ है उनकी सामयिक बैठको का आयोजन भी इस प्रकार के नियन्त्रण की एक सशक्त विधा है। पचायती राज के अधिनियमो मे यद्यपि इस प्रकार की बैठको के आयोजन का कोई प्रावधान नही होने हुए भी कुछ तकनीकी विभागो के अधिकारियो की सामयिक बैठको का आयोजन किया जाता रहा है। कृषि विभाग, पशुपालन तथा सहकारिता विभाग ऐसे महत्वपूर्ण विभाग हैं जिनके प्राधिकारी पचायत समिति के स्तर पर अपने अपने विभागो के प्रसार कार्यक्रमो को गति देने कार्य करते हैं। यहा यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान मे कृषि, विभाग, पशुपालन और सहकारिता विभाग द्वारा राज्य स्तर की समस्त पचायती राज सस्थाओ मे कार्यरत तकनीकी अधिकारियो के सम्मेलन आयोजित किये जाते रहे हैं। राज्य स्तर पर आयोजित इस प्रकार के सम्मेलन दो तीन दिन तक चलते रहते हैं और उनमे जो विचार विमर्श होता है उससे राज्य भर मे तकनीकी अधिकारी और कर्मचारी एक दूसरे के विचारो से लाभान्वित हो रहे हैं। राज्य के कृषि विभाग न ऐसे विचार विमर्श के परिणाम स्वरूप राजस्थान के दूरवर्ती क्षेत्रो मे नियुक्ति प्राधिकारियो के अनुभव से पर्याप्त अनुभव ग्रहण किया है और उनके इस अनुभव के आधार पर कुछ सामान्य समस्या स्थलो को रेखाकित करते हुए भविष्य मे उन्हे दूर करने के उपायो को खोजने का प्रयत्न भी किया है। लोक प्रशासन मे सुधार की दृष्टि से सम्बन्धित तकनीकी कर्मचारियो की इस प्रकार की सामयिक बैठकों का आयोजन अपने आप मे इन कार्यक्रमो को व्यावहारिक गति देने के लिए एक अच्छा उपागम सिद्ध हो सकता है।

(4) संस्थाओ से प्रतिवेदन मांगना

राज्य स्तरीय पचायत एव विकास विभाग तथा पचायती राज के निदेशालय द्वारा राज्य की पचायती राज सस्थाओ से उनके द्वारा सम्पादित कार्यक्रमो की निष्पत्ति का प्रतिवेदन सामान्यत. मगाया जाता है। विभिन्न विभागो द्वारा ऐसे प्रतिवेदन भिन्न-भिन्न अन्तराल से मगाये जाते हैं। यह प्रतिवेदन पाक्षिक

मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक तथा कभी कभी साप्ताहिक भी होते हैं। इन प्रतिवेदनो मे सम्बन्धित सस्थाए न केवल अपने द्वारा अर्जित उपलब्धियो का ही विवरण प्रस्तुत करती है अपितु उनके माध्यम से अनुभूत समस्याओ को भी उच्चस्तरीय सस्थाओ को अवगत कराने का प्रयत्न करती है। किन्तु उच्च प्रशासनिक स्तर पर जो प्रशासकीय अकुशलता बढती जा रही है उसका परिणाम यह हुआ है कि इस प्रकार के प्रतिवेदनो मे व्यक्त विचारो का पूर्ण रूप से न तो अवलोकन किया जाता है और न ही उन अनुभवो से भविष्य मे सीखने के लिए कोई प्रयत्न होता है। यदि इस प्रकार प्रस्तुत सामयिक प्रतिवेदनो को सही तरीको से देखा जाये तो पचायती राज सस्थाओ के स्तरो पर क्रियान्वित किये जा रहे कार्यक्रमो की गुणवत्ता मे सुधार किया जा सकता है।

(5) तकनीकी अधिकारियों के वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन प्राप्त करना

जैसा कि प्रारम्भ मे उल्लेख किया चुका है, पचायती राज सस्थाओ मे जो तकनीकी अधिकारी नियुक्त होते है वे प्राय दोहरे नियन्त्रण मे कार्य करते हैं। तकनीकी रूप से वे अपने पैतृक विभाग के अधिकारियो द्वारा नियन्त्रित किये जाते हैं किन्तु प्रशासनिक दृष्टि से वे पचायत समिति अथवा जिला परिषद मे सम्बन्धित प्रशासनिक अधिकारी के नियन्त्रण मे कार्य करते है। तकनीकी विभागो के विभागाध्यक्ष द्वारा अपने विभाग के प्रतिनियुक्त किये गये अधिकारियो के वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन उन सस्थाओ से मगवाये जाते हैं जहा वे प्रतिनियुक्ति पर होते हैं। पचायत समिति के विकास अधिकारी द्वारा तकनीकी प्रसार अधिकारियो के गोपनीय प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं और उन पर विभाग के उच्च अधिकारियो द्वारा टिप्पणी लिखी जाती है। इस प्रकार के तकनीकी अधिकारियो के वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन चू कि प्रशासकीय नियन्त्रणकर्ता अधिकारियो द्वारा प्रारम्भिक रूप से भरे जाते हैं इसलिए इन कर्मचारियो को सदैव यह ध्यान रखना होता है कि क्योकि प्रत्यक्ष रूप से वे पचायत समिति या जिला परिषद मे प्रतिनियुक्ति पर हैं अत उनका यह प्राथमिक दायित्व है कि वे अपने प्रशासकीय नियन्त्रणकर्ता अधिकारी के आदेश का पालन करें। इस प्रकार जो वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन सस्थाओ मे भरकर आगे भेजे जाते हैं उनके माध्यम से उन कर्मचारियो के भविष्य मे पदोन्नति इत्यादि के अवसर निर्धारित होते हैं।

4. वित्तीय नियन्त्रण

यह सुविदित है कि वित्त किसी भी सगठन के सचालन मे ईधन का

कार्य करता है। पचायती राज सस्थाओं के सबध मे भी वित्त की भूमिका उनकी सफलता और असफलता के सदर्भ मे महत्वपूर्ण है। राज्य सरकार चूंकि पचायती राज सस्थाओ की रचना करती है इसलिए इनके कुशल कार्य सम्पादन के लिए अनुदान के रूप मे न केवल वित्तीय सहायता देती है अपितु इन सस्थाओ द्वारा किये जाने वाले करारोपण के प्रस्तावों को पूर्व स्वीकृति भी प्रदान करती है। इसी कारण राज्य सरकार इन सस्थाओ पर वित्तीय पर्यवेक्षण के माध्यम मे भी नियत्रण कर पाने मे सक्षम होती है। इन सस्थाओ के वित्तीय प्रशासन पर नियत्रण के लिए अकेक्षण विभाग एक प्रकार से ऐसा नियत्रण प्रदान करता है जिसे हम किसी बाह्य सगठन द्वारा प्रतिपादित नियंत्रण का तरीका मान सकते हैं।

राजस्थान मे पचायत समितियों तथा जिला परिषदो के प्रशासन को निर्धारित करने वाला पंचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, 1959 इन सस्थाओ के करारोपण और निधि ग्रहण की शक्ति, आय तथा व्यय, ऋण देने और लेने की शक्ति, बजट तथा लेखे और अकेक्षण अर्थात उनके लेखा परीक्षण के सम्बन्ध मे आवश्यक प्रावधान करता है। इस सबध मे ग्रामीण स्थानीय सस्थाओ के "आय-व्यय" से सबधित अध्याय मे वांछित विवरण विस्तार से दिया जा चुका है। पचायत समिति एव जिला परिषद से, विधान के अनुसार यह अपेक्षा की जाती है कि वे जो भी व्यय करेंगी उसका लेखा सधारण किया जायेगा और उस लेखा का अकेक्षण भी विस्तृत नियमो के अनुसार राज्य सरकार करायेगी। प्राय पचायती राज सस्थाओ के वित्तीय प्रशासन के सदर्भ मे भी राज्य सरकार ने उन्ही वित्तीय लेखा सधारण और अकेक्षण नियमो को लागू किया हुआ है जो राज्य सरकार की नियमित प्रशासकीय सरचना के लिए प्रवर्तित है। सबधित अधिनियमो मे इन सस्थाओ के वित्तीय प्रबध, जिसमे उनकी बैंकिग व्यवस्था के नियमन, बजट प्रशासन, लेखा और अकेक्षण तथा निधि का उपयोग सम्मिलित है, के बारे मे आवश्यक प्रावधान किये हुए हैं।[25] राजस्थान सरकार ने अधिनियम के अतर्गत इन संस्थाओ के वित्तीय प्रशासन को सुपरिभाषित नियमों के अतर्गत कार्यशील बनाये रखने के लिए आवश्यक नियम भी बनाये हैं।[26] राज्य सरकार द्वारा जो नियम इस सबध मे बनाये गये हैं उनमे ऐसे आवश्यक प्रपत्रो का निर्धारण भी किया है जिनमे इन सस्थाओ को अपने वित्त और लेखा का सधारण करना होता है। नियमो मे पचायत समिति के सन्दर्भ मे विकास अधिकारी और जिला परिषद के सन्दर्भ मे उसके सचिव को इस बात के लिए उत्तरदायी बनाया गया है। कि वे यह देखें कि उनकी सस्था द्वारा किये जा रहे व्यय का ऐसी रीति से हिसाब रखा जा रहा है कि उसके

माध्यम से समस्त आय तथा व्यय के सम्बन्ध में सही सूचना इस तरह मिल सके जैसी अधिनियम में निर्धारित की हुई है।[27] यदि इस प्रकार से सधारित किए हुए लेखे और विवरण राज्य सरकार द्वारा मगवाया जाय तो इन दोनों अधिकारियो का यह दायित्व सुनिश्चित किया गया है कि वे उन्हे तुरन्त प्रेषित करेंगे। इस प्रकार पचायत समिति एव जिला परिषद के लेखों का अकेक्षण राजस्थान लोकल फण्ड ऑडिट एक्ट, 1954 द्वारा इस एक्ट के अधीन बनाये गये राजस्थान लोकल फण्ड आडिट रूल्स, 1955 के प्रावधानो के अनुसार किया जाता है। भारत का नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक भी लेखों की परीक्षात्मक जाच कर सकता है।[28]

पचायत समिति एव जिला परिषद दोनो को नियमों मे यह निर्देश है कि वे अकेक्षण हेतु निर्मित सगठन को आवश्यक रिपोर्ट और विवरण, जो उनके द्वारा माँगा जावे, उपलब्ध करायेंगे। परीक्षक की अकेक्षण रिपोर्ट न केवल राज्य सरकार को प्रस्तुत की जाती है बल्कि उसकी एक प्रतिलिपि जिला परिषद के सम्बन्ध मे, जिला विकास अधिकारी को और पचायत समिति के सन्दर्भ मे, विकास अधिकारी को भेजी जाती है जो यह देखते हैं कि अकेक्षण रिपोर्ट मे न्यूनताओं को कैसे ठीक किया जा सकता है। ये दोनो ही संस्थायें नियमो मे निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार रिपोर्ट की अनुपालना करने के लिए बाध्य है।

राजस्थान मे राज्य सरकार द्वारा पचायती राज सस्थाओं पर वित्तीय नियन्त्रण हेतु निम्नांकित तरीके अपनाये जाते है

आय का नियमन

राजस्थान मे पचायती राज सस्थाओं के आय के समस्त स्रोतो का संबधित अधिनियमों मे प्रावधान किया हुआ है। इन सस्थाओं के द्वारा किन करो का आरोपण किया जायेगा, उन्हें राजकीय अनुदान और वित्तीय सहायता, उनकी सम्पत्ति के प्रबन्ध से आय, उधार, दान इत्यादि स्रोतो का भी अधिनियम मे वर्णन किया गया है। अधिनियम के अनुसार पचायती राज सस्थाओं को इन्हीं स्रोतो से आय हो सकती है और कोई भी सस्था उनसे भिन्न साधनो से आय नही कर सकती। यद्यपि करो के अतिरिक्त साधनो से होने वाली आय का अधिनियम मे विस्तृत वर्णन नही किया गया है और इस सम्बन्ध मे राज्य सरकार द्वारा निर्मित जिन नियमो का ऊपर उल्लेख किया गया है उन्ही के माध्यम से आय को विनियमित किया जाता है। जहा तक करारोपण की शक्ति का सम्बन्ध है उनके बारे मे अधिनियम यह स्पष्ट प्रावधान करता है कि पचायती राज की विभिन्न सस्थाएं किन-किन करो को आरोपित कर सकती है और उन्हे

आरोपण से पूर्व वे राज्य सरकार की अनुमति भी प्राप्त करती हैं। इन सस्थाओ की आय-व्यय के सम्बन्ध मे जो प्रावधान अधिनियम और नियमो मे किये गये हैं उनसे यह प्रमाणित होता है कि राज्य सरकार इन सस्थाओ की आय के साधनो का अपने द्वारा निर्धारित नियमो के अन्तर्गत सचालन होता देखना चाहती है। इस तरह इन नियमो और विनियमो के माध्यम से राज्य सरकार और उसकी प्रशासनिक इकाइया पचायती राज की सस्थाओ पर वित्तीय नियन्त्रण कर पाने मे सक्षम होती हैं।

बैंकिंग व्यवस्था का नियमन

पंचायती राज सस्थाओ की आय जिस कोष मे रखी जाती है उसके विनियमन के लिए भी अधिनियम मे प्रावधान किया गया है। ग्राम पचायत स्तर पर आमदनी चूंकि कम होती है इसलिए सरपच को आमदनी की अभिरक्षा के लिए उत्तरदायी बनाया गया है किन्तु पचायत समिति तथा जिला परिषद के स्तर पर कोष (ट्रेजरी) की व्यवस्था को लागू किया गया है। ग्राम पंचायत के सरपच के लिए भी नियमो मे यह निर्देश दिये गये हैं कि यदि उसके क्षेत्र मे कोई बैंक या पोस्ट आफिस हो तो ग्राम पंचायत से होनी वाली आमदनी को वह उसमे रखेगा।

बजट के सिद्धांतों का विनियमन

हमारी केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार की भाति ही पचायती राज सस्थाओ मे भी वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च तक होता है। इस वित्तीय वर्ष मे आय-व्यय को विनियमित करना और बजट बनाना तथा उसके प्रशासन के लिए आवश्यक प्रावधान अधिनियम के माध्यम से किये हुए हैं। राजस्थान मे अधिनियम मे बजट सम्बन्धी प्राथमिक सिद्धान्तो और रीति नीति का विवरण तथा उल्लेख कर दिया गया है। पचायती राज की तीनो ही स्तर पर कार्यरत सस्थाओ द्वारा उनका बजट तैयार करने के लिए राज्य सरकार ने नियमो मे अलग-अलग प्रपत्र निर्धारित कर दिया है और इन सस्थाओ से यह आशा की जाती है कि वे अपने बजट निर्धारित प्रपत्र मे तैयार कर उच्च स्तरीय सस्था की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करेंगी। अधिनियम में बजट अनुमान तैयार करना, उन्हें स्वीकृति देने वाली उच्चसत्ता को प्रस्तुत करना, उच्चसत्ता द्वारा उन्हें आवश्यक संशोधनो के साथ वापस लौटाना और इसी सम्बन्ध मे समय सीमा का निर्धारण कर दिया गया है। जबमे अधिनियम के माध्यम से इन सस्थाओ के बजट को विनि-

यमित करने से सम्बन्धित सिद्धातो का प्रवर्तन किया गया था तब से इन सस्थाओ द्वारा उनका पालन किया जा रहा है और प्राय सभी राज्यों मे किसी भी सस्था ने इन नियमो का विरोध भी नही किया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इन सस्थाओ के बजट को नियन्त्रण करने के माध्यम से सरकार को इन सस्थाओ के काम काज पर नियन्त्रण करने के व्यापक अधिकार मिल जाते हैं।

लेखों का संधारण

पचायती राज अधिनियमो के माध्यम से राज्य सरकारो को यह शक्ति प्रदान की गयी है कि वे इन सस्थाओ के आय-व्यय के लेखो का सधारण करने के लिए आवश्यक रीति नीति का निर्धारण कर सकती हैं। जैसा कि पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है, राजस्थान के अधिनियम के माध्यम से लेखो के निर्धारण के लिए जो शक्ति राज्य सरकार को दी गई है राज्य सरकार ने उसका प्रयोग करते हुए इस हेतु नियम बनाये हैं और इन नियमो मे ऐसे आवश्यक प्रपत्र विनिश्चित कर दिये गये हैं जिन प्रपत्रो मे पचायती राज की सस्थाओ को अपने आय और व्यय के लेखो का विवरण रखना अपेक्षित होता है। ऐसी व्यवस्था इसलिए की जाती है ताकि सम्पूर्ण राज्य मे पचायती राज की समस्त इकाईयो के द्वारा आय-व्यय का जो विवरण रखा जाये उसमे एकरूपता बनी रह सके। राजस्थान में जो नियम इस हेतु बनाये गये है उनमे इन सस्थाओ के रोकड के विनियमन, रसीद बुको के हिसाब, प्रतिभूति तथा कर्मचारियो के वेतन और भत्ते, राशि के स्थानातरण और अग्रिम, निर्माण कार्यों पर व्यय, राजस्व का प्रत्यायोजन, स्थाई अग्रिम, भण्डार मे सामान की खरीद, सके भौतिक सत्यापन इत्यादि के बारे मे प्रावधान किया गया है।[20]

अकेक्षण

वित्तीय नियन्त्रण की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते समय, पूर्व पृष्ठो मे, यह विवरण दिया जा चुका है कि राजस्थान मे पचायती राज सस्थाओ के लेखो का अकेक्षण (आडिट) करने के लिए पृथक अधिनियम राज्य के विधान मण्डल ने पारित किया है और उसके अन्तर्गत राज्य सरकार ने नियम निर्धारित किये हैं जिनके अनुसार इन सस्थाओ का अकेक्षण सम्पादित किया जाता है। अकेक्षण या लेखा परीक्षण के माध्यम से इन सस्थाओ के कार्यों मे रह गयी कमी का ज्ञान होता है और उनमे हो रही अनियमितताओ को दूर करने का अवसर मिलता है।

इन सस्थाओ के लेखो का नियमानुसार जो अकेक्षण किया जाता है उसके माध्यम से तथा इन संस्थाओ के लेखो पर अचानक किये गये निरीक्षण

के माध्यम से प्रभावी पर्यवेक्षण और नियन्त्रण कर पाना सम्भव होता है। राजस्थान में स्थानीय वित्त अंकेक्षण विभाग इन संस्थाओं के लेखों का शत प्रतिशत अंकेक्षण करता है और भारत का नियन्त्रण और महालेखा परीक्षक नमूने के तौर पर कुछ परीक्षण करता है। वार्षिक लेखों के अंकेक्षण के साथ साथ जो परियोजनाएं और कार्यक्रम इन संस्थाओं को कार्यान्वयन हेतु हस्तान्तरित किये जाते हैं उनका भी अंकेक्षण किया जाता है। अंकेक्षण के माध्यम से इन संस्थाओं की परिसम्पत्तियों तथा दायित्वों का विवरण भी उच्च सत्ता को प्रेषित किया जाता है। पंचायती राज की सभी संस्थाओं के द्वारा जिन निर्धारित प्रपत्रों में लेखा रखा जाता है उनका नियमानुसार अंकेक्षण करना अंकेक्षण विभाग का दायित्व है। इस कार्य में विगत वर्षों में कुछ अन्तर्निहित असंगतियां उत्पन्न हो गयी प्रतीत होती हैं जिसके कारण अंकेक्षण का यह कार्य अपना वांछित प्रभाव नहीं छोड़ पा रहा है। जो अंकेक्षण प्रतिवेदन संस्थाओं को अनुपालना हेतु प्रेषित किये जाते हैं, संस्था के स्तर पर उनकी अनुपालना में कोई तत्परता नहीं दिखाई जाती है, इस कारण स्थिति बहुत असन्तोषप्रद बनती चली जा रही है।

नियन्त्रण के सम्बन्ध में सादिक अली समिति के विचार

राजस्थान सरकार द्वारा इन संस्थाओं की कार्य प्रणाली की समीक्षा हेतु 1964 में नियुक्त सादिक अली समिति ने अपनी रिपोर्ट में अंकित किया है कि इन संस्थाओं में अधिकारों का दुरुपयोग, धन का दुरुपयोग तथा वित्तीय एवं कार्य पद्धति सम्बन्धी अनियमितताओं को सामने लाया गया है। समिति का विचार था कि अनुचित कार्य संचालन और शक्ति के दुरुपयोग के कारण, चाहे बहुत थोड़ा ही क्यों न हो, इन संस्थाओं से लोगों में विश्वास की कमी हुई है। संस्थाओं के द्वारा जो गलतियां होती हैं उनके लिए दोषी व्यक्तियों को दण्ड देने हेतु यदि तत्काल कदम नहीं उठाया जाता तो ऐसे उदाहरणों का कुप्रभाव स्थाई हो जाता है। यदि गलतियों को नहीं रोका जाता और उनके लिए दण्ड नहीं दिया जाता तो सारी कार्य प्रणाली की शक्ति और प्रभावशीलता अवरुद्ध हो जाती है। इसलिए समिति ने यह अनुभव किया कि इन संस्थाओं पर नियन्त्रण और पर्यवेक्षण उनके उचित कार्य संचालन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।[30] समिति ने यह भी अंकित किया कि पर्यवेक्षण और नियन्त्रण की प्रणाली को व्यवस्थित करते समय यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि इससे इन संस्थाओं के स्वस्थ कार्य संचालन में अनावश्यक बाधा उत्पन्न न हो और इन संस्थाओं के स्वतंत्र सूझबूझ और पहल करने की प्रवृत्ति को कोई आघात न लगे। समिति ने नियन्त्रण और पर्यवेक्षण के सम्बन्ध में तत्समय प्रचलित प्रावधानों को निम्नांकित कारणों से अपूर्ण एवं अनुपयुक्त माना था :[31]

1. नियन्त्रण एव देखरेख के अधिकार राज्य स्तर पर केन्द्रित हैं। आम तौर पर तुरन्त कार्यवाही करना इसके कारण कठिन हो जाता है। जब तक कार्यवाही होती है तब तक स्थिति बिल्कुल भिन्न हो जाती है।

2. इस समय निर्वाचित प्रतिनिधियो के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधिकार राज्य सरकार में निहित हैं। इस स्थिति में भी, विलम्ब तथा कार्यभार के कारण तत्काल कार्यवाही नही हो पाती।

3 प्रकेक्षण के लिए जो व्यवस्था है वह निरन्तर मार्गदर्शन देने तथा रोक-थाम रखने की सुनिश्चितता की दृष्टि से अपर्याप्त सिद्ध हुई है। प्रकेक्षण आक्षेपो की पूर्ति तथा अनियमितताओं के सम्बन्ध में कार्यवाही की प्रगति धीमी रही है।

इसलिए समिति की राय यह थी कि नियन्त्रण एव पर्यवेक्षण की पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिससे एक ओर निरन्तरता सुनिश्चित हो सके तथा दूसरी ओर तत्काल सही सुधारात्मक कार्यवाही हो सके। निर्वाचित प्रतिनिधियो पर अनुशासनात्मक नियन्त्रण के जो अधिकार राज्य सरकार को दिए गये है उससे राज्य सरकार पर पक्षपात पूर्ण व्यवहार के आरोप लगते रहे है और इससे कार्यवाही मे विलम्ब होता है। इसलिए यह उचित होगा कि अनुशासनात्मक कार्यवाही की शक्ति और नियन्त्रण के अधिकार हेतु किसी स्वतन्त्र सस्था का गठन कर दिया जाये।

स्वतन्त्र सस्था . जिला एवं राज्य न्यायाधिकरण

समिति ने अनुशसा की कि पचायती राज सस्थाओ पर नियन्त्रण एव पर्यवेक्षण के लिए तथा इससे सम्बन्धित मुद्दो पर तत्काल एव प्रभावपूर्ण कार्यवाही करने के लिए जिला स्तर पर जिला न्यायाधिकरण का गठन किया जाना चाहिए। इस न्यायाधिकरण मे जिला परिषद के प्रमुख, जिलाधीश और राज्य सरकार द्वारा नियुक्त न्यायिक सदस्य होने चाहिए। यह न्यायिक सदस्य जिला एव सत्र न्यायाधीश के स्तर का होना चाहिए। राज्य सरकार द्वारा इस प्रकार के न्यायिक सदस्य की नियुक्ति किसी एक जिला या जिला समूह के लिए की जा सकती है। न्यायाधिकरण का न्यायिक सदस्य इसके अध्यक्ष कार्य भी करेगा तथा जिला परिषद का मुख्य कार्यपालक अधिकारी सचिव के रूप मे कार्य करेगा। यह न्यायाधिकरण पचायत के पच, सरपच न्याय पचायतो के सदस्य और अध्यक्ष तथा पचायत समिति के सदस्यो के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही, सदस्यो की

अयोग्यताओं को सुनिश्चित करने और तद्विषयक आवश्यक आदेश देने, अनुशासनात्मक आदेशों के विरुद्ध अपील सुनने इत्यादि का कार्य करेगा।

इसी प्रकार राज्य स्तर पर भी एक राज्य न्यायाधिकरण का गठन किया जाये जिसमे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्तर का एक न्यायिक सदस्य, विकास आयुक्त और राज्य पचायती राज सलाहकार परिषद द्वारा मनोनीत सदस्य, होगे। इस न्यायाधिकरण के सचिव के लिए राज्य प्रशासनिक सेवा का एक अधिकारी विशेष रूप से नियुक्त किया जाये। यह न्यायाधिकरण जिला परिषद के प्रस्तावो की जाच और उन पर कार्यवाही, पचायत समिति के प्रधान और जिला परिषद के सदस्य तथा प्रमुख के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही, जिला न्यायाधिकरणो के आदेशो के विरुद्ध अपील की सुनवाई, जिला परिषद के सदस्यो व प्रमुख की अयोग्यताओं का निर्धारण तथा जिलाधीश और स्थानीय निधि लेखा परीक्षक द्वारा पारित आदेशो के विरुद्ध अपील की सुनवाई इत्यादि का कार्य करेगा।

समिति ने सुझाव दिया कि किसी पचायत समिति अथवा जिला परिषद को निलम्बित करने, अधिक्रमित करने अथवा विघटन करने का अधिकार राज्य सरकार मे निहित रहना चाहिए। यद्यपि इस अधिकार का प्रयोग करते समय राज्य सरकार को जिला न्यायाधिकरण और राज्य न्यायाधिकरण से परामर्श कर लेना चाहिए। राज्य सरकार को जिला परिषद अथवा पचायत समिति अथवा जिलाधीश के दिए गये आदेशों पर पुनर्विचार करने और उनमे सशोधन करने के अधिकार होने चाहिए।

अकेक्षण व्यवस्था को सशक्त बनाने के लिए भी समिति ने विचार किया था। समिति ने सुझाव दिया कि स्थानीय निधि अकेक्षण के सहायक परीक्षक की व्यवस्था एक जिले के लिए या जिलो के समूहो के लिए अलग से होनी चाहिए। सहायक परीक्षक के पश्चात पर्याप्त सख्या मे अकेक्षण दल होना चाहिए ताकि प्रत्येक जिला परिषद और पचायत समिति का वर्ष मे दो बार और पचायत का एक बार अकेक्षण किया जा सके। इस सम्बन्ध मे सहायक परीक्षक को जिलाधीश से निकट सम्पर्क कर अकेक्षण रिपोर्ट के अनुपालन मे अधिकार और कर्तव्यो का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए। पचायत और पचायत समितियो के अकेक्षण सम्बन्धी प्रतिवेदन की अनुपालना के अधिकार जिलाधीश को सौंपे जाने चाहिए। इस सम्बन्ध मे अधिकार राज्य सरकार के पास होने का परिणाम यह होता है कि अकेक्षण आक्षेपो और अनियमितताओं को तत्काल दूर नही किया जाता है। यदि यह अधिकार जिलाधीशो को दे दिया जाये तो वे उस पर अनु-

धर्ती कार्यवाही कराने में अधिक सक्षम हो सकेंगे। पंचायत राज संस्थाओं में गैर कानूनी ढंग से भुगतान करने या संस्थाओं को अपनी लापरवाही व दुराचरण के कारण हानि पहुंचाने के जिम्मेदार कर्मचारी पर कार्यवाही करने का अधिकार विकास आयुक्त के पास है। इस सम्बन्ध में समिति ने सुझाव दिया कि पंचायत और पंचायत समिति के मामले में ऐसी कार्यवाही का अधिकार जिलाधीश को और जिला परिषद के मामले में स्थानीय निधि लेखा परीक्षक को हस्तान्तरित किया जाना चाहिए। ऐसे आदेश के विरुद्ध राज्य न्यायाधिकरण अथवा दीवानी अदालत में तीस दिन के भीतर अपील का प्रावधान भी हो सकता है।

गिरधारी लाल व्यास समिति के विचार

पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकरण की समीक्षा के लिए राजस्थान सरकार ने 8 नवम्बर, 1971 को एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन तत्कालीन प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष गिरधारी लाल व्यास की अध्यक्षता में किया था। इस समिति में पंचायती राज के अनुभवी राजनीतिज्ञ-सांसद, विधायक, जिला प्रमुख, प्रधान, प्रशासक और राजस्थान विश्वविद्यालय के एक अनुभवी शिक्षक, सदस्य बनाये गये थे। समिति ने 1973 में अपना जो प्रतिवेदन राज्य सरकार को प्रस्तुत किया उसमें यह मत व्यक्त किया कि पूर्व में सादिक अली समिति द्वारा पंचायती राज संस्थाओं पर नियन्त्रण और पर्यवेक्षण सम्बन्धी जो टिप्पणियां और अनुशंसाएं की गयी थी उनके लिए उत्तरदायी परिस्थितियां आज भी विद्यमान रहने के कारण हम उनसे तो सहमत हैं ही, साथ ही उन्होंने कुछ और भी सुझाव दिए जो इस प्रकार हैं [32]

1. वर्तमान में पंचायती राज संस्थाओं में कार्य करने वाले दोषी अधिकारियों व कर्मचारियों के विरुद्ध कार्यवाही का अधिकार जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में निहित किया गया है जिससे अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। इस सम्बन्ध में समस्त संस्थाओं पर एक ही तरीके का नियन्त्रण किया जाना चाहिए ताकि कोई भ्रम, आशंका और पक्षपात की संभावना न रहे।
2. पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के वर्तमान प्रावधान अपूर्ण और अप्रभावी हैं अर्थात जिला विकास अधिकारी पंचायती राज संस्थाओं पर नियन्त्रण करने वाले प्रभारी अधिकारी हैं किन्तु कानून में इस अधिकारी के अधिकारों के बारे में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं किये गये हैं।
3. समिति ने सादिक अली समिति द्वारा जिला न्यायाधिकरण और राज्य न्यायाधिकरण स्थापित करने के सुझाव से सहमति व्यक्त नहीं की।

समिति का विचार था कि ऐसे न्यायाधिकरणों की बैठकें आयोजित करना ही अपने आप में एक समस्या होगी इसलिए नियन्त्रण और पर्यवेक्षण के अधिकारों पर अधिक सशक्त तरीकों से प्रत्यायोजन और विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में अपने प्रतिवेदन में समिति ने अनेक सूक्ष्म सुझाव अंकित किये हैं।[33]

इस सम्पूर्ण विवरण से एक तथ्य स्पष्ट तौर पर परिलक्षित होता है कि पंचायती राज संस्थाओं के कुशल कार्यकरण को सुनिश्चित करने में राजकीय नियन्त्रण की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। किन्तु अनुभव यह दर्शाता है कि राज्य में पदासीन सरकार राजनीतिक कारणों से पंचायती राज संस्थाओं के साथ उचित व्यवहार नहीं कर सकी है। इन संस्थाओं के चुनाव कराने में राज्य सरकारों ने अन्तर्निहित राजनीतिक कारणों से अनावश्यक विलम्ब किया है। यही नहीं पदासीन राज्य सरकार ने पंचायत समिति तथा जिला परिषद के पदाधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने में राजनीतिक भेदभाव भी दर्शाया है। इन दोनों ही कारणों से पंचायती राज की संस्थाओं के कुशल कार्यकरण में न केवल बाधा उपस्थित हुई है अपितु जनता में यह धारणा भी बनी है कि इन संस्थाओं को सही तरीके से काम करने देने में राज्य सरकार की स्वयं की कोई अधिक गम्भीर रुचि नहीं है। यदि लोकतन्त्र के आधार को सशक्त बनाना है और राजनीतिक सत्ता का सबसे नीचे के स्तरों पर हस्तान्तरण करना अभीष्ट है तो इन संस्थाओं के कुशल कार्यकरण को निश्चित करने के लिए राजनीतिक सहमति के आधार पर कुछ सुनिश्चित मानदण्डों का विकास किया जाना बहुत आवश्यक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब तक इन संस्थाओं के कामकाज पर उच्चतर संस्थाओं का, जिसमें राज्य सरकार भी सम्मिलित है, पर्याप्त और प्रभावी नियन्त्रण स्थापित नहीं किया जायेगा तबतक ये संस्थाएं न तो लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीयकरण का सटीक माध्यम बन सकेंगी और न ही जन आकांक्षाओं की पूर्ति कर पायेंगी।

सन्दर्भ

1. पंचायत एवं विकास विभाग, राजस्थान सरकार, पंचायती राज अध्ययन दल की रिपोर्ट, 1964 पृ. 185

2 इक्बाल नरायण, सुशील कुमार, पी. सी. माथुर एण्ड एसोसिएट्स, पचायती राज एडमिनिस्ट्रेशन–ओल्ड कन्ट्रोल्स एण्ड न्यू चेलेन्जेज, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, 1970 पृ. 46
3 उपरोक्त, पृष्ठ 49–50
4 उपरोक्त, पृष्ठ 51–55
5. उपरोक्त, पृष्ठ 60
6. श्याम लाल पुरोहित, राजस्थान पचायत कोड, खण्ड प्रथम, 1966 पृष्ठ 14
7. इकबाल नारायण एण्ड एसोसिएट्स, उपरोक्त,पृष्ठ 68
8 उपरोक्त, पृष्ठ78
9. उपरोक्त, पृ. 79
10. राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद, अधिनियम 1959, धारा 59 एव 69
11. इकबाल नारायण एव अदर्स, पूर्वोक्त, पृष्ठ 103–04
12. उपरोक्त, पृ. 96
13 राजस्थान पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, 1959, धारा 66 (क)
14 उपरोक्त, 66 (क) (1)
15. उपरोक्त, 66 (क)(2)
16. उपरोक्त, 66 (क) (3)
17. पचायत समिति के सन्दर्भ मे योग्यताओ का विवरण अधिनियम की धारा15 मे और जिला परिषद के सन्दर्भ मे ऐसे प्रावधान धारा 47 मे किये गये हैं।
18. अधिनियम की धारा 17 (6)
19 विस्तृत विवरण के लिए देखें–श्री कृष्ण दत्त शर्मा एव सुनीता दाधीच, राजस्थान पंचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, एवन एजेंसीज, जयपुर, 1983 पृ 84–85
20. अधिनियम की धारा 66 (1)
21. उपरोक्त, धारा 66(2)
22 उपरोक्त, धारा 66 (3)
23 उपरोक्त, धारा 66 (4)
24. इक्बाल नारायण एण्ड अदर्स, पूर्वोक्त, पृष्ठ 112

25. पचायत समिति की निधि, बजट, ऋण देने की शक्ति, लेखा तथा अंकेक्षण के सम्बन्ध मे आवश्यक प्रावधान अधिनियम की धारा 35 से 38 तक किये गये हैं।
26. विस्तृत अध्ययन हेतु दृष्टव्य, दत्त एवं दाधीच, पूर्वोक्त, द्वितीय खण्ड, पृ 100–248
27. वित्तीय लेखा तथा बजट नियम, 1959, सग्रहित दत्त एव दाधीच, पूर्वोक्त, खण्ड 2, पृ. 122–23
28. वित्तीय लेखा तथा बजट नियम, 1959, नियम संख्या 104, सग्रहित दत्त एव दाधीच, पूर्वोक्त, पृ. 124.
29. विस्तृत अध्ययन हेतु दृष्टव्य, दत्त एव दाधीच पूर्वोक्त, पृ. 114–122
30. पंचायती राज अध्ययन दल की रिपोर्ट, पचायत एवं विकास विभाग, राजस्थान सरकार, 1964, पृ. 185.
31. उपरोक्त,
32. रिपोर्ट आफ दी हाइ पावर कमेटी आफ पचायती राज सामुदायिक विकास एव पचायत विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर, 1973 पृ. 121–24.
33. विस्तृत अध्ययन हेतु दृष्टव्य, उपरोक्त प्रतिवेदन।



17

नगरीय स्थानीय संस्थाओं का निदेशालय

नगरीय स्थानीय संस्थाओं पर राज्य के नियन्त्रण से सम्बन्धित अध्याय 15 में, इन संस्थाओं पर राज्य के नियन्त्रण की वर्तमान स्थिति और उसकी प्रकृति के बारे में विस्तार से विचार किया जा चुका है। इसमें नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियन्त्रण की विभिन्न विधियों का विवरण दिया जा चुका है तथापि प्रशासकीय नियन्त्रण के अधीन निदेशालय द्वारा किये जा रहे नियंत्रण को पृथक से विश्लेषण किये जाने हेतु छोड़ दिया गया था। प्रस्तुत अध्याय में नगरीय स्थानीय संस्थाओं पर स्थानीय स्वायत्त शासन निदेशालय द्वारा किये जा रहे संस्थागत नियंत्रण की प्रकृति और उपागमों तथा उनकी सीमाओं का विश्लेषण किया जा रहा है। स्थानीय स्वायत्त शासन के सैद्धान्तिक विश्लेषण को स्पष्टता देने की दृष्टि से राजस्थान में कार्यरत निदेशालय का उदाहरण के रूप में प्रयोग किया जा रहा है।

भारत भर में नगरीय स्थानीय शासन की राज्य स्तरीय नीतियों का निर्धारण करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक स्थानीय स्वायत्त शासन विभाग होता है। कुछ राज्यों में राज्य स्तरीय इस अभिकरण को नगरीय विकास एवं आवासन विभाग के नाम से भी जाना जाता है। यह विभाग एक कैबीनेट स्तरीय मन्त्री के अधीन कार्य करता है जिसकी सहायता के लिए राज्य मन्त्री भी नियुक्त किया जाता है। विभाग के प्रशासनिक ढाचे के शीर्ष पर भारतीय प्रशासनिक सेवा का एक वरिष्ठ लोक सेवक "सचिव" के रूप में नियुक्त किया जाता है। सचिव की सहायता के लिए आवश्यकतानुसार प्रत्येक राज्य में उप सचिव, सहायक सचिव या अवर सचिव नियुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार गठित यह सचिवालय स्तरीय

स रचना राज्य मे नगरीय विकास और तत्सम्बन्धी शासन की नीति के निर्धारण का कार्य करने के लिए उत्तरदायी होती है। राज्य मे नगरीय विकास से सबंधित नीतियो का निर्माण, सम्बन्धित मन्त्री से आवश्यक परामर्श और राज्यमन्त्रि परिषद मे उस नीति का अनुमोदन करने के लिए आवश्यक व्यवस्था तथा आधार तैयार करना सचिवालय के नगरीय विकास विभाग का मूल दायित्व होता है। यह स रचना नगरीय विकास एव शासन से सम्बन्धित प्रस्तावित विधेयकों का प्रारूप तैयार करवा कर उसे विधान मण्डल से पारित करवाने तक का दायित्व निभाती है। सचिवालय मे स्थित इस स्वायत्त शासन विभाग द्वारा राज्य की समस्त नगरीय स स्थाओ के कार्यकलापो के लिए अपने मन्त्री के माध्यम से विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह भी किया जाता है।

दूसरी ओर, नगरीय स स्थाओ पर प्रशासकीय नियन्त्रण रखने वाला एक राज्य स्तरीय अभिकरण निदेशालय (स्थानीय स्वायत्त शासन) होता है। इस निदेशालय का मुख्य उद्देश्य यह निश्चित करना होता है कि नगरीय शासन के लिए सचिवालय स्तर पर जिन नीतियो का निर्धारण किया गया है उनका राज्य की नगरीय स स्थाओ द्वारा सही ढग से क्रियान्वयन हो रहा है। इस तरह निदेशालय, राज्य के नगरीय निकायो पर नियन्त्रण व पर्यवेक्षण की नीति निर्धारण करने वाला प्रशासनिक स गठन है। राज्य का नगरीय विकास विभाग या स्वायत्त शासन विभाग राज्य मे नगरीय स स्थाओ के लिए जिन नीतियो का निरूपण करता है उनके कार्यान्वयन हेतु वह उन नीतियो को निदेशालय को भेज देता है। निदेशालय भी यद्यपि कोई कार्यान्वियनकारी स स्था अपने आप मे नही है तथापि यह एक ऐसी पर्यवेक्षणकारी व नियन्त्रणकारी प्रशासनिक स स्था है जो उन नीतियो के राज्य की नगरीय स स्थाओ द्वारा कार्यान्वियन की प्रगति पर प्रभावी पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करती है। भारत भर मे जिन राज्यो में स्थानीय स्वायत्त शासन के निदेशालय की स्थापना हुई है उनमे केवल राजस्थान ही एक ऐसा राज्य है जिसमे निदेशालय की स्थापना 1951 मे ही कर दी गयी थी।[1] आन्ध्रप्रदेश ऐसा दूसरा राज्य था जहा कि इस निदेशालय की स्थापना 1961 मे की गई।[2] यद्यपि इन दोनो राज्यों मे निदेशालय की स्थापना के बीच के इन दस वर्षों मे, देश भर मे विभिन्न क्षेत्रो मे निदेशालय की स्थापना के कार्य मे विचार विमर्श होता रहा। इसी सन्दर्भ मे पजाब स्थानीय शासन (नगरीय) जाच समिति 1957 ने स्थानीय शासन के निदेशालयकी स्थापना के समर्थन मे निम्नाकित तर्क दिए :[3]

1. समिति की मान्यता थी कि स्थानीय निकायो के कार्यकलापो का पर्यवेक्षण करने और राज्य सरकार को नगरीय शासन के स बध मे नीतियो

तथा कार्यक्रम के निरूपण में सलाह देने के लिए स्थानीय निकाय निदेशालय की स्थापना की जानी चाहिए।

2. निदेशालय की स्थापना नगरपालिका विधि तथा अन्य संवैधानिक नियमों, आदेशों इत्यादि की परिपालना को सुनिश्चित करने के लिए की जानी चाहिए।
3. सभी विषयों के लिए आदर्श उपविधियों का विकास करना तथा स्थानीय निकायों को मानक योजना प्रदान करना और
4. स्थानीय निकायों द्वारा प्रारम्भ की गयी विकास परियोजनाओं तथा निर्माण कार्यों पर पर्यवेक्षण और उस प्रक्रिया में जो कठिनाई आये उन्हें दूर करने के लिए स्थानीय निकाय निदेशालय की स्थापना की जानी अपेक्षित है।

इसी प्रकार मध्यप्रदेश नगरीय स्थानीय स्वशासन समिति (1959) का भी विचार था कि स्थानीय निकायों का प्रत्यक्ष रूप से पर्यवेक्षण और मार्गदर्शन करने के लिए एक स्थानीय निकाय निदेशालय स्थापित करने की आवश्यकता अपरिहार्य है।[8]

ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति ने भी अभिशंसा की थी कि राज्य स्तर एक ऐसा सुसंगठित निदेशालय, जिसका प्रभावकारी क्षेत्रीय निरीक्षक वर्ग हो, स्थानीय निकायों के पर्यवेक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण व्यवस्था को सुधारने में बहुत कुछ सहायक होगा। उसे चाहिए कि स्थानीय निकायों को उनकी वर्तमान तथा भविष्य की समस्याओं को हल करने में मार्गदर्शन तथा सहायता प्रदान करे और सम्बद्ध विभागों के समक्ष उनके पक्ष का समर्थन करे।[9]

इस प्रकार, उपरोक्त विवरण में जिन समितियों की अनुशंसाओं का उल्लेख किया गया है उनके आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि स्थानीय निकायों के लिए निदेशालय की स्थापना का सुझाव आम तौर पर इसलिए दिया गया है ताकि निदेशालय उन परियोजनाओं के, कार्यान्वयन को सुनिश्चित कर सके जो या तो केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रवर्तित की जाती है या राज्य सरकार द्वारा वित्त पोषित होती हैं। कुल मिलाकर 1951 में राजस्थान में स्थापित स्थानीय निकायों के निदेशालय के पश्चात देशभर में विभिन्न राज्यों में नियुक्त विभिन्न समितियों और केन्द्रीय स्तर पर नियुक्त समिति ने यह सुझाव प्रस्तुत किया कि राज्यों में कार्यरत नगरीय स्थानीय संस्थाओं के सुव्यवस्थित कार्यकरण को गति प्रदान करने की दृष्टि से उन पर श्रेष्ठतर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के लिए स्थानीय शासन निदेशालय की स्थापना की जानी चाहिए।

राजस्थान मे निदेशालय

स्वतन्त्रता के पश्चात राजस्थान मे 1949 मे मुख्य पर्यवेक्षक (जिला बोर्ड कार्यालय व नगरपालिका) नामक प्राधिकारी की नियुक्ति जिला बोर्ड व नगरपालिकाओ के नियमन व पर्यवेक्षण हेतु की गयी थी। उल्लेखनीय है कि जिला बोर्ड के अन्तर्गत जिले की समस्त पचायतो को सगठित किया गया था जबकि नगरो मे प्रत्येक नगर मे जहा भी नगरपालिकाए थी उनका स्वतन्त्र अस्तित्व था। 1949 मे मुख्य पर्यवेक्षक (जिला बोर्ड कार्यालय व नगरपालिका) की स्थापना व नियुक्ति सम्पूर्ण राज्य मे कार्यरत पचायती राज सस्थाओ और नगरपालिकाओ पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के लिए की गयी थी। उस समय राज्य मे दस जिला बोर्ड और 144 नगरपालिकाए इसके नियंत्रण क्षेत्र मे कार्यरत थे।[6] 1951 मे इस विभाग का नाम परिवर्तित कर निदेशक, स्थानीय निकाय कर दिया गया।[7] स्थानीय निकायो का यह निदेशालय 1959 तक राज्य मे कार्यरत जिला बोर्डो और उसके अधीनस्थ पचायती राज की सस्थाओ तथा राज्य मे क्रियाशील समस्त नगरपालिकाओ पर नियन्त्रण और पर्यवेक्षण का कार्य करता रहा। किन्तु सन् 1959 मे जब राजस्थान मे लोकतात्रिक विकेन्द्रीकरण करते हुए पचायती राज का दीप प्रज्वलित किया गया तो इसके अनुसरण मे त्रिस्तरीय पचायती राज की सस्थाओ का प्रादुर्भाव हुआ। इस परिवर्तन के कारण 21 नगरपालिकाओ ने पचायतो मे बदलना स्वीकार किया जिसके परिणाम स्वरूप नगरपालिकाओ की सख्या घटकर मात्र 137 रह गयी और जिला बोर्ड भी समाप्त कर दिये गये।[8]

राजस्थान नगरपालिका अधिनियम 1959 का प्रवर्तन

राजस्थान मे 1959 मे प्रवर्तित नगरपालिका कानून मे नियन्त्रण से सबधित बारहवें अध्याय मे यह सकेत किया गया है कि निरीक्षण और पर्यवेक्षण से सबधित शक्तियो का उपयोग राज्य सरकार द्वारा साधारण या विशेष आदेश द्वारा नियुक्त या प्राधिकृत प्राधिकारी करेंगे।[9]

सन् 1959 मे राजस्थान नगरपालिका अधिनियम के प्रवर्तन से पूर्व राज्य मे गठित नगपालिकाएँ कई प्रकार के विधिक प्रावधानो द्वारा शासित होती थी जैसे राजस्थान टाउन/नगरपालिका अधिनियम, बीकानेर राज्य नगर पालिका एक्ट 1923 आदि। किन्तु 1959 मे उपरोक्त अधिनियम के प्रवर्तन के साथ ही राज्य सरकार ने यह सकल्प अभिव्यक्त कर दिया कि राज्य मे गठित समस्त नगरपालिकाओ को एक कानून द्वारा शासित होना चाहिए। इसी उद्देश्य से

प्रेरित होकर राज्य सरकार ने यह अधिनियम 17 अक्टूबर, 1959 को क्रियान्वित कर दिया।[10] इस अधिनियम के द्वारा पूर्व के उन सभी कानूनों और नियमों को समाप्त घोषित कर दिया गया जो इस कानून के प्रवर्तन के पूर्व राज्य के भिन्न भिन्न भागों में प्रभावी थे।

राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 में अध्याय 12 की धारा 283 से लेकर धारा 301 तक उन प्रावधानों को संकलित किया गया है जो राज्य की नगरीय संस्थाओं पर राज्य सरकार के निरीक्षण और पर्यवेक्षण से संबंधित है।

राजस्थान राज्य के निर्माण के पूर्व तत्कालीन देशी रियासतों राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों में नगरपालिकाओं के नियन्त्रण व पर्यवेक्षण हेतु राज्य स्तर पर पृथक-पृथक विभाग थे, जो इन स्वायत्तशासी इकाईयों का तत्समय प्रभावशील नगरपालिकाओं के अधिनियमों के अन्तर्गत नियन्त्रण व पर्यवेक्षण करते थे। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, 1949 में राजस्थान राज्य के निर्माण के बाद सर्वप्रथम वर्ष 1950 में जिला बोर्डों व नगरपालिकाओं के नियन्त्रण व पर्यवेक्षण हेतु राज्य स्तर पर सचिवालय में स्वायत्त शासन विभाग की स्थापना के अतिरिक्त विभागाध्यक्ष के रूप में भी मुख्य निरीक्षक (जिला बोर्ड व नगरपालिका), राजस्थान नाम से एक एकीकृत संस्थान भी स्थापित किया गया।

निदेशालय का संगठन

1951 में जब यह निदेशालय निदेशक, स्थानीय निकाय विभाग के रूप में स्थापित किया गया, तब, उपलब्ध सूत्रों के अनुसार, इसका संगठन इस प्रकार था[11]

निदेशक	एक पद
सहायक निदेशक	एक पद

निदेशालय की यह संरचना केवल अधिकारियों का संकेत करती है। निश्चय ही निदेशालय के कार्य संचालन के लिए आवश्यक मन्त्रालयिक कर्मचारी भी नियुक्त रहे होंगे किन्तु उनकी संख्या इत्यादि के बारे में उस समय की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है। वर्ष 1959 में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना के कार्यान्वित होने तक यही संरचना कार्यशील रही। 1962 में राज्य सरकार ने मितव्ययता हेतु उठाये गये कदमों के अन्तर्गत सचिवालय स्थित स्वायत्त शासन विभाग को समाप्त कर निदेशालय में ही मिला दिया व

निदेशक व उपनिदेशक क्रमश पदेन शासन उप सचिव एव अवर शासन सचिव स्वायत्त शासन भी बना दिये गये। तभी से यह विभाग निदेशालय के अतिरिक्त उपरोक्त निर्दिष्ट सचिवालय सबधी दायित्वो का सम्पादन भी करता है।[12] निदेशालय की सरचना 1964 तक इसी रूप मे जारी रही।

निदेशालय की संरचना (1964–65)

निदेशक एव पदेन उपसचिव	एक पद
सहायक निदेशक	दो पद (अस्थाई)
सहायक लेखाधिकारी	तीन पद

इन अधिकारियो के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार मत्रालयिक कर्मचारी भी निदेशालय मे कार्यरत थे। इनकी सख्या के बारे मे निदेशालय के वार्षिक प्रतिवेदन मे कोई सकेत नही मिला है। 1964–65 के वार्षिक प्रतिवेदन से यह भी विदित होता है कि 13 जनवरी, 1965 से निदेशक पद पर भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी को नियुक्त करने का निर्णय किया गया था।

1969 मे राजस्थान नगरपालिका सेवा के गठन के पश्चात निदेशालय के गठन मे किचित परिवर्तन परिलक्षित हुआ। निदेशक के पद पर भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी के स्थान पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारी की नियुक्ति की गयी। निदेशक के अलावा सहायक निदेशक के तीन पद निदेशालय के लिए स्वीकृत किये गये। इनमे से 30 अक्टूबर, 1968 के पश्चात एक पद को उप निदेशक के पद के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया। निदेशालय की लेखा शाखा के प्रभारी के रूप मे एक लेखाधिकारी और उसके अधीन आवश्यक लेखा कर्मचारी सेवारत रहे।

1974 मे निदेशालय की सरचना मे पुन. परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ है। इस वर्ष एक निदेशक के अतिरिक्त उपनिदेशक के तीन पदो और सहायक निदेशक के दो पद तथा लेखाधिकारी के एक पद पर निदेशालय मे सबधित अधिकारी कार्यशील रहे।

निदेशालय की वर्तमान सरचना (1991)

क्र. सं.	नाम पद	नाम सेवा जिससे अधिकारी सबंधित हैं	पद संख्या
1.	निदेशक	राजस्थान प्रशासनिक सेवा	1
2.	उप-निदेशक	,,	2

3.	सहायक निदेशक	राज. प्रशासनिक	1
4	क्षेत्रीय उपनिदेशक (जयपुर/जोधपुर/उदयपुर)	"	3
5.	अधीक्षण अभियन्ता	राजस्थान राज्य अभियान्त्रिकी सवा	1
6.	सहायक अभियन्ता	"	1
7.	सहायक निदेशक	राज० सांख्यिकी सवा	1
8.	लेखाधिकारी	राजस्थान लेखा सेवा	1
		योग 'अ"	11

(ब) अधीनस्थ सेवा के कर्मचारी

1	लेखाकार	राज० लेखा अधीनस्थ सेवा	2
2.	कनिष्ठ लेखाकार	"	7
3.	सांख्यिकी सहायक	राज० सांख्यिकी अधीनस्थ सेवा	1
4.	संगणक	"	2
5.	विधि सहायक	राज० विधि सेवा	1
		योग 'ब"	13

(स) मंत्रालयिक कर्मचारी

1.	कार्यालय अधीक्षक	1
2.	कार्यालय सहायक	3
3	निजी सहायक	1
4.	वरिष्ठ लिपिक	24
5	शीघ्रलिपिक	3
6	कनिष्ठ लिपिक	22
7	वाहन चालक	2
8	चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी/चौकीदार	19
	योग "स"	74

कुल योग अ+ब+स 98

निदेशालय के संगठन की दृष्टि से उपरोक्त विवरण के प्रस्तुतीकरण एवं इसके प्रारम्भिक प्रगति प्रतिवेदनो के अवलोकन से यह तथ्य उद्घटित होता है कि स्वायत्त शासन निदेशालय की जब प्रारम्भ मे स्थापना हुई तो इसमे मात्र एक निदेशक तथा एक सहायक निदेशक का पद ही सृजित किया गया था। प्रारम्भिक वर्षों में इसमे कार्यरत कर्मचारियो की संख्या अत्यधिक न्यून थी किन्तु जैसे जैसे इसके नियन्त्रण मे आने वाली स्थानीय नगरीय संस्थाओ की संख्या मे विस्तार हुआ, कर्मचारियो की संख्या मे भी वृद्धि दृष्टिगोचर हुई है। इसमे आवश्यकतानुसार समय-समय पर पद सृजित किये गये तथा कतिपय पदो को समाप्त भी किया जाता रहा है। किन्तु, अब पिछले लगभग एक दशक से जिन पदो का सृजन किया गया है उनमे एक स्थायित्व की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई है।

इसके पूर्व कि निदेशालय की आन्तरिक प्रशासनिक संरचना के अन्तर्गत निदेशालय मे कार्यरत विभिन्न अनुभागो के दायित्वो का विवरण प्रस्तुत किया जाये, यह आवश्यक है कि निदेशालय के मुख्यालय पर अधिकारियो की जो शृंखला है उनके पद और दायित्वो का संक्षिप्त विवरण प्राप्त कर लिया जाय।

निदेशक एवं पदेन उपसचिव, स्वायत्त शासन विभाग

इस निदेशालय का शीर्षस्थ अधिकारी निदेशक है जो निदेशक के साथ साथ सचिवालय स्थित स्वायत्त शासन विभाग के पदेन उप सचिव का दायित्व भी निभाता है। इस दोहरे उत्तरदायित्व के कारण इस अधिकारी की भूमिका अत्यन्त चुनौती भरी एवं महत्वपूर्ण हो जाती है। इस पद पर नियुक्त किये गये अधिकारी कभी भारतीय प्रशासनिक सेवा संवर्ग से लिए गये हैं तो कभी राजस्थान प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारियो को इस पद पर नियुक्त किया जाता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार ने इस पद पर नियुक्ति के लिए सेवा संबंधी अनिवार्यता के स्थान पर संबंधित अधिकारी के स्वायत्त शासन से संबंधित कार्यानुभव को अधिक महत्व दिया है। इसलिए ऐसे अधिकारी जिन्हे इस क्षेत्र मे कार्य करने का पूर्व अनुभव हो, वह चाहे भारतीय प्रशासनिक सेवा का हो या राज्य प्रशासनिक सेवा का इस पद पर पदासीन किया जाता रहा है। इस पद पर नियुक्त किये गये प्राधिकारी का कोई निश्चित कार्यकाल नही होता और राज्य सरकार जब चाहे इस पद के प्राधिकारी को स्थानान्तरित कर सकती है।

निदेशालय का शीर्षस्थ प्रशासनिक प्रबन्धक होने के नाते वह अनन्य प्रशासनिक अधिकारों का प्रयोग करता है। वह न केवल निदेशालय की प्रशास-

कीय स रचना का प्रधान है अपितु राज्य मे कार्यरत समस्त नगरीय स्थानीय स स्थाओ–नगर परिषदो एव नगरपालिकाओं–के अधिकारियों व कर्मचारियों का भी प्रशासनिक नियन्त्रणकर्ता है। राज्य की समस्त नगर परिषदो व पालिकाओ के कार्यकारी अधिकारी, प्रशासक, या आयुक्त किसी भी कठिकाई और भ्रम की स्थिति मे निदेशक से मार्गदर्शन की औपचारिक अपेक्षा रखते हैं। इस प्रकार के मामले जब निदेशालय मे प्रेषित होकर आते हैं तो उन पर अन्तिम निर्णय निदेशक द्वारा ही लिया जाता है। निदेशालय चू कि राज्य की समस्त नगरपरिषदो व पालिकाओं के लिए केन्द्रीय नियन्त्रण इकाई का कार्य करता है इसलिए वह न केवल जयपुर स्थित निदेशालय मे नियुक्त विभिन्न अधिकारियो और कर्मचारियो के मध्य कायो का विभाजन करता है अपितु निदेशालय के राज्य मे जो तीन क्षेत्रीय कार्यालय जयपुर, जोधपुर, और उदयपुर मे है उनके सटीक दायित्व निष्पादन के लिए भी आवश्यक दिशा निर्देश व मार्गदर्शन वह उपलब्ध कराता है। विभिन्न वर्गों के कर्मचारियो के नगरपालिकाओ मे स्थानान्तरण के आदेश भी निदेशालय द्वारा उसकी स्वीकृति से ही जारी किये जाते हैं। राज्य सरकार के स्वायत्त शासन विभाग का पदेन उप शासन सचिव होने के रूप मे उससे यह औपचारिक, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अपेक्षा की जाती है कि नगरीय प्रशासन के मामले मे वह राज्य सरकार को व्यावहारिक परामर्श उपलब्ध करायेगा। राज्य सरकार के अधिकारी चू कि शासन सचिवालय मे पदासीन न होते हैं अत उन्हे राज्य की नगरीय स्थानीय प्रशासन की व्यावहारिक समस्याओ का सटीक अनुभव नही होता इसलिए उनके नीति निर्माण का व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने की दृष्टि से निदेशक, स्थानीय निकाय को उप शासन सचिव स्तर प्रदान किया गया है। निदेशक अपने व्यावहारिक अनुभव के आधार पर राज्य सरकार को अपने उप शासन सचिव के दायित्वो की परिधि मे व्यावहारिक स्थिति और समस्याओ पर समाधान परक परामर्श देता है।

राज्य सरकार जो भी आदेश-निर्देश तथा कानूनो और नियमो की पालना स्थानीय शासन की नगरीय इकाईयो से करवाना चाहती है उनसे सबधित आदेश सर्वप्रथम निदेशालय मे ही भेजे जाते हैं। निदेशालय मे इस प्रकार के आदेशो के प्राप्त होने पर निदेशक का यह प्रशासनिक दायित्व हो जाता है कि राज्य भर मे कार्यरत समस्त नगरीय स स्थाओ को उन आदेशो-निर्देशो और कानूनो की भावना तथा नियमो व उपनियमो से औपचारिक रूप से सूचित करें तथा उस सम्बन्ध मे उनकी पालनार्थ उन्हे आवश्यक निर्देश दें। यही नही इस प्रकार के नियमो की पालना मे नगरीय स स्थाओ के द्वारा भी किसी प्रकार की

कठिनाई अनुभव की जाये तो ऐसे मामलो मे निदेशक उन संस्थाओं को आवश्यक सलाह, मार्गदर्शन और परामर्श उपलब्ध करता है।

निदेशक के रूप मे कार्य करते हुए उससे यह अपेक्षा भी की जाती है कि नगरीय संस्थाओं को स्थानीय शासन की कुशल इकाईया बनाने के लिए वह उन्हे आवश्यक प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करे। समस्त नगरीय संस्थाओं में नियुक्त प्रशासनिक अधिकारी, प्रशासक या आयुक्त समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा प्राप्त निर्देशो की पालना के लिए निदेशक से मार्गदर्शन और निर्देश प्राप्त करते रहते हैं। निदेशक से यह अपेक्षा की जाती है कि इन संस्थाओं की प्रशासकीय स्थिति को कुशलता और त्वरित स्वरूप प्रदान करने के लिए समय-समय पर उनको संसूचित करे या उनका आकस्मिक निरीक्षण करें। ऐसे निरीक्षण के पश्चात् अपने निरीक्षण प्रतिवेदन मे वह उन संस्थाओं को उन समस्त छोटी बातो और न्यूनताओं से अवगत कराये जो निरीक्षण के दौरान उसके द्वारा अनुभव की गयी है। निदेशक के रूप मे राज्य की नगरीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करना और उसमे सुधार करने के लिए भी निदेशक प्रशासनिक स्तर पर नेतृत्व प्रदान करता है। राज्य की विभिन्न नगर परिषदों और नगरपालिकाओं के प्रशासनिक प्राधिकारियो के द्वारा जो प्रशासनिक निर्णय और पारित आदेश किये जाते हैं यदि संबंधित जनता और पक्षकार उन आदेशो और निर्णय से असन्तुष्ट है तो उनके विरुद्ध निदेशक के यहा अपील करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। इस प्रकार प्राप्त समस्त प्रशासनिक अपीलो की उसके द्वारा सुनवाई कर निस्तारण किया जाता है।

राज्य के स्वायत्त शासन निदेशालय के शीर्षस्थ प्रशासनिक प्राधिकारी के रूप में उससे यह अपेक्षा की जाती है कि राज्य भर मे नगरीय संस्थाओं की स्वच्छ और कुशल छवि बनाने के लिए वह योजनाएं बनाये। देशभर मे नगरीय संस्थाओं की छवि अकुशल संस्थाओं के रूप मे प्रतिष्ठित हो गयी है। ऐसे वातावरण मे स्थानीय निकाय के निदेशक का यह दायित्व और गुरुत्तर एवं गम्भीर हो जाता है। वस्तुतः निदेशक के प्रशासनिक नेतृत्व, कौशल, व्यक्तित्व, त्वरित निर्णय, निष्पक्ष छवि और प्रशासकीय योग्यता पर राज्य की नगरीय संस्थाओं की कुशलता निर्भर करती है। समीक्षको द्वारा यह राय व्यक्त की जाती रही है कि किसी भी राज्य की नगरीय संस्थाओं की कार्य कुशलता को निर्धारित करने मे निदेशालय के निदेशक के प्रशासनिक नेतृत्व का निर्णायक योगदान होता है।

उप निदेशक (दो पद)

स्थानीय निकाय निदेशालय मे निदेशक के अधीन दो पद उप निदेशक

के सृजित किये हुए हैं। प्रथम, उप निदेशक (प्रशासन) और द्वितीय उप निदेशक (भूमि) के नाम से जाने जाते हैं। उप निदेशक का प्रथम पद 1968 में सृजित किया गया था।[13] इसी प्रकार दूसरा पद 1971 में राज्य में विभिन्न नगरपालिकाओं के चुनावों के समय अस्थाई तौर पर सृजित किया गया था किन्तु कालान्तर में कार्यभार बढने के कारण वह निरन्तर बना रहा। उप निदेशक (प्रशासन) को राज्य सचिवालय स्थित स्वायत्त शासन विभाग का पदेन सहायक शासन सचिव भी बनाया हुआ है। निदेशक की अनुपस्थिति में उप निदेशक प्रथम, निदेशालय के कार्य संचालन केलिए उत्तरदायी होता है। इन पदों पर नियुक्त अधिकारी भी राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारी होते हैं। राजस्थान सरकार के स्थानीय निकाय निदेशालय द्वारा निदेशालय के जयपुर स्थित अधिकारियो के कार्य वितरण की जो सूची जारी की हुई है उसके अनुसार उप निदेशक प्रथम और उप निदेशक द्वितीय को जिन मामलो के निष्पादन हेतु उत्तरदायी बनाया गया है उनका विवरण इस प्रकार है [14]

उप निदेशक (प्रथम)

1. राजस्थान नगरपालिकाओ सेवा के प्रशासनिक व तकनीकी अधिकारियो की प्रस्थापना का समस्त कार्य,
2. कार्यालय के कर्मचारीगण व राजस्थान नगरपालिका सेवा के अधिकारियो के वार्षिक कार्य मूल्याकन प्रतिवेदन,
3. नगरपालिका अधिकारियो के विरुद्ध प्राथमिक व विभागीय जाच, आरोप पत्र, दण्ड आदि,
4. इस विभाग के अधिकारीगण व नगरपालिकाओ के अधिकारीगण/कर्मचारीगण के विरुद्ध भ्रष्टाचार निरोधक विभाग, लोकायुक्त सचिवालय, जन अभियोग निराकरण विभाग से शिकायतें व जाच के कार्य,
5. प्रशासको की नियुक्ति, शिकायतें व विभागीय जाच;
6. क्षेत्रीय कार्यालयो व निदेशक द्वारा आवटित नगर परिषदो/बोर्डो का निरीक्षण, शिकायतो की जाच,
7. नगर पालिकाओं के निरीक्षण प्रतिवेदन, बैठको की कार्यवाही, असहमति टिप्पणिया आदि,
8. राजस्थान विधानसभा लोकसभा आदि प्रकरणो मे निदेशक को सहयोग;
9. अन्य कार्य जो निदेशक द्वारा बताये जावें;

10. नगरपालिका कार्मिक स घो की मागें, हड़तालो के समस्त प्रकरण;
11 उप निदेशक (भूमि) के लिंक अधिकारी के रूप मे कार्य।

उप निदेशक (द्वितीय)

1 भूमि व अन्य नगरपालिका सम्पत्ति के निष्पादन स बधी समस्त प्रकरण;
2. अतिक्रमण, पुराने कब्जे, भूमि विनियम, अनाधिकृत निर्माण आदि के प्रकरण एव तत्सम्बन्धी शिकायतें,
3. भूमि अवाप्ति स बधी प्रकरण,
4 नगरपालिका अधीनस्थ एव मनालयिक तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियो को प्रस्थापना स बधी समस्त प्रकरण एव शिकायतें तथा श्रम विवाद;
5 क्षेत्रीय कार्यालयो व परिषदो/बोर्डों का निरीक्षण जो निदेशक द्वारा आवटित किया जावे,
6. उप निदेशक (प्रशासन) के लिंक अधिकारी के रूप मे कार्य;
7 परिषद कर्मचारियो की धारा 310 (5) की अपीलें,
8. निदेशालय के कर्मचारियो के स स्थापन स ब धी कार्य,
9 आहरण एव वितरण स बधी कार्य।

ये दोनो ही उप निदेशक चू कि निदेशालय के प्रशासनिक कार्य स चालन के लिए विविध उत्तरदायित्वो का निर्वाह करते हैं इसलिए वे प्राय. निदेशक के निकट और उसके प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियन्त्रण मे क्रियाशील रहते हैं।

सहायक निदेशक

सहायक निदेशक के पद निदेशालय की स रचना मे इसके स्थापना काल से ही विद्यमान रहे हैं। विभाग के प्रशासनिक प्रतिवेदनो के अवलोकन से यह विदित होता है कि निदेशालय के स चालन मे आरम्भ से ही सहायक निदेशको की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। निदेशालय मे इस समय सहायक निदेशको के दो पद हैं इन पदो पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा के कनिष्ठ अधिकारियो और कभी कभी राजस्थान नगरपालिका सेवा के अधिकारियो को भी नियुक्त किया जाता रहा है। निदेशालय के प्रशासनिक कामकाज के स चालन तथा उसके स स्थापन इत्यादि के नियन्त्रण मे और नगरपालिकाओ पर स्थानीय निकाय निदेशालय के नियन्त्रण को प्रभावी बनाने मे सहायक निदेशको की प्रशासनिक भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। निदेशालय मे नियुक्त ये दोनो सहायक

निदेशक निदेशालय के विभिन्न प्रशासनिक उत्तरदायित्वों के लिए उत्तरदायी बनाये गये हैं। इन दोनों अधिकारियों को निदेशालय में जिन दायित्वों के लिए उत्तरदायी बनाया हुआ है उनका विवरण भी निदेशालय के अनुसार इस प्रकार है :[15]

सहायक निदेशक (प्रथम)

1. रिट याचिकायें, सिविल वाद, सेवा अधिकरण की अपीलें व न्यायालयों के अन्य समस्त प्रकरण;
2. विधि सलाहकारों, पैनल अधिवक्ताओं व प्रभारी अधिकारियों की नियुक्तियों के प्रकरण,
3. राजस्थान नगर पालिका अधिनियम, 1959 की धारा 285 व 300 के प्रकरणों की जाच कार्यवाही;
4. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम *1959* में सशोधन/परिवर्तन व तदन्तर्गत नियम, उप विधिया, विनियम स्पष्टीकरण व व्याख्याओं के प्रकरणों का परीक्षण तथा अभिशसाओं व विधि सबधी समस्त कार्य,
5. अनिवार्य करारोपण, चुगी, भवन व भूमि कर, व्यापार व व्यवसाय कर व अन्य करों के समस्त प्रकरण एव तत्सम्बन्धी शिकायतें,
6. मत्रि मण्डलीय निर्णय व उनका क्रियान्वयन,
7. नगर परिषदों/बोर्डों का निरीक्षण जो निदेशक द्वारा आवटित किये जावें,
8. सहायक निदेशक (अनुसधान प्रकोष्ठ) के लिंक अधिकारी के रूप में कार्य,
9. नगरपालिका सीमा वृद्धि व चुनाव सबधी प्रकरण।

सहायक निदेशक (द्वितीय)

1. अनुसधान प्रकोष्ठ के निर्धारित कर्तव्यों का सम्पूर्ण कार्य मय अक सकलन, सूचना सग्रह व डेटा बैंक कार्य,
2. समन्वय समितियों की बैठकें, सम्मेलन, सेमीनार, वर्कशॉप आदि,
3. निदेशालय का वार्षिक प्रगति विवरण व प्रशासनिक प्रतिवेदन,
4. विभिन्न गठित समितियों का कार्य

5. राजस्थान स्वायत्त शासन सस्थान के तत्वाधान मे आयोजित बैठको के प्रस्तावो का निरीक्षण;
6. राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित 20 सूत्रीय कार्यक्रम की प्रगति व क्रियान्विति,
7. विविध अनुभागो के कार्य, भारत सरकार से पत्र व्यवहार सहित;
8. सस्ते सुलभ शौचालय (लो कॉस्ट सेनीटेशन) योजना, यू. एन डी. पी ग्लोबल प्रोजेक्ट व सूखे तहारतो का जल प्रवाही शौचालयों मे परिवर्तन करने सम्बन्धी प्रकरण;
9. अन्य कार्य जो निदेशक द्वारा बताये जावें,
10 सहायक निदेशक विधि एव वाद व लेखाधिकारी के लिंक अधिकारी का कार्य,
11 नगरपालिका अध्यक्षो एवं सदस्यो की जाच का समस्त कार्य।

लेखाधिकारी

निदेशालय मे वित्तीय कार्यों की देखरेख और नियन्त्रण हेतु लेखाधिकारी का एक पद सृजित किया हुआ है। एक जनवरी, 1964 से पूर्व इस पद की कोई व्यवस्था नही थी किन्तु 1964 मे राज्य की 10 मे मे 8 नगरपरिषदो द्वारा यह माग की गई कि उनके यहा लेखाधिकारी का पद स्वीकृत किया जाये।[16] इस समय तक केवल जयपुर व अजमेर नगर परिषदो मे ही यह पद स्वीकृत था जो उन परिषदो के लेखा सधारण का कार्य करता था। किंतु जब राज्य की अन्य नगर परिषदो द्वारा यह माग की गयी तो निदेशालय के स्तर पर भी यह अनुभव किया गया कि निदेशालय द्वारा चू कि राज्य की समस्त नगर परिषदो और नगरपालिकाओ के बजट समको का परीक्षण किया जाता है अतः यह उचित होगा कि निदेशालय की लेखा शाखा को सशक्त बनाने की दृष्टि से उसके प्रभारी के रूप मे लेखाधिकारी की नियुक्ति की जाये। लेखाधिकारी के अधीन राजस्थान लेखा अधीनस्थ सेवा के दो लेखाकार, 7 कनिष्ठ लेखाकार और राजस्थान सांख्यिकी सेवा के एक सांख्यिकी सहायक तथा एक सगणक मुख्यालय के लेखे रखने मे उसकी सहायता करते हैं। लेखाधिकारी द्वारा निदेशालय के उन वित्तीय दायित्वो का निर्वाह किया जाता है जो निदेशालय को राज्य मे कार्यरत नगरीय सस्थाओ के लिए निभाने होते हैं। उसके दायित्वो का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :[17]

1. निदेशालय का बजट, लेखे व अंकेक्षण तथा लेखा सम्बन्धी समस्त कार्य,
2. बजट अनुभागों के प्रकरण,
3. नगरपालिकाओं के अंकेक्षण प्रतिवेदन व अनुपालना, अंकेक्षण, आपत्तियां व निष्पादन, गबन, आंतरिक अंकेक्षण निरीक्षण तथा अंकेक्षण समीक्षा आदि;
4. सरचार्ज के प्रकरण;
5. नगरपालिकाओं के अनुदान व उपयोगिता प्रमाण पत्र,
6. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 की धारा 94 व 101 की स्वीकृतियां, विज्ञापन, क्रय व बैंकों की स्वीकृतियां व अन्य वित्तीय स्वीकृतियां,
7. जन लेखा समिति, अनुमान समिति, वित्त आयोग व अन्य वित्तीय समितियों का कार्य,
8. महालेखाकार से अंक मिलान व समायोजन,
9. क्रय व ठेकों के बारे में शिकायतें (निर्माण की शिकायतों के अतिरिक्त)
10. नगरपालिका कर्मचारियों को विभिन्न ऋण,
11. जल प्रदाय योजनाएं, राजस्थान राज्य विद्युत मंडल व अन्य विभागों की बकाया;
12. प्रशासकों के यात्रा बिलों पर प्रतिहस्ताक्षर,
13. सामान्य वित्तीय एवं लेखा नियमों में निर्धारित कर्तव्य,
14. नगर परिषदों/बोर्डों का निरीक्षण जो निदेशक महोदय द्वारा आवंटित किये जायें व अन्य कार्य जो बताये जावें,
15. पेंशन प्रकरणों का कार्य।

अधीक्षण अभियन्ता

नगरपालिकाओं को उनके विकास कार्यों के निर्माण हेतु तकनीकी राय देने तथा स्थानीय निकायों द्वारा निदेशालय में प्रस्तुत तकनीकी प्रस्तावों और अनुमानों पर तकनीकी स्वीकृति की प्रक्रिया को सरल बनाने की दृष्टि से एवं निर्माण कार्यों के सन्दर्भ में प्राप्त शिकायतों की जांच और अभियांत्रिकी सेवाओं में सुधार के लिए 1979 से निदेशालय में एक अभियांत्रिकी प्रकोष्ठ स्थापित किया

गया था। इस प्रकोष्ठ का प्रभारी एक अधीक्षण अभियन्ता स्तर के अधिकारी को बनाया गया है। यह अधिकारी अभियन्ता (इंजीनियर) होता है जिसके अधीन एक सहायक अभियन्ता भी उसकी सहायता के लिए नियुक्त किया गया है। अधीक्षण अभियन्ता के दायित्वों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :[18]

1. नगरपालिकाओं की योजनाओं व निर्माण कार्यों व अनुमानों का तकनीकी अनुमोदन, उनका निरीक्षण व पर्यवेक्षण;
2. निर्माण कार्यों की शिकायतों की जाच;
3. पर्यावरण सुधार योजना, सम्बन्धित शहरी विकास योजना, बाढ नियंत्रण, अकाल राहत, सुलभ शौचालयों. यू. एन. डी. पी. ग्लोबल प्रोजेक्ट, सूखे शौचालयों को जल प्रवाही शौचालयों में परिवर्तन सम्बन्धी योजनाओं की समीक्षा व अन्य प्रकरण, सीमेंट वितरण आदि। अधीक्षण अभियन्ता के कार्यभार ग्रहण करने तक सुलभ शौचालयों को जल प्रवाही शौचालयों में परिवर्तन सम्बन्धी प्रकरण;
4. अन्य कार्य जो निदेशक द्वारा बताये जावें।

इसी प्रकार अधीक्षण अभियन्ता के अधीन नियुक्त सहायक अभियन्ता के दायित्वों का भी उपरोक्त परिपत्र में विवरण दिया गया है जो इस प्रकार है :

1. कार्यालय भवन, फर्नीचर, प्रकाश, जल व्यवस्था आदि का समारण,
2. कार्यालय भवन के निर्माण कार्यों की देखरेख, फर्नीचर, जल, प्रकाश, सजावट आदि का समस्त कार्य,
3. नगरपालिका के निर्माण कार्यों का निरीक्षण व शिकायतों की जाच जो निदेशक द्वारा निर्दिष्ट की जाये,
4. अन्य कार्य जो अधीक्षण अभियन्ता/निदेशक द्वारा बताये जावें।

कार्यालय अधीक्षक

निदेशालय के मन्त्रालयिक कार्यों, गतिविधियों और कर्मचारियों पर नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण करने की दृष्टि से एक कार्यालय अधीक्षक का पद सृजित किया गया है। कार्यालय अधीक्षक के लिए विनिश्चित किये गये दायित्वों का विवरण इस प्रकार है :

1. कर्मचारियों पर पर्यवेक्षण, उनमें अनुशासन बनाये रखना, उपस्थिति की जांच करना, समय पर उपस्थिति की पालना करवाना व कार्यालय प्रस्थापना का समस्त कार्य ;

2. कार्यालय पद्धति का क्रियान्वयन करवाना, विचाराधीन पत्रो की सामयिक जाच कराना, कार्यालय के चालू अभिलेख का समुचित रूप से संधारण करवाना,
3. कार्यालय के समस्त अनुभागो का सम्यक निरीक्षण व अनुशसायें,
4 पत्र प्राप्ति व प्रेषण की व्यवस्था, डाक वितरण, टाईपिंग व्यवस्था करना, डुप्लीकेटिंग व्यवस्था व उन पर पर्यवेक्षण;
5. टेलीफोनो की व्यवस्था, पर्यवेक्षण व टेलीफोन पजिकाओ का सधारण करवाना, व टेलीफोन बिलो का सामयिक भुगतान करवाना;
6. पुस्तकालय, स्टोर व रेकार्ड का पर्यवेक्षण व भण्डार से सामग्री जारी करना व भडार पर्यवेक्षक का कार्य,
7. निर्णयो की प्रमाणित प्रतिलिपिया जारी करना, उपस्थिति प्रमाण पत्र देना व रेकार्ड रखना,
8. कार्यालय भवन मे दिन, प्रतिदिन की सामान्य सफाई, जल, प्रकाश व अन्य आवश्यक व्यवस्थाओ तथा कार्यालय भवन के निर्माण की देखरेख, जल, प्रकाश, सजावट, आदि कार्यों मे सहायक अभियन्ता को सहयोग,
9. निदेशक व अधिकारीगण द्वारा निर्दिष्ट गोपनीय कार्य व उप निदेशक (प्रथम) को कार्यालय व नगरपालिका प्रस्थापना के कार्यों मे सहयोग,
10 मत्रि मडलीय निर्णयो का क्रियान्वयन;
12 निदेशक व अन्य अधिकारीगण द्वारा भेजे गये प्रकरणो का परीक्षण;
13. कार्यालय पद्धति मे निर्धारित समस्त कर्तव्य व अन्य कार्य जो निदेशक व अधिकारीगण द्वारा बताये जावें।

क्षेत्रीय कार्यालय एवं क्षेत्रीय उप निदेशक

स्थानीय शासन निदेशालय के दायित्वो का अधिक प्रभावी तरीके से निष्पादन करने के उद्देश्य से उसके कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया गया है। विकेन्द्रीकरण की यह योजना 1977–78 मे क्रियान्वित की गयी जिसके परिणाम स्वरूप जयपुर, जोधपुर और उदयपुर मे निदेशालय के तीन क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये गये और इन कार्यालयो का दायित्व तीन क्षेत्रीय सहायक निदेशको को प्रदान किया गया।[19] इस योजना के माध्यम से निदेशालय ने यह प्रयत्न किया है कि राज्य भर की नगरीय सस्थाओ पर चू कि जयपुर से पर्यवेक्षण, नियन्त्रण और मार्गदर्शन करना प्रभावी नहीं हो पा रहा था इसलिए क्षेत्रीय

कार्यालय स्थापित कर उन्हे यह दायित्व दिया गया कि वे अपने क्षेत्राधिकार मे आने वाली नगरपालिकाओ का निरीक्षण, पर्यवेक्षण और आवश्यक मार्गदर्शन करें। क्षेत्रीय कार्यालयो को यह अधिकार दिया गया है कि उनके क्षेत्राधिकार मे आने वाली तृतीय/चतुर्थ श्रेणी की नगरपालिकाओ के बजट की जाच कर अनुमोदन करें। स्थानीय स्वायत्त शासन का जयपुर स्थित निदेशालय इन तीनो क्षेत्रीय कार्यालयो के माध्यम से राजस्थान की समस्त नगरीय सस्थाओ पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण का कार्य करता है। निदेशालय अपनी सुविधा तथा इन क्षेत्रीय कार्यालयो की आवश्यकतानुसार इन्हे अपने बजट मे से कुछ हिस्सा प्रशासनिक व्यय के लिए स्वीकृत करता है। इन तीनो क्षेत्रीय कार्यालयो की स्थापना शायद प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से भिन्न भिन्न जिलो मे की गयी है तथा इसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए इसके प्रभारी अधिकारी का पद सहायक निदेशक से क्रमोन्नत कर उप निदेशक के रूप मे कर दिया गया है। अब क्षेत्रीय कार्यालयो को अपने अधीन कार्यक्षेत्र मे आने वाली नगरीय इकाईयो पर पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण के अतिरिक्त नगर पालिकाओ की आय के स्त्रोतो, करारोपण, चुंगी, भवन व भूमि कर इत्यादि के कार्यो मे भी निदेशालय द्वारा निर्देशित भूमिका प्रदान की गयी है।

क्षेत्रीय कार्यालयो की प्रशासनिक सरचना मे एक उपनिदेशक, एक कार्यालय सहायक, एक कनिष्ठ लेखाकार, तथा एक वरिष्ठ लिपिक, कनिष्ठ लिपिक तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के पद स्वीकृत है।

निदेशालय की आन्तरिक संरचना

निदेशालय की सरचना का चार्ट पृष्ठ सख्या 431 पर द्रष्टव्य है। इसके अनुसार जयपुर स्थित निदेशालय की सगठनात्मक सरचना को प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से कुल 16 अनुभागो मे सयोजित किया गया है, जो इस प्रकार है

उप निदेशक प्रशासन द्वारा नियन्त्रित अनुभाग

1. (क) कार्यालय प्रस्थापना (सामान्य प्रशासन) अनुभाग
   (ख) कार्यालय प्रस्थापना (सतर्कता) अनुभाग
2. नगरपालिका प्रस्थापना (सामान्य प्रशासन) अनुभाग

उप निदेशक भूमि द्वारा नियन्त्रित अनुभाग

3. नगरपालिका अधीनस्थ एव मत्रालयिक तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी प्रस्थापना अनुभाग

निदेशालय स्थानीय शासन : सरचना चार्ट

निदेशक
- निजी प्रकोष्ठ
  - उप निदेशक (प्रशासन)
  - उप निदेशक (भूमि)
  - क्षेत्रीय कार्यालय उपनिदेशक जयपुर
  - क्षेत्रीय कार्यालय उपनिदेशक उदयपुर
  - क्षेत्रीय कार्यालय उपनिदेशक जोधपुर
  - प्रधोक्षण अभियन्ता
    - 1 अभियान्त्रिकी अनुभाग
  - सहायक निदेशक (विधि एव वाद)
    - 1 विधि एव वाद अनुभाग
    - 2 करारोपण अनुभाग
  - 1 (क) कार्यालय प्रस्थापना सामान्य प्रशासन अनुभाग, एव (ख) सतर्कता
    - 2 नगरपालिका प्रस्थापना सामान्य प्रशासन अनुभाग
  - सहायक निदेशक (साख्यिकी)
    - 1 अनुसधान अनुभाग
  - कार्यालय अधीक्षक
    - 1 स्टोर अनुभाग
    - 2 रेकार्ड
    - 3. ... प्राप्ति व प्रेषण अनुभाग
    - 4 टकण प्रकोष्ठ
  - सहायक निदेशक (सतर्कता)
    - 1 नगरपालिका शिकायत अधीनस्थ तथा मत्रालयिक एव च श्रेणी प्रस्थापना अनुभाग
    - 2 भूमि अनुभाग
  - लेखाधिकारी
    - 1 लेखा व करारोपण अनुभाग
    - 2 कैशियर कम बिल अनुभाग

4. भूमि अनुभाग

सहायक निदेशक विधि एवं वाद द्वारा नियन्त्रित अनुभाग

5 विधि एव वाद अनुभाग

6. करारोपण अनुभाग

सहायक निदेशक सांख्यिकी द्वारा नियन्त्रित अनुभाग

7. अनुसधान अनुभाग

सहायक निदेशक सतर्कता द्वारा नियन्त्रित अनुभाग

8 शिकायत अनुभाग

लेखाधिकारी द्वारा नियन्त्रित अनुभाग

9. लेखा व करारोपण अनुभाग

10. कैशियर कम बिल अनुभाग

अधीक्षण अभियन्ता द्वारा नियन्त्रित अनुभाग

11. अभियान्त्रिकी अनुभाग

कार्यालय अधीक्षक द्वारा नियन्त्रित अनुभाग

12. स्टोर अनुभाग

13 रेकार्ड अनुभाग

14 पत्र प्राप्ति व प्रेषण अनुभाग

15. टकरण (प्रकोष्ठ) अनुभाग

निदेशक के प्रत्यक्ष नियन्त्रण मे कार्यरत अनुभाग

16 निजी (प्रकोष्ठ) अनुभाग

ये समस्त अनुभाग अपने नाम के अनुरूप कार्यों का निष्पादन करते हैं। इन अनुभागो के द्वारा निष्पादित कार्यों का का विवरण निदेशालय द्वारा निष्पादित कार्यों के विवरण में समाविष्ट किया गया है।

निदेशालय के कार्य निष्पादन की निर्धारित प्रक्रिया

राजस्थान सरकार के स्वायत्त शासन विभाग द्वारा राजस्थान सरकार के कामकाज के नियम (रूल्स आफ बिजनेस) 21 व 22 के अनुसरण मे निदेशालय द्वारा निष्पादित किये जाने वाले कार्यों की प्रक्रिया और विभिन्न मदो पर निर्णय लेने की शक्ति का विनिश्चय किया जाता है। स्वायत्त शासन विभाग समय-समय पर अपने इन आदेशो मे परिवर्तन करता रहता है। वर्तमान मे जिस

आदेश द्वारा स्वायत्त शासन विभाग मे कामकाज के निष्पादन की जो प्रक्रिया निर्धारित की हुई है, वह इस प्रकार है :[20]

आय व्यय के नियमन के सन्दर्भ मे इस परिपत्र द्वारा यह निर्देशित है कि निदेशालय, स्थानीय निकाय विभाग के आय व्यय के अनुमान की जाच उप सचिव द्वारा की जायेगी और उसे अनुमोदन हेतु स्वायत्त शासन विभाग के सचिव एव मन्त्री तक भेजा जायेगा। इसी प्रकार नगर परिषदों के आय व्यय के अनुमान की प्रारम्भिक जाच उप सचिव द्वारा और उसका निष्पादन सचिव द्वारा किया जायेगा तथा केवल जोधपुर व जयपुर नगर परिषद का आय व्यय का अनुमान राज्यमन्त्री की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जायेगा। द्वितीय श्रेणी की नगर पालिकाओ के अनुमान की जाच उप सचिव द्वारा और स्वीकृति सचिव द्वारा दी जाती है। इसी प्रकार तृतीय और चतुर्थ श्रेणी की नगरपालिकाओ के बजट की जाच क्षेत्रीय उप निदेशक द्वारा की जाती है और उसकी अग्रिम जाच अवर सचिव तथा स्वीकृति उप सचिव द्वारा दी जाती है। कर, विधि कार्य, नियम व उप नियम, रिट याचिका इत्यादि के सम्बन्ध मे प्रारम्भिक तौर पर उप सचिव प्रस्तावो की जाच करता है और उन पर स्वीकृति सचिव के द्वारा दी जाती है। आवश्यक होने पर ऐसे प्रस्तावों पर मन्त्री स्वायत्त शासन विभाग की अनुमति प्राप्त की जाती है।

इसी प्रकार कामकाज के नियमो के अन्तर्गत जारी इन आदेशों मे यह भी कहा गया है कि द्वितीय व तृतीय श्रेणी की नगरपालिकाओ की पुनरीक्षण और पुनरावलोकन याचिकाओ पर मामलो की जाच उप सचिव द्वारा और स्वीकृति हेतु उन्हे सचिव तथा राज्य मन्त्री को प्रस्तुत किया जायेगा। इन निर्देशो मे कहा गया है कि नगरपालिका बोर्ड के आदेश इत्यादि के निष्पादन को निलम्बित करने की शक्ति प्रारम्भिक तौर पर उप सचिव मे निहित की गयी है किन्तु ऐसे मामलो मे सचिव व राज्यमन्त्री की अनुमति भी प्राप्त की जाती है और आवश्यकतानुसार उन पर मन्त्री की स्वीकृति प्राप्त की जाती है। नगर परिषदो या मण्डलो की कालावधि मे परिवर्तन, उन्हे भग करना, उनके गठन तथा सीमाओ मे वृद्धि करने सबधी प्रस्तावो की जाच उप सचिव द्वारा की जाती है और सचिव तथा मन्त्री के अनुमोदन से ऐसे आदेश जारी किये जाते हैं।

नगर परिषदो व मण्डलों को ऋण व सहायता, भूमि का विक्रय व आवटन भूमि की अवाप्ति इत्यादि पर प्रारम्भिक जाच उप सचिव द्वारा और स्वीकृति सचिव व मन्त्री की ली जाती है। विधानसभा प्रश्नो और विधानसभा मे

दिए गए आश्वासनो पर कार्यवाही हेतु प्रारम्भिक तौर पर उप सचिव द्वारा उन्हें मन्त्री महोदय को प्रस्तुत किया जाता है। नगरपालिका अधिनियम की धारा 63 के अन्तर्गत नगर परिषद अध्यक्ष या पालिकाओं के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष व सदस्यो के विरुद्ध शिकायतो व सम्बन्धित मामलो को भी प्रारम्भिक तौर पर उप सचिव और आवश्यकतानुसार सचिव व मन्त्री द्वारा निर्णित किया जाता है। इसी प्रकार गबन, अंकेक्षण रिपोर्ट व निरीक्षण रिपोर्ट से सम्बन्धित मामले, मेले व पशु मेले, वार्षिक प्रशासनिक प्रतिवेदन, सम्मेलन, सेमिनार, संगोष्ठिया व समितियो, मन्त्री मण्डलीय निर्णय व क्रियान्विति, नगर पालिका कर्मचारियो/अधिकारियो के खर्चो की मांगें, नगरपालिका कर्मचारियो पर श्रम कानूनो की प्रभावशीलता से सबंधित मामले, सफाई सम्बन्धी श्रमिको के मामले, कर्मचारियो व अधिकारियो के प्रशिक्षण सम्बन्धी मामले, लोकायुक्त की रिपोर्ट और अन्य विविध मामले जैसे वृक्षा रोपण जन्म मृत्यु, सडको का नामकरण, गन्दी बस्तियो का अनुमोदन इत्यादि पर प्रारम्भिक परीक्षण उप सचिव और यथा आवश्यक अनुमोदन स्वायत्त शासन सचिव व सम्बन्धित मन्त्री द्वारा किया जाता है।[21]

निदेशालय की शक्तियां

राजस्थान मे, स्थानीय स्वायत्त शासन निदेशालय को प्रमुख रूप से राज्य मे कानून द्वारा गठित नगरीय निकायो पर पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण करने की शक्तियां प्राप्त हैं। इन शक्तियो के आलोक मे स्वायत्त शासन निदेशालय यह सुनिश्चित करता है कि राज्य की समस्त नगरपरिषदें और पालिकाएं अधिनियम के प्रावधानो और जनता की अपेक्षाओ के अनुरूप कार्य करती रहें। निदेशालय की इस प्रमुख भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए उसके कार्यों और शक्तियो को निम्नांकित शीर्षको के अन्तर्गत विवेचना की जा सकती है।

सामान्य प्रशासन और सगठन संबंधी शक्तियां

राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 के अतर्गत निदेशक, स्थानीय निकाय को यह शक्ति प्रत्यायोजित की गयी है कि नगरपालिकाओ तथा नगर परिषदो के सदस्यो द्वारा शपथ ग्रहण न करने तथा लगातार तीन माह अथवा तीन सामान्य बैठको में अनुपस्थित रहने पर सदस्यों को सदस्यता से अयोग्य घोषित कर सकता है।[22] निदेशक को समस्त नगर परिषदो के अध्यक्षो के सम्बन्ध में यह शक्ति प्रदान की गयी है कि वह उनके द्वारा प्रस्तुत त्यागपत्र को स्वीकार कर सकता है। इसी प्रकार नगरपालिकाओ के सन्दर्भ मे यह शक्ति सम्बन्धित क्षेत्रीय उप निदेशको को प्रदान की गयी है।[23] इसी तरह स्थायी श्रमिको को सेवा

मुक्त किये जाने या हटाय जाने के लिए जिला मुख्यालय की नगरपालिकाओं व समस्त नगरपरिषदों के सम्बन्ध मे शक्ति निदेशक मे और अन्य नगरपालिकाओं के सन्दर्भ मे यह शक्ति क्षेत्रीय उप निदेशको मे निहित की गयी है ।[24] राज्य की नगर परिषदो एव द्वितीय श्रेणी की नगरपालिकाओं के लिए कर निर्धारकों की नियुक्ति हेतु अनुमोदन का दायित्व भी निदेशक को दिया गया है ।[25]

नगर परिषदो एव द्वितीय श्रेणी की नगर पालिकाओं के बजट अनुमानो व संशोधित बजट अनुमानो पर स्वीकृति निदेशक द्वारा दी जाती है । इसी प्रकार तृतीय व चतुर्थ श्रेणी नगरपालिकाओं के बजट अनुमानो मे क्षेत्रीय उप निदेशक स्वीकृति प्रदान करने हेतु सक्षम हैं किन्तु यदि इन नगरपालिकाओं का बजट घाटे का है तो वह सरकार की स्वीकृति हेतु आगे प्रस्तावित किया जाता है ।[26] समस्त नगर परिषदो द्वारा निदेशक को उनके वार्षिक लेखे प्रस्तुत किये जाते हैं और निदेशक की ओर से अन्य नगरपालिकाओं के सन्दर्भ में यह कार्य क्षेत्रीय उप निदेशको द्वारा किया जाता है ।[27] राज्य की नगर परिषदो एव नगरपालिकाओं द्वारा पारित प्रस्तावो की क्रियान्विति को निलम्बित करने सम्बन्धी शक्ति भी निदेशक मे अन्तर्निहित की गयी है [28] इसी प्रकार राज्य की समस्त नगरपरिषदो और नगरपालिका बोर्डों के रेकोर्ड मगान व उनके आदेशो का परीक्षण करने और उन्हे निरस्त या संशोधित करने का अधिकार नगर पालिकाओं के सम्बन्ध मे निदेशक को और नगर परिषदो के सन्दर्भ मे स्वायत्त शासन सचिव को दिया गया है ।[29]

राजस्थान नगरपालिका अधिनियम के अन्तर्गत समस्त नगर परिषदो एवं नगर पालिकाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि परिषद की बैठकों मे जो प्रस्ताव पारित किये जाते हैं उनकी एक प्रतिलिपि वे स्वायत्त शासन निदेशालय के निदेशक को प्रेषित करेंगे । ऐसे प्रस्ताव प्राप्त होने के पश्चात निदेशक को यह अधिकार भी है कि प्रस्ताव को पारित करने सम्बन्धी बैठक की कार्यवाही का अभिलेख अपने यहा मगवा सकता है ।[30]

निदेशक को निदेशालय के सामान्य प्रशासन को नियन्त्रित करने के लिए कुछ सामान्य और कुछ विशिष्ट शक्तिया प्रदान की गयी है । उसे यह अधिकार है कि वह राज्य की समस्त नगरपालिकाओं का उनकी जनसंख्या और आय के अनुपात में वर्गीकरण कर सकता है । इसके अतिरिक्त नगरीय संस्थाओं के सन्दर्भ में वह कुछ आपातकालीन ऐसी शक्तियों का उपयोग भी करता है जिनके माध्यम से गलत काम करने वाली नगर पालिकाओं पर अंकुश लगता है । अपने सामान्य पर्यवेक्षकीय अधिकार के अन्तर्गत वह किसी भी नगर पालिका का

सामान्य निरीक्षण कर सकता है या किसी नगरपालिका/परिषद में चलने वाले निर्माण कार्य की देखरेख के लिए जा सकता है। वह नगर पालिकाओं/परिषदों की बैठकों के रेकार्ड मंगवा सकता है। वह नगर पालिका द्वारा पारित किसी प्रस्ताव को निलम्बित कर सकता है। वह विभिन्न नगरीय इकाईयों को उनके खातों के अंकेक्षण के प्रतिवेदनों पर कार्यवाही करने के लिए आवश्यक निर्देश दे सकता है।

वित्तीय शक्तियां

वित्त, स्थानीय स्तर के प्रशासन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है इसलिए राज्य इस पर कठोर नियन्त्रण करने का प्रयत्न करता है। निदेशक को सभी नगरपालिकाओं/परिषदों के 40 हजार रुपये तक के अनुबन्धों को स्वीकृति देने का अधिकार है।[31] राज्य की प्रत्येक नगर पालिका/परिषद से यह अपेक्षा की जाती है कि अपनी परिषद द्वारा पारित बजट प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि वे निदेशालय को प्रस्तुत करेंगे।[32] निदेशक को यह अधिकार है कि वह नगरीय निकायों के अध्यक्षों के लिए 1:0 रु. तक के भत्ते की स्वीकृति प्रदान कर सकता है। उसे यह अधिकार भी है कि वह नगरीय निकायों द्वारा किये गये किसी भी व्यय को, जिसके माध्यम से नगरवासियों की आर्थिक स्थिति, जन स्वास्थ्य और सुरक्षा को सुरक्षित करने के उपाय किये गये हैं, स्वीकृति दे सकता है। राज्य सरकार ने निदेशक को यह विशेष अधिकार दे रखा है कि वह राज्य सरकार द्वारा नगरीय संस्थाओं के लिए स्वीकृत और जारी अनुदान के बारे में समस्त नगरीय इकाईयों को सूचित करता है और समस्त नगरीय इकाईयों से भी सरकारी नियमों में यह अपेक्षा की गयी है कि वे उस अनुदान की राशि को जिस वाउचर के माध्यम से राजकोष से प्राप्त करें उसके क्रमांक और तिथि से निदेशक को अवगत करवायेंगे।[33]

राज्य की नगर पालिकाओं/परिषदों से नगर पालिका अधिनियम के अन्तर्गत यह अपेक्षा की जाती है कि यदि वे अपने नागरिकों पर कोई नया कर आरोपित करना चाहें तो उसकी स्वीकृति उन्हें राज्य सरकार से लेनी होगी।[34] इस सम्बन्ध में राज्य सरकार ने निदेशालय और निदेशक को अधिकृत किया है कि वे नगरीय निकायों द्वारा प्रस्तुत ऐसे प्रस्तावों की प्रारम्भिक जांच करेंगे तथा उन पर जनता की आपत्तियां मांगते हुए राज्य सरकार के उप सचिव के रूप में उनका निस्तारण करेंगे।[35]

नगरीय अधिनियम के अन्तर्गत नगर पालिकाओं और परिषदों से यह अपेक्षा की गयी है कि अचल सम्पत्ति को कर मुक्त करने और सात वर्ष से अधिक

लीज की स्वीकृति देने या 5 हजार रुपये से अधिक की अचल सम्पत्ति को बेचने या हस्तान्तरित करने की कार्यवाही पर वे निदेशक की स्वीकृति प्राप्त करेंगी। इसी तरह नगरपालिकाओं से यह अपेक्षा भी की जाती है कि वे अपनी किसी भी अधिशेष राशि को निश्चित अवधि के लिए जमा कराने के पूर्व निदेशालय की स्वीकृति प्राप्त करेंगी। राजस्थान नगर पालिका सेवा के पदाधिकारियों के आर्थिक लाभों यथा वार्षिक वेतन वृद्धि, पेन्शन, ग्रेच्युइटी, भविष्य निधि और अन्य आर्थिक लाभों एवं भत्तों की स्वीकृति के आदेश निदेशालय द्वारा ही जारी किये जाते हैं।[36] निदेशालय के प्रभारी होने के नाते निदेशक का यह दायित्व माना जाता है कि यदि राज्य में किसी भी नगर पालिका/परिषद के अधिकारियों या कर्मचारियों द्वारा नगरीय निकायों के कोष से कोई गबन इत्यादि हो गया है तो उसकी रिपोर्ट मंगवा सकता है और उस पर आवश्यक कार्यवाही किये जाने का निर्देश दे सकता है। समस्त नगर निकायों में यह अपेक्षा भी की गयी है कि यदि निधि खाते से कोई रकम निकलवायी जानी है तो उसकी निदेशक से पूर्व अनुमति प्राप्त की जायेगी। इस प्रकार निदेशक को राज्य की नगरीय संस्थाओं के वित्तीय कार्यकलापों के सम्बन्ध में व्यापक शक्तियां प्रदान की गयी हैं।

कार्मिक शक्तियां

राज्य की नगरीय संस्थाओं के कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में भी निदेशालय और निदेशक को पर्याप्त शक्तियां है। प्रत्येक वर्ष के अन्त में निदेशक द्वारा इस बात की समीक्षा की जाती है कि नगर पालिकाओं/परिषदों के किस सेवा संवर्ग में कितने पद रिक्त हैं और उन पर नियुक्ति किस तरीके से की जानी है।[37]

नगरीय संस्थाओं में की जाने वाली नियुक्तियों के सन्दर्भ में निदेशक को व्यापक अधिकार इन नियमों के अन्तर्गत दिए गये हैं। ऐसे उच्च पदों को छोड़कर जिनकी नियुक्ति राज्य सरकार के द्वारा की जाती है, निदेशक को ही नियुक्ति देने के लिए अधिकृत किया गया है। ऐसे पदों में नगरपालिका आयुक्त, स्वास्थ्य अधिकारी, इन्जीनियर तथा प्रथम व द्वितीय श्रेणी की नगर पालिकाओं के अधिशाषी अधिकारी आते हैं। जिनकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। इन अधिकारियों से अधीनस्थ सभी अधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार निदेशक, स्थानीय निकाय को प्राप्त है। नगर पालिकाओं में कर निर्धारकों की नियुक्ति जारी करने से पूर्व निदेशक की अनुमति आवश्यक होती है।[38] सेवा नियमों के अन्तर्गत उसे विभिन्न पदों पर 6 माह के लिए अस्थाई नियुक्तियां करने का अधिकार है।[39] निदेशालय के प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी होने के नाते वह इस दायित्व का निर्वाह भी करता है कि समस्त नगरीय संस्थाओं

में विभिन्न सेवा सवर्गों में पदोन्नति हेतु पात्र कर्मचारियों की सूची तैयार करता है और उसे पदोन्नति समिति, जिसका वह भी एक सदस्य होता है, के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करता है।[40] वह निदेशक के रूप में अपने अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत सेवा अभिलेख की समीक्षा करता है और उसके उपरान्त पदोन्नति समिति के समक्ष उस अभिलेख को प्रस्तुत करता है। इस प्रक्रिया में वह अधीनस्थ अधिकारियों की उच्चतर पद पर पदोन्नति हेतु वरिष्ठता सूची तैयार करवाता है और उस पर आवश्यक कार्यवाही को गति प्रदान करता है। चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के अतिरिक्त वह समस्त कर्मचारियों का नगरीय इकाइयों में स्थानान्तरण करने को भी सक्षम होता है।

राजस्थान नगर पालिका सेवा नियमों के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि नगर पालिकाओं/परिषदों में काम करने वाले झाड़ूकश (स्वीपर) इत्यादि के विरुद्ध यदि कार्यपालिका अधिकारी द्वारा सेवा से हटाने या पदच्युत करने के आदेश पारित कर दिए गए हैं तो ऐसे कर्मचारी निदेशक को अपील कर सकते हैं। निदेशक ऐसी अपील की सुनवाई के पश्चात यदि यह अनुभव करे कि दिए गए आदेश न्यायपूर्ण नहीं हैं तो पदच्युति के आदेश को निरस्त कर सकता है।[41] इसी प्रकार नियमों में यह व्यवस्था भी की गई है कि यदि कर निर्धारक, सफाई निरीक्षक, निरीक्षक, लेखाकार और मंत्रालयिक सेवा के अन्य अधीनस्थ कर्मचारियों के विरुद्ध पद च्युति या इसी प्रकार सेवा से हटाये जाने इत्यादि का दण्डनात्मक आदेश नियुक्तिकर्ता अधिकारियों द्वारा जारी कर दिया जाये तो वे उसकी अपील निर्धारित अवधि में निदेशक को कर सकते हैं।[42] निदेशक को सभी प्रकार के कर्मचारियों को विभिन्न प्रकार के अवकाशों की स्वीकृति देने का अधिकार भी है।[43] कार्मिकों से सम्बन्धित निदेशालय और निदेशक की शक्तियों का अधिक विस्तृत विवरण नगरीय निकायों के कार्मिक प्रशासन से सम्बन्धित स्वतन्त्र अध्याय में दिया जा चुका है।

परामर्शदात्री शक्तियां

जैसा कि पूर्व में भी संकेत किया जा चुका है कि निदेशक, स्थानीय निकाय, राज्य सरकार के नगरीय विकास और आवासन विभाग का पदेन उप सचिव भी होता है और इस रूप में वह *विभाग की नीतियों के निरूपण और निर्णय निर्माण* में अपनी सलाह तथा परामर्श राज्य सरकार को उपलब्ध करवाता है। जब कभी भी नगरीय विकास और आवासन मंत्री उन्हें नगरीय विकास एवं प्रशासन से सम्बन्धित किसी विषय और समस्या विशेष पर परामर्श देने के लिए कहें, तब उस विषय और समस्या विशेष पर निदेशक अनुभव, ज्ञान और अर्जित विशेषज्ञता के आधार पर आवश्यक परामर्श उन्हें देता है।

निदेशालय की शक्तियों के उपरोक्त विवरण-विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि निदेशालय का प्रमुख कार्य राज्य में नगरीय संस्थाओं के कार्यकलापों पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करना है। राजस्थान के सन्दर्भ में एक द्वैध अभी तक यह बना हुआ है कि राज्य सरकार अभी भी इस बारे में अपना मानस स्पष्ट नहीं बनापायी है कि किस प्रकार की शक्तियां निदेशालय को पूरी तरह हस्तान्तरित की जानी चाहिए और किन शक्तियों को राज्य सरकार द्वारा सर क्षित रखा जाना चाहिए। यद्यपि यह तो स्पष्ट ही है कि निदेशालय अपने आप में राज्य सरकार की एक क्षेत्रीय इकाई है जिस पर राज्य के नगरीय विकास एवं स्वायत्त शासन विभाग द्वारा विनिर्मित नीतियों को निष्पादित करने का प्रमुख दायित्व होता है। यह अपने आप में राज्य सरकार नहीं है। निदेशालय का निदेशक यद्यपि नगरीय विकास एवं आवासन विभाग का पदेन उप सचिव होता है किन्तु इस नाते वह यह सुनिश्चित करता है कि निदेशालय और राज्य सरकार के कार्यकलापों में कोई विसंगतियां नहीं हो तथा आवश्यक सामंजस्य बना रहे। किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता कि निदेशक के पदेन उप सचिव होने से निदेशालय की शक्तियों, सम्मान और प्रतिष्ठा में कोई वृद्धि हो गयी है।

निदेशालय के कार्य और भूमिका

इस अध्याय के प्रारम्भ में यह विवरण दिया जा चुका है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में, राजस्थान ऐसा प्रथम राज्य था जिसने 1951 में ही अपने यहां स्थानीय निकाय निदेशालय की स्थापना करली थी। राजस्थान के पश्चात अन्य राज्यों आंध्र प्रदेश, गुजरात, केरल महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा इत्यादि ने अपनी स्थानीय संस्थाओं के संवर्धन के उद्देश्य से स्थानीय शासन निदेशालय की स्थापना की थी। राज्य में कार्यरत नगरीय संस्थाओं को सहायता और वांछित परामर्श उपलब्ध करना और इन संस्थाओं पर राज्य के नियन्त्रण को अधिक प्रभावी बनाना स्थानीय शासन निदेशालय की स्थापना का प्राथमिक उद्देश्य रहा है। यहां यह संकेत करना, पुनरावृति की आशंका होते हुए भी आवश्यक प्रतीत होता है कि स्थानीय निकाय निदेशालय की स्थापना का निर्णय करते समय नीति निर्माताओं और निर्णयकर्ताओं के मन में यह संकल्प भी प्रमुख प्रेरणा का कारक रहा है कि यह निदेशालय नगरीय विकास की नीति के निरूपण में शासकीय सचिवालय को सहायता उपलब्ध कराएगा। शासन सचिवालय चूंकि अन्यान्य सरकारी दायित्वों के निष्पादन में अत्यंत व्यस्त रहता है अतः वह नीति निर्माण करते समय कदाचित, स्थानीय निकायों की व्यावहारिक समस्याओं से अवगत नहीं हो पाएगा अतः इसी शून्य की पूर्ति के निमित्त स्थानीय शासन निदेशालय की परिकल्पना की गई प्रतीत होती है।

स्थानीय शासन निदेशालय से एक साथ दोहरी भूमिका के निर्वाह की सैद्धान्तिक अपेक्षा की गई है। एक ओर तो निदेशालय से नगरीय संस्थाओं को मित्रवत मार्गदर्शन और आवश्यक परामर्श तथा सामान्य पर्यवेक्षण और नियंत्रण करने की अपेक्षा की गई है दूसरी ओर निदेशालय से राज्य की समस्त नगरीय संस्थाएं यह अपेक्षा करती है कि निदेशालय उनकी व्यावहारिक समस्याओं को अनुभव करेगा और उन्हें राज्य सरकार को सम्प्रेषित कर यथा सम्भव शीघ्रता से उनका समाधान करवाने का प्रयत्न करेगा।

जहां तक निदेशालय के कार्यों और उसके द्वारा सम्पादित भूमिका का प्रश्न है उसका कुछ संकेत तो निदेशालय और निदेशक की शक्तियों के उपरोक्त विवरण में मिल चुका है। फिर भी निदेशालय की भूमिका को अधिक स्पष्टता देने की दृष्टि से राजस्थान के निदेशालय को आधार मानकर उसके कार्यों के विभिन्न आयामों को निम्नांकित शीर्षकों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है।

1 नगरीय संस्थाओं पर पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण

स्थानीय स्वायत्त शासन निदेशालय का प्रमुख कार्य राज्य भर की नगरीय संस्थाओं का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करना है। निदेशालय द्वारा किये जाने वाले इस नियन्त्रण को दो भागों में बांटा जा सकता है :

(क) सामान्य प्रशासकीय पर्यवेक्षण एवं नियन्त्रण, तथा

(ख) तकनीकी नियन्त्रण

(क) सामान्य प्रशासकीय पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण

निदेशालय राज्य भर की नगरपालिकाओं/परिषदों के सामान्य कामकाज पर प्रशासकीय पर्यवेक्षण और नियन्त्रण करता है। निदेशालय यह सुनिश्चित करता है कि राज्य सरकार द्वारा जारी स्थानीय स्वायत्त शासन विषयक उन रेखाई और तदर्थ अनुदेशों की नगरीय निकायों द्वारा सही सही पालना की जा रही है जिसके माध्यम से नगरीय निकायों द्वारा सम्पादित सेवाओं के न्यूनतम स्तर को बनाया रखा जा सके। इस निमित्त निदेशालय में एक निदेशक, दो उप निदेशक, तीन सहायक निदेशक और अनेक अधीनस्थ अधिकारी नियुक्त हैं जिन पर यह दायित्व होता है कि वे यह आश्वस्त करें कि राज्य की नगरीय संस्थाएं नगरपालिका अधिनियम के प्रावधानों और समय-समय पर राज्य सरकार के स्वायत्त शासन विभाग और स्वय इस निदेशालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुरूप कार्य करती रहें। इस कार्य को और अधिक प्रभावी तरीके से निष्पादित करने के लिए राज्य भर में निदेशालय के तीन क्षेत्रीय कार्यालय जयपुर, जोधपुर,

और उदयपुर में स्थापित किये गये हैं। क्षेत्रीय कार्यालय के प्रभारी प्रशासक उपनिदेशक-के माध्यम से उन क्षेत्रों के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाली नगरीय संस्थाओं पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण किया जाता है। क्षेत्रीय कार्यालय एक ओर तो राज्य सरकार तथा निदेशालय के निर्देशों को नगरीय संस्थाओं तक सम्प्रेषित करते हैं और दूसरी ओर अपने क्षेत्र की नगरीय संस्थाओं की समस्याओं से निदेशालय और राज्य सरकार को सूचित करते हैं।

सामान्य पर्यवेक्षण और नियन्त्रण के अपने इस दायित्व के निर्वाह के सन्दर्भ में निदेशालय उन समस्त प्रस्तावों का परीक्षण करता है जो अधिनियम की अपेक्षाओं के अनुरूप राज्य की नगरीय संस्थाओं द्वारा नवीन कार्यकलापों के सदर्भ में निदेशालय को प्रेषित किये जाते हैं। राज्य की नगरपालिकाओं/परिषदों में नियुक्त अधिशासी अधिकारियों के कार्य का मूल्यांकन किया जाता है। नगरीय संस्थाओं द्वारा निष्पादित कार्यों की गुणवत्ता का निदेशालय के क्षेत्रीय या मुख्यालय के अधिकारियों द्वारा आकस्मिक या नियमित निरीक्षण किया जा सकता है। निदेशालय इन संस्थाओं के सेवा के स्तर को बनाए रखने या उसमें वृद्धि करने हेतु आवश्यक निर्देश भी दे सकता है।

(ख) तकनीकी कार्य

राज्य की समस्त नगरपालिकाओं/परिषदों द्वारा जो भी निर्माण कार्य कराए जाते हैं उनकी तकनीकी गुणवत्ता का स्तर बनाए रखने के लिए निदेशालय में एक अभियान्त्रिकी अनुभाग स्थापित किया गया है। इस अनुभाग का नियन्त्रण और अधीक्षण अभियन्ता स्तर के अधिकारी द्वारा किया जाता है। उनके अधीन एक सहायक अभियंता व कुछ तकनीकी कर्मचारी कार्य करते हैं। यह अनुभाग राज्य की नगरपालिकाओं द्वारा प्रस्तुत योजनाओं व निर्माण कार्यों के अनुमानों का तकनीकी परीक्षण करते हुए उनका अनुमोदन करता है। यह अनुभाग नगरपालिकाओं के पर्यावरण सुधार कार्यक्रमों, शहरी विकास से सम्बन्धित योजनाओं, बाढ़ राहत कार्यक्रमों, सुलभ शौचालयों में परिवर्तन सम्बन्धी तकनीकी परियोजनाओं इत्यादि का तकनीकी दृष्टि से अनुमोदन करता है तथा इन कार्यों की प्रगति पर सतत पर्यवेक्षण करता है। इसके अतिरिक्त कार्यालय भवन के निर्माण, उसमें फर्नीचर, प्रकाश और जल व्यवस्था आदि का सधारण नगरपालिकाओं के निर्माण कार्यों का निरीक्षण व तद्-विषयक शिकायतों आदि की जाच का कार्य भी किया जाता है।

निदेशालय राजस्थान नगरपालिका सेवा के प्रशासनिक व तकनीकी अधिकारियों की प्रस्थापना के समस्त कार्य करता है। राजस्थान की समस्त

नगरपालिकाओं के नगरपालिका सेवा के अधिकारियों और विभिन्न श्रेणी के उन कर्मचारियों, जिनका स्थानान्तरण सभी नगरपालिकाओं में हो सकता है, के वार्षिक मूल्यांकन प्रतिवेदन सम्बन्धित कार्य, इन अधिकारियों व कर्मचारियों के विरुद्ध प्राथमिक व विभागीय जाच आरोप पत्र, दण्ड इत्यादि से सम्बन्धित मामले निदेशालय द्वारा निष्पादित किये जाते हैं। नगरपालिकाओं/परिषदों में प्रशासकों की नियुक्ति, उनकी शिकायतें, विभागीय जाच, क्षेत्रीय कार्यालयों के उप निदेशकों से सम्बन्धित कार्य, नगरपालिकाओं के निरीक्षण प्रतिवेदन, बैठकों की कार्य, असहमति टिप्पणियां तथा नगरपालिकाओं के कार्मिक संघों की मांगों व उनकी हड़तालों से संबंधित प्रकरणों का निस्तारण निदेशालय द्वारा सम्पादित प्रस्थापना सम्बन्धी दायित्वों में समाहित है।

3. कर्मचारियों से सम्बन्धित कार्य

राजस्थान म्युनिसिपल सर्विस नियम 1963 के अन्तर्गत नगरपालिकाओं परिषदों में कर्मचारियों की भर्ती के तीन तरीके बताए गए हैं :

(क) प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा

(ख) पदोन्नति द्वारा, और

(ग) स्थानान्तरण द्वारा

इन नियमों के अन्तर्गत राजस्थान में नगरपालिका में कुछ तकनीकी कर्मचारी जैसे राजस्व अधिकारी ग्रेड 1, ग्रेड 2, कर निर्धारक, चुंगी निरीक्षक, नाकेदार, उप नाकेदार, सफाई निरीक्षक, टीका लगाने वाला कम्पाउण्डर, कनिष्ठ परिचारिका, प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी वैद्य, पैरोकार प्रथम व द्वितीय वर्ग, मोटर घर अधीक्षक, अग्निशमन अधिकारी, कार्यालय अधीक्षक, प्रधान लिपिक, वरिष्ठ लिपिक, कनिष्ठ लिपिक, स्टेनोग्राफर, तथा प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के लेखाकार इत्यादि को मिलाकर अधीनस्थ सेवाओं का राज्य स्तर पर निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त राजस्थान नगरपालिका सेवा का निर्माण भी 1963 से किया गया है जिसमें प्रशासनिक पक्ष के अधिकारी नगरपाल, कार्यकारी अधिकारी और सचिव तथा कुछ तकनीकी अधिकारी यथा राजस्व अधिकारी, नगरपालिका अभियन्ता आदि होते हैं।

राजस्थान नगरपालिका सेवा के इन अधिकारियों की भर्ती का कार्य राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा होता है और अधीनस्थ सेवाओं के कर्मचारियों

की ऊपर दी गई सूची पर काम करने वाले कर्मचारियों की भर्ती हेतु एक नगरपालिका चयन सेवा आयोग बनाया गया था। दोनों ही वर्ग के अधिकारियों या कर्मचारियों की भर्ती के सम्बन्ध में निदेशालय की कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं होती तथापि अधिकारी वर्ग के स्थानान्तरण के कार्य में निदेशक स्थानीय निकाय राज्य सरकार को जहां परामर्श देता है वहीं कर्मचारियों के स्थानान्तरण के कार्य में वह स्वयं सक्षम अधिकारी है। इसी तरह कर्मचारियों की पदोन्नति, जिसके लिए सेवा नियमों में पदोन्नति समिति का गठन किया गया है, के कार्य को भी निदेशालय सम्पन्न करता है। इन समस्त कर्मचारियों के सम्बन्ध में अनुशासनात्मक कार्यवाही और सेवा निवृति लाभों के प्राय. वे सभी नियम नगरपालिकाओं/परिषदों के कर्मचारियों पर लागू होते हैं जो राज्य सरकार में तत्सम पदों पर काम करने वाले कर्मचारियों पर प्रवर्तित हैं। कार्मिक प्रशासन क्षेत्र में निदेशालय स्वयं अपने कर्मचारियों पर पर्यवेक्षण रखते हुए उन पर अनुशासन बनाए रखने, और कार्यालय प्रस्थापना सम्बन्धी कार्य करता है। निदेशालय अपने कर्मचारियों पर सतत नियन्त्रण करता है।

4. वित्त एवं लेखा सम्बन्धी कार्य

यह निदेशालय राज्य की समस्त नगरपालिकाओं और नगर परिषदों द्वारा प्रस्तुत बजट प्रस्तावों की जाँच कर उन्हें स्वीकृति प्रदान करता है। नगर परिषदों के बजट प्रस्ताव अन्तिम स्वीकृति के लिए राज्य सरकार को भी प्रेषित किये जाते हैं जबकि अन्य श्रेणी की जो नगरपालिकाएं हैं उनके बजट प्रस्ताव अन्तिम रूप से निदेशालय द्वारा ही दिये जाते हैं। निदेशालय स्वयं अपना बजट, लेखे व अंकेक्षण सम्बन्धी कार्य करता है। इसके अतिरिक्त नगरपालिकाओं के अंकेक्षण प्रतिवेदन व उनकी अनुपालना, अंकेक्षण आपत्तियों का निष्पादन, गबन, आन्तरिक अंकेक्षण, नगरपालिकाओं के अनुदान व उनके ऋण के मामले, नगरपालिकाओं के विज्ञापन व बैंकों की स्वीकृतियां, जन लेखा समिति, अनुमान समिति, व वित्त आयोग व अन्य वित्त समितियों के कार्य, महालेखाकार सम्बन्धित कार्य, नगरपालिका के विभिन्न कर्मचारियों के ऋण और सामान्य वित्तीय एवं लेखा नियमों में निर्धारित कर्तव्यों का निर्वाह करता है। यह निदेशालय अपने कर्मचारियों को देय समस्त आर्थिक लाभों एवं नगरपालिकाओं/परिषदों की सामान्य वित्तीय एवं आर्थिक स्थिति पर भी सतत पर्यवेक्षण और नियन्त्रण रखता है।

5. भूमि सम्बन्धी कार्य

राज्य में कार्यरत सभी नगरीय संस्थाओं द्वारा भूमि अवाप्ति सम्बन्धी

कार्यों, भूमि पर अतिक्रमण, पुराने कब्जे, भूमि विनियमन, अनाधिकृत निर्माण आदि के प्रकरण, भूमि से सम्बन्धित नगरपालिकाओं की सम्पत्ति इत्यादि के मामले जो भी निदेशालय को प्रेषित किये जाते हैं उनके निष्पादन हेतु निदेशालय मे उप निदेशक (भूमि) को अधिकृत किया हुआ है। यह अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियो की सहायता से भूमि सम्बन्धी इस प्रकार के विवादास्पद प्रकरणो का निस्तारण करता है।

6. शिकायत सम्बन्धी कार्य

राज्य मे कार्यरत 198 नगरीय संस्थाओ के द्वारा स्थानीय शासन के कुशल संचालन हेतु जिस भूमिका का निर्वाह किया जाता है उसके प्रति कभी-कभी नागरिको के मन मे रोष उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने नगरपालिकाओं/परिषदो की भूमिका को और विस्तृत बना दिया है। इस कारण नगरपालिकाओ के निर्णयो और कार्यों के प्रति परिवादो की बढ़ी संख्या को देखते हुए निदेशालय मे एक शिकायत अनुभाग स्थापित किया गया है। यह अनुभव करते हुए कि किसी लोकतान्त्रिक प्रशासन को नागरिक परिवादो के प्रति अधिक संवेदनशील होना चाहिए, इस अनुभाग के निर्देशन का कार्य सहायक निदेशक (सतर्कता) को दिया गया है। इस प्राधिकारी के नेतृत्व मे यह अनुभाग व इसमे कार्य करने वाले कर्मचारी राज्य भर की नगरीय संस्थाओ के निर्णयो के विरुद्ध प्रस्तुत शिकायतो का समयबद्ध निस्तारण करने का प्रयत्न करते हैं।

7. विधिक कार्य

राजस्थान का यह निदेशालय अनेक विधिक कार्यों का भी सम्पादन करता है। निदेशालय मे इस निमित्त एक सहायक निदेशक को उत्तरदायी बनाया गया है जो नगरीय संस्थाओं से सम्बन्धित समस्त रिट याचिकाओ, सिविल या दूसरे प्रकार के वाद तथा सेवा अधिकरण मे की गयी अपीलों व निदेशालय मे लम्बित समस्त प्रकार के प्रकरणो की देखरेख और उन पर की जाने वाली प्रशासनिक कार्यवाही के लिए उत्तरदायी है। निदेशालय मे इस हेतु निर्मित अनुभाग के अधिकारियो व कर्मचारियो से अपेक्षा की जाती है कि वह राज्य कि नगरीय संस्थाओ के अन्तर्गत लम्बित विधिक मामलो मे विधि सलाहकारो, पैनल अधिवक्ताओं व प्रभारी अधिकारियो की नियुक्ति के प्रकरणो के अतिरिक्त राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 की धारा 285 व 300 के प्रकरणों की जाच की कार्यवाही व अधिनियम के संशोधन/परिवर्तन तथा उसके अन्तर्गत

नियमो, उपविधियो, विनियमों, स्पष्टीकरण व व्ययो के प्रकरणो का परीक्षण व अभिशंसाओ से सम्बन्धित विधिक कार्य करेंगे। यह शाखा सुनिश्चित करती है कि राज्य की नगरीय संस्थाओ द्वारा अनिवार्य करारोपण, चुंगी, भवन व भूमि कर, व्यापार व व्यय करने व अन्य समस्त ऐसे ही निर्णयो मे किसी प्रकार की विधि के उल्लंघन का मामला न बने। निदेशालय राज्य भर की नगरीय संस्थाओ को उनके द्वारा किसी प्रकार की विधिक सलाह मागे जाने पर उन्हे यह उपलब्ध कराने का कार्य भी करता है।

8 अनुसन्धान, सूचना सग्रहण तथा वार्षिक प्रतिवेदन से सम्बन्धित कार्य

निदेशालय मे, उसकी एक शाखा अनुसधान, सूचना सग्रहण तथा निदेशालय के वार्षिक प्रतिवेदन की तैयारी एव उसके प्रशिक्षण से सम्बन्धित कार्य करती है। यह प्रकोष्ठ आवश्यक आकडो का सकलन, सूचना सग्रहण व डेटा बैंक के रूप मे कार्य करते हुए अनुसधान सम्बन्धी अपने निर्धारित कर्तव्यो का निष्पादन करता है। यही शाखा समस्त सामान्य समितियो की बैठको, राज्य स्तरीय समितियो की बैठको, सम्मेलनो, सगोष्ठियो एव वर्कशॉप के आयोजन के सम्बन्ध मे भी आवश्यक तैयारी करती है। निदेशालय अथवा राज्य मे नगरीय संस्थाओ से सम्बन्धित गठित विभिन्न प्रकार की समितियो तथा राजस्थान स्वायत्त शासन संस्था के तत्वाधान मे आयोजित बैठको के प्रस्तावो के परीक्षण इत्यादि कार्य भी इसी के द्वारा किया जाता है। निदेशालय न केवल वर्ष भर मे उसके स्वय के द्वारा सम्पन्न गतिविधियो तथा कार्यकलापो का वार्षिक प्रतिवेदन प्रकाशित करता है अपितु राज्य मे कार्यरत नगरपरिषद/पालिकाओ से उनके द्वारा वर्ष भर में सम्पन्न गतिविधियो का प्रतिवेदन अपने यहा मगवाता है। निदेशालय का अनुसधान प्रकोष्ठ नगरीय संस्थाओ द्वारा प्रस्तुत इन वार्षिक प्रगति प्रतिवेदनो मे व्यक्त आकडो एव प्रस्तुत सूचनाओ का परीक्षण और पुनरीक्षण इस दृष्टि से करता है कि उन संस्थाओ ने अपने कार्यकलापो मे राज्य सरकार की नगरीय विकास की नीति एव इसी सन्दर्भ मे निदेशालय द्वारा प्रेषित निर्देशो की पालना की है या नही। यह प्रकोष्ठ राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर प्रस्तावित 20 सूत्री एव इसी प्रकार के अन्य कार्यक्रमो की प्रगति व क्रियान्विति का भी कार्य देखता है।

उपरोक्त समस्त कार्यों के अतिरिक्त निदेशालय राज्य म नगरीय विकास हेतु कार्यशील समस्त नगरीय संस्थाओ एवं स्वायत्त शासन के कार्यशील मण्डल इत्यादि के लिए जिम्मेदार संस्थाओ की गतिविधियो और कार्यकलापो का

मूल्याकन करता है और यदि आवश्यक हो तो उन संस्थाओ को सहायता व सलाह उपलब्ध कराता है। निदेशालय उन समस्त प्रश्नो का उत्तर भी तैयार करता है जो नगरीय सस्थाओ के सम्बन्ध मे राज्य की विधानसभा के माननीय सदस्यो द्वारा उठाये जाते हैं। यह सुविदित है कि नगरीय सस्थाओ के द्वारा सम्पन्न किसी भी कार्य के बारे मे यदि विधानसभा मे कोई प्रश्न उठाया गया है तो स्थानीय निकायो के निदेशालय व निदेशक के रूप मे उनका उत्तर निदेशालय के स्तर पर ही तैयार करना पड़ता है। निदेशक चू कि राज्य सरकार के पदेन उप सचिव भी होते हैं इसलिए इस रूप मे वह राज्य सरकार मे नगरीय सस्थाओ से सम्बंधित सस्थाओ की सूचना पहुचाता है और राज्य सरकार के दृष्टिकोण से नगरीय सस्थाओ को भी अवगत कराता है।

राज्य के स्थानीय निकाय निदेशालय द्वारा जो भूमिका राजस्थान मे निष्पादित की जाती है यदि तटस्थ भाव से उसका मूल्याकन किया जाये तो यह प्रतीत होता है कि निदेशालय अपनी अपेक्षित भूमिका का प्रभावी निष्पादन नही कर पा रहा है। निदेशालय से राज्य सरकार एव नगरीय सस्थाओ के मध्य संबद्ध हेतु अथवा पुल का कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। एक ओर तो निदेशालय से राज्य की समस्त नगरीय संस्थाए मार्गदर्शन की अपेक्षा करती हैं और दूसरी ओर राज्य सरकार भी ऐसा अनुभव करती है कि राज्य की स्थानीय संस्थाओ की समस्त समस्याओ से निदेशालय उन्हे अवगत करायेगा। किन्तु समीक्षको की राय मे व्यावहारिक स्थिति यह है कि आज निदेशालय इन दोनो ही भूमिकाओ का प्रभावी निष्पादन नही कर पा रहा है। निदेशालय की कार्य प्रणाली का ऐसा यन्त्रीकरण हो गया है कि वर्षो से नगर पालिकाओ की समस्याओ का आँकलन करने के लिए उसने कोई राज्य स्तरीय सम्मेलनो का आयोजन नही किया है।

निदेशालय के निदेशक पद पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा का अधिकारी नियुक्त किया हुआ है जबकि राज्य की जयपुर जैसी कतिपय ऐसी नगर परिषदें भी हैं जिनके प्रशासक के पद पर भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी नियुक्त हैं। यह एक विचित्र विसंगति है कि निदेशालय के शीर्ष पर एक कनिष्ठ सेवा का प्राधिकारी नियुक्त है जबकि उसके नेतृत्व व नियन्त्रण मे कार्य करने वाली नगर परिषदो मे उससे उच्च सेवा का प्राधिकारी नियुक्त किया हुआ है। भारतीय प्रशासनिक सेवा के ये प्राधिकारी स्वाभाविक रूप से अपने से कनिष्ठ सेवा के अधिकारियो, चाहे वह पद क्रम मे उच्च स्थान पर ही नियुक्त क्यो न

हो, के निर्देशो की कितनी पालना करता होगा यह स्पष्ट करने की अधिक आवश्यकता नही है। ऐसे ही अनेक कारण हैं जिनसे राज्य का निदेशालय अधिक प्रभावी भूमिका नही निभा पा रहा है। इस स्थिति का एक और कारण यह भी है कि राज्य मे नगरीय सस्थाओ के चुनाव वर्षो से नही हो पा रहे हैं। निर्वाचित नगर परिषदो के अभाव मे नगर परिषदो/पालिकाओ मे राज्य सरकार द्वारा प्रशासक नियुक्त किये हुए हैं। सविधान एव अधिनियमो की अपेक्षा यह है कि नगरो मे लोकतान्त्रिक शासन की स्थापना की जायेगी किन्तु व्यावहारिक स्थिति इसके प्रतिकूल है। ऐसी स्थिति मे न केवल निदेशालय का अपितु राज्य के नगरीय स्थानीय निकायो का नौकरशाहीकरण हो गया है और उनकी कार्य-प्रणाली मे जो लोकतान्त्रिक भावना दिखाई देनी चाहिए थी वह दिखाई नही दे रही है। राज्य भर की नगरीय सस्थाओ को अब अनेक तकनीकी कार्यों का निष्पादन करना होता है और स्थिति यह है उनके निष्पादन के लिए नगरी सस्थाओ के पास कोई तकनीकी रूप से प्रशिक्षित और दक्ष कर्मचारी पर्याप्त मात्रा मे नही होते हैं। निदेशालय परिषदें ऐसा अनुभव करती हैं कि राज्य का स्थानीय निकाय निदेशालय उनकी समस्याओ को न तो राज्य सरकार तक प्रभावी ढग से पहुचा पा रहा है और न ही उन्हें समय समुचित मार्गदर्शन दे पा रहा है व्यावहारिक रूप से अनुभूत इस स्थिति का प्रतिकार राज्य सरकार के स्तर पर ही किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. मोहित भट्टाचार्य, स्टेट डाइरेक्ट्रेट्स ऑफ म्युनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन द इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, 1969, पृ. 12.
2. उपरोक्त,
3. श्रीराम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1984, पृ 295.
4. रिपोर्ट ऑफ दी अरबन लोकल सैल्फ गवर्नमेंट कमेटी, भोपाल, गवर्नमेंट सैन्ट्रल प्रेस, 1959, पृ. 73.

5. ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति के ये अंश मध्यप्रदेश शासन की उपरोक्त समिति के प्रतिवेदन में पृ 120 पर उद्धृत किये गये हैं।
6 निदेशालय स्थानीय निकाय विभाग द्वारा तैयार एक प्रगति प्रतिवेदन, (अप्रकाशित) जिसमें निदेशालय के 1950 से लेकर 1985 तक 35 वर्षों के विभागीय कार्यकलापों का प्रगति विवरण दिया गया है, से प्राप्त जानकारी पर आधारित।
7 उपरोक्त,
8. उपरोक्त,
9 राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959, धारा 283.
10. यह सूचना राजस्थान सरकार स्वायत्त शासन विभाग, जयपुर के वर्ष 1982–83, के प्रशासनिक प्रगति विवरण, में पृ. 1 पर दी गयी सूचना पर आधारित है।
11. उपरोक्त,
12 उपरोक्त,
13. निदेशालय का वार्षिक प्रतिवेदन, वर्ष 1968
14. राजस्थान सरकार, निदेशालय स्थानीय निकाय, जयपुर द्वारा जारी कार्य वितरण परिपत्र पर आधारित।
15. उपरोक्त,
16 निदेशालय का वार्षिक प्रतिवेदन, 1964
17. राजस्थान सरकार, निदेशालय, स्थानीय निकाय, जयपुर द्वारा जारी एक कार्य वितरण परिपत्र पर आधारित।
18 उपरोक्त,
19. निदेशालय का वार्षिक प्रतिवेदन, 1977–78
20. राजस्थान सरकार, स्वायत्त शासन विभाग के परिपत्र संख्या, स. प्रोइ/एफ 19 (29)/डी एलबी/63/5775–69 दिनांक 25.10 79
21. उपरोक्त,
22. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 धारा (1) और 63 (1)
23. उपरोक्त, धारा 65 (12)

24. यह शक्ति राज्य सरकार ने इन प्राधिकारियों को अधिनियम की धारा 86 (2) के अन्तर्गत प्रत्यायोजित की है।
25 राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, धारा 114 (1) व 310 (ए) (1)
26 उपरोक्त धारा 277 व 278
27. उपरोक्त, धारा 261
28. उपरोक्त, धारा 285
29. उपरोक्त, धारा 300
30. राजस्थान सरकार की अधिसूचना स एफ8/84/एल एसजी/62-1,

6 अगस्त, 1962 जो, राजस्थान के विशेष गजट में 10 अगस्त 1962 को प्रकाशित, उद्धृत, होशियार सिंह, स्टेट सुपरविजन ओवर म्युनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन, ए केस स्टडी ऑफ राजस्थान, एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979, पृ 22.
31. राज्य सरकार का परिपत्र सख्या 8/84/एलएसजी/62-1, अगस्त 6, 1962 जो राजस्थान के विशेष गजट में 10 अगस्त को प्रकाशित हुआ।
32. उपरोक्त,
33 स्वायत्त शासन विभाग, राजस्थान सरकार के परिपत्र सख्या एफ 14 (13) डी एसबी/65-66/42944-43107 दिनांक 1 जनवरी,1966
34. राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959, धारा 108 (सी)
35. राज्य सरकार का परिपत्र स एफ 4 (34) एलएसजी/ए/59 × 11 दिनाक 13 नवम्बर, 1959 उद्धृत, डॉ होशियार सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 22
36. राजस्थान सरकार के परिपत्र एफ 8 (84) एलएसजी/62 दि. 24 अगस्त 1962
37. राजस्थान नगरपालिका सेवा नियम 1961 के अन्तर्गत यह अधिकार निदेशक में निहित है। नियम 7 नियुक्तियों के तीन तरीकों का विवरण दिया गया है। विस्तृत विवरण हेतु यह नियम दृष्टव्य हैं।
38 राजस्थान म्युनिसिपल सर्विस रूल्स, 1961 धारा 114 और 310
39. उपरोक्त, धारा 26 पार्ट चतुर्थ

40 उपरोक्त, धारा 49 पार्ट आठ

41. उपरोक्त, धारा 86

42 उपरोक्त, धारा 310, 51

43 निदेशक को यह अधिकार राजस्थान सरकार, स्वायत्त शासन विभाग के परिपत्र सख्या एफ 8 (84) एलएसजी/62 दिनाक 24 अगस्त, 1962 के अन्तर्गत प्राप्त है ।

18

ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग

राजस्थान मे ग्रामीण अचलो के विकास और पचायती राज सस्थाओ से सम्बन्धित राज्य स्तरीय प्रशासनिक विभाग को ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग के नाम से जाना जाता है। राजस्थान मे पचायत विभाग एव विकास विभाग दो पृथक-पृथक विभागो के रूप मे कार्य कर रहे थे जिन्हे 1959 मे, पचायत एव विकास विभाग के रूप मे सयुक्त किया गया तथा 1982 मे राज्य सरकार के एक निर्णय द्वारा इस विभाग का नाम परिवर्तित कर ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग कर दिया गया है। यह सर्व विदित है कि ग्रामीण विकास एव पचायती राज एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये हैं। किसी भी प्रकार के ग्रामीण विकास की परिकल्पना पचायती राज सस्थाओ के बिना नही की जा सकती और पचायती राज की सस्थाएं अनिवार्यत ग्रामीण विकास के प्रयोजन के लिए ही अभिकल्पित की गई हैं। इसी अन्योन्याश्रितता और पारस्परिकता के कारण राजस्थान राज्य की सरकार ने पृथक-पृथक कार्य कर रहे दो विभागो को मिलाकर एक दिया है। यहा यह दोहराना अनावश्यक प्रतीत होता है कि राजस्थान वह अग्रणी राज्य है जिसने सविधान मे निर्दिष्ट पचायती राज सस्थाओ को सबसे पहले राजकीय सरक्षण प्रदान किया और इसके माध्यम से इस पिछड़े हुए राज्य के लिए ग्रामीण विकास के प्रगत सकल्प की अभिव्यक्ति की। इस विभाग की वर्तमान सरचना और कार्यकरण पर विचार करने से पूर्व इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत होना सुसगत होगा।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

राजस्थान मे, पचायती राज सस्थाओ का प्रादुर्भाव उसकी देशी रिया-

सतों के काल में ही होने के संकेत मिलते हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व, बीकानेर ऐसी पहली देशी रियासत थी जहां 1928 में ही ग्राम पचायत अधिनियम पारित करके ग्राम पचायत को वैधानिक आधार प्रदान कर दिया गया था।[1] इसी प्रकार तत्कालीन जयपुर राज्य में भी ग्राम पचायत अधिनियम 1938 में पारित किया गया जिसे 1943 की सविधान सुधार समिति के सुझावों के अनुरूप 1944 में सशोधित रूप में पुन पारित करके कार्यान्वित किया गया। इसी प्रकार तत्कालीन सिरोही राज्य में 1943 में, भरतपुर में 1944 में और करौली राज्य में 1949 में ग्राम पचायत अधिनियम पारित किया गया।[2]

सन् 1937 में अधिकांश प्रान्तों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सरकार बनाने तथा सुप्रसिद्ध रिपन प्रस्ताव के पारित होने के बाद ब्रिटिश भारत के विभिन्न प्रान्तों और मैसूर तथा बडौदा जैसी देशी रियासतों में पचायतों के निर्माण केलिए सक्रिय कदम उठाये गये। राजस्थान में सादिक अली पचायती राज अध्ययन दल ने अपनी रिपोर्ट में यह अंकित किया है कि इन प्रान्तों के उदाहरण का अनुसरण करते हुए राजस्थान की अनेक रियासतों ने ग्राम स्तर पर जन प्रतिनिधि संस्थाओं के महत्व और आवश्यकता को अनुभव किया। इसी आवश्यकता के अनुरूप जोधपुर, भरतपुर, जयपुर, सिरोही, उदयपुर, करौली, बीकानेर, कोटा, बूंदी, झालावाड, टोंक और शाहपुरा के देशी राज्यों तथा रियासतों ने इन संस्थाओं के गठन की दिशा में कदम उठाये थे, यद्यपि उनका दृष्टिकोण व्यापक नहीं था।[3]

राजस्थान आजादी के पश्चात ही ऐसा प्रथम राज्य नहीं है जिसने पचायती राज को सर्वप्रथम अपनाने में पहल की अपितु आजादी के पूर्व भी राजस्थान में पचायत प्रणाली का सशक्त आधार विद्यमान था और नये राज्य को विरासत में, चाहे अनियमित सी ही सही, पचायतों की एक प्रणाली अवश्य प्राप्त हुई थी।[4]

राजस्थान में 1949 में 'मुख्य पचायत अधिकारी' के अधीन पंचायत विभाग की स्थापना की गयी। फरवरी, 1950 में राजस्थान सरकार ने अपने एक आदेश द्वारा पचायत विभाग का सहकारी विभाग में समामेलन कर दिया।[5] इसके परिणाम स्वरूप 'रजिस्ट्रार, सहकारी समितियां' का नाम परिवर्तित कर 'रजिस्ट्रार सहकारी समितियां और ग्राम पंचायत' रख दिया गया। 1950 में सविधान के प्रवर्तित होने के पश्चात और विशेष तौर से 1951–52 में प्रथम पच वर्षीय योजना के प्रारम्भ होने पर देश में ग्रामीण उत्थान हेतु ग्राम विकास के कार्यक्रमों को जो सरकारी प्रोत्साहन मिला उसके परिणाम स्वरूप पचायत

विभाग के कार्य मे भारी वृद्धि हो गयी। इस परिवर्तित स्थिति का प्रभाव यह हुआ कि पंचायत विभाग को सहकारी समितियो से हटाकर पुनः मुख्य पंचायत अधिकारी के अधीन कर दिया गया जिसे दूसरे दर्जे के विभागाध्यक्ष का स्तर प्रदान किया गया। पंचायत विभाग के लिए जो पद रजिस्ट्रार (सरकारी समितिया) के यहा सृजित किये गये थे उन्हे भी यथारूप नये विभाग को स्थानान्तरित कर दिया गया।

1951 मे, पंचायत विभाग का सर्वोच्च अधिकारी मुख्य पंचायत अधिकारी था जिसके अधीन कुल 5 राजपत्रित अधिकारी कार्यशील थे। इन अधिकारियो के अधीनस्थ मंत्रालयिक सेवा के कार्मिको मे एक कार्यालय अधीक्षक, 12 वरिष्ठ लिपिक और 24 कनिष्ठ लिपिक भी कार्यशील थे।[6] 1953 तक राजस्थान के विभिन्न भागो मे एक से अधिक पंचायत अधिनियम प्रवर्तित होने से अनेक प्रशासनिक कठिनाईया विद्यमान थी। इन्ही कठिनाईयो को दूर करने के उद्देश्य से राजस्थान की विधानसभा ने राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1953 पारित किया जिसे राष्ट्रपति के अनुमोदन के पश्चात 1 जनवरी 1954 से राज्य मे प्रभावी माना गया है।[7] इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य मे ग्राम पंचायतो का गठन किया गया है। 1954 मे इस विभाग मे 24 निरीक्षक और 30 सहायक निरीक्षक कार्य कर रहे थे जिनकी सख्या 1958 मे बढकर क्रमश 27 और 52 हो गयी।

सन् 1958 मे विभाग की प्रशासनिक सरचना मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इन परिवर्तनो के अनुसार विभाग के शीर्षस्थ अधिकारी मुख्य पंचायत अधिकारी का पदनाम परिवर्तित कर निदेशक पंचायत कर दिया गया। 1958 के परिवर्तन के पश्चात इस विभाग मे एक उपनिदेशक, दो पंचायत सहायक निदेशक, 20 जिला पंचायत अधिकारी, 19 वरिष्ठ लिपिक 8 कनिष्ठ, लिपिक तथा लेखापाल, स्टैनो, सांख्यिकी सहायक इत्यादि के एक एक नए पदो का सृजन किया गया।[8]

विकास विभाग

राष्ट्रीय स्तर पर जब 1952 मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया तो इस कार्यक्रम को राजस्थान राज्य मे गति देने के निमित्त राज्य सरकार ने विकास विभाग की स्थापना की। तत्कालीन वित्त सचिव को ही इस विभाग के शीर्षस्थ स्तर पर विकास आयुक्त भी मनोनीत किया गया। पूरे राज्य में विकास के कार्यक्रमो को प्रशासन के विभिन्न स्तरो पर गति प्रदान करने के लिए कुछ अधिकारियो को उत्तरदायी बनाया गया है। इस क्रम मे राज्य स्तर

पर विकास आयुक्त, जिला स्तर पर जिलाधीश, खण्ड स्तर पर विकास अधिकारी और ग्राम स्तर पर ग्राम सेवक को दायित्व दिये गये हैं। राज्य स्तर पर विकास विभाग के सर्वोच्च प्राधिकारी विकास आयुक्त को विकास कार्यक्रमों से सम्बद्ध समस्त विभागों के मध्य सहयोग और समन्वय बनाये रखने का प्रमुख उत्तरदायित्व सौंपा गया। यही नहीं विकास कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए एक विकास निदेशालय भी बनाया गया जिसका प्रमुख अधिकारी विकास निदेशक था। यह अधिकारी सचिवालय और निदेशालय दोनों के दायित्वों का एक साथ निर्वाह करता था। इसलिए इसे निदेशक के साथ साथ पदेन उपसचिव का दर्जा भी प्रदान किया गया है और उसकी सहायता के लिए उप निदेशक तथा अन्य प्राधिकारी भी नियुक्त किये गये।[9]

1956 में जब राजस्थान का पुनर्गठन हुआ तो तत्कालीन सरकार ने राज्य के विकास की महत्ता को रेखांकित करते हुए वित्त सचिव से विकास आयुक्त का पद पृथक कर नियोजन आयुक्त का एक पद सृजित कर दिया और उसे राज्य के विकास कार्यक्रमों का उत्तरदायित्व दे दिया। नियोजन आयुक्त की सहायता के लिए विकास निदेशक और संयुक्त निदेशक राज्य स्तर पर तथा जिलाधीश को पदेन जिला विकास अधिकारी का दायित्व भी दे दिया। इसी प्रकार सब डिवीजन स्तर पर सब डिवीजन अधिकारी की सहायता के लिए सहायक जिला-धीश और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की सहायता और सेवाएं भी उपलब्ध करायी गयी ताकि ये अधिकारी सब डिवीजन स्तर पर संचालित किये जा रहे विकास कार्यक्रमों में प्रभावी समन्वय एवं सहयोग स्थापित कर सकें। सब डिवी-जन स्तर से नीचे तहसील स्तर पर भी तहसीलदार और अतिरिक्त तहसीलदार को इस कार्य में इसलिए सम्बद्ध किया गया ताकि ये दोनों अधिकारी चल रहे विकास कार्यक्रमों का प्रभावी पर्यवेक्षण और समन्वय कर सकें।

पंचायत एवं विकास की स्थापना

राजस्थान सरकार ने 28 मार्च 1959 को जारी अपने आदेश के माध्यम से पंचायत विभाग का विकास विभाग में विलय कर दिया और पंचायत विभाग के अधीन कार्यरत सचिवालय स्तर पर अधिकारी एवं क्षेत्रीय कर्मचारियों की सेवाएं विकास विभाग को हस्तान्तरित कर दी गयी।[10] पंचायत एवं विकास विभाग का समामेलन होने पर पंचायत निदेशक को पहले तो उप विकास आयुक्त बनाया गया और बाद में उसे संयुक्त विकास आयुक्त का स्तर प्रदान किया गया। इन दोनों विभागों के विलयन के आदेश यद्यपि 1959 में जारी कर दिए गये थे किन्तु विलयन की प्रक्रिया 13 अगस्त 1962 को पूर्ण हुई।

ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग

राजस्थान सरकार ने 1982 मे पचायत एव विकास विभाग का नाम परिवर्तित कर ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग कर दिया।[11] यहा यह उल्लेखनीय है कि पचायती राज की न्यूनताओ और विफलताओ पर 1981-82 मे राजस्थान मे परिचर्चा का एक विशेष वातावरण बना। 1982 मे ही बीकानेर मे पचायती राज पर एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमे पचायती राज को सशक्त बनाने के लिए न केवल महत्वपूर्ण विचार विमर्श हुआ अपितु अनेक निर्णय भी किये गये। पचायती राज एव विकास से सम्बन्धित इस विभाग का नाम परिवर्तित करने का निर्णय भी इस विचार विमर्श के परिणाम स्वरूप किया गया था। 1982 मे इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विभाग की प्रशासनिक सरचना मे कोई विशेष परिवर्तन नही किया गया।

विभाग भी और निदेशालय भी

यहा विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ग्रामीण विकास एव पचायती राज से सम्बन्धित यह विभाग सचिवालय परिसर मे दक्षिणाचल मे एक विशेष भवन मे स्थित है। इसकी सरचना से यह तथ्य उद्घटित होता है कि इसके द्वारा एक साथ दो भूमिकाओ का निर्वाह किया जा रहा है। एक ओर तो, राजस्थान सरकार के ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग तथा दूसरी ओर पचायती राज के निदेशालय की भूमिका दोनो इसमे सयुक्त कर दी गयी है। आगामी गठनात्मक विवरण मे दिए जा रहे चार्ट के माध्यम से यह तथ्य और अधिक अच्छी तरह से स्पष्ट किया जा रहा है कि सचिवालय स्थित इस विभाग की सरचना मे ही निदेशालय की सरचना का समामेलन भी हो गया है।

ऐसा नही है कि सचिवालय स्तरीय प्रशासनिक विभाग और उसके निदेशालय की यह सयुक्त भूमिका केवल इसी विभाग के द्वारा निभायी जाती है। वस्तुत यही स्थिति स्थानीय निकाय विभाग और निदेशालय, पर्यावरण विभाग और उसका निदेशालय तथा कुछ और विभागो के सन्दर्भ मे भी पायी जाती है। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि राज्य स्तरीय प्रशासनिक विभाग तथा पचायती राज निदेशालय की भूमिकाओ को सयुक्त कर दिया गया है। राजस्थान सरकार के ग्रामीण विकास एव पचायती विभाग तथा पचायत राज का निदेशालय दोनो एक ही सरचना मे सयुक्त हो गये है और इसमें नियुक्त पदाधिकारियो को निदेशालय तथा प्रशासनिक विभाग दोनो के पद नाम और दायित्व दिये गये है। इसी के अनुरूप सयुक्त भूमिका का निर्वाह करने की अपेक्षा उनसे की जाती है।

ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग का प्रशासनिक संगठन

मन्त्री

विकास आयुक्त

निदेशक एवं विशिष्ट शासन सचिव

उप सचिव एवं पदेन उपविकास आयुक्त(1)
उपविकास आयुक्त एवं सचिव सचिव (2)

मुख्य लेखाधिकारी
लेखाधिकारी (2)
सहायक लेखाधिकारी (7)

उप विकास आयुक्त एवं पदेन उप सचिव (1)
सहायक विधि प्रारूपकार

सांख्यिकी अधिकारी

उपनिदेशक (पोषाहार)

सम्पादक/सह.सम्पादक (राजस्थान विकास)

समन्वय अधिकारी

उप निदेशक (प्रा. शि.)

वरिष्ठ नगर नियोजक

सहायक विकास आयुक्त

सहायक अभियन्ता

वर्तमान संगठन

जहा तक ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग के सगठन का प्रश्न है इसके सगठन मे अधिकारियो और कर्मचारियो की सख्या यत्किंचित परिवर्तन के पश्चात वही है जो 1959 मे थी। उसके पश्चात आवश्यक होने पर यत्र-तत्र किंचित परिवर्तन किया जाता रहा है। वर्तमान मे इस विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष एक पचायती राज मन्त्री है। यह मन्त्री कभी कैबिनेट स्तर का और कभी राज्यमन्त्री स्तर का होता है। उपरोक्त चार्ट के माध्यम से इस विभाग के नवीनतम प्रशासन सगठन को भली-भाति आत्मसात किया जा सकता है ॥

उपरोक्त चार्ट के माध्यम से ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग का नवीनतम सगठन या उसकी सरचना पूर्णत स्पष्ट हो जाती है। चार्ट मे व्यक्त सभी पदाधिकारियो का उनके दायित्वो सहित सक्षिप्त विवरण देना अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रासगिक है।

मन्त्री ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज

ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग की इस राज्य स्तरीय सरचना का राज्य मन्त्रिपरिषद मे राजनीतिक प्रभारी एव कैबिनेट मन्त्री होता है। कभी कभी इस विभाग का राजनीतिक नेतृत्व किसी राज्य मन्त्री को भी दे दिया जाता है। ऐसा करते समय राज्यमन्त्री को इस विभाग का स्वतन्त्र प्रभारी बनाते हुए प्राय. कैबिनेट मन्त्री जैसी ही स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। मन्त्री होने के नाते इस विभाग के समस्त कार्यकलापो पर उसका नियत्रण रहता है। किसी भी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया मे यह एक सुविदित तथ्य है कि विभाग के निर्णय अन्तिम रूप से मन्त्री द्वारा ही लिये जाते हैं और यदि वे निर्णय प्रयोजनस्थ प्रशासनिक अधिकारियो द्वारा भी लिए जाते है तो उन पर मन्त्री की पूर्वानुमति या सहमति प्रायः पत्रावलियो पर ले ली जाती है। राजस्थान राज्य के लिए ग्रामीण विकास की योजनाओ का निर्माण और उनकी कार्यान्विति के लिए आवश्यक सगठन का विकास तथा उनके पदाधिकारियो और कर्मचारियों की भर्ती, उनके निर्देशन, उनका समन्वय तथा आवश्यक होने पर उनसे उनके कार्यकलापो का प्रतिवेदन भी पचायत राज मन्त्री के द्वारा मागा जा सकता है।

इसी प्रकार, राजस्थान मे पचायती राज विभाग का मन्त्री होने के नाते वह यह सुनिश्चित करता है कि राज्य मे पचायती राज की सभी सस्थाए प्रभावी तरीके से काम करें। पचायती राज सस्थाओ के सामयिक चुनावो का आयोजन, उनके निर्वाचन क्षेत्रो का परिसीमन, पदाधिकारियो की शिकायतें, उनमे समन्वय,

सस्थाम्रो को आवश्यक धन राशि उपलब्ध कराना तथा उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यकलापो पर नियन्त्रण करना उसके कार्यक्षेत्र की परिधि मे आता है। मन्त्री यहदेखता है कि राज्य मे कार्यशील पचायती राज की सभी सस्थाए उन उद्देश्यो की पूर्ति मे निरन्तर सलग्न रहे जिन उद्देश्यो के लिए उनकी रचना और अभिकल्पना की गयी है। मन्त्री यह भी सुनिश्चित करता है कि पचायती राज की सस्थाम्रो के पदाधिकारी नियमानुसार कार्य करें और नियमो की पालना न करने की स्थिति मे निर्वाचित पदाधिकारियो के विरुद्ध नियमानुसार निलम्बन इत्यादि की कार्यवाही भी उनके द्वारा की जा सकती है। सक्षेप मे, ग्रामीण विकास एव पचायती राज के प्रभावी कार्यकरण को सुनिश्चित करने के लिए वह अपने अधीनस्थ अधिकारियो को आवश्यक निर्देश देता है और यह देखता है कि उन निर्देशो की पालना भी की जा रही है। समीक्षको की यह कि मान्यता है कि पचायती राज की सस्थाम्रो को सक्रिय बनाये रखने और उनमे उत्साह का सचार करने मे मन्त्री की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यदि पचायती राज का मन्त्री उन सस्थाम्रो के कार्यकलापो मे अनवरत रुचि लेता रहे तो सस्थाम्रो के पदाधिकारी अनियमित कोई कार्यवाही करने मे सकोच करेंगे। इसके विपरीत यदि मन्त्री के द्वारा भी इन सस्थाम्रो के कार्यकरण मे रुचि नही ली जाती है तो पचायती राज की सस्थाम्रो मे अव्यवस्था परिव्याप्त होने की आशका रहती है।

विकास आयुक्त

जैसा कि पूर्व मे सकेत किया जा चुका है, विकास आयुक्त, विकास विभाग का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी है। वह ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग का ऐसा प्रभारी वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी है जो इस विभाग के सम्बन्ध मे मन्त्री का प्रमुख परामर्शदाता होता है। ग्रामीण विकास की नीतियों के निर्धारण और पचायती राज सस्थाओ मे कुशल कार्यकरण हेतु आवश्यक नीतिया बनाने और उसके बारे मे मन्त्री को सलाह तथा परामर्श उपलब्ध कराना उसका प्रमुख कार्य होता है। विकास आयुक्त का पद एक ऐसा पद है जो अन्य प्रशासनिक विभागो की गतिविधियो को भी प्रभावित करता है। वस्तुतः राज्य मे विकास हेतु अभिप्रेरित जितने भी प्रशासनिक विभाग राज्य स्तर पर कार्यरत है उन सबको किसी न किसी स्तर पर विकास विभाग से सम्बन्ध रखना होता है। सिचाई, विद्युत, कृषि, खाद्य, नागरिक आपूर्ति, परिवहन, सचार, यातायात, चिकित्सा आदि ऐसे प्रशासनिक विभाग है जिन्हे अपनी विकासात्मक गतिविधियो मे किसी न किसी स्तर पर विकास आयुक्त से परामर्श करना होता है और कभी-कभी कुछ परियोजनाम्रो पर उसकी आशिक अनुमति लेनी होती है। सरकार का प्रमुख परामर्शदाता होने के नाते ग्रामीण विकास के सम्बन्ध मे मुख्य-

मन्त्री भी उससे परामर्श की अपेक्षा रखते हैं और आवश्यक होने पर प्रशासनिक समन्वय की दृष्टि से उसीको निर्देश भी देते है। विकास आयुक्त का पद इतना महत्वपूर्ण है कि राज्य की प्रशासनिक सरचना के वरिष्ठतम भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो मे से इस पद पर नियुक्ति की जाती है।

यहा यह उल्लेखनीय है कि विकास आयुक्त का पद एक ऐसा पद है जो ग्रामीण विकास एवं पचायती राज विभाग के शीर्ष पर सचिवालयी सरचना का अनन्य अग है। इस पद का पचायती राज के निदेशालय से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होना, यद्यपि निदेशालय उसके नियन्त्रण मे निर्देशित होता है।

निदेशक एव विशिष्ठ शासन सचिव

ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग के निदेशालय की सरचना का यह सर्वोच्च प्रशासनिक पद है। इस पद पर भी भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी को ही नियुक्त किया जाता है। इस पद का धारक एक साथ दोहरे दायित्वों का निष्पादन करता है एक ओर तो वह पचायती राज के निदेशालय का शीर्षस्थ प्राधिकारी अर्थात निदेशक का दायित्व निभाता है तथा दूसरी ओर वह राज्य के ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग की सचिवालय स्थित शासकीय सरचना के विशिष्ट शासन सचिव की भूमिका का निर्वाह करता है। इन दोनो भूमिकाओ का निर्वाह करते हुए उसे यह सुनिश्चित करना होता है कि राज्य सरकार द्वारा ग्रामीण विकास की जो नीतियाँ बनायी जायें वे क्रियान्वयन की दृष्टि से व्यावहारिक बन सकें। वह विकास आयुक्त के अनवरत निर्देशन मे रहते उन्हे यह परामर्श और सूचनाए उपलब्ध कराता है कि राज्य मे किस प्रकार के विकास कार्यक्रमो की आवश्यकता किन किन क्षेत्रो मे है। विकास के कार्यक्रम के निर्माण की दृष्टि से आवश्यक सूचनाए वह राज्य मे कार्यरत अधीनस्थ अधिकारियो से मगवाता है और आवश्यकता होने पर अपने उच्चाधिकारियो अर्थात विकास आयुक्त को प्रस्तुत करता है।

पचायती राज विभाग का निदेशक होने के नाते उसका गुरुतर दायित्व है कि वह समस्त पचायती राज सस्थाओ के कार्यकरण की कुशलता और प्रभावशीलता मे वृद्धि हेतु आवश्यक उपाय करे। पचायती राज की सभी स्तरो की सस्थाओं का निर्देशन, पर्यवेक्षण और समय समय पर उनका नियन्त्रण करता है। पचायती राज सस्थाए अपने कार्य प्रतिवेदन भी निदेशक को प्रस्तुत करती है। निदेशक से यह आशा की जाती है कि वह राज्य मे कार्यशील समस्त पचायती राज सस्थाओं, विशेष तौर से जिला परिषदो तथा निष्पादकीय इकाई पचायत

समितियो, का वर्ष मे आवश्यकतानुसार दौरा कर यह सुनिश्चित करें कि उनके द्वारा निष्पादित की जा रही भूमिका जनता और सरकार की अपेक्षाओं के अनुरूप हो ।

निदेशक, पचायती राज से सम्बन्धित इस ग्रामीण विकास और पचायत विभाग पर पूर्ण प्रशासकीय नियन्त्रण रखता है । इस विभाग और निदेशालय की सरचना मे कार्य करने वाले समस्त अधिकारी और कर्मचारी उसके सीधे नियंत्रण और अनुशासन मे कार्य करते हैं । सभी पचायती राज सस्थाओं के नियमानुसार वार्षिक बजट के निर्माण और अनुमोदन की प्रक्रिया को समयानुकूल निश्चित और निर्धारित करता है । पचायती राज सस्थाओ के द्वारा विकास के जिन कार्यक्रमो का निष्पादन किया जाता है उनके लक्ष्यो की प्राप्ति से सम्बन्धित प्रतिवेदन समय समय पर उनसे मगवाता रहता है और उनके द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनो की सूचनाओ का सकलन करते हुए विकास आयुक्त के माध्यम से मन्त्री को आवश्यकता होने पर प्रस्तुत करता है । पचायती राज निदेशालय का निदेशक होने के नाते वह यह भी देखता है कि इन सस्थाओ के कार्य को गति प्रदान करने की दृष्टि से केन्द्रीय सरकार को किस तरह की सहायता और मदद लेने के लिए प्रस्ताव भेजे जा सकते हैं । वह अन्य राज्यो के साथ भी पंचायती राज की सरचना और कार्यकरण के सम्बन्ध मे आवश्यक तालमेल और समन्वय रखता है ।

निदेशालय का शीर्षस्थ अधिकारी होने के नाते राज्य मे समस्त जिला परिषदो मे और पचायत समितियो मे क्रमश कार्यकारी अधिकारियो तथा विकास अधिकारियो की नियुक्ति के आदेश उसी के माध्यम से जारी किये जाते हैं । राज्य मे कार्यशील पचायत समितिया और जिला परिषदें तथा यदि आवश्यक हो तो ग्राम पचायतें भी, उनके द्वारा अनुभूत समस्याओ पर अपने प्रतिवेदन निदेशालय को भेजती हैं । इस सन्दर्भ मे निदेशक का यह कर्तव्य है कि ऐसे प्राप्त प्रतिवेदनो पर आवश्यक कार्यवाही करे । समीक्षको की मान्यता है कि राज्य मे पचायती राज की सस्थाओ को गतिशील बनाये रखने मे निदेशक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है । इस पद पर नियुक्त अधिकारी यदि सक्रिय, गतिशील और उत्साही हो तो राज्य भर की पचायती राज सस्थाओ मे भी प्राण सचारित करता है और यदि इस पद पर नियुक्त अधिकारी शिथिल हो तो पचायती राज के कार्यों की गति मे शिथिलता भी आ सकती है ।

राज्य मे पचायती राज सस्थाओं के सम्बन्ध मे जो अधिनियम प्रवर्तित हुए हैं उनमे अनुभूत कठिनाईयो के संशोधन के लिए राज्य सरकार को वह आव-

श्यक सुझाव प्रेषित करना है और यदि राज्य सरकार निर्देश दे तो संशोधन के प्रारूप बनाकर उसी के द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। राज्य के सांसद और राज्य विधानसभाओं में निर्वाचित जन प्रतिनिधि भी पंचायती राज संस्थाओं की समस्याओं के बारे में निदेशक पंचायती राज को ही प्राथमिक रूप से सम्पर्क करते हैं और उसके उत्तर में असन्तुष्ट होने के पश्चात ही वे मन्त्री का हस्तक्षेप आमन्त्रित करते हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि समस्त पंचायती राज संस्थाएं उनमें कार्यशील पदाधिकारी जन प्रतिनिधि और ग्राम जनता ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज से सम्बद्ध समस्याओं के निदान के लिए निदेशक से सम्पर्क करती है और निदेशक भी अपनी सीमाओं में रहते हुए यथा शक्ति उनका समाधान करने की चेष्टा करता है।

मन्त्री, विकास आयुक्त तथा निदेशक एवं विशिष्ठ शासन सचिव ये तीन ऐसे शीर्षस्थ प्राधिकारी हैं जो ग्रामीण विकास और पंचायती राज की नीतियों का निर्धारण करते हैं और उन निर्धारित नीतियों के निष्पादन की प्रक्रिया पर प्रभावी पर्यवेक्षण और नियन्त्रण भी करते हैं। इन प्राधिकारियों के अधीन निदेशालय एवं विभाग की संरचना में अन्य अनेक वरिष्ठ अधिकारी कार्यशील हैं जिनके दायित्वों का विवरण, राज्य सरकार के कार्य विभाजन आदेश के अनुसार आगामी विवरण में प्रस्तुत किया जा रहा है।

उप सचिव एवं उप विकास आयुक्त ए–1

यह पद इस विभाग का, निदेशक के अधीन सबसे महत्वपूर्ण पद है। इस पद पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा का कोई वरिष्ठ अधिकारी नियुक्त किया जाता रहा है। विभागीय कार्य विभाजन निर्देशों के अनुसार यह पदधारी निम्नांकित कार्यों के लिए उत्तरदायी बनाया गया है:[13]

1. मुख्यालय पर नियुक्त कर्मचारी वृन्द से सम्बन्धित सभी संस्थापन मामले यथा नियुक्ति, पदस्थापन, स्थानान्तरण, जांच, दण्ड, विभागीय पदोन्नति समिति इत्यादि,
2. जिला परिषद में नियुक्त मुख्य कार्यकारी अधिकारियों, उप सचिवों एवं पंचायत समितियों के विकास अधिकारियों से सम्बन्धित संस्थापन एवं जांच से सम्बन्धित मामले,
3. विभाग में नियुक्त सभी सहायक अभियन्ताओं तथा कनिष्ठ अभियन्ताओं के संस्थापन संबंधी मामले,

4 पचायती राज की एन आर ई पी, आई आर डी पी जैसी योजनाओं का पचायती राज सस्थाओ को हस्तान्तरण और उनके कार्यान्वियन का अनुश्रवण (मॉनीटर करना),

5. अकाल राहत कार्यों के अन्तर्गत कार्यों का आवटन तथा पच वर्षीय योजनाओ का निरूपण एव अनुश्रवण,

6 ग्राम स्वास्थ्य मार्गदर्शक एव दवाइयो से सम्बन्धित अनुभाग के मामले, तथा हैण्डपम्पो की स्थापना तथा उनके सधारण से सम्बन्धित मामले,

7. वार्षिक प्रगति विवरण की समीक्षा से सम्बन्धित अनुभाग के मामले,

8 जन अभाव अभियोगो का अनुश्रवण, मन्त्रिमण्डल के निर्णयो, सचिवो की बैठको और ओ एण्ड एम. तथा प्रशासनिक सुधार से सम्बन्धित मामले,

9 बजर भूमि विकास,

10. विकास आयुक्त एव निदेशक ग्रामीण विकास एव पचायती राज के निरीक्षण टिप्पणियो से सम्बन्धित मामले,

11. वाहनो का आवटन और सधारण, कार्यालय भवन का सधारण और टेलीफोन उपलब्ध कराने से सम्बन्धित मामले।

यह अधिकारी विभागीय कार्य विभाजन आदेशो के अनुसार उपर्युक्त समस्त मामलो के निस्तारण के लिए औपचारिक रूप से उत्तरदायी बनाया गया है। इन मामलो के साथ ही वह उन समस्त कार्यों को निष्पादित करने के लिए भी उत्तरदायी है जो उसे समय समय पर निदेशक या विकास आयुक्त या मन्त्री महोदय द्वारा निर्दिष्ट किये जायें।

उप सचिव एव उप विकास आयुक्त ए–2

यह अधिकारी निम्नाकित कार्यों के लिए उत्तरदायी है

1. पचायती राज सस्थाओ के समस्त कर्मचारी वृन्द–मत्रालयिक कर्मचारियो ग्राम विस्तार कार्यकर्ताओ, चालको, पशुपालन एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियो से सम्बन्धित सस्थापन सम्बधित समस्त मामले,

2 पचायत विस्तार अधिकारियो, ग्रामउद्योग विस्तार अधिकारियो, इत्यादि से सम्बन्धित समस्त सस्थापन मामले,

3 पचायती राज कर्मचारी सघ और ग्रामसेवक सघ की मागो से सम्बद्ध मामले,

4. लेखाकार, कनिष्ठ लेखाकारो, वरिष्ठ लिपिको, कनिष्ठ लिपिको तथा जिला परिषदो एवं पंचायत समितियो में नियुक्त लेखाकारों से सम्बन्धित समस्त संस्थापन मामले,

5 विकास सहायको, सहकारिता प्रसार अधिकारियो और कृषि विस्तार अधिकारियो से सम्बन्धित समस्त संस्थापन मामले ।

उप सचिव एवं पदेन उप विकास आयुक्त (प्रशिक्षण)

यह प्राधिकारी विभागीय कार्य वितरण आदेशो के अनुसार निम्नांकित कार्यों को सम्पादित करने के लिए उत्तरदायी है ।[11]

1 पंचायती राज संस्थाओ के कर्मचारी वृंद अर्थात् विकास अधिकारियो विस्तार अधिकारियो, अध्यापको, ग्राम स्तरीय कार्यकर्ताओ तथा जिला स्तरीय अधिकारियो के राजस्थान में और राजस्थान से बाहर प्रशिक्षण सम्बन्धी मामले,

2 युवा कार्यकर्ताओ का प्रशिक्षण,

3 पंचायती राज संस्थाओं के गैर सरकारी अधिकारियो अर्थात् जिला प्रमुख, प्रधान, पंचायत समितियो के सदस्यों, सरपंचो और उप सरपंचो के प्रशिक्षण सम्बन्धी मामले,

4 अध्ययन भ्रमण और प्रशिक्षण शिविर से सम्बन्धित मामले,

5 ग्राम सेवको के प्रशिक्षण केन्द्रो और अन्य प्रशिक्षण योजनाओ से सम्बद्ध संस्थापन सम्बन्धी मामले,

6 जिला परिषद के मुख्य कार्यकारी अधिकारियो की बैठको से सम्बन्धित मामले,

7. इन्दिरा गांधी पंचायती राज संस्थान से सम्बन्धित कार्य

8. प्रति विशिष्ट व्यक्तियो और अध्ययन दलो के कार्यक्रम,

9 संगोष्ठियो और सम्मेलनो से सम्बन्धित मामले,

10. मुख्य कार्यकारी अधिकारियों के भ्रमण और निरीक्षण

11. जिला परिषदो और पंचायत समितियों को उनके क्षेत्राधिकार में दूर वाहन ले जाने से सम्बन्धित स्वीकृति,

12. पंचायत समिति एवं जिला परिषद के भवनों के सुधारण हेतु अनुदान का आवंटन ।

उप सचिव एव पदेन उप विकास श्रायुक्त (विधि एवं न्यायिक)

विधि सम्बन्धी एव न्यायिक मामलो के प्रभारी से, विभागीय निर्देशो के अन्तर्गत, निम्नांकित कार्यों के सम्पादन की अपेक्षा की गयी है :[15]

1 विभाग के विधि एव न्यायिक अनुभाग तथा सम्बन्धित अधिनियमो मे आवश्यक सशोधनो से सम्बन्धित मामले,

2 पचायत समितियों के परिसीमन एव मुख्यालय के परिवर्तन से सम्बन्धित मामले,

3. जिला परिषदो एव पचायत समितियो के प्रस्तावो के निलम्बन या निरस्तीकरण से सम्बन्धित मामले,

4. अधिकारियो और कर्मचारीवृन्द द्वारा प्रस्तुत रिट याचिकाओ, सिविल वाद, नोटिस और अन्य वादो से सम्बन्धित मामले,

5. पचायती राज सस्थाओ के चुनाव और उससे उत्पन्न होने वाले निर्वाचन वाद से सबधित मामले,

6 ग्राम सभा और ग्राम दानी गावो से सम्बन्धित मामले,

7 आबादी भूमि का विक्रय,

8 पचायत समिति के टैंक, ट्रैक्टर्स से सम्बन्धित मामले,

9 पचायत समिति एव जिला परिषद की अचल सम्पत्ति के अधिग्रहण, एव उसका व्ययन इत्यादि से सम्बन्धित सभी मामले ।

उप विकास आयुक्त (जांच)

यह अधिकारी निम्नांकित कार्यों की देखरेख के लिए उत्तरदायी है :

1 पचायत समितियो के प्रधानो, उप प्रधानो, सदस्यो, पचायतो के सरपच और पचो के विरुद्ध जाच,

2. वाद से सम्बन्धित नोटिस, फौजदारी वाद, रिट याचिकाओ तथा ऐसी रिट याचिकाए जो पचायती राज सस्थाओ के निर्वाचित प्रतिनिधियो के विरुद्ध ससूचित की गई हैं,

3. पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम की धारा 85 के अन्तर्गत पुनरीक्षण सम्बन्धी मामले, तथा

4. अधिनियम की विभिन्न धाराओ के अन्तर्गत अपील ।

मुख्य लेखाधिकारी

विभाग का मुख्य लेखाधिकारी समस्त लेखा सम्बन्धी मामलो के लिए उत्तरदायी है। कार्य वितरण आदेशो के अनुसार उससे निम्नांकित कार्यों के औपचारिक निर्वाह की अपेक्षा की जाती है

1 ग्रामीण विकास एव पचायती राज विभाग पचायती राज संस्थाओ और समस्त प्रशिक्षण संस्थाओ के लेखा संधारण और उससे सम्बन्धित मामले,
2 वार्षिक बजट का निरूपण तथा वित्त आयोग से सम्बन्धित मामले,
3 जन लेखा समिति और अनुमान समिति से सम्बन्धित मामले,
4 अंकेक्षण दलो द्वारा प्रस्तुत आपत्तियों तथा उनके द्वारा प्रस्तुत टिप्पणियो के निस्तारण से सम्बन्धित मामले,
5 पचायत समितियो, जिला परिषदो एव प्रशिक्षण संस्थाओ के लेखो के आंतरिक नियन्त्रण हेतु निरीक्षण,
6. पचायत समितियो तथा जिला परिषदो के विभिन्न व्यावसायिक प्रतिष्ठानो तथा व्यक्तियो से धन की अदायगी न किये जाने से सम्बन्धित मामले,
7 जिला परिषद के प्रमुख, उप प्रमुख पचायत समिति के प्रधान तथा ग्राम पचायत के सरपच और पचायत समितियो के सदस्यो के वेतन एव भत्तो से सम्बन्धित मामले,
8 आन्तरिक अंकेक्षण तथा पचायती राज कर्मचारी वृन्द के वेतन स्थिरीकरण सम्बन्धी मामले,
9 पचायत समितियो के ऋणो तथा करो की वसूली से सम्बन्धी मामले,
10 पचायत समितियो एव जिला परिषदो की वित्तीय शर्तों मे अभिवृद्धि से सम्बन्धित मामले,
11 पचायत समिति एव जिला परिषदो को उनके निजी भवनों के निर्माण तथा मरम्मत के लिए निधि का आवंटन से सम्बन्धित मामले।

वरिष्ठ नगर नियोजक

विभाग मे एक वरिष्ठ नगर नियोजक का पद भी स्वीकृत है। इस पद के पदाधिकारी के अधीन नगर नियोजन के अधिकारी को सहायक विकास आयुक्त और उसके अतिरिक्त सहायक अभियन्ता एवं कनिष्ठ अभियन्ता नियोजित

किए हुए हैं। नगर नियोजन से सम्बन्धित इस अनुभाग का प्रमुख दायित्व यह है कि राज्य में ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग के अन्तर्गत जो भी निर्माण कार्य तथा भवनों की मरम्मत से सम्बन्धित कार्य चल रहा है उनका नियमानुसार संचालन सुनिश्चित करें।

सहायक विकास आयुक्त (स्वच्छता)

विभाग में एक सहायक विकास आयुक्त (स्वच्छता) का पद स्वीकृत किया हुआ है। इस पदाधिकारी को प्रमुख रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता से सम्बन्धित परियोजनाओं, विशेष तौर से यू. एन. डी. पी. और यूनिसेफ के सहयोग से संचालित परियोजनाओं को उचित प्रकार से कार्यान्वित करने का दायित्व दिया हुआ है। यह पदाधिकारी अपने अधीनस्थ कार्यरत कतिपय कर्मचारियों की सहायता से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों को निष्पादित करता है।

उप निदेशक (पोषाहार)

यह पदाधिकारी निम्नांकित कार्यों को सम्पादित करता है :[16]

1. अनौपचारिक और प्रौढ़ शिक्षा,
2. पोषण से सम्बद्ध कर्मचारी वृंद से सम्बन्धित संस्थापन सम्बन्धी समस्त मामले,
3. अनौपचारिक शिक्षा की संस्थापना और पर्यवेक्षण,
4. प्राथमिक विद्यालयों में मध्य दिवसीय भोजन कार्यक्रम (मिड डे मील प्रोग्राम),
5. अकाल से प्रभावित क्षेत्रों में खाद्य और पोषण से सम्बन्धित कार्यक्रम।

उप निदेशक (प्राथमिक शिक्षा)

यह प्राधिकारी प्रमुख रूप से निम्नांकित कार्यों के सम्पादन के लिए उत्तरदायी है :

1. राज्य में प्राथमिक स्कूलों का खोलना,
2. राज्य में प्राथमिक शिक्षा और उसमें सम्बद्ध शिक्षकों के संस्थापन सम्बन्धी समस्त मामले।

समन्वयक (उन्नत चूल्हा कार्यक्रम)

यह प्राधिकारी राज्य में उन्नत चूल्हा कार्यक्रम के विस्तार और उसे

लोकप्रिय बनाने से सम्बन्धित नीतियों का निरूपण और निष्पादन करता है। इस प्राधिकारी से यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह उन्नत चूल्हा कार्यक्रम के सम्बन्ध में पंचायत समितियों, उसकी स्थायी समितियों और उप समितियों की बैठकों के कार्य विवरण पर आवश्यक कार्यवाही करे। पंचायत समितियों, जिला परिषदों एवं अतिरिक्त जिला विकास अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत निरीक्षण प्रतिवेदनों की पालना करवाने का कार्य भी वही करता है।

सम्पादक (राजस्थान विकास)

ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकलापों, उनकी समस्याओं और ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विचारों और चिन्तन को गति प्रदान करने तथा उसमें आवश्यक समन्वय एवं प्रचार-प्रसार की दृष्टि से एक पत्रिका "राजस्थान विकास" का प्रकाशन करता है। विभाग में इस पत्रिका के सम्पादन हेतु एक सम्पादक और उसकी सहायतार्थ एक सहायक सम्पादक का पद स्वीकृत है। ये दोनों अधिकारी राजस्थान विकास नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन कर राज्य की समस्त पंचायती राज संस्थाओं एवं अन्य इच्छुक संस्थाओं व व्यक्तियों को पहुंचाने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

इस प्रकार, विभाग के उपरोक्त समस्त अधिकारी ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज से सम्बन्धित कार्यक्रमों को सरकार के निर्देशों और जन आकांक्षाओं के अनुरूप गति प्रदान करते हैं।

विभाग के कार्य

जैसा कि इस विभाग के नाम से ध्वनित होता है, इसके कार्यों का सीधा सम्बन्ध ग्रामीण जनता, उनके विकास और उनके स्वायत्त शासन के लिए निर्मित उनकी पंचायती राज संस्थाओं से है। इससे पूर्व अधिकारियों के दायित्वों का जो विवरण दिया गया है उसमें भी इस विभाग के द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों का एक बिम्ब उभरता है। फिर भी विभाग के कार्यों के सकलित प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से उन्हें विभिन्न शीर्षकों में आबद्ध करना उपयुक्त प्रतीत होता है।

पंचायती राज संस्थाओं से सम्बन्धित कार्य

ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग प्राथमिक रूप से तो राजस्थान में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की क्रियान्विति के लिए समर्पित है साथ ही यह पंचायती राज संस्थाओं के संचालन से सम्बन्धित कार्य को भी समान महत्व देता है। इस सम्बन्ध में यह विभाग निम्नांकित कार्यों को सम्पन्न करता है:

1. पंचायती राज संस्थाओ के सामयिक चुनावो के आयोजन मे निर्वाचन विभाग, राजस्थान की सहायता,
2. यदि निर्धारित (3 वर्ष की) अवधि मे पंचायती राज संस्थाओ के चुनाव न हो पायें तो अधिनियम के प्रावधानो के अनुरूप दो वर्ष तक उसके *कार्यकाल मे वृद्धि के प्रस्तावो को सरकार से स्वीकृति प्रदान करवाना,*
3. ग्राम पचायत, पचायत समिति और जिला परिषदो का गठन, पुनर्गठन और उनका नाम परिवर्तन,
4. पचायती राज संस्थाओ के अध्यक्ष और उपाध्यक्षो के चुनाव और रिक्त पदो की पूर्ति के मामले,
5. पचायती राज संस्थाओ की सदस्यता, सह सदस्यता, सहवरण और अतिरिक्त सदस्यता के मामलो का निस्तारण,
6. पचायती राज संस्थाओ के सदस्यो के चुनावो से सम्बन्धित विवादो के निस्तारण की विधि सम्मत व्यवस्था,
7. पचायती राज संस्थाओ के कार्यकाल, सदस्यता सम्बन्धी अयोग्यता तथा सदस्यता समाप्ति के मामले,
8. पचायती राज संस्थाओ के पदो की आकस्मिक रिक्तियों को भरना, इनके अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यो के त्यागपत्र, इनकी समितियो का गठन और समितियो के कार्य सचालन नियमो से सम्बन्धित मामले,
9. पचायत समिति और जिला परिषदो के बजट पर नियमानुसार स्वीकृति,
10. पचायत समिति और जिला परिषदो के कार्मिक मामलो पर नियमानुसार कार्यवाही,
11. पचायत समितियो तथा जिला परिषदों द्वारा निर्मित योजना का कार्यान्वयन तथा नये कार्यक्रमो से सम्बन्धित मामले,
12. पचायती राज संस्थाओ के निर्वाचित प्रतिनिधियो तथा अधिकारी वर्ग के प्रशिक्षण से सम्बन्धित मामले,
13. पचायती राज संस्थाओं को वाहन उपलब्ध कराना,
14. पंचायती राज के अध्ययन दलो के भ्रमण कार्यक्रमो के समय उनकी सहायता का आवश्यक प्रबन्ध करना,

15 पचायती राज सस्थाओ के कर्मचारी वृन्द की सेवा शर्तों और अनुशासन के नियमो का सधारण,

16. पचायती राज सस्थाओ के निर्वाचित पदाधिकारियों एवं कर्मचारियो के विरुद्ध शिकायतो की जांच और उन पर आवश्यक अनुवर्ती कार्यवाही,

17. पचायती राज द्वारा आरोपित किये जाने वाले नये करो की पूर्व स्वीकृति एव उन पर अपीलो की सुनवाई,

18. पचायती राज सस्थाओ पर प्रशासनिक एव कार्यपालक नियन्त्रण,

19. पचायत एव पचायत समितियों के मध्य या पचायत समिति एव जिला परिषद या नगर मण्डल के मध्य विवादों से सम्बन्धित मामले,

20. पचायत राज सस्थाओ और उनकी समितियो के प्रस्तावो का निलम्बन या निरस्तीकरण से सम्बन्धित मामले,

21. पचायत समिति एव जिला परिषदो के कर्मचारी वृन्द के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही,

22. दण्डनीय अपराधो पर पचायती राज सस्थाओ मे कार्य कर रहे कर्मचारी वृन्द पर अभियोग चलाने की स्वीकृति देना,

23. पचायती राज सस्थाओ के लिए भूमि की अवाप्ति,

24. ग्राम पंचायत, पचायत समिति एव जिला परिषदो के पी डी. खातो मे निधियो, ऋणो द्वारा सहयोग, अनुदानो का आवटन,

25 पंचायती राज सस्थाओ द्वारा अकेक्षण प्रतिवेदनो की अनुपालना,

26. राजस्थान पचायत अधिनियम, 1953 और पचायत समिति एव जिला परिषद अधिनियम, 1959 मे सशोधन हेतु आवश्यक कार्यवाही.

27. विधानसभा या ससद मे पचायती राज सस्थाओ के बारे मे पूछे गये प्रश्नो के उत्तर,

28. पचायती राज सस्थाओ के कर्मचारी वर्गों की मागो से सम्बन्धित मामलो का निस्तारण,

29. पचायती राज सस्थाओ की अचल सम्पति के अधिग्रहण एव क्रयीकरण से सम्बन्धित मामलो का निस्तारण,

30. पचायती राज संस्थाओ मे चल रहे निर्माण कार्यों का पर्यवेक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण,

31. पचायती राज सस्थाओ द्वारा राज्य भर मे सचालित पोषण कार्यक्रमो का निर्देशन, पर्यवेक्षण और नियन्त्रण,

32 पचायती राज सस्थाओ द्वारा सचालित प्राथमिक शिक्षा का पर्यवेक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण।

उपरोक्त विवरण मे सकलित समस्त बिन्दुओ मे उन कार्यों को समाविष्ट करने की चेष्टा की गयी है जो पचायती राज सस्थाओ के सन्दर्भ मे इस विभाग द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। यह सूची अपने आप मे, उन कार्यों की सम्पूर्ण सूची नही मानी जा सकती जिनका सम्पादन यह विभाग पंचायती राज की त्रिस्तरीय सस्थाओ के सन्दर्भ मे करता है बल्कि यह सूची दृष्टात परक है। इसके माध्यम से विभाग द्वारा पचायती राज से सबधित सम्पादित कार्यों की परिगणना करने का प्रयत्न किया गया है।

किन्तु, उपरोक्त विवरण का अभिप्राय यह नही है कि यह विभाग केवल पंचायती राज से सबधित भूमिका ही निभाता है। वस्तुत. पचायती राज की सस्थाओ को सारे देश मे और विशेष कर राजस्थान मे ग्रामीण क्षेत्रो मे विकास मे सबधित नूतन दायित्व दिए जाने की प्रवृति कुछ वर्षों से दृष्टव्य हो रही है। लोकतांत्रिक चिन्तकों की मान्यता यह है कि जब शासन के उच्च स्तर—केन्द्र व राज्य—का सचालन निर्वाचित जन प्रतिनिधियों द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है तो फिर शासन के इस तीसरे स्तर का सचालन निर्वाचित जन प्रतिनिधियो द्वारा प्रभावी तरीके से क्यो नही किया जा सकता? लोकतान्त्रिक चिन्तकों की यह मान्यता उनके लोकतान्त्रिक दर्शन की व्यापक अवधारणा को प्रसारित करती है, यद्यपि यह भी सम्भव है कि कुछ लोगो को उनके इस चिन्तन से असहमति हो। हर कार्य के प्रारम्भ मे कठिनाईया आती हैं यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। पचायती राज सस्थाओ को अधिक अधिकार देना, अधिक दायित्व दिया जाना और उनकी भूमिका मे विस्तार किये जाने से उनके सामने अनेक प्रकार की प्रशासनिक, वित्तीय, कार्मिक और निष्ठाजन्य समस्याए उपस्थित होती हैं जिनके कारण कभी-कभी यह प्रतीत होने लगता है कि पचायती राज सस्थाए अभी विस्तृत दायित्वो का निर्वाह करने मे सक्षम नही हैं। इस विन्दु पर विस्तार से विचार करना यहा अभीष्ट भी नही, किन्तु इस बहस के जारी रहने के पश्चात भी राजस्थान एक ऐसा राज्य है जिसे पचायती राज सस्थाओ को ग्रामीण विकास से सम्बन्धित अनेकानेक दायित्व दिए गए हैं। यही कारण है कि पचायती राज मे सम्बन्धित राज्य स्तरीय इस विभाग और निदेशालय की सरचना के शीर्षक

ग्रामीण विकास शब्द जुड़ा हुआ है । यह विभाग ग्रामीण विकास से सम्बन्धित जो दायित्व निष्पादित करता है उन्हे आगामी विवरण मे अभिव्यक्ति दी जा रही है ।

ग्रामीण विकास से सम्बन्धित कार्य

ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, राजस्थान मे विकास के जिन कार्यक्रमों को नियान्वित करने के लिए उत्तरदायी है वे दो प्रकार के हैं । विकास के कतिपय कार्यक्रम तो विभाग सीधे ही अपने तन्त्र के माध्यम से राज्य मे कार्यान्वित करता है जबकि कुछ अन्य कार्यक्रम दूसरे विभागो को कार्यान्वयन हेतु हस्तान्तरित किये जाते हैं । इस विभाग द्वारा सीधे चलाये जा रहे कार्यक्रम और अन्य संस्थाओ के माध्यम से सम्पादित कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है [17]

विभाग द्वारा सीधे संचालित विकास कार्यक्रम

निशुल्क भूखण्ड आवंटन

यह विभाग आर्थिक दृष्टि से कमजोर परिवारों, जिनकी मासिक आय 350 रुपये प्रतिमाह से कम हो, को राजस्थान पंचायत एवं नगरीय पंचायत, 1961 के नियम 267 (1) व (2) के अन्तर्गत 150 वर्ग गज भूमि का आवंटन करने हेतु पंचायतो को निर्देश देता है । ऐसे भूखण्डो के आवंटन मे विभाग का यह निर्देश है कि अनुसूचित जाति और जन जाति के परिवारो को लाभान्वित करने के लिए विशेष ध्यान दिया जाये । 1985 से लेकर प्रति वर्ष राज्य भर मे 30 हजार से अधिक ऐसे परिवारो को इस कार्यक्रम से लाभ पहुँचाया गया है ।[18]

ग्रामीण आवास निर्माण सहायता कार्यक्रम

समाज के कमजोर वर्ग के परिवारों को नि शुल्क आवासीय भूखण्ड उपलब्ध कराना ही विभाग ने पर्याप्त नही समझा है अपितु आवास निर्माण के लिए उन्हे सहायता देने का संकल्प भी व्यक्त है। इस हेतु उपयुक्त परिवारो के चयन एवं सहायता वितरण तथा गृह निर्माण का कार्य पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतो की देखरेख मे सम्पन्न किया जाता है । चयन की इस प्रक्रिया में पंचायतों एवं पंचायत समितियो को इसलिए संयुक्त किया जाता है क्योंकि उन्हे चयन क्षेत्र के बारे मे सही जानकारी होती है और उपयुक्त परिवारो का चयन करने मे वे सरकार की पूर्ण सहायता करती हैं । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 1985 से लेकर अब तक प्रति वर्ष लगभग 30 हजार परिवारों को लाभान्वित किया गया है ।

ग्रामीण क्षेत्रों के लोगो को आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने के लिए सरकार के इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विगत वर्षो मे विभागीय अनुदान योजना के अन्तर्गत 750 रुपये की आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी गयी है। इसी तरह केवल अनुसूचित जाति, जन जाति के परिवारो को 1578 रुपये की आर्थिक आवासीय सहायता एन आर ई. पी. योजना के अन्तर्गत उपलब्ध करायी गयी है। एन. आर. ई. पी. योजना मे ही कुछ चयनित लोगो को 3 हजार रुपये की सहायता ऋण के रूप मे 4 प्रतिशत ब्याज की दर से व्यावसायिक बैंको से उपलब्ध कराने का प्रावधान भी किया गया है। इन दोनो कार्यक्रमो के अतिरिक्त विगत सरकार द्वारा इन्दिरा आवास योजना के नाम से आर. एल. ई. पी. जी. कार्यक्रम के अन्तर्गत उन निर्धनतम, भूमिहीन अनुसूचित जातियो, जन जातियो के परिवारो को स्वच्छ आवास उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया गया है जो आवासीय सुविधा के लिए धन राशि जुटा ही नही सकते। इस योजना के अन्तर्गत कुल 150 वर्ग गज के निशुल्क भू खण्ड ही आवटित नही किये गये हैं अपितु भौगोलिक स्थिति के अनुसार 10,500 रुपये से 12 हजार रुपये प्रत्येक भवन निर्माण हेतु भी उपलब्ध कराये गये है।

ग्रामीण शौचालय एव ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम

ग्रामीण क्षेत्रो मे शौचालयो की समस्या तथा इस सदर्भ मे लोक शिक्षण और लोक जागृति के अभाव को दूर करने के लिए छठी, सातवी पचवर्षीय योजना काल से राजस्थान मे ग्रामीण क्षेत्रो मे यह कार्यक्रम आरम्भ किया गया है। इसके अन्तर्गत घरो व सस्थाओ मे पृथक शौचालयो के निर्माण का कार्य कराया जा रहा है। योजना का लाभ अनुसूचित जाति व जन जाति तथा इसी तरह एकीकृत ग्रामीण विकास योजना के अन्तर्गत गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारो एव चुने हुए परिवारो को दिया जाता है। इसके अन्तर्गत अनुदान, सहायता के साथ साथ भारत सरकार के केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम के अन्तर्गत भी अनुदानसहायता उपलब्ध करायी जाती है। योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रो मे स्वास्थ्यप्रद जीवन बनाने एवं ग्रामीण जनता को स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यकलापो की जानकारी उपलब्ध कराना है ताकि ग्रामीण क्षेत्रो में, विशेष तौर से बच्चो एव महिलाओ मे स्वच्छ जीवन के प्रति जागृति उत्पन्न की जा सके।

बंजड़ भूमि विकास कार्यक्रम

वृक्षों के विनाश से उत्पन्न सामाजिक, आर्थिक संकट के निवारण हेतु

का दायित्व पचायती राज सस्थाम्रो को दे दिया गया था। राज्य में ग्रामीण क्षेत्रो की प्राथमिक शिक्षा पूर्णत पचायत समितियो के नियन्त्रण मे है और राज्य की पचायत समितिया जिला परिषद के निर्देशन मे प्राथमिक शिक्षा का सचालन करती हैं। पचायत समितियों को 1988 से उच्च प्राथमिक शिक्षा का दायित्व भी दिया गया है। इसी तरह अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम का सचालन भी पचायती राज सस्थाम्रो को हस्तातरित किया जाता है। अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसे बालक/बालिकाम्रो को शिक्षा से जोडा जाता है जो कि दिन मे अपने परिवार के साथ जीविकोपार्जन के साधन जुटाने मे व्यस्त रहते हैं या किसी अन्य कारण से शिक्षा ग्रहण नही कर पाते हैं। ऐसे बालकों की सुविधा के लिए अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र दो घण्टे के लिए चलाये जाते हैं।

पोषाहार कार्यक्रम

पोषाहार कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रमुख रूप से दो कार्यक्रम राज्य मे सचालित किये जाते है -

1 मध्यान्ह पोषाहार कार्यक्रम, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक शालाम्रों के छात्रों को स्कूल के मध्यान्ह मे नाश्ता उपलब्ध कराया जाता है। यह कार्यक्रम अभी तक राज्य के 13 जिलो मे ही कार्यान्वित किया गया है और इसके माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में कुपोषित बच्चो को उचित पोषण देने का प्रयत्न किया जाता है।

2. अकाल ग्रस्त क्षेत्रो मे विशेष पोषाहार कार्यक्रम—भीषण अकाल की मार से ग्रस्त क्षेत्रो मे चलाया जाता रहा है। इस विशेष पोषाहार कार्यक्रम के अन्तर्गत 6 वर्ष तक के बच्चो, गर्भवती महिलाम्रो एव धात्री माताम्रो के लिए राज्य में 7,500 केन्द्र स्थापित किये गये हैं जिनमे पकापकाया भोजन उक्त प्रकार के बच्चो एव स्त्रियो को उन्ही के स्थानो पर उपलब्ध कराया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों मे पेयजल हेतु हैण्डपम्पों का सरक्षण

राजस्थान मे ग्रामीण क्षेत्र आज भी पेयजल की समस्या से सर्वाधिक ग्रसित हैं। ऐसे क्षेत्रों मे पेयजल की समस्या के समाधान हेतु राज्य में विगत कुछ वर्षों मे बड़ी सख्या मे हैण्डपम्प लगाये गये हैं। हैण्डपम्पो के लगा दिए जाने के पश्चात उनके रखरखाव की समस्या अत्यन्त गम्भीर बन गयी और यह अनुभव

किया गया कि एक बार हैण्डपम्प खराब हो जाने के पश्चात उनके ठीक करने की दिशा मे कोई उपाय नही किया जाता । इस समस्या के समाधान के लिए ग्राम पचायतो एव पचायत समितियो को ग्रामीण क्षेत्रो मे पेयजल के हैण्डपम्पो के सधारण का दायित्व दिया गया है । पचायती राज की सस्थाओ को प्रदेश के 18 जिलो मे इस कार्य की जिम्मेदारी दी गयी जिसके लिए उनमे 1948 मिस्त्री एव 81 फिटर्स नियुक्त किये गये हैं ।

स्वास्थ्य मार्गदर्शक योजना

इस योजना के अन्तर्गत एक हजार की ग्रामीण जनसख्या पर स्थानीय व्यक्तियो मे मे एक स्वास्थ्य मार्गदर्शक का चयन किया जाता है जिसे आवश्यक प्रशिक्षण देकर अपने क्षेत्र मे स्वास्थ्य सम्बन्धी सहायता देने तथा सामान्य प्रकार की आवश्यक दवाइया निशुल्क वितरण करने का कार्य दिया जाता है । इस प्रकार चयनित स्वास्थ्य मार्गदर्शक के प्रशिक्षण की व्यवस्था जिला चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी के द्वारा की जाती है ।

ग्रामीण विकास एवं पचायती राज विभाग द्वारा सीधे सचालित कार्यक्रमो और पचायती राज सस्थाओ को हस्तातरित कार्यक्रमो का जो विवरण दिया गया है उसके माध्यम से विभाग के कार्य, भूमिका और दायित्वों को समझने म महत्वपूर्ण सहायता मिलती है । उपरोक्त दायित्वो के अतिरिक्त विभाग निम्नाकित क्षेत्रो मे भी भूमिका निष्पादित करता है [19]

कृषि उन्नयन हेतु कार्य

यह विभाग इस क्षेत्र मे उन्नत कृषि तथा आदर्श कृषि फार्मों की स्थापना धान्यगाहो की स्थापना, अधिक कृषि उत्पादन हेतु योजना बनाने, उन्नत खाद, बीज और यन्त्रों के प्रयोग को लोकप्रिय बनाने, सहकारी कृषि, डेयरी फार्मिग, ग्राम्य वन, सिचाई योजनाओ के निर्माण और सधारण, फल तथा सब्जिया का विकास और भूमि को कृषि योग्य बनाने तथा कृषि भूमि की भू सरक्षण इत्यादि मे प्रोत्साहन देना है ।

पशुपालन क्षेत्र मे कार्य

इस क्षेत्र मे विभाग निम्नाकित कार्य करता है [20]

1. पशुओ को छूत की बीमारियो स बचाना,

2. अभिजात, अभिजातक साडो की व्यवस्था, साडो को बधिया करना, कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रो की स्थापना तथा उनका स धारण और पशुओ की नस्ल सुधारने का कार्य,
3. भेड, सूअर, ढोर, कुक्कट तथा ऊँटो की नस्ल सुधारना,
4. प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रो तथा छोटे पशु औषधालयो की स्थापना तथा उनका स धारण,
5. मत्स्य पालन का विकास,
6. ऊन विकास और उसे श्रेणीबद्ध करना,
7. उन्नत चारा/पशु खाद्य का विकास और उसका प्रस्तुतीकरण।

स्वास्थ्य तथा ग्राम सफाई

इस क्षेत्र मे विभाग निम्नांकित कार्य करता है :

1. ग्रामीण क्षेत्रो मे पेयजल की उपलब्धि,
2. टीका लगाने सहित स्वास्थ्य सेवाओं का स धारण,
3. अस्वास्थ्यकर बस्तियो का सुधार,
4. पौष्टिक आहार, प्रसूति तथा स्वास्थ्य और छूत की बीमारी के सम्बन्ध मे लोगो मे लोक चेतना का प्रसार,
5. व्यापक और भयानक रोगो की रोकथाम के प्रयास,
6. सार्वजनिक मार्गों, नालियो, बांधो, तालाबों, कुओ तथा अन्य सार्वजनिक स्थानो का निर्माण और उनकी सफाई ।

शिक्षा एवं समाज शिक्षा

इस क्षेत्र मे विभाग द्वारा सम्पादित भूमिका का सम्बन्ध मुख्यत· निम्न बिन्दुओ से है :

1. प्राथमिक शालाओ एव उच्च प्राथमिक शालाओ के माध्यम से शिक्षा का प्रसार, पाठशालाओ का निर्माण, शिक्षको की नियुक्ति और शालाओ का प्रबन्ध,
2. प्राथमिक शालाओ की बुनियादी पद्धति मे परिवर्तन,
3. पुस्तकालयो एव वाचनालयो की स्थापना एवं उनका रखरखाव,

4. छात्रवृति के माध्यम से गरीब छात्रो की सहायता,
5. अध्यापको के लिए आवास का निर्माण,
6. प्रौढ शिक्षा,
7. युवा स गठनो की स्थापना और उनका सचालन,
8. सूचना केन्द्रो, क्लबो, अखाडो तथा मनोरजन और खेलकूद के अन्य साधनो की स्थापना,
9. ग्रामवासियों, ग्राम साथ्यो- ग्राम साथनियों, ग्राम सविकाओ के प्रशिक्षण का पूर्ण उपयोग ।

सहकारिता एवं कुटीर उद्योगो के क्षेत्र मे भूमिका

1. विभिन्न प्रकार की सहकारी स स्थाओ की स्थापना और उन्हे प्रोत्साहन,
2. कुटीर उद्योगो की सभावनाओ का सर्वेक्षण, विकास और प्रोत्साहन,
3. कुटीर उद्योगो के लिए प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना द्वारा कारीगरो तथा शिल्पकारो की कुशलता को बढावा देना,
4. ग्रामीण क्षेत्र मे काम आने वाले उन्नत किस्म के औजारो को लोकप्रिय बनाना,
5. ग्रामीण एव कुटीर उद्योगो के लिए कच्चे माल को सस्ते दामो पर उपलब्ध कराना और उनके उचित वितरण की व्यवस्था करना,

पिछड़े वर्गों के विकास हेतु भूमिका

यह विभाग पिछडे वर्गों के उत्थान हेतु निम्न कार्य करता है

1. अनुसूचित जातियो, जन जातियो तथा पिछड़े वर्ग के छात्रावासो की स्थापना और उनका रखरखाव,
2. समाज कल्याण के स्वयसेवी स गठनो का मजबूत बनाना तथा उनमे समन्वय,
3. मद्य निषेध एव समाज सुधार हेतु प्रचार एव प्रसार कार्य,
4. समाज के पिछडे वर्गों को अन्य वर्गों के समान उन्नति के अवसर उपलब्ध कराने हेतु उपाय करना ।

इस प्रकार ग्रामीण विकास एव प चायती राज विभाग राजस्थान मे न केवल ग्रामीण विकास के कायक्रमो के क्रियान्वयन मे अपनी भूमिका निभाता है अपितु इन कार्यक्रमो को निष्पादित करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रो मे स्थापित प चायती राज स स्थाओ के विकास और उनके कुशल कार्यकरण हेतु आवश्यक प्रबन्ध भी करता है ।

सन्दर्भ

1. एच. डी मालवीया, *विलेज प चायत इन इण्डिया*, *1965*, *उद्धृत*, डॉ. रविन्द्र शर्मा, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, प्रिन्ट वेल पब्लिशर्स, जयपुर 1985, पृ. 105
2. उपरोक्त
3. सादिक अली पूर्वोक्त प्रतिवेदन, पृ 7
4. उपरोक्त
5. राजस्थान सरकार, आदेश स. एफ 1 (3) इन्स्टी/ए/50 दि. 23 फरवरी, 1950
6. डॉ रविन्द्र शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 106
7. सादिक अली पूर्वोक्त प्रतिवेदन, पृ 7–8
8. राजस्थान सरकार आदेश स पी. डी एडम/59—10992 दिनाक 6 फरवरी, 1959
9. डॉ. रविन्द्र शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 107–8
10. राजस्थान सरकार, सामान्य प्रशासन विभाग, आदेश स. एफ (13) जीए/ए/59 दिनाक 28 मार्च, 1959
11. राजस्थान सरकार, आदेश स. एफ 24 (2) (मन्त्रिमण्डल) (82) जयपुर दि 22 जून, 1982
12. राजस्थान सरकार, ग्रामीण विकास एव प चायती राज विभाग का वार्षिक प्रगति विवरण 1990–91
13. राजस्थान सरकार ग्रामीण विकास एव प चायती राज विभाग, कार्य विभाजन आदेश स. एफ. 17 (18) एडीएम–I/941 दि. 12.4.90

14. उपरोक्त
15. राजस्थान सरकार, ग्रामीण विकास पंचायती राज विभाग, कार्य विभाजन आदेश स. एफ. 17 (18) आरबीपीआर/एडीएमएन-1/74 592 दि. 19.4 88
16. उपरोक्त
17. राजस्थान सरकार ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग का वार्षिक प्रगति विवरण,1988-89 पृ. 3–12
18. उपरोक्त
19. उपरोक्त
20. डॉ. रविन्द्र शर्मा, पूर्वोक्त, पृ 113

19

पंचायती राज के तुलनात्मक लक्षण
[महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान के सन्दर्भ में]

पुस्तक के पूर्व अध्यायो मे, यह विवरण दिया जा चुका है कि बलवंतराय मेहता समिति की अनुशंसा के आधार पर किस प्रकार विभिन्न राज्यो ने पंचायती राज को अपनाया है। इस अध्याय मे देश के दो अन्य राज्यो—महाराष्ट्र व गुजरात मे अपनाई गई पंचायती राज संरचना से राजस्थान की पंचायती राज संस्थाओ के लक्षण तथा विशेषताओ की तुलना प्रस्तावित है।

इस सन्दर्भ मे सर्वप्रथम उल्लेखनीय तथ्य यह है कि देश मे राजस्थान ऐसा प्रथम राज्य था, जिसने पंचायती राज को अपनाया। वस्तुत: ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत की स्थापना तो राजस्थान मे 1953 मे राजस्थान पंचायत अधिनियम, के माध्यम से ही कर दी गई थी तथा पंचायत समिति एवं जिला परिषद की रचना के लिये 1959 मे राजस्थान पंचायत समिति तथा जिला परिषद अधिनियम बनाया गया था।

महाराष्ट्र राज्य मे पंचायती राज संस्थाओ का गठन भी दो पृथक अधिनियमो के माध्यम से किया गया है। ग्राम पंचायतो के लिये बम्बई ग्राम पंचायत अधिनियम, 1958 तथा पंचायत समिति और जिला परिषद के लिये महाराष्ट्र जिला परिषद तथा पंचायत समिति अधिनियम, 1961 बनाया गया है। इन दोनो राज्यों के विपरीत गुजरात की पंचायती राज व्यवस्था की रचना हेतु केवल एक ही अधिनियम गुजरात पंचायत अधिनियम 1961 बनाया गया है जिसके अन्तर्गत गुजरात मे तीनो स्तरो पर पंचायती राज की संस्थाए कार्यरत है। इस प्रकार सभी राज्यो मे यह लक्षण तो समान रूप से पाया जाता है कि इनमे त्रि-स्तरीय पंचायती राज का वरण किया गया है।

तीनों ही राज्यो मे पचायती राज की आधारभूत या सबसे निचली इकाई को ग्राम पचायत के नाम से जाना जाता है। गुजरात मे ग्राम स्तर पर गठित होने वाली इकाई को ग्राम पचायत और नगर मे गठित होने वाली पचायत को नगर पचायत कहते हैं। इसी तरह तालुका स्तर की सस्था को तालुका पचायत और जिला स्तर की सस्था को जिला पचायत कहा गया है। राजस्थान और महाराष्ट्र मे मध्यवर्ती इकाई को पचायत समिति और जिला स्तरीय इकाई को जिला परिषद के रूप मे गठित किया गया है।

इन तीनो राज्यो, मे तीनो स्तर पर कार्यरत सस्थाओ का सख्यात्मक विवरण इस प्रकार है[1]

राज्य	ग्राम पंचायत	पचायत समिति	जिला परिषद
महाराष्ट्र	24000	298	29
गुजरात	12663	218	19
राजस्थान	7391	237	27

कार्यकाल

महाराष्ट्र		५ वर्ष
गुजरात	—	५ वर्ष
राजस्थान	—	3 वर्ष

ग्राम पंचायत की रचना

महाराष्ट्र और गुजरात मे ग्राम पचायत के सदस्यो की सख्या 7 से 15 तथा राजस्थान मे 5 से 20 के मध्य निर्धारित की गई है। तीनो ही राज्यो मे ग्राम पचायत के सदस्यो तथा सरपच का चुनाव गुप्त मतदान की प्रणाली से सम्पन्न होता है। गुजरात एव राजस्थान मे ग्राम पचायत के पच एव सरपच दोनो का चुनाव ग्राम सभा के सभी वयस्क नागरिको के द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत महाराष्ट्र मे केवल पच पद के लिये ही प्रत्यक्ष रूप से ग्राम सभा के वयस्क नागरिक चुनाव मे भाग लेते है क्योकि वहा पर सरपच तो निर्वाचित पचो मे से, उन्ही के द्वारा चुना जाता है। तीनो ही राज्यो मे ग्राम पचायत मे उप-सरपच का पद भी होता है जो निर्वाचित पचो के द्वारा चुना जाता है।

इन सभी राज्यो मे ग्राम पचायत मे महिलाओ एव अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगो को प्रतिनिधित्व देने के लिये स्थानों के आरक्षण का प्रावधान भी सम्बन्धित अधिनियमो मे किया गया है। प्रत्येक राज्य मे 2 महि-

लाओं के स्थान ग्राम पचायत मे आरक्षित किये गये हैं। इसी तरह अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिये गुजरात मे एक या जनसख्या के अनुपात में उससे अधिक स्थान, महाराष्ट्र मे भी जनसख्या के अनुपात मे इन जातियो के लिये आरक्षण का निर्णय जिलाधीश के द्वारा किया जाता है। राजस्थान के पचायत अधिनियम मे अनुसूचित जाति तथा जनजाति प्रत्येक के लिये एक-एक स्थान आरक्षित किया गया है। महाराष्ट्र में ग्राम पचायत मे न्यूनतम 7 और अधिकतम 15 सदस्य होते हैं किन्तु प्रत्येक ग्राम पचायत के लिये सदस्यो की सही सख्या का निर्धारण सम्बन्धित जिले के जिलाधीश द्वारा किया जाता है। इन सदस्यो के अतिरिक्त वहा सहकारी समिति, जो उस ग्रामीण क्षेत्र मे कृषि या ऋण वितरण से सम्बन्धित कार्य करती हो, के अध्यक्ष को भी ग्राम पचायत से सयोजित किया गया है। राजस्थान मे ग्राम पचायत हेतु पचायत अधिनियम, 1953 मे सह-सदस्यो का प्रावधान किया गया है।[2] इसके अनुसार पचायत क्षेत्र मे कार्यशील सहकारी समिति के अध्यक्ष ग्राम पचायत मे सह-सदस्य के रूप मे सम्बद्ध होते है। सह-सदस्यो तथा निर्वाचित सदस्यो मे अन्तर यह है कि निर्वाचित सदस्य तो मतदान मे भाग लेते है किन्तु सह-सदस्य ग्रामीण क्षेत्रों मे उत्पादन कार्यों सम्बन्धी बहस मे भाग ले सकते है पर मतदान नही करते।

ग्राम सभा

ग्राम पचायत के स्तर पर तीनो ही राज्यो मे ग्राम सभा का प्रावधान भी किया गया है। गुजरात मे ग्राम सभा को साविधिक आधार प्रदान किया गया है अर्थात् ग्राम पचायत क्षेत्र के समस्त वयस्क नागरिको की इस सभा को अधिनियम द्वारा प्रस्तावित कार्यों को करने हेतु गठित किया गया है।[3] ग्राम सभा मूल रूप से ग्राम पचायत के कार्यों पर निगरानी रखती है। इसी प्रकार महाराष्ट्र मे भी ग्राम सभा को पचायत क्षेत्र के समस्त वयस्क नागरिको की एक सभा के रूप मे मान्यता प्रदान की गई है।[4] इस राज्य मे ग्राम सभा को पचायत के बजट एव हिसाब-किताब पर निगरानी रखने के अतिरिक्त ग्राम पचायत के सदस्यो के चुनाव का काम भी दिया गया है। इसके विपरीत राजस्थान एक ऐसा राज्य है जहा ग्राम सभा को पचायत अधिनियम मे औपचारिक रूप से यद्यपि कोई स्थान नही दिया गया है तथापि राजस्थान पचायत अधिनियम, 1953 मे यह कहा गया है कि प्रत्येक पचायत अपने वयस्क नागरिकों की एक सभा निश्चित प्रक्रिया और निश्चित अन्तराल से बुलाएगी जिसमे पचायत द्वारा किये जाने वाले कार्यों और उसकी प्रगति की समीक्षा की जा सकेगी।[5]

इस प्रकार जहां गुजरात व महाराष्ट्र म ग्राम सभा को पचायत अधिनियमो मे साविधिक आधार प्रदान किया गया है, वही राजस्थान के पचायत अधिनियम मे इसे विधिक आधार प्राप्त नही। यही कारण है कि राजस्थान म ग्राम सभा एक निष्क्रिय सस्था के रूप मे जानी जाती है।

पचायत समिति की रचना

महाराष्ट्र मे निम्नाकित कोटि के व्यक्ति पचायत समिति के सदस्य होते हैं[6]

1. वे सभी व्यक्ति, जो तालुका मे जिला परिषद के लिये चुने गये हों,
2. तालुका मे रहने वाले सहवरित पार्षद,
3. तालुका मे कृषि उत्पादो की खरीद और बिक्री मे सलग्न सहकारी समिति का अध्यक्ष,
4. पचायत समिति द्वारा तालुका मे कृषि का व्यापार करने वाली सहकारी समिति के एक अन्य अध्यक्ष को पचायत समिति सहवरण करती है,
5. अधिनियम म किये गये प्रावधानो के अनुसार दो सदस्यो का तालुका म प्रत्यक्ष चुनाव होता है।

गुजरात म पचायत समिति को तालुका पचायत के नाम से जाना जाता है जिसम कुछ निर्वाचित और कुछ सह-सदस्य होते है।[7] निर्वाचित सदस्यो के लिये जनसख्या पर आधारित सख्या का निर्धारण भी सम्बन्धित अधिनियम म कर दिया गया है जो इस प्रकार है[8]

जनसख्या	सदस्य सख्या
60000 तक	15
60000 से एक लाख तक	19
1 लाख स 150000 तक	23
150000 से 2 लाख तक	27
दो लाख से अधिक पर	31

निर्वाचित सदस्यो म अनुसूचित जाति तथा जनजाति को प्रतिनिधित्व देने के लिये अधिनियम यह व्यवस्था करता है कि तालुका मे रहने वाली इन जातियो की जनसख्या के अनुपात मे सदस्यो की सख्या का आरक्षण राज्य सरकार द्वारा किया जायगा।[9] इसी प्रकार 15 स 19 सदस्यो तक की तालुका पचायत म 2 और उससे अधिक निर्वाचित सदस्यो की स्थिति म 3 महिला सदस्यो के आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है।[10]

गुजरात का पचायत अधिनियम निम्नाकित लोगो को तालुका पचायत की सह-सदस्यता प्रदान करता है [11]

1 गुजरात विधानसभा के, तालुका या उसके किसी क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य,

2. राजस्व तालुका से सम्बन्धित प्राधिकारी 'महलकारी' या 'मामलतदार,'

3. तालुका क्षेत्र मे पडने वाली समस्त नगर पचायतो के अध्यक्ष या इस पद के दायित्वो को सम्पादित करने हेतु नियुक्त पदाधिकारी,

4 तालुका की समस्त ग्राम पचायतो के सरपंच या उसके दायित्वो को सम्पादित करने के लिये नियुक्त पदाधिकारी ।

तालुका पचायत के सह-सदस्य उसकी बैठको की कार्यवाही मे सक्रिय भाग लेते हैं किन्तु न तो वे उसमे मतदान के अधिकारी होते हैं और न ही किसी समिति के अध्यक्ष चुने जा सकते हैं ।

राजस्थान मे पचायत समिति मे पदेन सदस्य, निर्वाचित सदस्य, सहवरित सदस्य और सह सदस्य के प्रावधान किये गये हैं । पचायत समिति के पदेन सदस्यो मे :

1 पचायत समिति क्षेत्र की सभी पचायतो के सरपच,

2. पचायत समिति क्षेत्र से निर्वाचित विधानसभा सदस्य,

3 क्षेत्रीय उपखण्ड अधिकारी (जिसे मताधिकार या कोई निर्वाचित पद प्राप्त करने का अधिकार नही होता) ।

इसी तरह पचायत समिति क्षेत्र मे स्थित ग्रामदान गावो को पचायत समिति मे प्रतिनिधित्व देने के लिये ग्राम सभाओ के द्वारा एक या दो सदस्य के निर्वाचन की व्यवस्था की गई है । यदि पचायत समिति क्षेत्र मे एक ही ग्रामसभा हो तो उसका अध्यक्ष सम्बन्धित पचायत समिति मे चुना हुआ सदस्य हो जायेगा । इनके अतिरिक्त सहवरित सदस्यो के रूप मे पचायत समिति मे

1. दो महिलाए,

2 दो अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि,

3. दो अनुसूचित जनजाति के सदस्य, यदि पचायत समिति क्षेत्र मे इनकी सख्या कुल जनसख्या के 5 प्रतिशत से अधिक है, और

4. एक सहकारी समितियो की प्रबन्ध समिति का प्रतिनिधि ।

राजस्थान मे पचायत समिति मे निम्नांकित सहू-सदस्यो का प्रावधान भी किया गया है

1. कृषि निपुण,
2. पचायत समिति क्षेत्र म कार्य कर रही सेवा सहकारी समितियो के अध्यक्षो का एक प्रतिनिधि जिसका चुनाव क्षेत्र की समस्त सेवा सहकारी समिति के अध्यक्षो म से उन्ही के द्वारा किया जाता है,
3. पचायत समिति क्षेत्र म कार्य कर रही विपणन समितियो के अध्यक्षो का एक प्रतिनिधि जिसका चुनाव समस्त विपणन समितियो के अध्यक्षो द्वारा उन्ही मे से किया जाता है,
4. पंचायत समिति क्षेत्र म कार्य कर रही अन्य सहकारी समितियो के अध्यक्षो का भी एक प्रतिनिधि उपरोक्त रीति मे ही चुना जाता है और पचायत समिति मे सहू-सदस्य के रूप मे कार्य करता है।[12]

इस तरह यह स्पष्ट है कि तीनो राज्यो मे पचायती राज सस्थाओं मे सस्थागत सदस्यता की स्थिति प्राय अलग-अलग है। राजस्थान म पचायती राज सस्थाओं की सरचना सस्थागत रूप म परस्पर सम्बद्ध है। सबसे पहले ग्राम पचायत के सरपच, ग्राम की जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप मे चुने जाते हैं और वे पचायत समिति के पदेन निर्वाचित सदस्य बनते हैं। इसी तरह पचायत समिति के प्रधान जिला परिषद के पदेन निर्वाचित सदस्य होते है।

महाराष्ट्र राज्य की पचायती राज व्यवस्था म सस्थागत सदस्यता का प्रावधान केवल पचायत समिति स्तर पर ही दृष्टव्य है जहा जिला परिषद क व सदस्य, जो पचायत समिति क्षेत्र से चुने गये है, पचायत समिति के सदस्य होते हैं। वहा, पचायत समिति क्षेत्र से दो सदस्यो का चुनाव प्रत्यक्ष रूप म निर्वाचन क्षेत्रो से भी पचायत समिति के लिय होता है।

गुजरात राज्य की पचायती राज सस्थाओ म सदस्यता की प्रकृति राजस्थान राज्य से मिलती-जुलती है। वहा ग्राम पचायत और नगर पचायत क सदस्य तालुका पचायत क पदेन सदस्य होते हैं और इसी प्रकार तालुका पचायत के अध्यक्ष जिला पचायत के पदेन सदस्य होते हैं।

पचायत समिति का प्रशासनतन्त्र

महाराष्ट्र मे पचायत समिति का प्रमुख कार्यकारी अधिकारी खण्ड विकास अधिकारी (ब्लॉक डवलपमेंट आफिसर) के नाम से जाना जाता है। इन

298 पंचायत समितियों में से जनजाति प्रधान 31 पंचायत समितियों में प्रथम श्रेणी सवर्ग के अधिकारी विकास अधिकारी के रूप में नियुक्त हैं और शेष पंचायत समितियों में द्वितीय श्रेणी के अधिकारी विकास अधिकारी के दायित्वों का निष्पादन कर रहे हैं। उसकी सहायता के लिये कृषि, शिक्षा और पशुपालन आदि से सम्बन्धित प्रसार अधिकारी भी पंचायत समिति में नियुक्त किये जाते हैं। हाल ही में एकीकृत बाल विकास परियोजना के अन्तर्गत महाराष्ट्र में पंचायत समितियों के लिए 92 पद, बाल विकास परियोजना अधिकारियों, 6 पद क्षेत्रीय पोषण अधिकारियों 7 पद जिला कार्यक्रम अधिकारियों और एक-एक पद निदेशक, अतिरिक्त निदेशक तथा सम्बद्ध निदेशक के भी स्वीकृत किये गये हैं। ये पद केन्द्र सरकार द्वारा प्रवर्तित 20 सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत 6 वर्ष से कम के बालकों और गर्भवती दूध पिलाने वाली माताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उन 92 पंचायत समितियों के लिये स्वीकृत किये गये हैं जिनमें यह केन्द्र प्रवर्तित योजना कार्यान्वित की गई है। ऐसे प्रत्येक खण्ड में एक बाल विकास परियोजना अधिकारी की नियुक्ति की गई है जिसकी सहायता के लिये 3 से लेकर 5 पर्यवेक्षक और 150 आंगनवाड़ी कार्यकर्ता एवं सहायक भी हैं।[13]

गुजरात में प्रत्येक तालुका पंचायत में अधिकारियों और कर्मचारियों की संख्या का निर्धारण राज्य सरकार अधिनियम के अन्तर्गत करती है।[14] प्रत्येक तालुका पंचायत में एक तालुका विकास अधिकारी नियुक्त किया जाता है जो राज्य की प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है और तालुका पंचायत के पदेन सचिव के कार्यों का निष्पादन भी करता है।[15] यह अधिकारी तालुका पंचायत और उनकी समितियों की समस्त बैठकों में भाग लेता है तथा तालुका पंचायत में काम करने वाले समस्त कर्मचारियों पर प्रशासनिक नियन्त्रण रखता है। वह तालुका पंचायत के अध्यक्ष की देख-रेख और नियन्त्रण में कार्य करता है। नियमानुसार तालुका पंचायत में आवश्यक कर्मचारियों की नियुक्ति भी वह कर सकता है। वह तालुका क्षेत्र में चलने वाले समस्त निर्माण कार्यों और गतिविधियों पर पर्यवेक्षण और नियन्त्रण रखता है। वह तालुका पंचायत और उसकी समितियों की बैठकों की कार्यवाही का अभिलेख रखता है। तालुका पंचायत के कोष से धनराशि का, आवश्यकता और नियमों के अनुसार, वितरण करता है। वह तालुका पंचायत के सामान्य नियन्त्रण में रहते हुए राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट समस्त कार्यों के लिये उत्तरदायी माना जाता है।[16]

राजस्थान में पंचायत समिति के प्रशासनतन्त्र का कार्यकारी अधिकारी 'खण्ड विकास अधिकारी' को ही बनाया गया है। यह अधिकारी प्रारम्भ में

राजस्थान प्रशासनिक सेवा सवर्ग का होता था किन्तु कालातर में कृषि सेवा तथा सहकारिता एव पशुपालन सेवा सवर्ग के कनिष्ठ अधिकारियो को पदोन्नति देकर इस पद पर नियुक्त किया जाने लगा। 1982 में बीकानेर पचायती राज सम्मेलन के पश्चात पचायती राज संस्थाओ को सशक्त बनाने के जो निर्णय लिये गये, उसके अन्तर्गत राजस्थान की कुल 237 पचायत समितियो में से लगभग 100 पचायत समितियो में राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियो को विकास अधिकारी नियुक्त किया जाने लगा है और शेष पचायत समितियो में विकास अधिकारियो की व्यवस्था पूर्ववत ही है। इस अधिकारी की सहायता के लिये पचायत समितियो में सहकारिता, कृषि, शिक्षा, उद्योग इत्यादि विभागो के कुछ कनिष्ठ अधिकारियो को प्रसार अधिकारियो के रूप में नियुक्त किया जाता है। राजस्थान की पचायत समितियो को चूकि कार्यकारी दायित्व दिये गये हैं, इस लिये इस स्तर पर मन्त्रालयिक कर्मचारियो की भी आवश्यकतानुसार नियुक्ति की जाती है।

पचायत समिति स्तर पर जन-प्रतिनिधि

तीनो ही राज्यो में पचायत समिति स्तर पर जन प्रतिनिधियो के नेतृत्व को प्रतिष्ठा की गई है। महाराष्ट्र और राजस्थान में उसे प्रधान तथा गुजरात में उसे तालुका अध्यक्ष (प्रेसिडेन्ट) के रूप में जाना जाता है। यह उल्लेखनीय है कि तीनो ही राज्यो में पचायत समिति के प्रशासनतन्त्र को इन जन प्रतिनिधियो के नियन्त्रण में रखा गया है।

पचायत समिति में समितिया

तीनो ही राज्यो में पचायत समिति अपने कामकाज को गति प्रदान करने के लिए अनेक समितियो का गठन करती है। गुजरात में तालुका पचायत में निम्नाकित समितिया बनाये जाने का प्रावधान सम्बन्धित अधिनियम में ही किया गया है[17]

1. कार्यकारी समिति,
2. सामाजिक न्याय समिति, तथा
3. तालुका पचायत द्वारा निर्मित किसी भी विशिष्ट कार्य के लिये कोई अन्य समिति।

राजस्थान में सम्बन्धित अधिनियम के अनुसार निर्दिष्ट विषयो के लिये चार स्थाई समितियों का प्रावधान किया गया है जिनमे प्रत्येक में पाच सदस्य हो

सकते है। इन सात सदस्यो में 5 पचायत समिति के सदस्यो के द्वारा उन्ही में से निर्वाचित होते है तथा दो का वे सहवरण करते है। यदि आवश्यक हो तो पाचवी स्थाई समिति का निर्माण भी किया जा सकता है। 1973 मे गिरधारी लाल व्यास समिति ने पचायत समिति स्तर पर केवल एक कार्यकारी समिति बनाय जाये की सिफारिश की थी। महाराष्ट्र में भी महत्वपूर्ण विषयो के लिये स्थाई समितिया बनाये जाने का प्रावधान किया गया है जिनकी सख्या का निर्धारण ब्लॉक स्तर पर आवश्यकता के अनुसार किया जाता है।

पंचायत समिति की स्थिति

जहा तक पचायत समिति के कार्यो और भूमिका के कारण उसकी स्थिति का सम्बन्ध है, राजस्थान तथा गुजरात में यह स्थिति प्राय: एक जैसी है। पचायती राज के त्रि-स्तरीय ढाचे मे इन दोनो राज्यो ने इस मध्यवर्ती इकाई को कार्यकारी शक्तिया प्रदान की हैं। दोनो ही राज्यो मे पचायत समिति या तालुका पचायत को ग्रामीण क्षेत्रो में समस्त विकास कार्यक्रमो और आर्थिक विकास की परियोजनाओ को कार्यान्वित करने के लिये अधिकृत किया गया है। किन्तु महाराष्ट्र के सन्दर्भ मे जिला परिषद प्रमुख कार्यकारी इकाई है जिसे विकास की परियोजनाओ को कार्यान्वित करने का दायित्व दिया गया है। वहाँ पंचायत समिति, जिला परिषद के उन दायित्वो और कार्यों को अपने क्षेत्र मे सम्पादित करने के लिये उत्तरदायी होती है जो कार्य जिला परिषद को उस पचायत समिति में सम्पन्न करने होते है। महाराष्ट्र मे पचायत समिति अपना स्वय का बजट बनाती है जिस पर जिला परिषद की स्वीकृति लेनी होती है। बजट के सन्दर्भ मे यही स्थिति अन्य दोनो राज्यो मे भी लागू होती है। इस प्रकार इस विवरण से यह सिद्ध होता है कि राजस्थान और गुजरात ने जहा पचायत समिति को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमो की प्रमुख प्रशासनिक इकाई के रूप मे अभिकल्पित किया है वही महाराष्ट्र मे पचायत समिति का ग्रामीण विकास कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने मे वैसा महत्व नही है। राजस्थान एव गुजरात मे इस मध्यवर्ती इकाई को अपने क्षेत्र मे कुछ निश्चित कर लगाने के अधिकार भी दिये गये है यद्यपि कर आरोपण के पूर्व उन पर जिला परिषद एव राज्य सरकार की पूर्व अनुमति लेनी होती है। महाराष्ट्र मे तो कर लगान का अधिकार ग्राम पचायत को भी दिया गया है। तीनो ही राज्यो मे पचायत समिति पर नियन्त्रण का अधिकार जिला परिषद और अन्तिम कार्यवाही करने का अधिकार राज्य सरकार मे निहित किया गया है।

जिला परिषद की रचना, शक्तियां तथा स्थिति

महाराष्ट्र में जिला परिषद मे 40 से लेकर 60 तक पार्षद होते हैं जो निर्धारित निर्वाचन क्षेत्रो से, पूरे जिले से, वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जाते हैं। इनके अतिरिक्त उधार, विपणन, औद्योगिक सहकारिता और सहकारी प्रशिक्षण के क्षेत्र मे कार्य करने वाली सहकारी समितियो के चार अध्यक्षो तथा जिले की पचायत समितियो के अध्यक्षो एव महाराष्ट्र राज्य सहकारिता भूमि विकास बैंक के निदेशक व समाज कल्याण समिति के अध्यक्ष को जिला परिषद की सदस्यता प्रदान की गई है।

गुजरात मे जिला पचायत मे कतिपय निर्वाचित और कुछ सह-सदस्य होते हैं।[18] निर्वाचित सदस्यो की सख्या जिले की जनसख्या के आधार पर निश्चित की जाती है जो इस प्रकार है[19]

जिले की जनसख्या	सदस्य सख्या
10 लाख पर	32
10 से 12 लाख पर	35
12 से 14 लाख पर	39
14 से 16 लाख पर	43
16 से 18 लाख पर	47
18 लाख से ऊपर	51

निर्वाचित सदस्यो की उक्त सख्या मे से जिले की जनसख्या के अनुपात मे अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिये आरक्षण का प्रावधान भी किया गया है।[20] इसी प्रकार 35 सदस्यो तक 3, 43 सदस्यों तक 4 और 51 सदस्यो वाली जिला परिषद मे 5 महिला सदस्यों का आरक्षण भी किया गया है।

गुजरात की जिला पचायत मे निम्नाकित सह-सदस्य होते हैं[21]

1. जिला पचायत या उसके किसी भाग से लोकसभा के लिये निर्वाचित सदस्य;
2. राज्यसभा का ऐसा सदस्य, जो उस राजस्व जिले म निवास करता हो;
3. गुजरात विधानसभा के एस सदस्य जो उस जिला पचायत या उसक किसी क्षेत्र से चुन गये हो;
4. उस जिले का जिलाधीश;
5. उस जिले की समस्त तालुका पचायतों के अध्यक्ष या नियमानुसार उनके दायित्वो को निष्पादित करन हेतु नियुक्त प्राधिकारी।

जिला पंचायत के सभी सह-सदस्य जिला पंचायत एवं उसकी किसी भी समिति की बैठकों की कार्यवाही मे सक्रिय भाग लेते हैं किन्तु वे उसमे मतदान या किसी समिति के अध्यक्ष बनने के लिये अपात्र होते हैं।[22] जिला पंचायत का प्रधान कार्यालय उस राजस्व जिले के मुख्यालय पर स्थित होता है। इसी तरह तालुका पंचायत का मुख्यालय भी उस राजस्व तालुका के मुख्यालय पर ही होता है।

राजस्थान मे जिला परिषद मे कुछ पदेन, कुछ सहयोजित और कतिपय सह-सदस्य होते हैं। पदेन सदस्यो मे (1) जिले की समस्त पंचायत समितियो के प्रधान, (2) जिले मे निर्वाचित लोकसभा सदस्य, (3) राज्यसभा के वे सदस्य जो जिला परिषद के क्षेत्र मे निवास करते हो, (4) जिले से निर्वाचित विधान सभा के सदस्य, तथा (5) जिला विकास अधिकारी, जिसे मताधिकार अथवा किसी चुने हुए पद को प्राप्त करने का अधिकार नही होता।

सहयोजित सदस्यो मे दो महिलाएं, एक अनुसूचित जाति का सदस्य तथा एक अनुसूचित जनजाति का सदस्य, यदि जिले की कुल आबादी मे उनकी संख्या 5 प्रतिशत से अधिक हो, होते हैं। इसी प्रकार केन्द्रीय सहकारी बैंक का अध्यक्ष और जिला सहकारी संघ का अध्यक्ष जिला परिषद के सह-सदस्य माने जाते हैं।

महाराष्ट्र मे जिला परिषद के जन-प्रतिनिधि नेता को निर्वाचित सदस्य मिलकर चुनते हैं। इसी तरह राजस्थान मे भी जिला परिषद के जिला प्रमुख के चुनाव मे, जिला परिषद के सभी पदेन तथा सहवृत्त तथा जिले की पंचायत समितियो के पदेन तथा सहवृत्त सदस्य भाग लेते हैं। गुजरात मे भी जिला पंचायत की प्रथम बैठक मे उसके सदस्यों द्वारा अपने अध्यक्ष (प्रेसिडेन्ट) और उपाध्यक्ष (वाइस प्रेसिडेन्ट) का चुनाव किया जाता है। जिला परिषद के ये निर्वाचित जन-प्रतिनिधि, जिला परिषद मे जनता की आवाज के प्रतीक होते हैं। जिला पंचायत या जिला परिषद का समूचा प्रशासनतन्त्र उनके निर्देशन और नेतृत्व मे कार्य करता है। वस्तुत. जिला परिषद का यह नेतृत्व ही राज्य सरकार और जनता के बीच सेतु का काम करता है। इन्ही मे से भावी नेताओ और जन-प्रतिनिधियो का विकास होता है।

जिला परिषद मे प्रशासनतन्त्र

महाराष्ट्र मे प्रत्येक जिला परिषद के प्रशासनिक शीर्ष पर प्रमुख कार्यकारी अधिकारी (सी. ई. ओ.) होता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा को उसी

वरिष्ठता का अधिकारी होता है जिस वरिष्ठता का व्यक्ति उस राजस्व जिले में जिलाधीश नियुक्त किया जाता है। उसकी सहायता के लिये दो उप-कार्यकारी अधिकारी होते हैं जिनमें एक सामान्य प्रशासन और दूसरा, ग्राम पंचायतों के प्रशासन के कार्यों की देख-रेख के लिये उत्तरदायी होता है। उप-मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सामान्य प्रशासन) जिला परिषद और उसकी स्थाई समिति का सचिव भी होता है। जिला परिषद में एक राजस्व अधिकारी, एक मुख्य लेखा-पाल और एक वित्त अधिकारी भी नियुक्त किया जाता है। प्रत्येक जिला परिषद में सार्वजनिक निर्माण छोटी सिंचाई परियोजनाओं, स्वास्थ्य, पशुपालन, कृषि विकास, शिक्षा इत्यादि के लिये प्रथम श्रेणी के राज्य सेवा के अधिकारी भी नियुक्त किये जाते हैं। इन अधिकारियों की सहायता के लिये द्वितीय श्रेणी एवं अधीनस्थ सेवाओं के अधिकारी भी होते हैं।

गुजरात में प्रत्येक जिला पंचायत में जिला विकास अधिकारी उसके सचिव के पदेन दायित्वों का निर्वहन करता है।[23] इस अधिकारी के अधीन अधिनियम की धारा 203 के अन्तर्गत उतनी संख्या में वैसे अधिकारी और कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं जितने प्रशासनिक दृष्टि से कार्य संचालन हेतु आवश्यक हों। यह जिला विकास अधिकारी अधिनियम के अन्तर्गत जिला पंचायत के अध्यक्ष के निर्देशों के अधीन उन समस्त कार्यों को करने के लिये उत्तरदायी होता है जो जिला पंचायत के लिये अधिनियम या नियमों के अनुसार जनकल्याण हेतु आवश्यक हों। वह जिला पंचायत एवं उसकी समिति की बैठकों की कार्यवाही में भाग लेता है और उसके समस्त कर्मचारियों पर नियन्त्रण करता है। कतिपय अधीनस्थ कर्मचारियों की नियुक्ति के अधिकार भी उसी में निहित हैं।[24]

राजस्थान में जिला परिषद में एक 'मुख्य कार्यकारी अधिकारी' जिला परिषद की प्रशासनिक संरचना के शीर्ष पर नियुक्त किया जाता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है। कतिपय छोटे जिलों में यह अधिकारी राजस्थान प्रशासनिक सेवा संवर्ग से भी नियुक्त कर दिया जाता है। यह अधिकारी जिला परिषद के 'प्रमुख' के निर्देशन में रहते हुए जिला परिषद के समस्त दायित्वों का सम्पादन करता है। इस अधिकारी के अधीन उन विभिन्न विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी कार्य करते हैं जिनसे सम्बन्धित कार्यों को सम्पादित करने की जिम्मेदारी जिला परिषद पर होती है। उदाहरण के लिये उच्च प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा का कार्य जिला परिषद के अधीन दिया गया है। अतः शिक्षा विभाग के उप-जिला शिक्षा अधिकारी इत्यादि इस मुख्य कार्यकारी अधिकारी के सतत् पर्यवेक्षण और निर्देशन में कार्य करते हैं। राजस्थान में

जिला परिषद चूकि केवल पर्यवेक्षकीय इकाई है और इसे कोई विकास परियोजनाए अपने स्तर पर कार्यान्वित नही करनी पडती इसलिये पचायत समितियो एव ग्राम पचायतो के पर्यवेक्षण हेतु कतिपय आवश्यक कर्मचारी भी इसमे नियुक्त किये जाते हैं।

जैसाकि पूर्व मे भी सकेत किया जा चुका है, गुजरात एव राजस्थान मे पचायती राज की सरचना मे मुख्य निष्पादक इकाई पचायत समिति को बनाया गया है। अत इन दोनो राज्यो मे जिला परिषद की भूमिका, कार्य और स्थिति केवल पर्यवेक्षण तक सीमित है। इसके विपरीत महाराष्ट्र मे जिला परिषद ऐसी मुख्य कार्यकारी इकाई है जो ग्रामीण क्षेत्रो की समस्त विकास परियोजनाओ को कार्यान्वित करती है। इस राज्य मे जिला परिषदो को सरकार द्वारा प्रायोजित परियोजनाओ एव स्वय द्वारा निर्मित परियोजनाओ को कार्यान्वित करना होता है। सरकार जिन परियोजनाओ को जिला परिषदो के माध्यम से कार्यान्वित करती है या जिला परिषदो को कार्यान्वयन हेतु हस्तान्तरित करती है, उनका समस्त व्यय उसी के द्वारा प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त रोजगार प्रत्याभूति योजना और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार प्रत्याभूति कार्यक्रमो का निष्पादन जिला परिषद एक सहकारी विभाग के रूप मे करती है। जिला परिषद कतिपय वे कार्य भी अपने स्वय के साधनो से सम्पन्न करती है जो उसे पूर्ववर्ती जिला बोर्डों से विरासत के रूप मे मिले हैं। महाराष्ट्र की जिला परिषद अपने ससाधन जुटाने हेतु कर लगाने के लिये सक्षम होती है। महाराष्ट्र के सम्बन्धित अधिनियम मे उन अनेक करो की परिगणना की गई है जो जिला परिषद द्वारा जिले मे आरोपित किये जा सकते हैं। इनमे भू-राजस्व पर कर, समानातर अनुदान प्राप्त करने हेतु लगाये जाने वाला कर, जल पर कर, एव स्टाम्प ड्यूटी पर सरचार्ज इत्यादि प्रमुख है। महाराष्ट्र की जिला परिषद जिले के अन्तर्गत आने वाली पचायत समितियो के बजट की स्वीकृति प्रदान करती है। इसकी स्थाई समिति किसी ग्राम पंचायत के सरपच या उप-सरपच को उसके दुराचरण या अक्षमता के कारण हटा सकती है। यह स्थाई समिति पचायत के किसी प्रस्ताव को स्थगित या निरस्त भी कर सकती है। किसी पचायत को उसकी अक्षमता या त्रुटि के लिये भग या अधिक्रमित किये जाने की शक्ति राज्य सरकार मे निहित है। इस सम्बन्ध मे सम्भागीय आयुक्त को भी यह अधिकार दिया गया है कि यदि पचायत मे आधे सदस्यो के स्थान रिक्त हो जाए तो उस पंचायत को वे भग कर सकते हैं।

तीनो राज्यो की, त्रि-स्तरीय पंचायती राज सरचना के तुलनात्मक

संगठन सम्बन्धी विश्लेषण से अवगत होने के पश्चात्, कुछ अन्य आयामों के संदर्भ में भी तीनों राज्यों में प्रवर्तित प्रावधानों का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

निर्वाचित जन-प्रतिनिधि तथा पंचायती राज संस्थाएं

उपर्युक्त विवरण में दिये गये संगठन सम्बन्धी प्रावधानों में यह स्पष्ट परिलक्षित हुआ है कि गुजरात तथा राजस्थान राज्य ने विभिन्न राजनीतिक दलों से निर्वाचित विधायक तथा संसद सदस्यों को पंचायत समिति तथा जिला परिषद के कार्यकलापों में सम्बद्ध किया है। राजस्थान में पंचायत समिति स्तर पर पंचायत समिति क्षेत्र में निर्वाचित विधायक और उस क्षेत्र या उसके किसी भाग में निर्वाचित संसद सदस्य या निवास कर रहे राज्यसभा सदस्य को पंचायत समिति का पदेन सदस्य बनाया है। इसी प्रकार जिला परिषद में भी जिले में निर्वाचित विधायकों, लोकसभा सदस्य और जिले में निवास कर रहे राज्यसभा सदस्य को पदेन सदस्यता दी गई है। राजस्थान की जिला परिषद में तो ये निर्वाचित जन-प्रतिनिधि मत देने और निर्वाचित पद प्राप्त करने के अधिकारी भी बनाये गये हैं, यद्यपि ऐसा व्यक्ति एक साथ दो पद धारण नहीं कर सकता।

गुजरात में तालुका पंचायत में, उस क्षेत्र में निर्वाचित विधानसभा सदस्य तथा नगर पंचायत के अध्यक्ष को सह-सदस्यता प्रदान की गई है। इसी प्रकार जिला पंचायत के सह-सदस्य के रूप में जिले में निर्वाचित लोकसभा सदस्य और जिले में निवास कर रहे राज्यसभा सदस्य तथा जिले के समस्त विधानसभा क्षेत्रों में निर्वाचित विधायकों को भी सह सदस्यता दी गई है। किन्तु महाराष्ट्र एक ऐसा राज्य है जिसने संसद सदस्य या विधानसभा के सदस्यों को पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकरण में सम्बद्ध नहीं किया है। महाराष्ट्र राज्य में ऐसा करते समय यह धारणा रही है कि विधायकों तथा संसद सदस्यों के पास इतना समय नहीं होता कि वे पंचायती राज संस्थाओं में अपना योगदान दे सकें। इस प्रकार बलवंत राय मेहता समिति की अनुशंसाओं के अनुसार केवल गुजरात और राजस्थान में राजनीतिक दलों के निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों को पंचायती राज संस्थाओं के कामकाज में संयोजित किया है और महाराष्ट्र ने इस अनुशंसा के विपरीत निर्णय लेकर एक पृथक परिपाटी का विकास किया है। तीनों ही राज्यों *में यह सामान्य लक्षण दिखाई दिया है कि विधायकों और संसद सदस्यों को* पास पंचायतों के कार्यकरण में कहीं कोई सहभागिता प्रदान नहीं की गई है।

जिलाधीश तथा पंचायती राज संस्थाएं

जिले के जिलाधीश की पंचायती राज व्यवस्था में सहभागिता और

सम्बद्धता के सन्दर्भ मे भी तीनो ही राज्यो मे लगभग वैसी ही स्थिति पाई जाती है जो जन-प्रतिनिधियो के सन्दर्भ मे उपर्युक्त पक्तियो मे व्यक्त की गई है। राजस्थान राज्य की पचायती राज व्यवस्था मे जिलाधीश को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वह जिला परिषद का पदेन सदस्य बनाया गया है। वह जिला परिषद की बैठको और विचार-विमर्श मे सक्रिय भाग लेता है किन्तु न तो वह मतदान मे हिस्सा ले सकता है और न ही वह कोई निर्वाचित पद प्राप्त कर सकता है। पचायती राज सस्थाओ के सन्दर्भ मे उसको अधिनियम पर्याप्त पर्यवेक्षणात्मक व नियन्त्रणात्मक शक्तिया प्रदान करता है। जिले की पचायती राज सस्थाओ मे चल रहे समस्त विकास कार्यक्रमो पर जिलाधीश को पर्यवेक्षण व नियन्त्रण सबधी शक्तिया दी गई है।[25] वह पचायत समिति के बजट की भी जाच करता है। पचायत समिति मे जिलाधीश के अधीनस्थ अधिकारी, सम्बन्धित सब-डिवीजनल ऑफिसर, को समिति की पदेन सदस्यता भी दी गई है। यह अधिकारी पचायत समिति की बैठको मे सक्रिय भाग लेता है और वहा जिलाधीश के, पचायत समितियो पर नियन्त्रण का प्रतीक माना जाता है।

गुजरात राज्य की, पचायती राज व्यवस्था मे भी जिलाधीश को लगभग वही स्थान प्राप्त है जो राजस्थान मे है। पूर्व पक्तियो मे यह व्यक्त किया जा चुका है कि सम्बन्धित राजस्व जिले का जिलाधीश गुजरात की जिला पचायत का सह-सदस्य होता है। वह जिला पचायत की बैठक की कार्यवाही मे अपने विचार व्यक्त कर सकता है किन्तु उसे मतदान मे भाग लेने या निर्वाचित पद प्राप्त करने का अधिकार नही होता।

महाराष्ट्र राज्य मे जिलाधीश को पचायती राज सस्थाओ के साथ नही रखा गया है। जिला परिषद मे वहा जो सचिव नियुक्त किया जाता है वह उसी वरिष्ठता का भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है जिस वरिष्ठता का जिले मे जिलाधीश नियुक्त किया जाता है। वहा की जिला परिषद पर राज्य सरकार की ओर से सम्भागीय आयुक्त कतिपय उन नियन्त्रणात्मक शक्तियो का उपयोग करता है जिनका सकेत ऊपर दिया जा चुका है। तीनो ही राज्यों मे जिला परिषद मे मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप मे पृथक से भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी नियुक्त किया जाता है जो जिला परिषद या जिला पचायत मे, जिला प्रमुख के नियन्त्रण मे रहते हुए, मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप मे कार्य करता है।

गैर पंचायती राज सस्थाएं तथा पंचायती राज

राजस्थान की पचायती राज व्यवस्था मे गैर पचायती राज सस्थाओ

के सदस्यो को सहभागिता, सह-सदस्यो के रूप मे दी गई है। पचायत समिति स्तर पर विपणन सहकारी समितियो के अध्यक्ष तथा सहकारिता सस्थान के अध्यक्ष को सह-सदस्यता दी गई है। इसी प्रकार जिला परिषद स्तर पर शिक्षा तथा सहकारिता क्षेत्र से भी लोगो को जिला परिषद के सह-सदस्य के रूप मे सयोजित किया गया है। जिला केन्द्रीय सहकारिता बैंक तथा जिला सहकारी सस्थान के अध्यक्ष को जिला परिषद की सह सदस्यता दी गई है।

गुजरात राज्य मे भी सहकारिता क्षेत्र के सदस्यो को पचायती राज सस्थाओ मे सह-सदस्यता के रूप मे सम्बद्ध किया गया है। तालुका पचायत क्षेत्र मे कार्यरत सहकारिता सस्थाओ के अध्यक्ष अपने मे से सदस्य और अध्यक्षो की कुल सख्या के 1/10 भाग के बराबर सदस्य तालुका पचायत के लिये निर्वाचित करते हैं। उसी प्रकार जिला पचायत मे भी दो व्यक्ति जिन्हे शिक्षा के क्षेत्र या विशेष अनुभव प्राप्त है और जो उसी जिले के निवासी हैं सहवृत्त सदस्य बनाये जाते हैं।

महाराष्ट्र राज्य की पचायती राज सस्थाओ मे भी सहकारिता क्षेत्र के लोगो को जिला परिषद तथा पचायत समिति मे सह-सदस्यता दी जाती है। वहा पर जिला परिषद स्तर पर 5 विभिन्न सहकारिता क्षेत्र की सस्थाओ—साख, ग्रामीण विकास, विपणन, औद्योगिक सहकारी सस्थाए तथा सहकारिता शिक्षा या प्रशिक्षण क्षेत्र की सस्थाओ के सदस्यो अथवा अध्यक्ष को जिला परिषद का सह-सदस्य बनाया जाता है। इसी प्रकार पचायत समिति मे भी क्रय-विक्रय सघ का एक अध्यक्ष, जो सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया जाय सह-सदस्य के रूप मे लिया जाता है। इस सन्दर्भ मे तीनो राज्यो मे यह तथ्य उल्लेखनीय है कि गैर पचायती राज सस्थाओ के लोगो को केवल पचायत समिति एव जिला परिषद के कामकाज मे सहभागिता प्रदान की गई है, ग्राम पचायत के स्तर पर ऐसा नही किया गया है। सहभागिता की यह प्रवृत्ति भी तीनो राज्यो मे पृथक पृथक है। कही तो उन्हे सहवृत्त सदस्य के रूप मे और कही सहभागी सदस्यो के रूप मे सम्बद्ध किया गया है।

समाज के कमजोर तथा पिछडे वर्ग और पचायती राज

विवेचनाधीन तीनो ही राज्यो की पचायती राज व्यवस्था मे कमजोर तथा पिछडे वर्गो—महिलाओ एव अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगो को सदस्यता दी गई है। अन्तर केवल सदस्यता के तरीके का है।

राजस्थान राज्य मे पचायती राज सस्थाओ मे कमजोर तथा पिछडे वर्ग के लोगो के पचायती राज सस्थाओ मे सहवरण के माध्यम से सम्बद्ध किया

जाता है। अधिनियम में यह प्रावधान किया गया है कि यदि महिलाएं तथा अनुसूचित जाति और जनजाति के लोग निर्वाचन के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं में नहीं आ पाते हैं तो निर्वाचित सदस्य नियमानुसार उनका सहवरण करते हुए उन्हें इन संस्थाओं में सयोजित करते हैं। अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधित्व के लिये यह शर्त अवश्य लगाई गई है कि उस क्षेत्र में उनकी आबादी, कुल जनसंख्या के 5 प्रतिशत से अधिक हो तभी उनके सहवरण पर विचार किया जाता है।

गुजरात राज्य की पंचायती राज संस्थाओं में जो सदस्य निर्वाचित होते हैं उनमें क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में उनका आरक्षण तालुका पंचायत तथा जिला पंचायत दोनों स्तरों पर किया गया है। महिलाओं के स्थान भी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार दोनों स्तरों पर आरक्षित किये गये हैं। महाराष्ट्र में, इन वर्गों को पंचायती राज संस्थाओं में चुनाव लड़ने के लिये स्थान आरक्षित करने का प्रावधान सम्बन्धित अधिनियम में किया गया है।

पंचायती राज संस्थाओं में सेवाएँ नौकरशाही

तीनों ही राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के प्रशासनिक कामकाज के साथ लन हेतु प्रशासनिक अधिकारी और कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। अधीनस्थ सेवा संवर्ग के लिए तीनों राज्यों में कतिपय सेवाओं के गठन की स्वीकृति दी गई है। राजस्थान राज्य में इन संस्थाओं में कर्मचारियों की स्थिति के बारे में विवरण कार्मिक वर्ग से सम्बन्धित अध्याय में विस्तार से दिया गया है। गुजरात में पंचायत अधिनियम, 1961 की धारा 203 के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं में 'सेवाओं' का नियमन किया जाता है। इसी तरह महाराष्ट्र राज्य में भी इन संस्थाओं के लिये पृथक से सेवाओं के नियमन का प्रावधान सम्बन्धित अधिनियम करता है।

कुल मिलाकर यह तथ्य दृष्टिगोचर होता है कि पंचायती राज संस्थाएं अपने प्रशासनिक कामकाज के संचालन के लिये नौकरशाही पर अवलम्बित है। जिला स्तरीय इकाई में मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में, तीनों ही राज्यों में, अधिकारियों की नियुक्ति भारतीय प्रशासनिक सेवा संवर्ग से की जाती है। इस प्रकार इस अधिकारी के माध्यम से जिला परिषद के सम्पूर्ण कामकाज पर राज्य सरकार अपना प्रत्यक्ष नियन्त्रण रखने में सक्षम होती है। इसी प्रकार खण्ड स्तर पर गठित पंचायत समिति या तालुका पंचायत में जो खण्ड विकास अधिकारी नियुक्त किया जाता है वह भी राज्य की प्रशासनिक सेवा या कभी कभी अधीनस्थ

सेवा का प्राधिकारी होता है। इस अधिकारी की नियुक्ति चूंकि सम्बन्धित राज्य सरकार के द्वारा ही की जाती है, अत राज्य सरकार उसके माध्यम से इस स्तर की इकाई को निर्णायक सीमा तक नियन्त्रित करने की स्थिति मे होती है। ग्राम पंचायत के स्तर पर तीनो ही राज्यों मे अब ग्रुप सचिव अथवा ग्राम सेवक की सेवाए ग्राम पंचायत के सचिव के रूप मे दी जाने लगी है। प्रारम्भिक वर्षों मे यह व्यवस्था नही थी जिससे ग्राम पचायते सक्रिय भूमिका नही निभा सकी थी तथा अब चूंकि ग्राम पंचायत के माध्यम से ग्रामीण विकास के अनेक कार्यक्रमो का क्रियान्वयन करवाया जाने लगा है जिससे ग्राम पंचायतों के प्रशासनिक, वित्तीय या लेखा सम्बन्धी कार्यों मे वृद्धि हुई है। इस स्थिति पर उपयुक्त प्रशासनिक नियन्त्रण तथा नियमानुसार कामकाज को प्रोत्साहन देने के लिए ग्रुप सचिवों के अतिरिक्त भी सक्षम प्रशासनिक कर्मचारी ग्राम पंचायतों से सम्बद्ध करने की आवश्यकता है ताकि ग्राम पचायत को दी जाने वाली राशि का सही-सही उपयोग सुनिश्चित किया जा सके।

तीनों राज्यो की पचायती राज संस्थाओं के प्रमुख लक्षणों के तुलनात्मक विवरण का प्रयत्न उपर्युक्त पंक्तियो मे किया गया है। वैसे इन संस्थाओं के अनेक ऐसे आयाम हैं जिनके विस्तृत अनुशीलन के लिए तो सम्बन्धित अधिनियमो का व्यापक अध्ययन ही आवश्यक होगा।

सन्दर्भ

1. ये आंकडे तीनो राज्यों से लेखक को प्राप्त नवीनतम सूचनाओं पर आधारित हैं।
2. राजस्थान पंचायत अधिनियम 1953 धारा 4
3. गुजरात पंचायत एक्ट, 1961, धारा 6
4. बम्बई पंचायत एक्ट, 1958
5. राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1953, धारा 23 (ए)
6. महाराष्ट्र जिला परिषद एवं पंचायत समिति अधिनियम 1961 के प्रावधानो के अनुसार यह चुनाव होता है।
7. गुजरात पचायत एक्ट, 1961, धारा 17 (1)
8. उपरोक्त, धारा 14 (3)

9. उपरोक्त, धारा 14 (4) ए., बी.
10 उपरोक्त, धारा 14 (4)सी
11 उपरोक्त, धारा 14 (5)
12 डॉ. रविन्द्र शर्मा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 76–78
13 यह समस्त सूचनाएँ लेखक को महाराष्ट्र सरकार के एक परिपत्र द्वारा प्राप्त हुई है।
14 गुजरात पचायत एक्ट, धारा 203
15. उपरोक्त, धारा 122 (1) (2) (3)
16 उपरोक्त, धारा 123
17 उपरोक्त, धारा 111 (1) (2)
18 उपरोक्त, धारा 15 (1)
19 उपरोक्त, धारा 15 (3)
20 उपरोक्त, धारा 15 (4)
21. उपरोक्त, धारा 15 (5)
22 उपरोक्त, धारा 15 (6)
23. उपरोक्त, धारा 142
24 उपरोक्त, धारा 143 (2)
25. राजस्थान पचायत समिति एवं जिला परिषद अधिनियम, धारा 59 व 69.